ॐ अर्हं नमः

शासनसम्राट्-श्रीमद्विजयनेमिसूरीश्वरसद्गुरुभ्यो नमः।

महामहोपाध्याय-श्रीमेघविजयगणि-प्रणीतं

सप्तसन्धान-महाकाव्यम्

शासनसम्राट्-सूरिचक्रचक्रवर्ति-सर्वतन्त्रस्वतन्त्राचार्यवर्य-

श्रीमद्विजयनेमिसूरीश्वरमहाराज-पट्टालङ्कार-

शास्त्रविशारद-कविरत्नाचार्य-श्रीमद्-

—: विजयामृतसूरीश्वरमहाराज :—

विरचित-'सरणी' टीकोपेतम्

-: प्रकाशयित्री :-

सूर्यपुर (सुरत) नगरस्था

श्री जैन-साहित्य-वर्धक-सभा

वीर-निर्वाण-संवत् २४७०	-: मूल्यम् :- रूप्यकाणां चतुष्कम् रु. ४-०-०	विक्रम-संवत् २०००

जैन भास्करोदय मुद्रणालये मुद्रितम्-धानापुरा रोड-जामनगर.

॥ श्री गौतमस्वामिने नमः ॥

–: प्रास्तविक–पुरोवचन

RY आ विश्वमां घणा पार्थिव–रत्नो छे. तेमाना केटलाएकनुं मूल्य लाखो अने करोडो रूपीयाथी पण अधिक होय छे. ते प्रमाणे केटलाएक मानवरत्नो विश्वने विभूषित करी रह्या छे. जेमनी किंमत पार्थिवरत्न करतां घणीज विशेष होय छे. ते मानवरत्नोने उत्पन्न करनार ग्रन्थरत्नो छे, ने ते कारणे सर्वकरतां विशेष मूल्यवान् ग्रन्थरत्नो छे. वस्तुतः तो ते–ग्रन्थरत्नोनी किंमतज नथी. अमूल्यज छे.

एक वस्तु करतां बीजी वस्तुनी किंमत वधारे अंकाय त्यारे समजवुं जोइए के पेली करतां बीजीमां कंइक विशेषता छे. आ 'सप्तसन्धान महाकाव्य' ने विद्वानो सर्वश्रेष्ठ–अजोड–अद्वितीय संस्कृतसाहित्यमां प्रथमकोटिनुं कही ओळखे छे, ने ओळखावे छे, तो ते कइ विशेषताने कारणे, ए जाणवुं आवश्यक छे. ते विशेषताओ नीचे प्रमाणे छे—

(१) अन्य काव्यग्रन्थोमां एक श्लोकनो एकज अर्थ नीकळतो होय छे, कदाच कोइ कोइ काव्यो एवा होय छे के, जेना दरेक श्लोकोमांथी बे बे अर्थ नीकळी बे जीवनचरित्र समजावता होय छे. ज्यारे आ सप्तसन्धान महाकाव्यना दरेक श्लोको सात महापुरुषोना जीवनवृत्तान्तने समजावे छे. तेथी ते सप्तार्थक–सप्तसन्धान कहेवाय छे.

(२) अन्य काव्योमां कोइ सामान्य के मध्यमकोटिना नायकोना जीवन गुंथ्या होय छे, तो आमां उत्तमोत्तम–परमपुरुष परमात्मा श्रीऋषभदेव श्रीशान्तिनाथ श्रीनेमिनाथ श्रीपार्श्वनाथ श्रीमहावीरस्वामिनी अने स्वपरदर्शनप्रसिद्ध उत्तमपुरुष श्रीरामचन्द्रजी अने श्रीकृष्णवासुदेवना जीवन गुंथायेला छे.

(३) अन्य काव्यामा शृङ्गार–बीभत्स आदि रसो एवा विचित्र अने विरूप-रूपे पोषण कराया होय छे, सज्जन सहृदयोने जे वांचतां घृणा थाय. ज्यारे आमां मर्यादित शृङ्गारादि रसोना पोषण पूर्वक शान्त रसने प्रधान राखी–शान्त रसमां तेनुं पर्यवसान करायेल छे. माटेज आ काव्य सर्व साधु पुरुषोने आदरणीय ने उपादेय छे.

(४) अन्य काव्योमां अप्रस्तुत विषयोनुं लांबु लांबु वर्णन करी अतिशय ग्रन्थगौरव करायुं होय छे ज्यारे आ काव्यना ४४२ सूक्तोमां साते महापुरुषोना वर्णनीय विषयोने रमणीय शैलीथी वर्णव्या छे.

(५) अन्य काव्योमां कोइमां शब्दालङ्कारो घणा होय तो अर्थालङ्कारोनो अभाव होय. अर्थालङ्कारो होय तो शब्दसौष्ठव ने मनोहरता न होय, ज्यारे आमां शब्दालङ्कारो अर्थालङ्कारो विविधछन्दो ऋतुवर्णन आदि महाकाव्यने उपयोगि लगभग बधा लक्षणो योज्या छे. ते आ प्रमाणे–आरम्भना चार श्लोकमां मङ्गलाचरण पछी ११ श्लोकमां दुर्जनसज्जन–निन्दास्तुति–आ सज्जनदुर्जननुं वर्णन घणुंज वशिष्ट विविध कल्पनाओथी भरपूर ने श्लेषालङ्कारथी सहित छे. त्यारबाद भरतखंडनुं ने तेमां पण आ साते महापुरुषो जे जे देशमां जे जे नगरमां उत्पन्न थया, ते ते देश नगर प्रजानी परिस्थितिनुं रसिक वर्णन छे. पछी ते ते देश नगर प्रजाना स्वामी अने विवक्षित नायकोना पिताओना नाम दर्शावना पूर्वक तेमनामां रहेल विशिष्ट गुणो वगेरे दर्शावी तेमनी पट्टराणीओनुं वर्णन करी तेमनी कुक्षिमां चरित्र नायको अवतर्या, ते वर्णवी ८२ सूक्तमां प्रथम सर्ग समाप्त करेल छे.

द्वितीय सर्गमां साते नायकोनुं जन्म वर्णन आवेहूब करेल छे. ते समयनुं नैसर्गिकस्वरूप, देवताओए करेल जन्मोत्सव, सर्वत्र फेलायेल प्रमोद वगेरे वर्णन अतिशय मनोरम छे. आ सर्गमां एक

चार्य श्रीविजयदेवसूरिजी महाराजना चरित्ररुपे 'देवानन्दाभ्युदय' काव्य, श्रीहर्षना नैषधीय महाकाव्यनी पादपूर्ति करी 'श्रीशान्तिनाथचरित्र,' कविकालिदासना 'मेघदूत' नी पादपूर्ति करी 'मेघदूत समस्या लेख' नामे सांवत्सरिक क्षमापना-पत्र वगेरे पादपूर्तिना परम कोटिना ग्रन्थो बनाव्या छे जे हाल पण सुलभ छे. आ शिवायना चन्द्रप्रभाव्याकरण, वर्षप्रबोध, मातृकाप्रसाद, विजयदेवमाहात्म्यविवरण, युक्तिप्रबोधनाटकादि पण तेमना बनावेल विशिष्ट ग्रन्थो छे. आ सप्तसन्धान पण तेमनी कलमथी आलेखायुं छे.

ए प्रमाणे मुख्यत्वे आ छ विशेषताओ अने बीजी नानी नानी अनेक विशेषताओथी भरपूर आ सप्तसन्धान महाकाव्य काव्यसृष्टिमां सर्वश्रेष्ठ स्थानने अनुभवे छे.

सांभळ्या प्रमाणे ग्रन्थकारे पोतेज आ काव्यनी टीका बनावी हती, परन्तु हाल ते उपलब्ध नहि होवाने कारणे, विद्वानो आ काव्यना वाचन, पठन-पाठनमां अप्रवृत्त हता. परन्तु शासनसम्राट् सर्वतन्त्रस्वतन्त्रसूरिचक्रचक्रवर्ति-पूज्यपाद-परमकृपालु-भट्टारकाचार्य महाराज श्रीमद्विजयनेमिसूरीश्वरजी महाराजश्रीना पट्टालङ्कार-अमारा प्रगुरुवर्य-कविरत्न शास्त्रविशारद पीयूषपाणि पूज्याचार्य महाराज श्रीविजयामृतसूरीश्वरजी महाराजश्रीए वर्षोना परिश्रमे आ काव्यनी 'सरणी' नामनी टीका बनावी, काव्यनो प्रवेशमार्ग खुल्लो करी आप्यो छे.

पण्डितोना पाण्डित्यनी आ काव्यमां परीक्षा छे.
विद्वानोनी प्रतिभा अहिं कसोटीए चडे छे.
साहित्यवेदिओनुं वैदुष्य आ काव्यथी चकासाय छे.

जेणे एक वखत पण आ काव्य हृदयथी वांची-विचारी आत्मसात् कर्युं छे, ते साहित्यसृष्टिमां अस्खलितपणे-अबाधितपणे सर्वत्र विचरी शके छे. आ ग्रन्थनुं अभ्यन्तर-स्वरुप विद्वानोना

ज्ञान-धनने पुष्ट करे छे. अने बाह्य-स्वरुप पुस्तक-कोषने शोभावे छे. जेनी पासे आ पुस्तक के तेना विचारो नथी, ते विद्वत्तामां अपूर्ण छे. माटे दरेक सहृदय आवा विशिष्ट काव्यद्वारा विशेषता मेळववा माटे तेना अध्ययन-अध्यापनमां उद्यत थाय ने कल्याण साधे एज अभिलाषा.

देवबाग-लक्ष्मीजैनाश्रम
जामनगर.
सं २००० अषाढ शुक्ल पञ्चमी

मुनि धुरन्धरविजय.

—: प्रकाशकीय निवेदन :—

संस्कृत साहित्यना परम-आभूषणरूप आ सप्तसन्धान महाकाव्यने टीका सहित प्रकट करवानो लाभ अमने मळ्यो छे तेथी अमो अमोने अहोभाग्य समजीए छीए.

प्रथम आ ग्रन्थ मूलमात्र श्रीयशोविजयजी ग्रन्थमालाए प्रकट कर्यो हतो, ने ते प्रकट करतां तेनी प्रस्तावनामां सूचव्युं हतुं के, टीका विना आवा अत्यन्त कठीन ग्रन्थनो अवबोध थवो सुलभ नथी, माटे टीकासहित आ ग्रन्थने छपावी प्रसिद्ध करवानी अमारी सम्पूर्ण इच्छा छतां, ज्यारे कोइपण टीका अमने उपलब्ध न थइ एटले मूलमात्र पण आ ग्रन्थ विनाश न पामे, माटे छे एमने एम प्रसिद्ध करीए छीए. कोइ विद्वान् आ ग्रन्थनी टीका करशे तो घणो उपकार थशे !

पूज्यपाद-आचार्य महाराज श्रीविजयामृतसूरीश्वरजी महाराजश्रीए वर्षो पूर्वे आ अद्वितीय ग्रन्थनी टीका रचवानो आरम्भ करेल, त्यारबाद सं. १९९३ मां कपडवणज मुकामे महाराजश्री चातुर्मास रह्या त्यारे शेठ जेशींगभाइ, न्यालचंदभाइ वगेरेए महाराजश्रीने साग्रह विनंति करी के 'आप आ ग्रन्थनी टीका पूर्ण

खूबी ए छे साते नायको कया मासमां कइ तिथिए जन्म पाम्या, ते पण एक बीजा चरित्रनी साथे विरोध वगर बताव्युं छे, ने ए रीते जन्म वर्णन नामे बीजो सर्ग २५ सूक्तमां पूर्ण करेल छे.

त्रीजा सर्गमां सुरेन्द्रोए करेल जिनेश्वरोनो जन्मोत्सव ने अन्य बे नायकोनो अन्यकृत जन्मोत्सव, सर्वेनुं नामकरण, बाल्यक्रीडा,-यौवनप्राप्ति, स्वयंवरनी परिस्थिति, विवाह, कुटुम्बपरिवार, आदि विशद वर्णव्या छे. आ सर्गमां ४८ सूक्तो छे. अनुप्रास अने यमक सूक्त मात्रमां छे. आनुं नाम 'कौमारवर्णन' छे.

'पूज्य राज्य वर्णन' नामे चतुर्थ सर्ग ४२ श्लोक प्रमाण छे. तेमां राज्यनीतिथी थतो प्रजाने संतोष-आनन्द, कृष्णचरित्रान्तर्गत पांडवो अने कौरवोने थयेल राज्यखटपटो-युद्धो वगेरेनुं वर्णन, तीर्थङ्करोने लोकान्तिकदेवोए तीर्थप्रवर्तावा करेल प्रेरणा, वार्षिकदान, पञ्चमुष्टिलोच-दीक्षा आदि वर्णन छे.

पांचमा सर्गमां-श्रीजिनेश्वरोना विहारनुं वर्णन, कर्मक्षय माटे करेल विविध तपश्चरण, उपसर्गसहन, आदि, रामपक्षमां वनवास, त्यां पडता कष्टो, सीता विरह, कृष्णपक्षमां विविध युद्ध वगेरेनुं शान्त वीर करुण रसमिश्रित वर्णन छे. श्रीभगवद्विहारवर्णन नामनो आ सर्ग ५८ श्लोक प्रमाण छे.

छट्ठा सर्गमां-६२ श्लोको छे. तेमां जिनेश्वरो-समितिगुप्तिनुं आसेवन करतां अप्रतिबद्धपणे विचरतां काम वगेरे अभ्यन्तर शत्रुगणनो विनाश करी केवलज्ञान प्राप्त करे छे, ते तथा अन्य पक्षमां बाह्य शत्रुओना विजय वगेरेनुं वर्णन छे. तेनुं नाम 'भगवत्केवलज्ञानसाम्राज्यवर्णन' एवुं छे.

सातमा अने आठमा-सर्गनुं नाम अनुक्रमे 'भगवत्केवलज्ञान-साम्राज्यविहारवर्णन' अने दिग्विजयवर्णन छे. तेमां ४२ ने २८ सूक्तो छे. नाम प्रमाणेज भगवन्तोए केवलप्राप्ति पछी क्यां

क्यां विहार कर्यो ते, गणधरोनी स्थापना, अनेक जीवोने करेल धर्मप्रतिबोध आदि वर्णव्या छे. ने इतर वे नायकोए करेल अनेक राजाओनो विजय वगेरे वर्णव्या छे. आ वे सर्गमां वीजी विशेषता ए छे के महाकाव्यना लक्षणने अनुसार एक सर्गमां विविध छन्दोनां मूक्यो छे. ने यमक नामे शब्दालङ्कारना प्रायः जेटला भेदो थाय छे ते सर्वना उदाहरणो छे. यमकनो महायमक नामे जे छेल्लो भेद छे तेनुं उदाहरण पण आमां छे. छए ऋतुनुं वर्णन घणुंज रसिक आ सर्गोमां छे.

छेवट नवमां सर्गमां जिनेश्वरोना मोक्ष कल्याणकादिनुं विशदवर्णन, परम्परावर्णन वगेरे छे. तेनुं नाम 'परम्पराधिकारवर्णन' एवुं छे.

(६) अन्य काव्यना रचयिता कोइ सामान्य कवि होय तो आ काव्यना कर्ता समर्थ महाकवि छे. आ काव्यना प्रथम उत्पादक कलिकाल सर्वज्ञ भगवान श्रीहेमचन्द्रसूरिजी महाराज छे, के जेमनी सर्वशास्त्रविषयक विद्वत्ता माटे, आजे कोइपण येमत नथी. तेओश्रीए काव्यसृष्टिमां चमत्कार उपजावे एवुं सर्वाङ्गसुन्दर सप्तसन्धान महाकाव्य योज्युं हतुं, परन्तु कराल काल तेनी सुन्दरता सांखी न शक्यो, ने तेने निःसहाय स्थितिमां जोइ छिन्नभिन्न करी पींखी नाख्युं. त्यारबाद सत्तरमो अने अढारमी सदीना सङ्गमकाळमां झळकता, साहित्यना अद्वितीय विद्वान्, उपाध्यायजी महाराज श्री मेघविजयजीगणिए ते काव्यने पुनर्जन्म–आप्यो.–उपाध्यायजीनी ग्रन्थविरचन शक्ति अद्भुत हती; तेमनां ग्रन्थो अवलोकतां तेमनुं व्याकरण साहित्य ने ज्योतिष विषयक पाण्डित्य अगाध हतुं ए निश्चित थाय छे. सौ करतां तेमनामां एक विशेषता ए हती के, तेओ पादपूर्ति करवानी कळामां अतिशय कुशळ हता; ने कळामां तेमनाथी आगळ वधेल कोइपण हजु सुधी जोवामां जाणवामां के सांभळवामां आवेल नथी. तेमणे माघकाव्यनी पादपूर्ति करी पूज्या-

चार्य श्रीविजयदेवसूरिजी महाराजना चरित्ररूपे 'देवानन्दाभ्युदय' काव्य, श्रीहर्षना नैषधीय महाकाव्यनी पादपूर्ति करी 'श्रीशान्तिनाथ-चरित्र,' कविकालिदासना 'मेघदूत' नी पादपूर्ति करी 'मेघदूत समस्या लेख' नामे सांवत्सरिक क्षमापना-पत्र वगेरे पादपूर्तिना परम कोटिना ग्रन्थो बनाव्या छे जे हाल पण सुलभ छे. आ शिवायना चन्द्रप्रभाव्याकरण, वर्षप्रबोध, मातृकाप्रसाद, विजयदेवमाहात्म्य-विवरण, युक्तिप्रबोधनाटकादि पण तेमना बनावेल विशिष्ट ग्रन्थो छे. आ सप्तसन्धान पण तेमनी कलमथी आलेखायुं छे.

ए प्रमाणे मुख्यत्वे आ छ विशेषताओ अने बीजी नानी नानी अनेक विशेषताओथी भरपूर आ सप्तसन्धान महाकाव्य काव्य-सृष्टिमां सर्वश्रेष्ठ स्थानने अनुभवे छे.

सांभळवा प्रमाणे ग्रन्थकारे पोतेज आ काव्यनी टीका बनावी हती, परन्तु हाल ते उपलब्ध नहि होवाने कारणे, विद्वानो आ काव्यना वाचन, पठन-पाठनमां अप्रवृत्त हता. परन्तु शासनसम्राट् सर्वतन्त्रस्वतन्त्रसूरिचक्रचक्रवर्ति-पूज्यपाद-परमकृपालु-भट्टारकाचार्य महाराज श्रीमद्विजयनेमिसूरीश्वरजी महाराजश्रीना पट्टालङ्कार-अमारा गुरुवर्य-कविरत्न शास्त्रविशारद पीयूषपाणि पूज्याचार्य महाराज श्रीविजयामृतसूरीश्वरजी महाराजश्रीए अपोना परिश्रमे आ काव्यनी 'सरणी' नामनी टीका बनावी, काव्यनो प्रवेशमार्ग खुल्लो करी आप्यो छे.

पण्डितोना पाण्डित्यनी आ काव्यमां परीक्षा छे.
विद्वानोनी प्रतिभा अहिं कसोटीए चडे छे.
साहित्यवेदिओनुं वैदुष्य आ काव्यथी चकासाय छे.

जेणे एक वखत पण आ काव्य हृदयथी वांचो-विचारी आत्मसात् कर्युं छे, ते साहित्यसृष्टिमां अस्खलितपणे-अबाधितपणे सर्वत्र विचरी शके छे. आ ग्रन्थनुं अभ्यन्तर-स्वरूप विद्वानोना

ज्ञान-धनने पुष्ट करे छे. अने बाह्य-स्वरुप पुस्तक-कोपने शोभावे छे. जेनी पासे आ पुस्तक के तेना विचारो नथी, ते विद्वत्तामां अपूर्ण छे. माटे दरेक सहृदय आवा विशिष्ट काव्यद्वारा विशेपता मेळववा माटे तेना अध्ययन-अध्यापनमां उद्यत थाय ने कल्याण साधे एज अभिलापा.

देवबाग-लक्ष्मीजैनाश्रम
जामनगर.
स २००० अषाढ शुक्ल पञ्चमी

मुनि धुरन्धरविजय.

—: प्रकाशकीय निवेदन :—

संस्कृत साहित्यना परम-आभूपणरूप आ सप्तसन्धान महाकाव्यने टीका सहित प्रकट करवानो लाभ अमने मळ्यो छे तेथी अमो अमोने अहोभाग्य समजीए छीए.

प्रथम आ ग्रन्थ मूलमात्र श्रीयशोविजयजी ग्रन्थमाळाए प्रकट कर्यो हतो, ने ते प्रकट करतां तेनी प्रस्तावनामां सूचव्युं हतुं के, टीका विना आवा अत्यन्त कठीन ग्रन्थनो अवबोध थवो सुलभ नथी, माटे टीकासहित आ ग्रन्थने छपावी प्रसिद्ध करवानी अमारी सम्पूर्ण इच्छा छतां, ज्यारे कोइपण टीका अमने उपलब्ध न थइ एटले मूलमात्र पण आ ग्रन्थ विनाश न पामे, माटे छे एमने एम प्रसिद्ध करीए छीए. कोइ विद्वान् आ ग्रन्थनी टीका करशे तो घणो उपकार थशे!

पूज्यपाद-आचार्य महाराज श्रीविजयामृतसूरीश्वरजी महाराजश्रीए वर्षो पूर्वे आ अद्वितीय ग्रन्थनी टीका रचवानो आरम्भ करेल, त्यारबाद सं. १९९३ मां कपडवणज मुकामे महाराजश्री चातुर्मास रह्या त्यारे शेठ जेसींगभाइ, न्यालचंदभाइ वगेरेए महाराजश्रीने साग्रह विनति करी के 'आप आ ग्रन्थनी टीका पूर्ण

करो तो अमो तेने छपावी प्रसिद्ध करीए' महाराजश्रीए टीका पूर्ण करी अने कपडवणजनी शेठ मीठाभाइ कल्याणचंदनी पेढीए जामनगर–भास्करोदय प्रेसमां तेनुं मुद्रण कराववानो आरम्भ कर्यो.

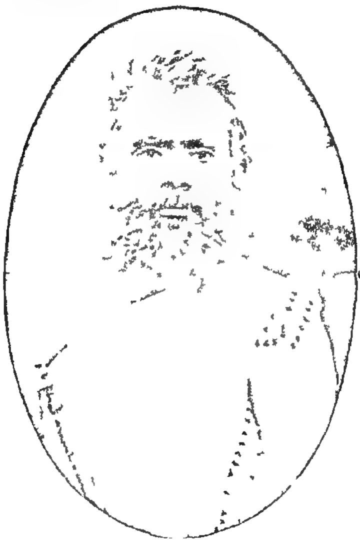
सं. १९९५ मां महाराजश्री सुरत पधार्या ने चतुर्मास दरम्यान शासनप्रभावनाना अनेक धार्मिक कार्यो थया, तेमां आ–'श्री जैन साहित्य वर्धक सभा' नी स्थापना पण थइ. अमोए आ ग्रन्थ आ सभा तरफथी प्रकट करवानी महाराजश्रीने विनति करी ने शेठ मीठाभाइ कल्याणचंदनी पेढी पासेथी ग्रन्थ मांगी लीधो. पेढीए पण रु. २०० नी मदद आपवा साथे आ ग्रन्थ प्रसिद्ध करवा अमोने आप्यो ते माटे अमो तेमनो आभार मानीए छीए.

विद्वानोने आग्रह सह विनवीए छीए के कविरत्न–शास्त्रविशारद विद्वद्वर्य–आचार्य महाराज श्रीविजयामृतसूरिजी महाराजश्रीए घणाज परिश्रमे तैयार करेल आ 'सरणी' टीका युक्त संस्कृत साहित्यना परमकोटिना अद्वितीय ग्रन्थरत्नुं वाचन–विलोकन करी पोतानी विद्वत्ताने समृद्ध बनावे; वधु न बने तो आ ग्रन्थरत्नने सावचणीथी पोतानी पासे राखी पोते शोभे ने पोताना भंडारने शोभावे.

आवा विशिष्ट ग्रन्थो साचवी राखवा ने तेनो प्रचार करवो ए पण जीवननुं एक अमूल्य कर्तव्य छे. सहृदयो हृदयथी आ महाकाव्यने सत्कारे ! पज इच्छा साथे विरमीए छीए

आवाल्यब्रह्मचारीण, तीर्थरक्षापरायणम् ॥
विबुधार्चितपत्पद्म, नन्दे नेमि प्रभु गुरुम् ॥ १ ॥

જન્મ સં ૧૯૨૯ (મહુવા) દીક્ષા સં ૧૯૪૫ (ભાવનગર)



પન્યાસપદ સં ૧૯૬૦ (વળા) આચાર્યપદ સં. ૧૯૬૪ (ભાવનગર)

શાસનસમ્રાટ્ સૂરિચક્રચક્રવર્તિ-દિવ્યાખણ્ડબ્રહ્મતેજોમૂર્તિ-
પાદપ્રભાવશાલિ ગર્નિન્દ્રવૃન્દ-
શ્રીમહાચાર્યવર્ય વિજયનેમિસૂરીશ્વરજી મહારાજ.

श्रीसप्तसन्धानमहाकाव्यस्य प्रधानविषयानुक्रमणिकाः ।

:

अथ पञ्चम सर्गः ।

शास्त्रविशारदानन्द-पूर्ण-पीयूषपाणये ।
नमोऽस्तु श्रीमदाचार्य-विजयामृतसूरये ॥ १ ॥

जन्म संवत् १९५२ (बोटाद). दीक्षा संवत् १९७१ (जावाल-मारवाड)



पन्यासपद सं. १९८९ उपा-पद-सं. १९९१ (महुवा). आचार्य सं. १९९२ (अमदावाद)

શાસનસમ્રાટ્-સૂરિચક્રચક્રવર્તિ-સર્વતન્ત્રસ્વતન્ત્ર-ભટ્ટારકાચાર્ય
મહારાજશ્રી વિજયનેમિસૂરીશ્વરજી મહારાજશ્રીના
- પટ્ટાલંકાર -
શાસ્ત્રવિશારદ-કવિરત્ન-પીયૂષપાણિ
પૂજ્યાચાર્ય મહારાજશ્રી વિજયામૃતસૂરીશ્વરજી મહારાજ.



॥ अर्हं नमोनम ॥

अक्षीणमहानसादिलब्धिसमन्विताय श्रीगौतमस्वामिनेनमः ॥



तपोगणगगनाङ्गणगगनमणये जगद्गुरवे
श्रीनेमिसूरीश्वरसद्गुरवेनमः ॥



महोपाध्यायश्रीमेघविजयगणिविरचितं

सप्तसन्धानमहाकाव्यम्



शास्त्रविशारद-कविरत्न-भट्टारकाचार्य-श्रीविजयामृतसूरिप्रणीतया-
सरणी इत्यभिधानया टीकया समन्वितम् ।



श्रियंसन्व्यांभव्यांविदधतु यूयांकाः स्मरणतः,
शशाङ्काकच्छायोच्छलिततललितामन्दयशसः ।
शिवाङ्गांगोद्भावाधिकरमणसङ्गोगिसुखदा,
महावीरा धीराः प्रगतभवतीराः सुरुचिराः ॥ १ ॥

या संस्मृताऽन्तरतमोऽतिनिरस्यमद्य,
प्रोद्भामिमन्मतिविकाशमलं ददाति ।
श्वेताम्बरप्रगुणहार्द्ररमाभिरामां,
जैनीङ्गिरंम्वहृदये समुपासहे ताम् ॥ २ ॥

1 श्रीऋषभदेवादिपञ्चजिनपतिस्तुत्यात्मक पद्यार्थकोऽयश्लोक शिखरणीछन्दसि

यस्योपदेशवचनामृतसेकलेशः,
सद्योऽङ्गहृन्मरुधरेऽपिनिपत्यसम्यक् ।
प्रोद्भावयत्यतिसुपुण्यविशालकन्दं,
तंनेमिसूरिनववारिदमानमामि ॥ ३ ॥
सप्तार्थसङ्ग्रथनकौशलचञ्चुबुद्धेः,
क्वेदंहिमेघविजयस्यगभीरकाव्यम् ।
काव्यार्थभावनविधावतिमन्दबुद्धिः,
क्वाहन्तथापि रभसाद्विवृतिं करोमि ॥ ४ ॥
श्रीमद्गुरोः कतिपयाक्षरसत्सुधानां,
सङ्ग्राहकस्य मम मेघवचःप्रवृत्तिः ।
सच्छास्त्रशुद्धमनसां मनसां मुदेस्या-
देकैकवक्तिविहसदाभविनांकवीनाम् ॥ ५ ॥

सप्तसंधानकाव्येऽस्मिन् सरणी क्रियते मया ।
इमामालम्ब्य विद्वांसः प्रवर्त्स्यन्तीह निर्भयम् ॥ ६ ॥

ऐदंयुगीन चतुर्विंशति तीर्थकृतांमध्ये प्रथम षोडश-द्वाविंश-त्रयोविंश चतुर्विंशानां क्रमतः श्रीमदादिदेव शान्तिनाथ-पार्श्वनाथ नेमिनाथ-महावीरस्वामीनां प्राधान्यात्,-विचित्र पवित्र चरित्र तया, पुण्य प्राग्भारसम्पन्नतया च. वासुदेव-बलदेवानां च मध्ये स्व-पर दर्शनेषु श्रीकृष्ण-रामयोर्देवाऽतिप्रसिद्धतया तेषां चरित्रवर्णनात्मकस्तुतिव्याजेन प्रपाणकरसन्यायेन एकेनैव काव्येन सप्तपुरुषोत्तमसत्तमचरिताऽमृताऽऽस्वादजन्याऽनन्यसामान्यमान्द्रानन्दसन्दोह मनुभवितुं परॉश्चानुभावयितुं 'सप्तसन्धाना' ऽभिधानमन्वर्थनामानं महाकाव्यं चिकीर्षु ग्रन्थकृद् विघ्नविघातायाऽविगानेन शास्त्रपरिसमाप्त्यर्थमाशीर्वादात्मकं मङ्गलमाचरन् शिष्यशिक्षायै श्रोतृ-व्याख्या-

तृणामनुपङ्गतो- मङ्गलाय च निवध्नाति—

श्रीनाभिजन्माऽन्वयपद्मभास्करः,
स्तुतोऽञ्चितः श्रीमुनिसुव्रतान्वये ।
जिनः शिवायास्तु दधन्महोदयं,
स भासतां यन्नजनेजयाश्रयः ॥१॥

(अन्वयः) यन्नजने सभासतां जयाश्रयः, श्रीनाभिजन्मान्वय पद्मभास्करः, श्रीमुनिसुव्रतान्वयेऽञ्चितः स्तुतः, महोदयं दधत् स जिनः शिवाय अस्तु ।

व्याख्या-प्रथममादिनाथपक्षीयाविवृतिः-यन्न=ऋषभस्य भजने=भक्तौ सेवायां 'कृते' इतिशेषः। सभासतां=सभ्यानां जयाश्रयः= जयाश्रयणं यान्नाऽऽन्तररिपुकर्मकविजयाऽवाप्तिः 'सञ्जायते'इतिशेषः। सः श्रीनाभिजन्मा=श्रीयुक्त नाभिराजतनुजः, अन्वयपद्मभास्करः= स्वकीयकुलकमलोद्द्योतनप्रद्योतनः, श्रीमुनिसुव्रतान्वये=श्रीमतां मुनीनां, सुव्रतानां=व्रतान्वितश्राद्धानां चाऽन्वये=कुले लक्षणया समूहे इत्यर्थः अञ्चितः=पूजितः सत्कृत इति यावत् स्तुतः=स्तुतिविषयीकृतः शक्रेन्द्रादिभिरिति गम्यते महोदयं=चतुस्त्रिंशदतिशयसमृद्धिरूपमहैश्वर्यं दधत्=धारयन् जिनः=जयति रागादीन् इति स तथोक्तः रागादि जयनशीलः शिवाय=भव्यानां कल्याणाय अस्तु=भवतु

शान्तिनाथ पार्श्वनाथ वीरपक्षे च श्रीनाभेर्जन्म=उद्भवो यस्य तादृशोऽन्वयः=वंश इक्ष्वाकुवंशः स एव पद्मं तत्प्रकाशे सूर्यः, अन्यत् पूर्ववत् ।

श्रीनाभिजन्मान्वयपद्मभास्करः=श्रिया इनः=पतिः श्रीनः=श्रीकृष्णस्तस्याऽभिजन्म=जनिर्यस्मिन् सचासावन्वयो यदुवंश स्तद्रूपकमलोल्लासने रविः,मुनिसुव्रतान्वये=मुनिसुव्रतस्य=द्वाविंश जिनस्यान्वयः कुलं हरिवंश स्तस्मिन् अञ्चितः=पूजितः, शिवायाः=तन्नामिकाया निजज-

नन्याः महोदय=तीर्थकृज्जनिजनितजगद्वन्द्यताद्यात्मकसौभाग्यं दधत्=सम्पादयन् स जिनो नेमिनाथाख्यः भास्वता=प्रकाशताम् शेषं पूर्ववत्

शान्तिनाथपक्षव्याख्यातदिशा चतुर्विंशति जिनसामान्यस्य स्तुत्यात्मकमिदंपद्यमवगन्तव्यं नेमिनाथ=मुनिसुव्रतवर्जं सर्वेषामिक्ष्वाकुवंशप्रभवत्वात् तत्र नेमिनाथ पक्षोचितप्रकारः परिदर्शित एव । मुनिसुव्रतान्वये=मुनिसुव्रतायाः=स्वमातुः अन्वये=पितृवंशे श्वशुरवंशे च अञ्चितः–अर्चितः उभयकुलानन्दकरत्वात् । श्रीनाभिजन्मान्वयपद्मभास्करत्वं तु नेमिनाथपक्षवर्णितदिशाऽवसेयमिति.

श्रीअर्हदाद्यः कृतशान्तिसर्गः,
समुद्रजन्मानवराजवर्गः ।
श्रीपार्श्वनाथः शुभवर्द्धमानः,
श्रियाऽभिरामस्तमिह स्मरामः॥ २ ॥

(अन्वय) इह [य] अर्हदाद्य कृतशान्तिसर्ग समुद्रजन्मा नवराजवर्ग श्रीपार्श्वनाथ शुभवर्द्धमान श्रियाभिरामश्च तम् स्मराम ॥ २ ॥

व्याख्या–प्रवृत्तिनिमित्तभूत मष्टशलाकापुरुषचरितवर्णनात्मकं निधेय तत्स्मरणव्याजेन दर्शयन्नाह–श्री इत्यादि ।

इह=अस्मिन् काव्ये, यत्तदोनित्यसम्बन्धादग्रेतनतमित्यनुरोधात् यः श्रीअर्हदाद्यः=श्रीमता महता=चतुर्विंशति तीर्थकृताम् आद्यः=प्रथमः ऋषभदेव इत्यर्थः। कृतशान्तिसर्ग –कृतः–सम्पादितः शान्तेः–सकलोपद्रवप्रशमनस्य सर्गः=स्वीकृतपरिचर्येन स तथोक्तः । समुद्रजन्मानवराजवर्गः=मुदा–हर्षेणसहितः समुद्–सहर्षः रजन्–राजमान् मानवाना राज्ञां च वर्गः–समूहोयस्मिन् सतथोक्तः । श्रीपार्श्वनाथः–पार्श्वे–समीपे (सेवार्थमागताः) नाथाः–इन्द्रादयो यस्य स तथोक्तः । शुभवर्धमानः–शुभेन वर्धते इति, शुभं वर्धमानमस्मादिति, शुभ—

कल्याणं वर्धते अन्तर्भावितण्यर्थतया वर्धयतीति वा स तथोक्तः । श्रिया–चतुस्त्रिंशदतिशयसम्पदा त्रिलोकीकमनीयसौन्दर्यलक्ष्म्या वा ऽभिरामो–मनोहरः, तं स्मरामः–वर्णनीयतया चिन्तयामो वयं कवयितार इति गम्यते ।

३ पार्श्वनाथपक्षे–श्रीअर्हदाद्यः–अर्हतां–पूज्यानाम् अर्हत्सु वा आद्यः–प्रधानः श्रीपार्श्वनाथः–तदाख्यत्रयोविंशतीर्थंकरः शेषं पूर्ववत्।

२ शान्तिनाथपक्षे च—कृतशान्तिसर्गः–गर्भावस्थायामपि विहितमारीरूपोपप्लवोपशमनः शान्तिकरणाच्च तदाख्य शान्तिनाथ इत्यर्थः शेषं समानम् ।

नेमिनाथपक्षे–समुद्रजन्मा–नामैकदेशे नामग्रहणात् समुद्रेत्यनेन समुद्रविजयो नृपो गृह्यते तस्माज्जन्म यस्य स तथोक्तः नेमिनाथ इत्यर्थः। नवराजवर्गः–नौतीति नवः–स्तोता राजवर्गोऽस्य सः, नवानां राज्ञां वर्गः पितृव्यत्वेनाप्त्यस्येति वा स तथोक्तः अन्यत् समानम् ।

महावीरपक्षे-शुभवर्धमान इति विशेष्यपदम् गर्भस्थितेऽस्मिन् प्रभौ पितुः सिद्धार्थराजस्यानुदिनमुत्तरोत्तरं कल्याणाऽभिवृद्ध्या पित्रा शुभसंवर्धनहेतुभूतस्यास्य ' वर्धमान ' इति नामकरणात्. यद्वा शोभते इति शुभः स चासौ वर्धमान इति.

रामपक्षे–श्रीअर्हन्तश्चतुर्विंशतितीर्थकृत आद्याः-मुख्या यस्य यस्माद्वा स श्रीअर्हदाद्यः। त्रिषष्टिशलाकापुरुषेषु तीर्थकृतां मुख्यत्वात्। श्रिया–सीतारूपया लक्ष्म्या अन्वित इति शेषः आभिरामः–आभाऽस्याऽस्तीत्याभी स चासौरामः–तदाख्यो दाशरथिबलदेवः, "श्रियास-रामः इति पाठान्तरम् तत्र श्रिया–लक्ष्म्या युक्तः सः प्रसिद्धः रामः–रामचन्द्रः तं सराम इति सम्बन्धः अन्यद्विशेषणयोजनं पूर्ववत् ।

- कृष्णपक्षे-"श्रीअर्हदाद्य" इत्यादिविशेषणार्थं योजनं रामवत् श्रियाऽभिराम इत्यस्य श्रिया-लक्ष्म्या अभिरामो-मनोज्ञः इत्यर्थः। श्रियासराम इति पाठान्तरे श्रिया-लक्ष्म्या सरामः-सभार्यः (रामया-भार्यया सहितः इति कृत्वा) रामा हिङ्गुलिनी स्त्रियोः इति हैमः॥२॥

यो वीतरागः कृततीर्थयागः,
प्रोद्यत्सभामण्डलसंविभागः।
यो नीतिकारी भुवनोपकारी,
सेव्यः स भव्यैर्नवकाव्यनव्यः ॥ ३ ॥

अन्वयः—यः वीतरागः कृततीर्थयागः, प्रोद्यत्सभामण्डलसंविभागः। यः नीतिकारी भुवनोपकारी, भव्यैः सेव्यः, स नवकाव्यनव्यः॥

व्याख्या—ननु मत्स्यप्रमुखेषु बुद्धादिषु परश्शतेषु देवेषु कथमेतेषामेव चरित्राख्याने कविः जातादर इत्याह-य इति. यः अनिर्दिष्टनामधेयः, वीतरागः-वीतः-विगतः निवृत्तः रागः-स्रक्चन्दनवनितादिविषयाऽभिषङ्गः यस्य स तथोक्तः तीर्थकृत्पञ्चक श्रीरामपक्ष साधारणोऽयमर्थः। कृष्णपक्षे तु विः-पक्षी गरुड इत्यर्थः तं तस्मिन् वा इतः प्राप्तो रागः-प्रीतिर्यस्य स तथोक्तः। कृततीर्थयागः तीर्थ-साधु-साध्वी-श्रावक-श्राविकात्मकचतुर्विध सङ्घः लक्षणया तत्स्थापनमिह गृह्यते तीर्थं याग इव तीर्थयागः कृतः सम्पादितः तीर्थयागः-तीर्थस्थापन यज्ञो येन स तथोक्तः। रामकृष्णपक्षे-कृतस्तीर्थस्य-साध्वादिसंघस्य यागः-यजनं पूजनं येन सः, कृतस्तीर्थे-सरस्वादितटास्थपुण्यक्षेत्रे यागः-देवपूजा येन स इति वा तथोक्तः,

प्रोद्यत्सभामण्डलसंविभागः-प्रोद्यन्ती दीप्यमाना सभा देवादिपरिषत् तस्या मण्डले-समूहे संविभागः-जीवाजीवादिपदार्थानां विविच्य

कथनं येन सः यद्वा प्रोद्यन्-प्रकाशमानः भामण्डलेन महितः सभामण्डलः संविभागः-प्रदेशो यस्य स तथोक्तः तीर्थकृत्पक्षकमान्योऽयमर्थः । रामकृष्णपक्षे-प्रोद्यन्-प्रकटीभवन् सभायाः राज्यशासनव्यवस्थापिकापरिषदादेः मण्डलस्य-द्वादश राजकस्य देशस्य वा संविभागः संविभजनं यस्य स तथोक्तः "स्यान्मण्डलं द्वादशराजके च देशे च बिम्बे च कदम्बके च"। इति विश्वः॥ यः-यातीति यः निर्वाणपदगन्ता, कलुषपटलजलदनिरसनपवनो वा । यो ना यायौ यमने इति मेदिनी ॥ नीतिकारी नीयन्ते-उन्नीयन्तेऽर्था अनयेति नीतिः न्यायःतां करोति तच्छीलः नीत्याचरणशीलो नीतिप्रचारणशीलो वा ॥ अनीतिकारी इतिच्छेदे अनीतिः-षडविधेतिराहित्यं तत्करणशीलः । अतिवृष्टिरनावृष्टिर्मूषकाः शलभाः खगाः । प्रत्यासन्नाश्च राजानः षडेता ईतयः स्मृताः। भुवनोपकारी-भुवनानामुपकारं करोति तच्छीलः सकलजगदुपकारकरणप्रवणः॥ मर्त्यैः-प्राणिभिः सेव्यः-सेवितुं योग्यः सः-वर्ण्यतया प्रक्रान्तः नवकाव्यनव्यः नवेन-मन्नार्थानुसन्धानादिगुणविशिष्टतया नवीनेन काव्येन नव्यः-स्तुत्यः 'णुंष्ठ स्तवने'॥ अन्त्यानुप्रासः, शब्दार्थोभयश्लेषः, काव्यलिङ्गं चात्रालङ्काराः॥ तीर्थं शास्त्रा-ऽध्वर-क्षेत्रो पायो-पाध्याय मन्त्रिषु इति विश्वः । तीर्थं साध्वादिसंघेऽपीत्यागमः ।

ब्राह्मीह साऽव्यान्निपुणागमादौ-
यस्या रसांगात्कमलोदयश्रीः ।
अद्यापि नद्या द्रवसुप्रसादात्-
सिताम्बराणां जनतानुवृत्तिः ॥ ४ ॥

न्वयः—इह आगमादौ सा निपुणा ब्राह्मी अव्यात् यस्याः-यस्याः रसांगात् । कमलोदयश्रीः द्रवसुप्रसादात् सिताम्बराणां जनतानुवृत्तिरद्यापि ॥४॥

व्याख्या—इह आगमादौ शास्त्रादौ अर्थात् अस्मिन् काव्यादौ सा भुवनविदिता निपुणा दक्षा पूर्णेत्यर्थः ब्राह्मी सरस्वती "ब्राह्मी तु भारती भाषा गीर्वाग्वाणी सरस्वतीत्यमरः" अव्यात् पायात् यस्याः सरस्वत्या भारत्या नद्याः पवित्रायाः मर्वश्वेतायाः रसांगात् रसस्यास्वादस्य अनुभवस्येत्यर्थः अङ्गात् उद्यमात् यत्नात् कमलोदयश्रीः कमलाया लक्ष्म्याः सम्पदः उदयश्रीः समभ्युदयसम्पत् द्रवसुप्रसादात् द्रवति स्निह्यतीतिद्रवः स्नेहः प्रसन्नता इति यावत् तस्य परिहासस्य सुप्रसादात् सत्कृपातः सिताम्बराणां निर्मलचमनानां देवानां जनतानुवृत्तिः जनतायां मनुष्ये अनुवृत्तिरागमनम् स्तुत्यालम्बनतया जनानुकम्पनमिति भावः अथ च सिताम्बराणां श्वेताम्बराणां आर्हतानां जनतानुवृत्तिः लोकसदुपदेशानुसरणम् अद्यापि अधुनापि भवतीति शेषः ।

नदीपक्षे च—यस्या नद्याःनदीरूपायाः सरस्वत्याः सरस्वत्यभिधानायाः रसांगात् जलरूपात् कमलोदयश्रीः कमलानां सरोजानाम् उदय श्रीः समुद्भवश्रीः सद्विकाशशोभेत्यर्थः द्रवसुप्रसादात् प्रवाह सुप्रभावात् सिताम्बराणां अम्बते शब्दं करोतीत्यम्बः शब्दः तं रातिगृह्णातीति अम्बरः पक्षः सितौ अम्बरौ येषां ते सिताम्बराः हंसाः तेषां जनतानुवृत्तिः मानससरात् नरक्षेत्रे अनुवृत्तिरनुसृतिरद्यापीदानीमपि भवतीति शेषः ।

मुखेन दोषाकरवत् समानः,
सदा—सदम्भः—सदने सशोचः ।
काव्येषु सद्भावनयानमूढः,
किं वन्द्यते सज्जनवन्ननीचः? ॥ ५ ॥

अन्वयः-नीचः सज्जनवत् किं न वन्द्यते ? मुखेन दोषाकरवत् समानः।
सदा सदम्भः सवने सशौचः, काव्येषु सद्भावनया न मूढः ॥ ५ ॥

व्याख्या-नीचः=दुर्जनः सज्जनवत्=सत्पुरुष इव किं न वन्द्यते अभिवाद्यते स्तूयते वा उभयोः समत्वात्। साम्यं दर्शयति=मुखेन दोषाकरवत्=दोषा रात्रि करोतीति सः तेन तुल्यं तद्वत् चन्द्रसदृशः, समानः=सह मानेन=सम्माननेन पूजा सत्कारेण वर्त्तते इति स तथोक्तः सदम्भःसवने सत्=सत्यमेवाऽम्भः=जलं तस्मिन् सवने=स्नाने अनुशीलने स शौचः=सनैर्म्मल्यः पवित्रः सत्यनिष्ठ इत्यर्थः। काव्येषु= सद्भावनया=उत्कृष्टभावनया न मूढः उत्तमविचारणया हेतुना न मूढः न अनभिज्ञः यद्वा=काव्येषु सद्भावनयानमूढ इति समस्तं, काव्यस्य इषुषु=गुणेषु सद्भावनं=सद्विचारस्तत्रयानं=गमनम् ऊढः प्राप्त इत्यर्थः। अत्र दुर्जनस्य व्याजस्तुत्या सर्वथाऽवन्द्यत्वमेव सोसूच्यते सज्जनतो-महदन्तरत्वात् तथाहि नीचः मुखेन दोषाकरवत्समानः=दोषाणां दुर्गुणाना=माकरः राशि रस्त्यासौ दोषाकरवान् तेन समानः सदृशः गुह्यप्रकाशनादिदुर्गुणोदीरणकरणतया यदनेन दोषपुञ्जविशिष्टतुल्यः।

यद्वा दोषाऽऽकर इव दोषाकरवत्। समानः=साऽहङ्कारः सदासदम्भः=सकपटः, सवने=मद्यसन्धाने उपलक्षणतया तदादिकार्येऽसशौचः=शौचेन=सहितः सशोचः स नभवतीत्यसशौचः अशुचिरित्यर्थः। यद्वा सदम्भः सवने=सत्पक्षपातकरणे सशौचः=शुचेव शौचं=शोकः स्वार्थिकः अण्प्रत्ययः तेन सहितः सशौचः=सशोक इत्यर्थः। काव्येषु सद्भावन-यान-मूढः=सद्भावने=सद्विचारे यानं=गमनं तस्मिन् मूढः=विकलः अपटुः, ॥ उपमा, अर्थश्लेषः, सभङ्गशब्द-श्लेषः, व्याजस्तुतिश्चालङ्काराः ॥ सवनं त्वध्वरे स्नाने सोमनिर्दलनेऽपिचेतिमेदिनी ॥ ५ ॥

उच्छृङ्खलात्किं खलतो न बिभ्येत्,

सभ्यस्तथेभ्यः परमार्थनाशात् ॥

नाशा ह्य नाशा किमु वर्धनीया,

श्रुत्याविहीनस्य सकर्णतायाम् ॥ ६ ॥

(अन्वयः)—इभ्यः परमार्थनाशात् तथा सभ्य उच्छृङ्खलात् खलतः किं न बिभ्येत् श्रुत्याविहिनस्य सकर्णतायाम् अनाशा आशा किमु न वर्द्धनीया? ॥ ६ ॥

व्याख्या—इभ्यः=आढ्यः परमार्थनाशात्=परमार्थस्य=उत्कृष्टाभीष्टवस्तुनः मूलधनादेः नाशात्=अपायात् तथा=इव सभ्यः=सज्जनः उच्छृङ्खलात्=उद्गतः शृङ्खलातः इत्युच्छृङ्खलः=मर्यादादिबन्धनरहितः नीत्यादिनियन्त्ररहितो वा तस्मात्तथोक्तात् खलतः=दुर्जनात् किं न बिभ्येत्=भयमाप्नुयात् ननु खलस्यापि शास्त्रश्रवणादिना सौजन्यं किं न स्यादित्याशङ्कायामाह 'नाशा' इति श्रुत्या=शास्त्रश्रवणेन विहीनस्य=वर्जितस्य अकृतशास्त्राभ्यासस्य श्रवणशक्तिरहितस्य बधिरस्येत्यप्यर्थो गम्यते. सकर्णतायाम्=श्रुतितत्परतायाम् शास्त्राभ्यासादिक्षमतायामित्यर्थः अभिज्ञतायामिति यावत् अन्यत्र श्रवणक्षमतायामिति गम्यते अनाशा=न आशा दिक् परिच्छेदो यस्यां सा तथोक्ता अपरिच्छिन्नेत्यर्थः आशा=अशक्योपायार्थविषयिणी दीर्घाऽऽकाङ्क्षा अनधिगतविषयातृष्णा वा किमु न वर्द्धनीया—वृद्धिं नेया. वर्धनीयैवेत्यर्थः भैषज्यादिसेवनेन कर्णबाधिर्यमिव शास्त्रश्रवणादिना खलानामपि औद्धत्यं दूरीभूय जातसौजन्यतया भयाऽजनकत्वं सम्भवतीतिभावः। अर्थान्तरन्यासः ॥ ६ ॥

काठिन्यभाजो हृदये खलस्य,

का वक्रता शृङ्खलकस्य नाङ्के ॥

भारक्षमस्याऽपि नसोऽग्रवेधः,

सुमेधसाऽकारि स वेधसाऽपि ॥७॥

अन्वय -हृदये काठिन्यभाज खलस्य [काठिन्यभाज खलस्य हृदये वा] शृङ्खलकस्य अङ्के [च] का वक्रता न [अस्ति] [यत] भारक्षमस्यापि नसो ऽग्रवेध सुमेधसाऽकारि, स वेधसाऽपि अस्य [अकारि]

व्याख्या—हृदये=मनसि काठिन्यं=नैष्ठुर्यं भजते स काठिन्यभाक् तस्य तादृशस्य खलस्य=दुर्जनस्य, हृदये=मनसि काठिन्यं= दाढर्यं भजते तादृशस्य शृङ्खलकस्य=उष्ट्रस्य अङ्के च का वक्रता= क्रूरता अन्यत्र कुटिलता भुग्नतेत्यर्थः न अस्ति सर्वाप्यस्तीत्यर्थ. खलानां क्रूरहृदयत्वात् उष्ट्राणा च कुटिलबहुलाऽपघनत्वात् । अत एव भारक्षमस्य=कर्षण वाहनयोग्यतादिधुरंवोढुं शक्तस्य शृङ्खलकस्य नसः= नासिकायाः अग्रवेधः-पुरोवेधनं सच्छिद्रीकरणं सुमेधसा-कर्षणवहनादिक्षमताऽवगतिमेधाविना कृपीनलादिना अकारि=व्यधायि. वेधसा=ब्रह्मणाऽपि सः=प्रक्रान्तः अग्रवेध =अग्रे=प्रथमंवेधः व्यधनं हिंसनं खलस्य नैसर्गिकतया अकारीत्यर्थः । यद्वा सः=खलः अपि वेधसा अग्रवेधः अग्र=पूर्वं विध्यति=छिनत्ति स तथोक्तः हिंस्रस्वभावकः अकारि। यद्वा अग्रवेधः=वेधः=विवाहादिशुभकार्यवर्ज्य नक्षत्र विशेपस्थितग्रहभेदकृतसंसर्गः 'वेधं सर्वत्र वर्जयेदिति'ज्यौतिषोक्तेः तथा च अग्रे=आदौ वेध इव अग्रवेधः वर्जनीय इतिभावः अकारि ।

हृदयं वक्षसि स्वान्ते वुक्कायामितिहैमः । वक्रः कुटिले क्रूर भौमयोरितिहैमः । काठिन्यभाजः खलस्य हृदये काऽपि वक्रता

(अस्ति) या शृङ्खलकस्यापि अङ्के न वर्तते । यतः भारक्षमस्यापि । तस्य सोऽग्रवेधः सुमेधसा वेधसाऽपि नाकारि इति तु ज्यायः ।

त्याज्यः स राज्यात्पुरतोऽपि राज्ञा,
भायात्सभाया न रुचिः खलेऽस्मिन् ।
यत्र द्रुमाः कण्टकिनः पुरस्ता-
त्स दुष्प्रवेशः सुमनःप्रदेशः ॥ ८ ॥

[अन्वयः]—अस्मिन् खले सभाया रुचिः न भायात् [इति] राज्ञा राज्यात् पुरतोऽपि स त्याज्यः । यत्र पुरस्तात्कण्टकिनो द्रुमाः स सुमनःप्रदेशः दुष्प्रवेशः ॥ ९ ॥

व्याख्या—अस्मिन् खले=पिशुने विषये सभायाः=समाजस्य जनताया इत्यर्थ रुचिः=प्रीतिः न भायात्=शोभेत यद्वा अस्मिन् खले सति सभाया रुचिः=कान्तिः नभायात्-प्रकाशेत् विवादोत्थानसंभवात् । अथ वा अस्मिन् खले सभाया न रुचिः=राजपरिषत्प्रवेशाऽभिरुचिः भायात् एवं समम्भाव्यते इति हेतोः राज्ञा=नृपेण शासकेनेतिभावः राज्यात्=राजधान्याः राष्ट्राद्वा पुरतः=स्वाग्रतः नगराद्वा गृहाद्वा अपि त्याज्यः=वर्जनीयः निष्कामनीय इत्यर्थः अमुमर्थं दृष्टान्तेन दृढयन्नाह=यत्रेति=यत्र सुमनःप्रदेशे पुरस्तात्=प्रवेशमार्गस्याग्रतः कण्टकिन=स कण्टकाः द्रुमा=मार्गवृक्षा भवेयुः स सुमनसां=पुष्पाणां प्रदेशः सुमनः=प्रदेशः पुष्पवाटिकादिः दुष्प्रवेशः अशक्यान्तर्गमनो भवतीति लोके प्रसिद्धोऽयमर्थः । शब्दश्लेषो, दृष्टान्तश्च पुरं नपुंसकं गेहे देह पाटलिपुत्रयोरितिमेदिनी स्यात्पुरः पुरतोऽग्रत इत्यमरः ॥ ८ ॥

खलादरो यश्च गवां स्वभुक्तौ,
भवेत्पशूना मुचितो न नृणाम् ।
स गोः पतित्वाद् यदि भूपसर्गे,
तत्पाशुपत्यं भुवमीश्वरस्य ॥९॥

अन्वयः—गवां स्वभुक्तौ यः खलादरः भवेत् [असौ] पशूनां [गवाम्] उचितः, नतु नृणाम्। स गोःपतित्वात् यदि भूपसर्गे स्यात् तत् ईश्वरस्य ध्रुवं पाशुपत्यं भवेत् ॥ ९ ॥

व्याख्याः—गवां=धेनूनां स्वभुक्तौ=स्वाहारे विषये यः खलादरः=खले=तिलकल्कः धान्यमर्दनभूमिश्च तत्राऽऽदरः स्नेहः असौ पशूनाम् उचितः=योग्यः अगर्हणीयः भवेत्. न तु नृणां=मनुष्याणामपि।

दुर्जनेषु प्रीतेः तेभ्य ग्रामस्य तिलकल्काऽशनस्य च मनुजानां=अनौचित्यात्। तथा च सः=खलादरः=खले=नीचे आदरः गोः पतित्वात्–गौः (सौरभेयी पृथ्वी च तस्याः पतित्वात्=स्वामित्वात् तत्स्वाम्यादिति भावः, यदि भूपसर्गे–नृपस्वभावे नृपसाम्राज्ये वा स्यात् तत्–तदा ईश्वरस्य=राज्ञः पाशुपत्यं=पशुपतित्वं मूर्खशिरोमणित्वं ध्रुवं निश्चितं स्याद् शब्दसाम्येन छलितत्वात्॥ स्वर्गेषु पशुवाग्वज्र दिग्नेत्रघृणिभूजलेगौरित्यमरः ॥ ९ ॥

खले प्रतीता बहुधा-न्यपाताद्,
विक्षेपणा क्षेपमतिर्नृपस्य।
मुखे निबन्धेन गवां नृणां वा,
निजार्जितस्यापिमनाग् न भोगः॥१०॥

अन्वय–खले बहुधा-न्यपाताद् नृपस्य, विक्षेपणाक्षेपमति प्रतीता।
नृणा गवां वा मुखे निबन्धेन निजार्जितस्यापि मनाग् भोग न ॥१०॥

व्याख्या–खले=दुर्जने विद्यमाने सति बहुधा=बहुप्रकारेण अन्यपातात् अन्येषां–परेषां खलानुमतानां पातात्=आपतनात् प्रवेशात् नृपस्य खलाधीनसर्वराज्यतन्त्रतया विक्षेपणाक्षेपमतिः–विक्षेपणे=अभिमतानां दूरीकरणे आक्षेपे=मान्यानां गर्हणे च आ=समन्तात्

क्षेपे-विलम्बे राजकार्याणा सम्पादन कालाऽतिपाते वा मतिः-बुद्धिः विचारो वा प्रतीता-प्रसिद्धा एवाऽस्ति।

लोकेऽपि खले-धान्यमर्दनस्थले बहुधान्यपातात्-बहूनां-प्रचुराणा धान्यांना-शालि गोधूमादिव्रीहीणां पातात्-मर्दनार्थं पक्षेपात् नृपस्य-तत्स्वामिनः खेटकादेः विक्षेपणाक्षेपमतिः-विक्षेपणे पूर्वं प्रसारणे तदनु आक्षेपे-दूरं विकीर्णानां समूहन्यादिना राशिकरणे च मतिः-मनः प्रवृत्तिः प्रतीता-ख्याता एव।

पूर्वत्र खलनीत्या नृणां-राजपुरुषाणां मुखे-निःसरणे निर्गमनम् प्रवेशमार्गे इत्यर्थः विषये निबन्धेन-नियमनेन प्रतिबन्धजननेन सता निजार्जितस्य-स्वोपार्जितस्य वेतनादेः मनाग्-अल्पमपि भोगः-उपभोगः सुखं वा न संभवतीत्यर्थः।

यद्वा नृणा-विपश्चिन्मनुजानां मुखे-प्रवेशे निबन्धेन निजार्जितस्य-स्वोपार्जितविद्यादेः मनाग् भोगः-उपयोगः विद्यालाभजन्यमैहिक सुखं वा न समस्ति भवितुमित्यर्थः। विद्यावतां बाणभट्टादीनामिव राज्ञः श्रीहर्षादेरिव ऐहिकसुखसाधनधनलाभे सत्येव विद्याया ऐहिकोपयोगः। राजधान्या खलप्रवेशे तु विदुषां प्रवेशस्याप्यसम्भवः विद्याचमत्कारप्रदर्शनपरितुष्टनरेन्द्रदित्स्वस्वापतेयाद्यात्मकपुरस्कारादेस्तु कथैव का।

अन्यत्रापि स गवां-वृषभाणां-मुखे-तुण्डे निबन्धेन-नितरावन्धनेन निजार्जितस्य-हलकर्षणादिव्यापारजन्यतया स्वोपार्जितपलालादेरपि मनाग् भोगः न भवति।

शब्दा-र्थोभयश्लेषः। उपमालङ्कारध्वनिः। खलः कल्के भुविस्थाने क्रूरे कर्णेजपेऽधमे इतिहैमयैदिन्यो मुखं निःसरणे वक्त्रे प्रारम्भो-

पाययो रपीतिमेदिनी । भोगः सुखे धने पुंसि चाहेः फण-शरीरयोः । पालनेऽभ्यवहारे च योषिदादिभृतावपीति मेदिनी ॥ १० ॥

कार्या खलानां स्खलना नृपेण,
प्रसङ्गतः शृङ्खलमीलनेन ।
उच्छृङ्खलः शृङ्खलको न किं स्या-
दुद्वेजकः कण्टकसंकटेन ॥ ११॥

(अन्वयः)—नृपेण प्रसङ्गतः शृङ्खलमीलनेन खलानां स्खलना कार्या. उच्छृङ्खलः शृङ्खलकः कण्टकसंकटेन उद्वेजकः किं न स्यात् ।

व्याख्याः—नृपेण=राज्ञा प्रसङ्गतः-अवसरं प्राप्य शृङ्खलमीलनेन-शृङ्गात्=प्राधान्यात् स्खलयतेऽनेनेतिशृङ्खलः=पृषोदरादित्वात् शृङ्खला लोहमयबन्धनरज्जुविशेषः तस्य तेन वा मीलनं=संबन्धः तेन तथोक्तेन शृङ्खलया नियम्येतिभावः खलानां दुष्टानां स्खलना=गतिप्रतिरोधः कार्या=विधेया। अन्यथाऽनिष्टमाह=उच्छृङ्खल इति उद्गतः शृङ्खलातः इति. उच्छिन्ना शृङ्खला येनेति वा उच्छृङ्खलः लौहमयपादबन्धनरहितः नासारज्ज्वादिरहिततयानिर्बाधगतिकः शृङ्खलकः=उष्ट्रः कण्टकसंकटेन=कण्टकैः=सूचीवत्तीक्ष्णाग्रवृक्षावयवविशेषैः संकटः=संकीर्णः वन्यप्रदेशादिस्तेन, कण्टकैः=संकटं=दुःखं तेन तज्जननेन हेतुना वा उद्वेजकः-चित्तव्याकुलताजनकः किं न स्यात् स्यादेव. उष्ट्राणां कण्टकप्रियतया तदाचितप्रदेशादौ तद्गमने तदन्वेषणार्थं तत्रगतानां तदारूढानां कण्टकसम्बन्धसम्भवात् ।

उच्छृङ्खलः=अनियन्त्रितः निरङ्कुशः खलोऽपि कण्टकसंकटेन=कण्टका इव दुःखजनकत्वात् कण्टकाः=क्षुद्रशत्रवस्तेभ्यः संकटं=दुःखं विपत्तिर्वा तेन तज्जननेनेतिभावः उद्वेजकः-क्षुद्रशत्र्वादिभिर्विरोधादि-

जननद्वारा व्याकुलीभावजनकः । किं न स्यात् स्यादेवेत्यर्थः ॥ शब्दा ऽर्थोभयश्लेषः अर्थान्तरन्यासः अनुप्रासः । शृङ्खलं पुंस्कटीकाञ्च्यां लोहरज्जौ च बन्धने इति हैमः ॥ कंटकः क्षुद्रशत्रौ च कर्मस्थानकदोषयोः । रोमाञ्चे च द्रुमाङ्गे च कण्टको मस्करेऽपिचेति विश्वः ॥

यद्गोरसाधिक्यमुदेतिलोके–
खलस्यपर्यायविनाशनेन ।
संभाव्यतेस्मादमृताशनस्या–
धिकाधिकाराद्विबुधात्मनैव ॥१२॥

अन्वयः—लोके खलस्यपर्यायविनाशनेन यद्गोरसाधिक्यमुदेति अस्मात् । अमृताशनस्य अधिकाधिकारात् विबुधात्मतैवसंभाव्यते ॥ १२ ॥

व्याख्या–लोके खलस्य तिलकलकस्य द्रव्यविशेषस्य पर्याय विनाशनेन पर्यायः क्रमभाविस्वभावः प्रकृते खलत्वरूपस्तस्य विनाशने प्रध्वंसेनेत्यर्थः गोरसाधिक्यं दुग्धघृतादिप्रचुरता उदेति उद्भवति अस्मात् गोरसाधिक्यात् अमृताशनस्य दुग्धघृतादि भोजनस्य अधिकाधिकारात् अधिकप्रवर्त्तनात् निरंन्तरप्रचारात् विबुधात्मतैवपण्डितात्मतैवसंभाव्यते उत्प्रेक्ष्यते शुद्धाहारविहारस्य निर्मलबुद्धिप्रयोजकत्वादितिभावः ।

अथ च खलस्य दुर्जनस्य पर्यायविनाशनेन तद्वाचकपर्यायनृशंस घातुक क्रूरादिशब्दानामपि निराकरणेन गोरसाधिक्यम् गोः वाल्याः रसस्य आस्वाद विशेषस्य आधिक्यम् समृद्धिरुदेति यद्वा गोः पृथिव्याः रसस्य गुणस्य शान्त्यादेः राधिक्यं बाहुल्यमुदेति प्रकाशते अस्माद् गोरसाधिक्यात् अमृताशनस्य देवस्य अधिकाधिकारात् अत्यधिकसम्बन्धात् विबुधात्मतैव सर्वेषान्देवत्वमेव संभाव्यते देवस-

स्वन्धादन्येषामपि देवत्वं सुतरां भवतीति भावः ॥१२॥ श्लेषतुल्ययोगिते चात्रालंकृती। खलः कल्केभुविस्थाने इति हैमः पिशुने दुर्जने खल इति शृङ्गारादौ विषे वीर्ये गुणेरागेद्रवेरस इत्युभयत्रामरः ॥ १२ ॥

कायेन वाचा मनसा विशुद्धः,
स पक्षमध्यस्थित एव हंसः ॥
ब्रह्माऽमुनाऽवाह्यधियापि वाह्यः,
प्रियो विधिस्तन्ननु सज्जनस्य ॥१३॥

अन्वयः-स हंस एव [यथाहंसः] कायेन वाचामनसा विशुद्धः पक्षमध्यस्थितः। [तथासज्जनोऽपि] अमुना ब्रह्माऽवाह्यधियाऽपि वाह्यः तस्य विधिःसज्जनस्य प्रियः ॥

व्याख्या—सः=सज्जनः हंस एव हेतुमाह यथा हंसः=स्वनाम ख्यातपक्षिविशेषः कायेन=स्वरूपेण वाचा=स्वरेण मनसा च विशुद्धः अवदातः पवित्रश्च पक्षमध्यस्थितः पक्षयोः गरुतोर्मध्ये-ऽन्तरालेस्थितः तथा सज्जनोपि कायवाङ्मनोभिः विशुद्धः=अनवद्यः, पक्षमध्यस्थितः= पक्षे=वादि प्रतिवादिनोर्विरोधे मध्यस्थितः=मध्यस्थः। यद्वा पक्षयोः= वादिप्रतिवाद्युभयप्रश्नकोटि-समाधान कोटयोर्मध्यस्थितः=माध्यस्थ्य माश्रितः नत्वन्यतर पक्षपातीत्यर्थः निष्पक्षपात इति यावत्। अन्यदपिसाम्यं दर्शयति ब्रह्मेति अमुना-हंसपक्षिणा ब्रह्मादेवविशेषः अवाह्यधिया हार्दिकानुरागेण यद्वा अयं मयावाह्य इति संकल्पमन्तरेणापि समायतएववाह्यः स्वपृष्ठेधार्यः हंसस्य तद्वाहनत्वात् तत् तस्मात् सज्जनस्य विधिः शास्त्रोक्तक्रियाकलापः प्रियः स्वकर्तव्यत्वेनाभिमत इत्यर्थः अत्रविधिशब्दस्य ब्रह्मशब्दपर्यायत्वेऽप्यर्थभेदादर्थश्लेषः तथा सज्जने हंसारोपणाद्रूपकोऽवाह्यवाह्यत्वेन विरोधाभासश्चेत्यलंकृतयः ॥ १३ ॥

मरालवालः स्वत एववक्त्रे,
रक्तः प्रसक्तश्चरणेऽपि तद्वत् ॥

स राजहंसः कविनास्वकार्ये,
स्मार्यः स दुग्धाम्भसि तद्विवेक्ता॥१४॥

अन्वयः—कविना स्वकार्येमरालवालःवक्त्रेस्वतएवरक्तः तद्वच्चरणेऽपि प्रसक्तः सदुग्धाम्भसि तद्विवेक्तासराजहंसः स्मार्यः ॥ १४ ॥

व्याख्या—कविना=काव्यकर्त्रा स्वकार्ये=कविकर्म्मणि काव्यादौ सः=प्रसिद्धः (प्रक्रान्त प्रसिद्धाऽनुभूतार्थकस्तच्छन्दो यच्छब्दोपादानं नाऽपेक्षते इति नियमादत्र (पद्ये) यच्छब्दस्याऽनपेक्षिततया नोपादानम्) राजहंसः=हंसानां राजा श्रेष्ठत्वात् (राजदन्तादित्वात् परनिपातः) रक्तवर्णचञ्चु चरणयुक्त श्वेतवर्ण हंसविशेषः राजहंसास्तु ते चञ्चु चरणैर्लोहितैः सिताः इत्यमरः। राजा हंस इव सारग्राहित्वादिगुण-साधर्म्यात् राजहंसःनृपश्रेष्ठश्च स्मार्यः=एकत्र सारग्राहित्वादिगुणैरनुकरणीयतया अपरः पवित्रचित्रचारित्रशालितया वर्णनीयतया स्मरणीयः तेन च कवेः प्रतिभादिविकाशात्। सकलकलंपुरमेतज्जातं सम्प्रति सुधांशुबिम्बमिव इत्यादाविव उभयोः (हंसस्य राज्ञश्च) समान शब्द वाच्यतारूपसाधर्म्यं श्लेषेणाह—मरालेति। हंसपक्षे मरालवालः मरालः=राजहंसजातीय हंसविशेषः तस्य बालः=शावकः अपत्य मित्यर्थः तद्वद्य इति तात्पर्यम्, अत एव वक्त्रे चञ्चौ स्वतएव=निसर्गादेव रक्तः=लोहितः, चरणे=अङ्घ्रियुगलेऽपि तद्वत्=तथा रक्त इत्यर्थः, प्रसक्तः=प्रसक्तिः=प्रसङ्गः=गुणिनां प्रस्तावः गुणवतां चर्चायामाख्यान मित्यर्थः अस्याऽस्तीति स तथोक्तः। स दुग्धाम्भसि=क्षीरसंमिश्रनीरे तद्विवेक्ता=तयोः (दुग्धजलयोः) पृथग्भावसम्पादयिता विवेचको वा राजपक्षे—मरालवालः=मरालाः=कज्जलानि इव बालाः=मूर्धजाः केशा यस्य स इति. मरालाः=चिक्कणा बालाः=केशायस्येतिवा स तथोक्तः। यद्वा मरालान्=खलान् वारयतीति सः। रलयोडलयोश्चैव सशयो

र्बवयो स्तथेतिवचनेन वचयोः रलयोश्चैकत्वस्मरणात्। वक्त्रे=वाग्मिने युक्तियुक्तबहुवादिने रक्तः=अनुरागवान् यद्वावक्त्रे:मुखे रक्तः प्रसन्न इत्यर्थः चरणे=आचारे श्रेष्ठाचरणे शीलेवा प्रसक्तः=व्यासङ्गवान् लीन इत्यर्थः यद्वा रणे-युद्धे प्रसक्तः-सानन्दः सदुग्धाम्भसि-दुग्धमिश्र जले लक्षणया सदसतोरित्यर्थः तद्विवेक्ता-विवेचनशीलः सदसद्विवेकशालीत्यर्थः ॥ १४ ॥

सत्त्वेऽप्यसत्त्वे कियती कथा न,
तत्सन्तु सन्तः सततं प्रसन्नाः ।
काव्येक्षणाद्वः कृपया पयोवद्,
भावाःस्वभावात्सरसा यतः स्युः॥१५॥

अन्वयः—सत्त्वेऽसत्त्वेऽपि कियती कथा न [अस्ति] तत् सन्तः प्रसन्नाः सन्तु, [मयि] यत. वः कृपया काव्येक्षणात् भावाः पयोवत् स्वभावात् सरसाः स्युः ॥ १५ ॥

व्याख्या—अपि समुच्चयार्थकोभिन्नक्रमश्च (गर्हा-समुच्चय-प्रश्न-शङ्कासंभावनास्वपि इत्यमरः) तथा च सत्त्वे=साधुभावे सज्जनत्वे इत्यर्थः असत्त्वे=असाधुभावे असज्जनत्वे दौर्जन्ये इत्यर्थः कियती=किंप्रमाणिका कथा=वाक्यविस्तारः न अस्तीति शेषः बहुविधैवकथाऽस्तीत्यर्थः। यद्वा सत्त्वे=गुणे असत्त्वे दोषारोपे च बह्वयउक्तयः सन्तितत्-तेन हेतुना तस्माद्धेतोर्वा सन्तः-सज्जनाः सततं प्रसन्नाः= कृतप्रसादाः अनुग्राहका इत्यर्थः सन्तु-भवन्तु मयीतिशेषः। यतः-यस्मात् कारणात् प्रसादाद्वा वः-युष्माकम् ईक्षणकर्तृभूतानाम् कृपया अनुग्रहेण काव्येक्षणात्-काव्याऽवलोकनात् प्रस्तुतकाव्यसमीक्षणादित्यर्थः यद्वा काव्यया-धिया-ईक्षणात्-पर्यालोचनादित्यर्थः (काव्यं ग्रंथे पुमान् शुक्रे काव्यास्यात्पूतना-धियोरितिकोशः).. भावाः-

रत्यादिस्थायिभावादयः। देवादिविषयारत्यादयो वा पदार्थो वा– यद्वा अभिप्रायाः, पयोवद्–दुग्धवत् जलवद्वा स्वभावात्–निसर्गात् सरसाः–अनुकूलाः वर्णनीयानुगुणा इत्यर्थः। यद्वा मनोहराः, मधुरा वा स्युः॥ यद्वा यतः–प्रसन्नत्वात् कृपया काव्येक्षणात् वः भावाः– आशयाः हृदयानीत्यर्थः स्वभावात् न तु दुर्जनादेरिवकृत्रिमतयेति- भावः सरसाः सार्द्रा अनुकूला वा स्युर्येन कवीनां प्रवृत्तिः सफला भवेत्॥ १५॥

श्रेणीभवद्भव्यमणी मणीवकै–
वरैरगानां निकरैर्विकस्वरे
द्वीपेऽस्ति जम्बूपपदे प्रभारतं,
श्रीभारतं भारतवित् स भारतम्॥१६॥

अन्वयः—श्रेणीभवद्भव्यमणी मणी च (व) कैः वरैः अगानां निकरैः विकस्वरे जम्बूपपदेद्वीपे प्रभारतं भारतवित्सभारतं श्रीभारतम् अस्ति॥ १६॥

व्याख्या—श्रेणीभवद्भव्यमणीमणीवकैः–अश्रेणयः श्रेणयः सम्पद्यन्ते तथा भवन्ति इति श्रेणीभवन्ति. मण्यः–रत्नानि मणीवकानि कुसुमानीव इति मणीमणीवकानि श्रेणीभवन्ति भव्यानि–शोभनानि मणीमणीवकानि येषु ते श्रेणीभवद्भव्यमणीमणीवकाः तैः तथोक्तैः। अगानां–न गच्छन्तीत्यगाः–पर्वता वृक्षाश्च "शैल–वृक्षौनगावगौ" इत्यमरः। तेषां तथोक्तानां निकरैः–समूहैः विकस्वरे–विकासिनि "विकासीतु विकस्वरः" जम्बूपपदेद्वीपे–जम्बूद्वीपे इत्यर्थः। प्रभारतं भरतस्य–आर्षभेः, दौष्यन्तेर्वा दाशरथेर्वा गोत्रापत्यानि भारताः, प्रकृष्टा भारताः–भरतवंशीयनृपतयो यस्मिन् तत्। यद्वा भरतेन मुनिना प्रोक्तं भारतं प्रकृष्टं भारतं–नाट्यशास्त्रं यस्मि स्तत्। अथवा प्रभा रता–सदास्थितिकायत्र तत्–प्रभासु रतं–सक्तं वा तत्।

यद्वा अरतिः-रतिविरहः रागाभावोवाऽस्याऽस्तीत्यरतः अर्श-आद्यच् प्रभः-चन्द्रप्रभस्वामी 'नामैकदेशग्रहणे नामग्रहणात् देव-दत्तो दत्त इतिवत्. तथाच प्रभः-चन्द्रप्रभः अरतः-रतिविरहितः रागा-भाववान् वाऽत्र तत्प्रभारतम् ।

भारतवित्सभारतम्-भरतान्-भरतवंश्यानधिकृत्य कृतोग्रंथो भारतं-पाण्डवचरित-महाभारतादिकम् भरतेन मुनिना प्रोक्तं भारतं= नाट्यशास्त्रम् वा विदन्ति-जानन्तीति भारतविदस्तेषां सभासु-परि-षत्सुरतम् बहुतर भारतवित्परिपत्कमित्यभिसन्धिः । श्रीभारतम्= बिभर्ति=पालयति पट्खण्डं भरतक्षेत्रमिति भरतः तेन चिन्हितं पालितं वा तस्येदं वा भारतम् श्रीभिः=सहितं भारतं श्रीभारतं=भरतक्षेत्र-मित्यर्थः अस्ति=वर्तते अनुप्रासः । स्वभावोक्तिश्च ।

रत्नं मणिर्द्वयोरश्मजातौमुक्तादिकेऽपिचेत्यमरः पुष्पंप्रसूनं सुम-नसः प्रसवश्च मणीचकम् इति हेमचन्द्रः भारतो भरतापत्ये... इति. भारतं ग्रंथभेदेस्याद्वर्पभेदे नपुंसकमिति च कोशः॥ श्रीर्वेशरचना शोभा भारती सरलद्रुमे । लक्ष्म्यां त्रिवर्गसम्पत्तिविधोपकरणेषु च। विभूतौ च मतौ च स्त्री इति मेदिनी कोशः ॥

"श्रेणीभवद्भव्यमणीमणीचकैः" इत्येतद्घकटकं "मणीचक्र" पदं यदि कवेः स्वीयशयकुशेशयकलितललितलिप्या 'चकार' तृतीया-क्षरकमेवनिर्गतं चेत्तदाऽयमर्थः-"मणीव चकते=धातोरनेकार्थत्वात् दीप्यते इति मणीचकः=दीपविशेषः=विद्युद्दीप इत्यर्थः । चक तृसौ प्रतीघाते च. पचाद्यच । मण्यः मणीचका इव इति मणीमणीचकाः, श्रेणी भवन्तः पंक्तिबद्धतयास्थिताः भव्याः=शोभना मणीमणीचका-येषु ते श्रेणीभवद्भव्य मणीमणीचका स्तैस्तथोक्तैः" ॥ १६ ॥

गङ्गाऽनुपङ्गान्मणिमालभारिणी,
सुरद्रुसेकामृतपूरसारणी ।
क्षेत्रक्षमेशस्य रसप्रचारिणी,
साप्रागुदूढा वनितेव धारिणी ॥१७॥

अन्वय –प्रागुदूढा वनितेव गङ्गा [शोभते] क्षेत्रक्षमेशस्य अनुपङ्गात् मणिमालभारिणी सुरद्रुसेकामृतपूरसारणी [क्षेत्रक्षमेशस्य] रसप्रचारिणी धारिणी ॥१८॥

व्याख्या–क्षेत्रक्षमेशस्य=क्षेत्र पृथ्वीपतेः भरतक्षेत्रस्य प्रागुदूढा=पूर्वं परिणीता वनिता=स्त्री इव गङ्गा=तन्नाम्नी शाश्वती महानदी शोभते इति सा कीदृशीत्याह–क्षेत्रक्षमेशस्य=क्षेत्रस्थः क्षमेश क्षेत्रक्षमेशस्तस्य=वैताढ्य पर्वतस्य अनुपङ्गात्=सम्बन्धात् मणिमालभारिणी=मणीनामाला बिभर्ति=धारयति तच्छीला यद्वा मणीना मालेव इति मणिमाला=दीप्तिस्ता यद्वा मणीना मालेव माला=पंक्तिर्मणिमाला ता बिभर्त्तीत्येवंशीला रत्नसमूहधारिणीत्यर्थः माले–पिके–ष्टिकस्यान्ते भारि–तूल–चितेषु इत्यनेन माला शब्दस्य ह्रस्वत्वम् । वैताढ्यपर्वतामन्ते गङ्गाया नवनिधान शालित्वस्य शास्त्रसिद्धतया मणिमालाधारित्वमुपपद्यते । पुनः कीदृशी ? सुरद्रुसेकामृपूरसारणी=सुरद्रुः=कल्पवृक्ष' देवदारुवृक्षो वा तस्य सेचन सेकः=जलादिनाऽऽर्द्रीकरणम् सिचेर्भावेघञ् । सेकार्थम् अमृतं=वारि तस्य पूरः=प्रवाहः तस्य सारणी कुल्या इव । पुनः कीदृशी ? क्षेत्रक्षमेशस्य=वर्षपर्वतस्य प्रस्तावात् हेमवतः रसप्रचारिणी=रसं=जलं तस्य प्रचारिणी आसमुद्रं विस्तारिणीत्यर्थः । यद्वा क्षेत्रक्षमेशस्य=क्षेत्रं=कलत्रं भार्येत्यर्थः तस्यै तस्या वा क्षमः=योग्यः हितो वा शक्तो वा ईशः=पतिः=तस्य तथोक्तस्य रसप्रचारिणी=रस =आनन्दः शृङ्गारादिर्वा तस्य प्रचारिणी सम्पादिका

जनिकेत्यर्थः । पु० की० ? धारिणी=दुर्गतौपतज्जन्तून् धारयतीत्येवं-शीला यद्वा पापान्नरके संभावितपातान् प्राणिनो निजभुवनपावन जीवनाऽवगाहनविगतकल्मषतया धारयति=अवलम्बते तच्छीला । अत्रपद्ये 'क्षेत्रक्षमेश' पदे तन्त्रं विवक्षितम् तेनामौ अर्थत्रयवाची ॥१८॥ उपमाऽतिशयोक्तिश्चालंकारौ ॥

सिन्धुर्द्वितीयाऽब्जमुखानुसारिणी,
जडप्रसङ्गाद्वृतचारुचारुणी ।
इतस्ततो नौ निभृतार्थतारिणी,
वसुप्रकाशैः सुरविप्रतारिणी ॥ १८ ॥

अन्वयः—[क्षेत्रक्षमेशस्य उदूढा द्वितीया स्त्रीव सिन्धु प्रवहति] अब्ज-मुखानुसारिणी इतस्ततो नौनिभृतार्थतारिणी वसुप्रकाशै सुरविप्रतारिणी॥१८॥

व्याख्या—'क्षेत्रक्षमेशस्य' इति. 'प्रागुदूढ वनितेवे'-ति च पूर्व-तोऽन्वेति । तथा च क्षेत्रक्षमेशस्य=क्षेत्रपृथ्वीपतेः प्रागुदूढा=पूर्वपरिणीता द्वितीया वनिता=स्त्री इव सिन्धुस्तन्नाम्नी पश्चिमाभिवाहिनी महानदी प्रवहति । यद्वा पूर्वं क्षेत्रक्षमेशस्य द्वे वनिते तयोः पूर्वां परि-चाययतीत्युक्तमपरांपरिचाययन्नाह-सिन्धुरिति. द्वितीया=भागीरथीतरा सिन्धु=स्तन्नाम्नी पश्चिमाभिमुखवाहिनी महानदी प्रवहतीति शेषः । सा कीदृशी ? अब्जमुखानुसारिणी=अब्जं पद्मं पद्महृद इत्यर्थ-स्तस्य मुखं=निस्सरण निर्गममार्ग इत्यर्थः अग्रभागो वा तत् अनुपश्चात् (तस्य) समीपे वा सरति=गच्छतिपततीतीत्यर्थ स्तच्छीला । जडप्रस-ङ्गाद्=रलयोर्डलयोश्चैकत्वस्मरणात् जलप्रसङ्गात् जलसम्बन्धात् वृत-चारुवारुणी=वरुणोदेवताऽस्याः वरुणस्येयं वा वारुणी=पश्चिमदिक् वृता=स्वीकृता चारुः=शोभना वारुणी यया सा तथोक्ता अन्यापि-

काचित् जड़ः=मूढः, शिशिरः (शैत्यं) वा तस्य प्रसङ्गात् दृतचारुवारुणी=स्वीकृतरुचिरमदिरा भवति । पुनः कीदृशी इतस्ततः नौनिभृतार्थतारिणी=नावा=नौकयानावि वा निभृतान्=धृतान् गुप्तान् वा निभृतं=निश्चलं यथा तथेति वा अर्थान्=वस्तूनि धनानि वा तारयति=परपारंनयति तच्छीला सा तथोक्ता । वसुप्रकाशैः=वसोः=सूर्यस्य वसूनां=देवाना वा मणीनां वा प्रकाशैः प्रतिबिम्बनैः यद्वा वसुपु=तोयेपु प्रकाशैः=प्रतिबिम्बाद्युद्योतैः सुरान्=देवान् विप्रतारयितुं शीलमस्याः सा तथोक्ता। वसूना=जलानां प्रकाशैः सुरान्=देवान् विप्रान् ब्राह्मणान् च तारयति तच्छीला ।

जडा स्त्रियाम्। शूकशिम्ब्यां, हिमग्रस्त-मूका-ऽप्रज्ञेपु तु त्रिपु इति मेदिनी । वसु तोये धने मणौ इति वैजयन्ती, वसुः सूर्ये वसुदेवो वसुर्वन्हिर्वसुर्मरुत् इत्यनेकार्थध्वनिमञ्जरी अर्थोऽभिधेय रैवस्तु-प्रयोजन निवृत्तिपु इत्यमरः ॥ १८ ॥

तत्रार्यभागो वदनं खगानां,
श्रेण्यौपुनश्चौष्ठपदं दधाने ।
क्षेत्रावनीशस्य तु सिन्धु–गङ्गे,
ते श्मश्रुणीभात इव प्रसिद्धे ॥ १९ ॥

अन्वय -तत्र आर्यभाग [अर्यभागश्च] क्षेत्रावनीशस्य वदन खगाना ।
श्रेण्यौ ओष्ठपद दधाने प्रसिद्धे ते सिन्धु गङ्गे श्मश्रुणीइवभात ॥१९॥

व्याख्या—तत्र=षट्खण्डात्मभूभागे. आर्यभागः=आर्यखण्डम् अर्यभागः अर्यैः=स्वामिभिः भाति-शोभते इत्यर्यभाः स चासावगः पर्वतश्चेति स तथोक्तः-वैताढ्यपर्वतश्च. क्षेत्रावनीशस्य=क्षेत्र पृथ्वीपते भरतक्षेत्रनृपस्य वदनं-मुखं तत्स्थानीय इत्यर्थः । खगानां–

विद्याधराणां श्रेण्यौ—वैताढ्यपर्वतस्य दक्षिणोत्तरश्रेण्यौ ओष्ठपदं=ओष्ठस्थानं दधाने ओष्ठस्थानीये इत्यर्थः। प्रसिद्धे—ख्याते भूषिते वा ते प्राग्दर्शितस्वरूपे सिन्धुगङ्गे श्मश्रुणी—पुम्मुखरोमराजी इव भातः—शोभेते। स्यादर्यः स्वामि वैश्ययोरित्यमरः। प्रसिद्धौ ख्यातभूषितौ इति चाऽमरः। तनूरुह रोम-लोम. तद्वृद्धौ—श्मश्रु पुंमुखे इत्यमरः॥१९॥

क्षेत्राऽवनीशोऽब्धिदुकूलवास-
स्तत्र प्रभासो मगधाधिवासः।
पादौ, वराद् दामगिरिर्नितम्बः,
क्षेत्रस्य नास्त्येव ततोऽस्यबिम्बः ॥२०॥

अन्वय—क्षेत्रावनीश अब्धिदुकूलवास तत्र प्रभास मगधाधिवास च पादौ, वराद्दामगिरिर्नितम्ब ततोऽस्य क्षेत्रस्य बिम्ब नास्त्येव ॥ २० ॥

व्याख्या—अनन्यामवनिं वा ईष्टे इत्यवनीट् क्षेत्रस्याऽवनीट् तस्य क्षेत्रावनीशः=क्षेत्रपृथ्वीपतेर्भरतक्षेत्रस्य अब्धिदुकूलवास=दुकूलम्=अन्तरीयक्षौमयुगलं तदात्मकं वासः=वस्त्रं दुकूलवासः, अब्धिः लवणसमुद्रः एव दुकूलवास इति स तथोक्तः। तत्र=भरतक्षेत्रे वर्तमानौ—प्रभासः=स्वनामख्याततीर्थविशेषः, मगधाऽधिवासः=मगधाधिपदेवस्य वासस्थानं मागधतीर्थम् च इमौ द्वावपि पादौ=चरणस्थानीयौ। वराद्दामगिरिः=वरदामनामा शाश्वतपर्वतः नितम्बः=कटिप्रदेशः। ततो हेतोः अस्य क्षेत्रस्य बिम्बः=प्रतिकृतिः सादृश्यमिति यावत् नाऽस्त्येव। क्षौमं दुकूलं स्यादित्यमरः। अतिशयोक्तिरलंकारः उत्प्रेक्षा वा. ॥ २० ॥

मूर्धाऽस्य हैमाद्रि रमुष्य चूला—
स्याद्रोहिता भ्रूर्द्युसरिच्च वामा।

सा दक्षिणा सिन्धुसरिद् रसाग्रे,
तयोः पथस्ते नयने च मन्ये ॥ २१ ॥

अन्वय-अस्य मूर्धा हैमाद्रिः, रोहिता अमुष्य चूला स्यात् द्युसरित् वामाभ्रूः सिन्धुसरिद् दक्षिणा सा, रसाग्रे तयो पथ ते नयने मन्ये ॥२१॥

व्याख्या--अस्य=क्षेत्रावनीशस्य मूर्धा=शिरस्थानं हैमाद्रिः=हैमवान् पर्वतः । रोहिता=तन्नामिका हैमवताऽभिधक्षेत्रवाहिनी नदी अमुष्य=क्षेत्रस्य चूला=चूडा शिखास्थानीयेत्यर्थः । द्युसरिद्=आकाश-गंगा हैमवतशिखरिशिखरप्रपतद्गङ्गाप्रवाहः वामा=सव्यभागीया भ्रूः=नेत्रोपरिस्थरोमराजिः, सिन्धुः दक्षिणा भ्रूः । रसा=जिह्वा इव रसा=नदीनिर्गमनलिका तस्या अग्रे=अग्रभागे उपरीत्यर्थः तयोः= सिन्धुगङ्गयोः पथः=मार्गः ते=प्रसिद्धे नयने=नेत्रे मन्ये=उत्प्रेक्षे इत्यर्थः उत्प्रेक्षा. ॥ २१ ॥

पूर्वापरौ तोयनिधी च बाहू,
तन्मध्यदेशः स तु मध्यभागः ।
नाभिः कुशावर्तपदेऽदसीया-
स्याज्जङ्गलस्तद्गलनालदेशः ॥ २२ ॥

अन्वय-पूर्वापरौ तोयनिधी [अस्य] बाहू, स मध्यभाग तु तन्मध्यदेश । कुशावर्तपदे ऽदसीया नाभि, जङ्गल तद्गलनालदेश स्यात् ॥२२॥

व्याख्या--पूर्वापरौ=पूर्व पश्चिमौ, तोयनिधी=समुद्रौ अस्य भरतक्षेत्रस्य बाहू=भुजस्थानीयौ. स=प्रसिद्धः मध्यभागः=मध्यप्रदेशः तन्मध्यदेशः=तस्य भरतक्षेत्रस्य मध्यमावयवः । कुशावर्त्तपदे=अमुष्य इयमदसीया=भरतक्षेत्रसम्बन्धिनी नाभिः तत्स्थानमित्यर्थः । जङ्गलः=कान्तारभूयिष्ठदेशः तद्गलनालदेशः तस्य भरतक्षेत्रस्य कण्ठभागः बोधव्यः ॥ उत्पेक्षा. ॥ २२ ॥

स्कन्धांशुकं श्रीभरतस्य गङ्गा,
यज्ञोपवीतं शुचि तस्य सिन्धुः ।
नास्मिंस्ततो वैषयिको विकारः,
सिद्धं शिवं ब्रह्मपदं तदेतत् ॥ २३ ॥

अन्वयः-गङ्गा श्रीभरतस्य स्कन्धांशुकं, सिन्धुः तस्य शुचि यज्ञोपवीतं ततः अस्मिन् वैषयिकः विकारः न तदेतत् सिद्धं शिवं ब्रह्मपदम् अस्ति ॥ २३ ॥

व्याख्या-गङ्गा श्रीभरतक्षेत्रराजस्य स्कन्धांशुकं स्कन्धोत्तरीयं पूजा-जप-ध्यानादिकालीनस्कन्धधार्ययोगपट्टः । सिन्धुश्च तस्य= भरतक्षेत्रस्य, शुचि=पवित्रं यज्ञोपवीतं=यज्ञसूत्रं वामस्कन्धत आरभ्य-दक्षिणकुक्षि--पृष्ठवेष्टकविप्रधार्योपवीतसूत्रमित्यर्थः, ततः=तस्मात् कारणात् अस्मिन्=भरतक्षेत्रे निवासिनां जप-ध्यानादि लीन मनसां वा, वैषयिकः=विषिणोति=स्वात्मकतया विषयिणं निरूपयति इति वि-षयः=भोगसाधनं स्रक्चन्दनवनितादिः, इन्द्रियगोचर शब्द-रूपा-दिश्च, देशश्च तेन—

विषयेण निर्वृत्तो वैषयिकः=विषयजनितः विकारः=विकृति श्चेतसोऽ-न्यथाभावः न अस्तीति शेषः । तत् तस्मात् विषयजन्यविकाराऽनु-त्थानाद्धेतोः एतत्=भरतक्षेत्रं सिद्धं=सिद्धिः योगादिसिद्धिरस्ति अ-स्मिन् अर्शआद्यच् सिद्धिसम्पादकं शिवं=कल्याणावहं निरुपद्रवं वा ब्रह्मपदं-ब्रह्म-ब्रह्मचर्यं तस्य पदं-स्थानं, यद्वा ब्रह्म-महानन्दः मोक्ष इत्यर्थः तस्य पदं-साधनस्थानम् आम्नातं पूर्वसूरिभिरिति शेषः । स्वर्गादीनां भोगभूमित्वात्तत्रकर्मानुष्ठानाऽनधिकारात्, अस्य तु भर-तक्षेत्रस्य कर्मभूमित्वेनाभिमतत्वान्मोक्षसाधनकर्माऽऽचरणे प्रवृत्त्या भवन्ति भव्या मोक्षाधिकारिण इति भरतक्षेत्रस्य मोक्षसाधनस्थानत्वं

युज्यते महानन्दोऽमृतं सिद्धिः कैवल्यमपुनर्भवः। शिवं निःश्रेयसं श्रेयो, निर्वाणं ब्रह्म निर्वृतिः इति हेमचन्द्रः ॥ २३ ॥

क्रीडाऽऽस्पदं यद् भरतं रमाया,
जनस्ततोऽस्मिंश्चरतः प्रमायाम्।
रत्नप्रसक्तो निगमः क्षमाया,
मायास वर्जं बहुलक्ष्मायाः ॥ २४ ॥

अन्वय—यद् भरतं रमायाः क्रीडास्पदं ततः अस्मिन् जनः प्रमायां रतः, रत्नप्रसक्तः बहुलक्ष्माया निगमः क्षमायाम्, आयासवर्जं (निरतः)। यद्वा बहुलक्ष्मायाः क्षमायां (निरताः) निगम आयासवर्जं रत्नप्रसक्त (आसीत्) ॥ २४ ॥

व्याख्या—यद्-यस्मात् कारणात् भरतं-भरतक्षेत्रं रमायाः-लक्ष्म्याः क्रीडास्पदं-विलासस्थानं सार्वदिकस्थितिस्थानमित्यर्थः नित्यनिवासस्थानभूतमिति भावः ततः-तस्मात् भरतक्षेत्रे लक्ष्म्यानित्यनिवासित्वेन लोकानां शरीरस्थितिचिन्ताद्यभावात् हेतोः जनः-लोकः प्रमायां-प्रमितौ यथार्थज्ञाने तत्साधनकर्मादावित्यर्थः रतः-सक्तः तल्लीनमना इत्यर्थः रत्नप्रसक्तः-रत्नसंग्रहतत्परः बहुलक्ष्मायाः-बहवः अनेके लक्षाः-लक्ष्या अनुकम्पनीयतया आश्रयणीयतया वा उद्देश्या यस्याः सा बहुलक्षा, सा चासौ मा बहूनां लक्षाणाम्-अयुतपंक्तीनां समाहारः बहुलक्षं तदात्मिका वा मा-लक्ष्मीस्तां याति-प्राप्नोत्यध्यवसायादिनेति स तथोक्तः "या प्रापणे, विच्" निगमः-वाणिजः व्यवसायिजन इत्यर्थः क्षमायां-पृथिव्यां आयासवर्जमजनक्लेशरहितं यथा तथा निरत इत्यर्थः पृथिव्या रत्नगर्भत्वात्। यद्वा बहूनि लक्षाणि लक्ष्याणि विषयतया यस्याः सा बहुलक्षा तादृशी माया-बुद्धिर्येषां ते तथोक्ताः प्रभूतविषयाऽवगाहिबुद्धिशालिनः विवेकिन इति यावत् क्षमायां-शान्तौ तत्प्रधानकर्मणि मुनिव्रतग्रहणादावित्यर्थः निरता

इति शेषः। निगमश्च आयासवर्जं रत्नप्रसक्त इति सम्बन्धः॥ निगमः वणिक्पथः आयासवर्जं रत्नार्थं प्रसक्ताः प्राप्ता लीना वा लोका अत्र स रत्नप्रसक्तः आसीत् इति शेषः॥ २४॥

निगमो वाणिजे पुर्यां कटे वेदे वणिक्पथे इति विश्वः। क्षितिक्षान्त्योः क्षमा इत्यमरः माया स्याच्छाम्बरीबुद्धयोरितिमेदिनी॥

मन्ये तदा रामपदं जगत्याः,
साम्राज्यरूपं भरतं यतः सा।
श्रीदे-वरत्वाश्रितलक्ष्मणाशां,
सीतापि लेभे धरणी प्रतीता॥ २५॥

अन्वयः-तद् भरतं जगत्या आरामपदं साम्राज्यरूपं मन्ये यतः प्रतीता सीतापि धरणी श्रीदेऽवरत्वाश्रितलक्ष्मणाशां लेभे अथ च तदा जगत्याः साम्राज्यरूपं रामपदं भरतं मन्ये यतःधरणीप्रतीतासीताऽपि श्रीदेवरत्वाश्रितलक्ष्मणाशां लेभे, यद्वा श्रीदेवरत्वाश्रितलक्ष्मणा सीता यत आशा लेभे॥ २५॥

व्याख्या–तद्भरतं तदाख्यविस्तृतशोभनक्षेत्ररत्नं जगत्याः पृथिव्या भुवनस्य वा आरामपदं विश्रामस्थानम् उपवनस्थानं वा "आरामः स्यादुपवनं कृत्रिमं वनमेव यदित्यमरः" साम्राज्यरूपम् सर्वैश्वर्यरूपं च मन्ये उत्प्रेक्षे यतः यस्मात् भरतक्षेत्रात् प्रतीता प्रसिद्धा सीता हलोत्कृष्टापि सा धरणी रत्नप्रभाभिधाना श्रीदेवरत्वाश्रितलक्ष्मणाशां श्रीदे-धनदेऽवरत्वेन न्यूनत्वेन अनिष्टत्वेन वा आश्रितं युक्तं न्यूनत्वसूचकं यत् लक्ष्म चिन्हं रत्नादि तेन श्रीदे-वरत्वाश्रितलक्ष्मणा उपलक्षिता आशा दिक् तां दक्षिणदिशामित्यर्थः लेभे, प्राप.॥ २५॥

अथ च तदा श्रीरामचन्द्रवनवासकाले जगत्याः साम्राज्यरूपं रामपदं दाशरथिरामस्थानं भरतं कैकयीसुतं मन्ये यतः यस्मात् भरताद् यन्निमित्तमित्यर्थः धरणीप्रतीता धरण्याः पृथिव्याः सकाशात् प्रतीता

प्रसिद्धिं प्राप्ता प्रादुर्भूतेत्यर्थः सीता जनकराजनन्दिनी अपि श्रीदेवर-त्वाश्रितलक्ष्मणाशां श्रिया युक्तो देवरः श्रीदेवरस्तस्य भावस्तत्त्वं श्रीदेवरत्वेनाऽऽश्रितो लक्ष्मणः सौमित्रिर्यस्यां सा चासौ आशा भर-तेन राज्येऽङ्गीकृते रामवनवासार्थेनियतीकृता दिक् दक्षिणादिगित्यर्थः तां लेभे। यद्वा श्रीदेवरत्वेन आश्रितो लक्ष्मणो यां यस्यां वा सा श्रीदेयरत्वाश्रित लक्ष्मणा सीता जानकी यतः भरतात् आशां दिशम् दक्षिणांदिशमित्यर्थः यद्वा आशां कामम् इच्छां वनवासान्ते राज्यवि-षयिणीं वाञ्छामित्यर्थः लेभे इति सम्बन्धः ॥

यद्वा तद्भरतं भरतक्षेत्रं जगत्याः भूमेः आरामपदं उद्यानस्था-नम् रमणकस्थलमित्यर्थः साम्राज्यरूपम् सर्वसम्पद्रूपम् सर्वसाम्रा-ज्योपभोगायतनमिति भावः यतः सा प्रसिद्धिं गता त्रिजगद्विख्या-ता प्रतीता सर्वतः प्रसन्ना कृतादरा च धरणी भारतभूमिः सीतापि-हलोत्कृष्टापि यद्वा लक्ष्मीरपि सर्वसम्पद्रूपापि श्रीदे कुबेरे उत्तरदि-ग्विभागे वरत्वाश्रितलक्ष्मणाशां वरत्वेन श्रेष्ठत्वेन आश्रिता अधिगता लक्ष्मप्रधानमेव लक्ष्मणः स्वार्थेऽण् तस्य आशा अश्नुते व्याप्नोतीति आशा तां प्रधानव्यापकतां लेभे सर्वतः श्रेष्ठत्वेनाश्रितप्रधानव्यापकतां प्रापेत्यर्थः ॥ अत्र श्लेष उत्प्रेक्षा चेत्यलंकृती ॥ २५ ॥

दाक्षिण्यमामृश्य यदस्य मेरुः,
स काञ्चनार्चिर्विबुधैर्धृतार्चः ।
महाविदेहं पुरतश्च पश्चा-
दस्यादिशद् दक्षिणभागमेव ॥ २६ ॥

अन्वयः—यत् मेरुः अस्य दाक्षिण्यमामृश्य महाविदेहं पुरतः पश्चात् च निवेश्य अस्य दक्षिणभागमेव (संनिवेशार्थम्) आदिशत् । स काञ्चनार्चिः विबु-धैर्धृतार्चः ॥ २६ ॥

यत्=यस्मात्कारणात् मेरुः=सुवर्णपर्वतः अस्य=भरतक्षेत्रस्य दाक्षिण्यम्=औदार्यं सरलतां वा सर्वानुकूलतां वा यज्ञादिविधिदानं वा आमृश्य=विमृश्य विचार्येत्यर्थः । महाविदेहं भरतक्षेत्राधिकविस्तृतमपरक्षेत्रविशेषं पुरतः=पूर्वस्यां दिशि पश्चात्=पश्चिमायां च दिशि यद्वा पुरतः=अग्रतः पूर्वदिशीत्यर्थः पश्चात्=अपरस्मिन् भागे पृष्ठभागे पश्चिमदिशीत्यर्थः निवेश्य अस्य=भरतक्षेत्रस्य दक्षिणभागमेव=स्वदक्षिणदेशमेव आदिशत्=उपाऽकल्पयत्संनिवेशार्थमिति शेषः । मेरुः कीदृशः स काञ्चनार्चिः=सुवर्णमयरोचिष्कः पु० की० विबुधैः=देवैः धृतार्चः कृतपूजः ॥ दक्षिणे सरलोदारौ इत्यमरः । दक्षिणो दक्षिणोद्भूतसरलच्छन्दवर्तिषु । आरामे त्रिषु यज्ञादिविधिदाने दिशि स्त्रियाम् इति मेदिनी ॥ २६ ॥

स्पर्धां दधच्चैरवतं यदस्य,
विन्यस्य वामं कृतरक्तकामम् ।
स शूरतं प्राप्तघृणित्वभव्यं,
मेरुर्दधौ तद्भरतं त्वलव्यम् ॥ २७ ॥

अन्वयः—स मेरुः यत् अस्य स्पर्धां दधत् कृतरक्तकामम् ऐरवतं वामं विन्यस्य स शूरतं प्राप्तघृणित्वभव्यं तद्भरतं अलव्यं दधौ ॥ २७ ॥

व्याख्या—सः=प्रसिद्धः मेरुः=सुवर्णशैलः यत्=यस्मात् भरतक्षेत्रे दाक्षिण्याद्यनेकगुणानुरोधाद्धेतोः, अस्य=भरतक्षेत्रस्य स्पर्द्धां=दक्षिण भागावस्थापनादिमन्मानजनितामीर्ष्यां परोत्कर्षासहिष्णुत्वमिति यावत् दधत्=धारयत् तथा कृतरक्तकामं=कृतः=विहितो रक्ते=शोणिते रक्तस्य वा कामः=अभिलाषो येन तत् (परिहारपक्षे तु कृतो रक्ते= ऐरवतक्षेत्रगत 'रक्ता रक्तवतीत्येतन्नदीद्वयसम्बन्धिलोहितवर्णजले कामो येन तत्, रक्ता रक्तवती च नदीद्वयमैरवतक्षेत्रेवर्तते तदीयं जलं

रक्तं तत्राऽनेनेच्छाकृतेतिकल्पना । लोकेऽपि रक्तेच्छवेऽधमपदं राज्ञा प्रदीयते) अत एव दोषात् ऐरवतं=तदाख्यक्षेत्रभेदं वामं=वामगतं= सव्यभागस्थं विन्यस्य=विधाय कृत्वत्यर्थः । स शूरतं=शूरतः=कृपालुस्तेन सहितं यद्वा शूरस्य भावः शूरता=शौर्यं तेन सहितम् । प्राप्त-घृणित्वभव्यम्=प्राप्ता=अधिगता घृणिः=कान्ति यैस्ते प्राप्तघृणयस्तेषां भावस्तत्वं तेनभव्यं=शोभनं योग्यं वा यद्वा घृणा=करुणा दयेत्यर्थः अस्त्यस्यासौ घृणी=दयालुस्तस्यभावो घृणित्वं=दयालुता कृपेत्यर्थ-स्तेन भव्यं, यद्वा प्रकृष्टाः आप्ताः=प्रत्ययिता विश्वासवचना इत्यर्थः यस्मिन् तत्प्राप्तं तच्च तद् घृणित्वभव्यं चेति विशेषणोभयपदकः कर्म-धारयः, तत्=प्रसिद्धं भरतं=भरतक्षेत्रं तु असव्यं=दक्षिणं दक्षभागस्थं कृत्वेत्यर्थः दधौ=धारयामास । वामंधने पुंसि हरे कामदेवे पयोधरे वल्गुप्रतीपसव्येषु त्रिपु नार्या स्त्रियामथ इति मेदिनी । कृपालुः शूरतः समाः इत्यमरः । आप्त-प्रत्ययितौ समौ इत्यमरः । जुगुप्सा-करुणे घृणे इति चाऽमरः ॥ २७ ॥

कुरुप्रकाशी विषयः स-मागधः,
प्रशंसितः काव्यशतैः स-मध्यमः ।
स-कौशलः कोशलसत्कपीवलैः,
श्रियाऽभिनीतो जगतीह नीतितः ॥२८॥

अन्वयः—कुरुप्रकाशी विषयः (अस्ति) स मागधः काव्यशतैः प्रशंसितः स मध्यमः स कौशलः कोशलसत्कृपीवलैः (उपलक्षितः) इह जगति नीतितः, श्रियाऽभिनीतः (पक्षान्तरेषु-स मागधः विषयोऽस्ति। स मध्यमो विषयोऽस्ति। स कौशलो विषयोऽस्ति (शेष विशेषणान्वयः प्रथमवत्) ॥ २८ ॥

व्याख्या-कुरुप्रकाशी=कुरुभिः=तदाख्यराजविशेषैः प्रकाशी= प्रकाश (प्रसिद्धि) शाली, यद्वा कुरून् प्रकाशयति तच्छीलः स तथोक्तः

विषयः-देशः अस्तीति शेषः कीदृशः स इत्याह-स मागधः-मागधैः राजादिस्तुतिपाठकैः वंशपरम्पराशंसकैर्वा सहितः। काव्यशतैः-परश्शतकाव्यैः स्तुतिसहस्रेण वा प्रशंसितः प्रशंसामुखेन व्यावर्णितः, स मध्यमः-मध्यमेन-मध्यजस्वरेण मध्यस्थजनेन वा मध्यमया-हृदयोरपत्रबुद्धिसंयुक्तनादस्वरूपवाणीभेदेन वा सहितः। स कौशलः-कुशलस्य भावः कौशलं, कौशलेन-क्रियानैपुण्येन सहितः। कोशलसत्कृपीवलैः-कोशैः-धनधान्यराशिभि र्लसद्भि-र्विराजमानैः-कृपीवलैःकर्पकैः उपलक्षितः इह-अस्मिन् जगति-संसारे नीतितः-न्यायवर्त्तनशीलतया श्रिया-लक्ष्म्या भारत्या वा समृद्ध्या वा अभिनीतः-आभिमुख्येन सामीप्येन वा प्राप्तः। एतेन शान्तिनाथ-नेमिनाथ-कृष्ण वासुदेवाना मवतारदेशः प्रदर्शितः। हस्तिनापुर-शौरिपुर-द्वारिकाणां कुरुदेशान्तर्गत्वात्। हस्तिनापुरमारभ्य कुरुक्षेत्रा च दक्षिणे। पञ्चालपूर्वभागे तु कुरुदेशः प्रकीर्तितः इत्युक्तेः ॥१॥ चरम तीर्थकराऽवतारभूमिमाह-स मागध इति मगधे-देशभेदे भवा मागधाः-मगधदेश वास्तव्यजनाः तैः सहितो विषयः=देशः मगधदेश इत्यर्थः ब्राह्मणकुण्डनगरं मगधदेशस्याऽभ्यन्तरवर्तीति संभाव्यते ॥ सः=प्रसिद्धः मध्यमः=मध्येभवः, विषयः=देशः मध्यदेशः मध्यप्रान्तः तदन्तर्वर्त्ति वाराणसीत्यर्थः मध्यदेशस्तु मध्यम इत्यमरः। हिमव-द्विन्ध्ययोर्मध्यं यत्प्राग् विनशनादपि। प्रत्यगेव प्रयागाच्च मध्यदेशः प्रकीर्तितः इति मनुः। अयं च प्रभुपार्श्वनाथाऽवतारदेशः। स कौशलः=कोशलं=देशविशेषे भवाः कौशलाः तैः सहितो विषयः कोशलदेश इत्यर्थः। अनेन श्रीयुगादिभवाऽऽदिनाथस्य श्रीरामबलदेवस्य चाऽवतारभूमिःसंसूचिता। सर्वत्र पक्षेषु 'कुरुप्रकाशी' इत्यस्य कुरुभिः=ओदनैः रूपविशेषैर्वा प्रकाशी=प्रकाशशीलः। कुरुर्नृपान्तरे भक्त,पुमान् पुंभूम्नि नीवृति इति मेदिनी ॥

देशः सदेशस्थितिभृन्नरेशः,
सुरार्चनाहूत महीसुरेशः ।
तपस्विवर्गेण यशस्विभिर्वा,
कृतप्रवेशः स्थिरसन्निवेशः ॥ २९ ॥

अन्वय—सदेशस्थितिभृन्नरेशः सुरार्चनाहूत महीसुरेशः तपस्विवर्गेण यशस्विभिर्वा कृतप्रवेशः स्थिरसन्निवेशः देश (आसीत्)

व्याख्या—सम्प्रति दशभिः पद्यैः पूर्वोक्तान् देशान्वर्णयति—देश इति। देशः=जनपदः वक्ष्यमाणस्वरूप आसीदिति शेषः। सदेशस्थितिभृन्नरेशः=सदेशे=समीपे स्थितिं=मर्यादामवस्थितिं वा बिभ्रतीति सदेशस्थितिभृतो नरेशा=राजानो यस्मिन् सः यद्वा सदा=सर्वस्मिन्काले ईशस्थितिम्=ऐश्वर्यं बिभ्रति=धारयंतीति वे ईशस्थितिभृतो नरेशा यस्मिन् स तथोक्तः। सुरार्चनाहूतमहीसुरेशः—सुराणां—देवानाम् अर्चनायां=पूजायाम् अर्चनार्थं वा आहूताः—आकारिता आमन्त्रिता इत्यर्थः महीसुरेशाः=ब्राह्मणश्रेष्ठाः ऋत्विगादय इत्यर्थः यस्मिन् स तथोक्तः। तपस्विवर्गेण—तपोधनैः यशस्विभिः—यशोधनैर्वा कृतः=संपादितः प्रवेशो यत्रासौ कृतप्रवेशः। स्थिरसन्निवेशः—स्थिरः—शाश्वतः सन्निवेशः—सम्यक्स्थितिर्वास इत्यर्थः यत्र सः यद्वा स्थिरः=निश्चितः सन्निवेशः—पुरादौ गृहादिरचनापरिच्छिन्नदेशोयस्मिन् स तथोक्तः। स देशाऽभ्यास—सविध—समर्याद—सवेशवत् इत्यमरः। सन्निवेशो निकर्षण इति चामरः ॥ २९ ॥

सदागमानां फलितैर्द्विधापि,
स संनिधानै र्बहुधा निधानैः ।

परोपकारादिलसद्विधानै,
ध्यानेषु नेयः सुधियां प्रधानैः ॥ ३० ।

अन्वयः—सदागमानां द्विधापि फलितैः ससंनिधानै बहुधा निधानैः (उपलक्षितैः) परोपकारादिलसद्विधानैः सुधियां प्रधानैः ध्यानेषु नेयः ॥ ३० ॥

व्याख्या—सदागमानां=सत्सिद्धान्तानां द्विधापि=द्विविधैरपि ज्ञानक्रियारूपैः फलितैः=फलैः, यद्वा सदागमानां=सन्-प्रशस्तः—आगमः-आयः येषां ते सदागमा स्तेषां न्यायोत्पन्नानां धनानामित्यर्थः द्विधापि फलैः-दान-भोगरूपैः स संनिधानैः-सन्निधानेन-समीपवासेन सहितैः यद्वा सत्-प्रशस्तं निधानम्-आश्रयः, कार्यावसानं वा तेन सहितैः । बहुधा-बहुप्रकारकैः निधानैः-शङ्ख-पद्मादिनिधिभिः उपलक्षितैः । परोपकारादिलसद्विधानैः-परोपकरणप्रभृतिभिर्लसद्भिः-मनोहरैः विधानैः-कर्मभि रुपलक्षितैः । यद्वापरोपकारादीनि लसन्ति-शोभनानि विधानानि-कर्माणि येषां ते स्तथोक्तैः। सुधियां-सुबुद्धिशालिनां पण्डितानां वा मध्ये प्रधानैः-मुख्यैः उपलक्षितः असौ देशःध्यानेषु-चिन्तनेषु नेयः प्राप्यः सर्वदा ध्यातव्यः श्लाघ्यगुणत्वेनेति भावः उदात्तालंकारः ॥ ३० ॥

शैलाविभागे दृढसानुरागै,
स्तपस्विपादोचित संविभागैः ।
भूपैः स्वरूपेण शचीशरूपै,
र्योगीयते दिव्यसदस्सु देशः ॥ ३१ ॥

अन्वयः-दिव्यसदस्सु शैलाविभागैः दृढसानुरागैः तपस्विपादोचितसंविभागैः स्वरूपेण शचीशरूपैः भूपैः यः देशः गीयते ॥ ३१ ॥

व्याख्या—यः देशः दिव्यसदस्सु-स्वर्गीयसभासु सुधर्मादि-

ष्वित्यर्थः भूपैः गीयते–स्तूयते वर्ण्यते इत्यर्थः। कीदृशैर्भूपैरित्याह–शैलाविभागैः–शैलतःपर्वतात् अविभागो येषां ते तैः स्थैर्ये दार्ढ्ये च गिरिकल्पैरित्यर्थः। दृढसानुरागैः–दृढः सानुषु–कोविदेषु रागः–प्रीतिर्येषां ते स्तथोक्तैः। तपस्विपादोचितसंविभागैः–तपस्विपादाः पूज्यतपस्विनः तेषां उचितः–योग्यः संविभागो येषां तैः स्तथोक्तैः। स्वरूपेण–आकृत्या शचीशरूपैः–शचीशः–इन्द्र स्तस्येव रूपं–स्वभावः सौन्दर्यं वा येषां ते, तैः इन्द्रात्मकै र्वा, भूपैरिति सम्बन्धस्तूक्त एव॥ सानु रस्त्री वने प्रस्थे वात्या–मार्गा–ऽग्र–कोविदे इति मेदिनी ॥३१॥

गम्यः सुहृद्भिर्न तथाऽसुहृद्भिः,
कलाधराणां न कलाऽधराणाम् ।
परार्थहृद्भिर्न परार्थहृद्भिः,
स चापरागै र्नतु चापराऽगैः ॥ ३२ ॥

अन्वय.—तथा सः (देशः) सुहृद्भि. गम्यः असुहृद्भि र्न. कलाधराणां (गम्यः) कलाऽधराणां न, परार्थहृद्भि. (गम्यः) परार्थहृद्भि र्न, चापरागैः (गम्यः) अपरागैर्न ॥ ३२ ॥

व्याख्या—' तथा ' इति पूर्वसन्दर्भसम्बन्धार्थम्। देश इति विशेष्यं पूर्वतोऽन्वेति, स सुहृद्भिः–मित्रैः गम्यः–प्राप्यः, (मित्रं सखा सुहृत् इति. प्राप्यं गम्यं समासाद्य मितिचाऽमरः।) न तु असुहृद्भिः शत्रुभि', असूनां–प्राणानां हृद्भिः–अपहारकै–र्वा हिंस्रैर्वा कलाधराणां कलाः चतुषष्टिप्रकारा गीतवाद्यादिरूपाः धरन्ति–दधति ते कलाधरा स्तेषां गम्यः। न तु कलासु–उक्तरूपासु विषये अधराः–नीचाः कलारहिता इत्यर्थ स्तेषां यद्वा दत्तधनस्याधिकलभ्यांशं वा धरन्तीति ते तथा तेषां तथोक्तानां गम्यः। परार्थहृद्भिः–परार्थम्–अन्यार्थं परोपकारपरायणमित्यर्थः हृत्–हृदयं–मनो येषां ते परार्थहृद

स्तै स्तथोक्तैः गम्यः, न तु परार्थहृद्भिः—परेषाम्—अन्येषाम् अर्थं—धनं वस्तु वा हरन्ति—मुष्णन्ति ते स्तथोक्तै श्चौरादिभिः गम्यः । चापरागैः—चापे—धनुषि रागः—प्रीतिर्येषां ते तै स्तथोक्तैः शूरैरित्यर्थः गम्यः—समासाद्यः तद्देशस्थजनानां धनुर्विद्याप्रियत्वात्तत्र तेषां प्रवेशसम्भवः न तु तत्रत्यानां भयशालितयेति बोद्धव्य मन्यथा देशनिन्दासंभवात् । न तु अपरागैः—अपगतो रागः—प्रीतिर्येषां तेऽपरागास्तै स्तथोक्तैः गम्यः विरोध नामालंकारः ॥ ३२ ॥

कुतूहलेनोद्वहनं सृजन्ति,
कुतूहलेनोद्वहनं सृजन्ति ।
यद्देशवास्तव्यजनाः परोपजापे,
प्रसक्ता न परोपजापे ॥ ३३ ॥

अन्वयः—यद्देशवास्तव्यजना कुतूहलेन उद्वहनं सृजन्ति कुतूहलेन उद्वहनं सृजन्ति परोपजापे प्रसक्ताः परोपजापे न (प्रसक्ताः) (आसन्) ॥ ३३ ॥

व्याख्या—यद्देशवास्तव्यजनाः=यद्देशचतुष्टयनिवासिनो लोकाः कुतूहलेन=कौतुकेन उद्वहनम्=उद्वाहं परिणय मित्यर्थः सृजन्ति=कुर्वन्ति. कुतूहलेन=कौतुकेन=जनितः पुत्रः कदाचित्तीर्थङ्करगोत्रबन्धनेन संयमधारणादिना वाऽस्मत्कुलंतारयेदित्यभिलापेनेत्यर्थः उद्वहनम्=उद्वहति=उर्ध्वंनयति पितृ मातृ वंश्या नित्युद्वहनः=पुत्रस्तं सृजन्ति=उत्पादयन्ति । परोपजापे=परः=श्रेष्ठः उपजापः=उपांशुजपः तस्मिन् प्रसक्ताः=व्यापृताः लीनमनस इत्यर्थः, किन्तु परोपजापे=परेषाम्=अन्येषां, परः=उत्कृष्टो वा उपजापः=भेदः विच्छेदः संहतयोर्द्वैधीकरणमिति यावत् परोपजापः तस्मिन् तथोक्ते न प्रसक्ता इत्यर्थः । लाटानुप्रासः विरोधाभासश्च । भेदो–पजापौ इत्यमरः ॥ ३३ ॥

अन्वयः–यत्सूपदेशः लावण्यसुसंस्कृतार्थैः बहुधान्यकार्यं करोति तस्य विशालिता सरोऽनुसारात् ततोऽन्यस्य [प्रदेशः] कूपदेशः क्षुद्रः ॥ ३५ ॥

व्याख्या–यत्सूपदेशः–यस्य देशस्य सूपदेशः–शोभन उपदेशः समीपवर्तिदेशः प्रदेश इत्यर्थः लावण्यसुसंस्कृतार्थैः–लावण्येन सौन्दर्येण सुसंस्कृतैः–परिष्कृतैः अर्थैःवस्तुभिः करणैः बहुधान्यकार्यं–बहूनां धान्यानां–शालि–गोधूमादिव्रीहीणां कार्यं करोति–सम्पादयति । तस्य–देशस्य विशालता–वैपुल्यं विस्तार इत्यर्थः सरोऽनुसारात्–महासरःसदृशीत्यर्थः । ततोऽन्यस्य–तद्देशसम्बन्धरहितदेशस्य प्रदेशः कूपदेशः–कुत्सित उपदेशः=समीपदेशः तत्स्वरूप इत्यर्थ कूपऽन्वितो देशो वा अत एव क्षुद्रः––तुच्छः वासाऽनर्ह इत्यर्थः ॥

पद्यस्यास्याऽर्थान्तरमपि श्लेषमहिम्ना ध्वनितं भवति. तथाहि–यत्सूपदेशः–यस्य पण्डितस्य शोभन उपदेशः–हिताऽनुशासनम् लावण्यसुसंस्कृतार्थै–लावण्येन प्रसादादिगुणसौन्दर्येण सुसंस्कृतैः–अतीव भूषितैः सुसम्पन्नैरित्यर्थः अर्थै–वाच्यैः अभिधेयैरित्यर्थः बहुधा बहुप्रकारेण अन्यकार्यम्–अन्यत्कृत्यम् उपदेशातिरिक्त माह्लादादिका करोति–जनयति । तस्य–उपदेशस्य विशालिता–विस्तारः सरोऽनुसारात् सरः ज्ञानं तदनुसारेण. ततः तस्मात् अन्यस्य उपदेशादि कूपदेशः कुत्सित उपदेशः अत एव क्षुद्रः तुच्छत्वादग्राह्य इत्यर्थ ॥ ३५ ॥

सारस्य मावश्यकमेव तस्य,
प्रशस्यते शस्यधिया जलस्य ।
यत् प्राणिनां जीवनमेतदन्यः,
स जातवेदा अपि भस्मशेषः ॥३६॥

अन्वयः—(तत्रदेशे) यत् प्राणीनां जीवन् (वर्तते) तस्य जलस्य सारस्यमावश्यकमेव इति कृत्वा शस्यधिया (तत्) प्रशस्यते एतदन्यः स जातवेदाऽपि भस्मशेष. । अथ च तस्य ज(ड)स्य सारस्यमावश्यकमेव यत् प्राणिनां जीवनम् (असौ सरसश्च) शस्यधिया प्रशस्यते एतदन्यः सजातवेदा अपि भस्मशेष' ॥ ३६ ॥

व्याख्या-किंच तत्र देशे यत् प्राणिनां=जन्मिनां जीवनं=प्राणधारणकारणं वर्तते इति शेषः तस्य जलस्य सारस्य=सरसता मधुररससाहित्यं वा स्वादुत्वं वा आवश्यकमेव=अवश्यप्रयोजनीयमेव। इति कृत्वा शस्यधिया=शालि-गोधूमादिधान्यबुद्ध्या अनेन धान्योत्पत्तिरित्यनुसन्धायेत्यर्थः प्रशस्यते=श्लाघ्यते । एतदन्यः=जलाऽतिरिक्तः सः=प्रसिद्धः जातवेदाः=जातान्=प्राणिनो विन्दते जठराऽनलत्वेन इति जातं वेदो=धनं यस्मात् इति वा, जाते जाते विद्यते इति वा जातं वेत्ति, वेद्यते वा, इति वा स तथोक्तः वह्निः अपि भस्मशेषः=भस्मपर्यवसान इति कृत्वा न प्रशस्यते। तत्र हि देशे जलातिरिक्तवस्तुना नोपकरणार्हता सर्वेषां सर्वसमृद्धिसम्पन्नत्वात् । श्लेषमहिम्नाऽस्य पद्यस्याऽर्थान्तरमपि प्रतीयते, तथाहि—तस्य जलस्य=जडस्य मूर्खस्येत्यर्थः रलयो र्डलयोश्चैकत्वस्मरणात्, सारस्यम्=सरसस्य भावः रसिकता वैदग्ध्यमितियावत् आवश्कमेव, यच्च प्राणिनां=सहृदयजनानाम् जीवनं=प्राणरूपम् अन्यथा सहृदयत्वाऽनुपपत्तेः। असौ (सरसः) शस्यधिया=प्रशंसनीयमतिना प्राज्ञेनेत्यर्थः प्रशस्यते=सबहुमानं श्लाघ्यते। एतदन्यः=विदग्ध (सरस) भिन्नः पुरुषः सजातवेदाः=जातवेदसा=इज्यादितर्पणीयवह्निना सहितः ऋत्विगादिः अपि भस्मशेषः=भस्मतुल्यः न गण्य इत्यर्थः। सरसजनाऽपेक्षया वैदिकानामनुत्तमत्वमिति साहित्यरसवासिताऽन्तःकरणानां सहृदयवाचणानां सुप्रसिद्धम् ॥

सदा नदेशः किमु दान देशः,
समाश्रयत्सर्वरसाऽनुवेशः ।
तटी पटीयः शुकविप्रवेशः,
पदेपदे प्राप्तवसूपदेशः ॥ ३४ ॥

अन्वय—(असौदेशः) नदेशः किमु ? दानदेशः समाश्रयत्सर्वरसाऽनुवेशः तटीपटीयः शुकविप्रवेशः पदे पदे प्राप्तवसूपदेशः ॥ ३४ ॥

व्याख्या—असौ देशः=समुद्रः किमु वर्त्तते इति शेषः इत्युत्प्रेक्षा. उभयोः समान शब्दवाच्यत्वरूपसाधर्म्यं मुत्प्रेक्षाबीजभूतमाह दानदेशः=दानं=वितरणीयार्थं ददाति=प्रयच्छन्तीति दानदाः=दानशीला ईशाः=अधिपतयो यत्र स तथोक्तः, समुद्रपक्षे–दानदः=धनदः कुबेरः ईशोयस्य सः, समुद्रस्य रत्नाकरत्वात्कुबेरस्य धनाधिपत्वात्कुबेरे समुद्रपतित्वमुपचर्यते । यद्वा दं=पर्वतं मैनाकलक्षणम् आनयति=सर्वपर्वतपक्षच्छेदनाग्रहिलपुरन्दरभिदुरप्रहारात् त्राणकरणेन जीवयतीति दान स्तादृशो देशः=प्रदेशो यस्य स तथोक्तः । समाश्रयत्सर्वरसानुवेशः=समाश्रयन् सर्वः=सकलः रसः माधुर्यादिरूपो यां सा समाश्रयत्सर्वरसा=पृथ्वी तस्याम् अनु=अनुक्रमेण व्याप्ता वा वेशाः=गृहाणि यत्र सः, यद्वा समाश्रयताम्=आश्रयमन्विच्छतां सर्वरसानां=पण्डितानाम् अनुवेशः=प्रवेशो यत्र सः अथवा समाश्रयतां=निवस्तुमिच्छतां सर्वेषां=सकलानां जनानां रसायां=पृथिव्यां वास्त्वर्हभूमावित्यर्थः अनुवेशः=समावेशो यत्र स तथोक्तः तत्रत्यप्रदेशाना मतिविस्तीर्णत्वात्सर्वेषां तद्देशनिवासार्थिनां कृते तत्रावकाशस्य पर्याप्तत्वात् । समुद्रपक्षे–समाश्रयन्तीनां सर्वरसानां=नदीनाम् अनुवेशः=प्रवेशः समावेशो वा यत्र सः यद्वा समाश्रयतां सर्वेषां रसनां=जलानां अनुमर्यादानतिक्रमेण समावेशो यत्र स तथोक्तः । तटीपटीयः शुकविप्रवेशः=तथ्यां

पटीयसां मुनिपुणानां सुकवीनां प्रवेशो यत्र सः पक्षे तट्यां=कूले वेलाया मित्यर्थः पटीयसां शुकवीनां=शुकपक्षिणां यद्वा सुष्ठु कायन्ति=शब्दायन्ते इति सुका स्तादृशा वयः=पक्षिण स्तेषां प्रवेशो यत्र सः रलयोर्डलयो श्चैव, श-सयोर्ब-वयोस्थेतिवचनेन श-सयोरेकत्वस्मरणात् । पुनश्च पदे पदे=प्रतिपदं प्रतिस्थानमित्यर्थः प्राप्तवसूपदेशः प्राप्तः=उपस्थितः लोकैर्लब्धो वा वसुः=मधुरः मनोज्ञः उपदेशः=शास्त्रीय धार्मिक-राजनैतिकाद्यनुशासनं यत्र सः यद्वा समृद्धजनशालितया व्यापारिजनवत्तया वा प्रतिस्थलं प्राप्तः वसूनां=धनानां रत्नानां वा स्वर्णानां वा उपदेशः=योग-क्षेमाद्यनुशासनं यत्र स तथोक्तः । अथवा पदे पदे=प्रतिव्यवसायं=प्रत्युद्यमं प्राप्तः वसोः=धनाधिपस्य कुबेरस्य तद्विषयक इति तात्पर्यम् उपदेशः=अध्यवसायादिसहायेनाऽनन्तकोटिधनाधिपत्यशालित्वादेराख्यानं यत्र सः अथवा प्राप्तानि खानितोऽधिगतानि वसूनि रत्नानि स्वर्णानि यत्र तादृश उपदेशः=समीपदेशः खान्यादिप्रदेशो यत्र स तथोक्तः ।

समुद्रपक्षे प्रतिस्थानं=प्रतिकूलप्रदेशं प्राप्तानि=प्रोच्छलनेन गतानि वसूनि=जलानि यत्र तादृश उपदेशः=समीपदेशो वेलाप्रदेशो यस्य सः यद्वा समुद्रस्य रत्नाकरतया प्रतिपदं-प्रतिचरणन्यासदेशं प्राप्तानि-लोकैरधिगतानि वसूनि-रत्नानि यत्र तादृश उपदेशो वेला यस्य स तथोक्तः । अत्र श्लेषालंकारः ॥ ३४ ॥

यत्सूपदेशो बहुधान्यकार्यं,
करोति लावण्यसुसंस्कृतार्थैः ।
विशालतातस्यसरोऽनुसारात्,
क्षुद्रस्ततोऽन्यस्यनुकूपदेशः ॥ ३५ ॥

अन्वयः-यत्सूपदेशः लावण्यसुसंस्कृतार्थैः बहुधान्यकार्यं करोति तस्य विशालिता सरोऽनुसारात् ततोऽन्यस्य [प्रदेश] कूपदेशः क्षुद्रः ॥ ३५ ॥

व्याख्या-यत्सूपदेशः-यस्य देशस्य सूपदेशः-शोभन उपदेशः समीपवर्त्तिदेशः प्रदेश इत्यर्थः लावण्यसुसंस्कृतार्थैः-लावण्येन सौन्दर्येण सुसंस्कृतैः-परिष्कृतैः अर्थैःवस्तुभिः करणैः बहुधान्यकार्यं-बहूनां धान्यानां-शालि-गोधूमादिव्रीहीणां कार्यं करोति-सम्पादयति। तस्य-देशस्य विशालता-वैपुल्यं विस्तार इत्यर्थः सरोऽनुसारात्-महासरःसदृशीत्यर्थः। ततोऽन्यस्य-तद्देशसम्बन्धरहितदेशस्य प्रदेशः कूपदेशः-कुत्सित उपदेशः=समीपदेशः तत्स्वरूप इत्यर्थ कूपऽन्वितो देशो वा अत एव क्षुद्रः--तुच्छः वासाऽनर्ह इत्यर्थः ॥

पद्यस्यास्याऽर्थान्तरमपि श्लेषमहिम्ना ध्वनितं भवति. तथाहि-यत्सूपदेशः-यस्य पण्डितस्य शोभन उपदेशः-हिताऽनुशासनम् लावण्यसुसंस्कृतार्थैः-लावण्येन प्रसादादिगुणसौन्दर्येण सुसंस्कृतैः-अतीवभूषितैः सुसम्पन्नैरित्यर्थः अर्थैः-वाच्यैः अभिधेयैरित्यर्थः बहुधा-बहुप्रकारेण अन्यकार्यम्-अन्यत्कृत्यम् उपदेशातिरिक्त माह्लादादिकार्यं करोति-जनयति। तस्य-उपदेशस्य विशालिता-विस्तारः सरोऽनुसारात् सरः ज्ञानं तदनुसारेण. ततः तस्मात् अन्यस्य उपदेशादिः कूपदेशः कुत्सित उपदेशः अत एव क्षुद्रः तुच्छत्वादग्राह्य इत्यर्थः ॥ ३५ ॥

सारस्य भावश्यकमेव तस्य,
प्रशस्यते शस्यधिया जलस्य।
यत् प्राणिनां जीवनमेतदन्यः,
न जातवेदा अपि भस्मशेषः ॥३६॥

अन्वयः—(तत्रदेशे) यत् प्राणीनां जीवन (वर्तते) तस्य जलस्य सारस्यमावश्यकमेव इति कृत्वा शस्यधिया (सत्) प्रशस्यते एतदन्यः स जातवेदाऽपि भस्मशेषः । अथ च तस्य जल(ड)स्य सारस्यमावश्यकमेव यत् प्राणिनां जीवनम् (असौ सरसश्च) शस्यधिया प्रशस्यते एतदन्यः सजातवेदा अपि भस्मशेषः ॥ ३१ ॥

व्याख्या–किंच तत्र देशे यत् प्राणिनां=जन्मिनां जीवनं=प्राणधारणकारणं वर्त्तते इति शेषः तस्य जलस्य सारस्य=सरसता मधुररससाहित्यं वा स्वादुत्वं वा आवश्यकमेव=अवश्यप्रयोजनीयमेव। इति कृत्वा शस्यधिया=शालि-गोधूमादिधान्यबुद्धया अनेन धान्योत्पत्तिरित्यनुसन्धायेत्यर्थः प्रशस्यते=श्लाघ्यते । एतदन्यः=जलाऽतिरिक्तः सः=प्रसिद्धः जातवेदाः=जातान्=प्राणिनो विन्दते जठराऽनलत्वेन इति जातं वेदो=धनं यस्मात् इति वा, जाते जाते विद्यते इति वा जातं वेत्ति, वेदयते वा, इति वा स तथोक्तः वह्निः अपि भस्मशेषः= भस्मपर्यवसान इति कृत्वा न प्रशस्यते। तत्र हि देशे जलातिरिक्तवस्तुना नोपकरणार्हता सर्वेषां सर्वसमृद्धिसम्पन्नत्वात्। श्लेषमहिम्नाऽस्य पद्यस्याऽर्थान्तरमपि प्रतीयते, तथाहि–तस्य जलस्य=जडस्य मूर्खस्येत्यर्थः रलयो र्डलयोश्चैकत्वस्मरणात्, सारस्यम्=सरसस्य भावः रसिकता वैदग्ध्यमितियावत् आवश्यकमेव, यद्य प्राणिनां=सहृदयजनानाम् जीवनं=प्राणरूपम् अन्यथा सहृदयत्वाऽनुपपत्तेः। असौ (सरसः) शस्यधिया=प्रशंसनीयमतिना प्राज्ञेनेत्यर्थः प्रशस्यते=सबहुमानं श्लाघ्यते। एतदन्यः=विदग्ध (मरम) भिन्नः पुरुषः सजातवेदाः=जातवेदसा=हव्यादितर्पणीयवह्निना सहितः ऋत्विगादिः अपि भस्मशेषः= भस्मतुल्यः न गण्य इत्यर्थः। सरसजनाऽपेक्षया वैदिकानामनुत्तमत्वमिति साहित्यमनसाऽऽसिताऽन्तःकरणानां सहृदयताचणानां सुप्रसिद्धम् ॥

नित्यं समुद्रातिशयाशयेन,
पिताम्बराः स्वीययशःप्रकाशैः ।
निवासिनोऽस्मिन् कमलानुपङ्गैः,
स्वयंभुवः श्रीपुरुषोत्तमास्ते ॥ ३७ ॥

अन्वय—अस्मिन् निवासिनः ते श्रीपुरुषोत्तमाः समुद्रातिशयाशयेन नित्यम् [उपलक्षिता,] स्वीययशः प्रकाशैः पीताम्बरा, कमलाऽनुपङ्गैः (उपलक्षिता) स्वयंभुवः (सन्ति) ॥ ३७ ॥

व्याख्या—अस्मिन् देशे निवासिनः=वास्तव्याः ते=प्रसिद्धाः जनाः श्रीपुरुषोत्तमाः=पुरुषेषु उत्तमाः=श्रेष्ठाः । समुद्रातिशयाशयेन=समुद्रात्=रत्नाकरात् अतिशयः अतिमात्रः तदतिक्रमणशीलो वा आशयः=विभवः रत्नादिसम्पत् , चित्तं वा गम्भीरहृदयत्वात्, अभिप्रायो वा गम्भीराशयत्वात् तेन तथोक्तेन उपलक्षिताः उपलक्षणे तृतीया, स्वीययशः प्रकाशैः=स्वीयानाम्=आत्मीयानां यशसां=कीर्तीनां प्रकाशैः=विस्तारैः पीताम्बराः=पीतं=व्याप्तम् अम्बरम्=आकाशो यैस्ते तथोक्ताः यशोभिः पिहिताऽऽकाशा इत्यर्थः । कमलानुपङ्गैः=कमलायाः=सम्पल्लक्ष्म्या वरस्त्रिया वा कमलानां=शालिधान्यानां लेखनीनां वा अनुपङ्गैः=सम्बन्धैः उपलक्षिताः स्वयंभुवः=स्वयम्=आत्मना भवन्ति=अन्तर्भावितण्यर्थतया भावयन्ति=उत्पादयन्ति स्वोपयोज्यवस्तुजातानि कलाकौशलेन इति ते तथोक्ताः सन्तीति शेषः । अत्र पद्ये 'पीताम्बराः' स्वयम्भुवः, श्रीपुरुषोत्तमाः" इत्येतैर्योगार्थेन प्रस्तुतदेशनिवासिजनविशेषणीभूतैरपि रूढ्या ब्रह्म-विष्णु-महेशानवाचकैस्त्रिभिः शब्दैः 'एतद्देशवास्तव्यालोकाः' 'ब्रह्म विष्णुमहेशरूपा एवेति श्लेषमहिम्ना ध्वन्यते, तथाहि 'पीताम्बराः, श्रीपुरुषोत्तमाः' इत्येतत्पदद्वयेन स्मर्यमाणो विष्णुः " नित्यं=निरन्तरं समुद्रातिशयाशयेन=समुद्रेऽति-

शयः=सार्वदिकतयाऽतिमात्रः आशयः=शयनं तेन तथोक्तेन उपलक्षित इत्यर्थः । तथा कमलाऽनुपङ्कैः=कमलायाः=लक्ष्म्याः यद्वा कमलस्य=हस्तस्थपद्मस्य शयनाश्रयभूतजलस्य वा अनुपङ्कैरुपलक्षितः ॥ 'स्वयम्भुवः' इतिपदेन सर्यमाणो ब्रह्मा शिवश्च 'कमलाऽनुपङ्गैः=(ब्रह्मपक्षे)कमलस्य=आसनीभूतपद्मस्य' ब्रह्मण कमलासनत्वात्, शिवपक्षे कमलस्य=हस्तलालनीयमृगविशेषस्य अनुपङ्गैः=सम्बन्धैरुपलक्षितः ॥ रूपकाऽलङ्कारः । कमलं सलिले ताम्रे क्लोम्नि-भैषज्य पद्मयोः । कमलो मृगभेदे तु, कमला श्रीवरस्त्रियोरिति मेदिनी ॥३७॥

ये कामरूपा अपि नो विरूपाः,
कृताऽपकारेऽपि न तापकाराः ।
सारस्वता नैव विकर्णिकास्ते,
कास्तेजसां नो कलयन्ति राज्ञोः ॥३८॥

अन्वयः—ये कामरूपा अपि विरूपाः नो कृतापकारेऽपि न तापकाराः । सारस्वता अपि विकर्णिकाः नैव, ते कास्तेजसां राज्ञीः नो कलयन्ति. ॥ ३८ ॥

व्याख्या—ये जनाः कामरूपाः=कन्दर्पस्वरूपाः कामस्य अनङ्गत्वात् नीरूपा अपि विरूपाः=विगतं रूपं येषां ते तथोक्ताः रूपरहिता नो=न इति विरोधः कामरूपाः=इच्छारूपिणः विरूपाः=विरुद्धं रूपं=स्वभावः वेशो वा येषां ते तथोक्ता न देशकालाऽनुसारवेशशालिन इत्यर्थः इति परिहारः कृताऽपकारे—साऽपराधेऽपि जने विषये न ताऽपकाराः=नतानां=विनयादिनम्राणामपकारः=अनिष्टोत्पादनं तद्धेतु द्वेषो वा येभ्यस्ते तथोक्ता इति विरोधः, तापकाराः=तापं सन्तापं कष्टं वा कुर्वन्ति=जनयन्तीति ते तथोक्ताः कष्टप्रदाः प्रत्यपचिकीर्षव इत्यर्थः न, इति परिहारः ॥ सारस्वताः=सरस्वती=वागधिष्ठात्री देवी

देवता उपास्यतयाऽस्त्येषां ते तथोक्ताः पंडिता इत्यर्थः अपि विकर्णिकाः=विशिष्टा विविधा वा कर्णिका=लेखनी येषां ते तथोक्ताः नैवेति विरोधः विदुषां लेखनसाधनकलमादेर्लिप्या वा राहित्यस्य विरुद्धत्वात्। विगता कर्णिका=कर्णभूषणं येषां ते तथोक्ता नैव किन्तु सर्वे सकर्णिका इत्यर्थ इति परिहारः। तथा ते जनाः काः=किं रूपाः तेजसां-दीप्ति-पराक्रम-प्रभाव-परप्रयुक्ताऽधिक्षेपा-ऽपमानाद्यसहन-सत्वगुण-शरीरकान्तीनां राजीः=श्रेणीः राशीनित्यर्थः नो कलयन्ति=धारयन्ति सर्वान् गुणान् दधतीत्यर्थः। विरोधाभासः, आभासत्वे विरोधस्य विरोधाभास इष्यते इति तल्लक्षणात्। पूर्वार्धेऽन्त्यानुप्रासः। कर्णिका करिहस्ताग्रे करमध्यांगुलावपि। क्रमुकादिच्छटांशेऽब्जे, वराटे-कर्णभूषणे इति मेदिनी ॥ ३८ ॥

श्रीहास्तिनस्थान ममर्त्यवासवा-
श्रयेण साक्षादमरावती पुरी।
वुध्ध्याऽप्ययोध्यामलकालिताश्रिता,
सा वीक्ष्यते ज्ञैः शिवपूर्वसुश्रिया ॥३९॥
श्रीमण्डनब्राह्मणकुण्डसंज्ञया,
या सुप्रमाता मधुरारसाश्रयैः।
तां मध्यदेशे जिनजन्मपावितां,
स्थैर्येण वा शौर्यपुरं समीक्षताम् ॥४०॥

अन्वय—तां मध्यदेशे (वर्तिनीं) जिनजन्मपाविता (नगरीं) स्थैर्येण समीक्षताम्। हास्तिनस्थानम्, (या) पुरी अमर्त्यवासवाश्रयेण साक्षादमरावती. (तथाऽसौ) वुध्ध्यापि अयोध्या आमलकाश्रिताश्रिता (अत एव सा पुरी) ज्ञैः. वसुश्रिया शिवपू. वीक्ष्यते (पुनश्च) या श्रीमण्डनब्राह्मणकुण्डसंज्ञया सुप्रमाता

रसाश्रयैः मधुरा शौर्यपुरम् इति ऋषभदेवपक्षीयोऽन्वय द्वितीयादिपक्षीयोऽन्वयो व्याख्यातोऽवगन्तव्यः ॥ ३९-४० ॥

व्याख्या—श्रीशान्तिनाथपक्षे तां=प्रसिद्धां जिनजन्मपावितां=तीर्थङ्करेण स्वजननादारभ्य पवित्रीकृताम् नगरीमिति शेषः स्थैर्येण=स्थिरतयाऽवधानेनेत्यर्थः समीक्षतां=पश्यतु। तां कामित्याह—हास्तिनस्थानं हस्तिना=तदाख्यनृपेण निर्वृत्तं नगरं हास्तिनं तदाख्यं स्थानं हास्तिनस्थानं हस्तिनापुराऽभिधानेत्यर्थः या च पुरी अमर्त्यवासवाश्रयेण=अमर्त्याःदेवसामान्याः वासवाः=शक्रेन्द्रादय स्तेषामाश्रयः=आश्रयणं तीर्थकृद्दिदृक्षा-शुश्रूषादिहेतुना भूय आगमनाऽवस्थानादिलक्षणं तेन साक्षात्=प्रत्यक्षरूपा अमरावती=इन्द्रपुरी एव। तथाऽसौ बुध्ययाऽपि=मनसाऽपि अयोध्या-योधनाऽनर्हा शान्तिप्रियजननिवासत्वात्। दुष्प्रधर्षत्वाच्च आमलकालिताश्रिता-आमलकाः वामकवृक्षाः आमलकानि-धात्रीफलानि वा तेषामालिः-श्रेणी तद्वारस्तया तां श्रिता आश्रिता इति वा छेदः। यद्वा आमलकाऽलिता-आमलकैः अलिता-भूषिता पूर्णा वा, ज्ञैः पंडितैः श्रिता इति सम्बन्धः। (अत एव सा पुरी ज्ञैः-पंडितैः) वसुश्रिया-वसूनां रत्न-धन-स्वर्णानां सम्पत्त्या वृद्धया वा यद्वा वसो राज्ञः श्रिया-लक्ष्म्या राजलक्ष्म्या यद्वा वसोः पृथिव्याः श्रिया-विभूत्या, वसोरिव कुबेरस्येव श्रिया-समृद्ध्या वा शिवपूः-कल्याणमयी पुरी वीक्ष्यते-दृश्यते। पुनश्च या-नगरी श्रीमण्डनब्राह्मणकुण्डसंज्ञया-श्रियाः-लक्ष्म्याः सिद्धेः वा भारती-कीर्त्यो वा मण्डनं-भूषणभूतमलङ्कारक वा यद्ब्राह्मणकुण्डं-तदाख्यपुण्यस्थानं तस्य संज्ञया-नाम्ना तत्स्मरणेनेति भावः, शुभप्रभाता-शुभसूचकप्रातः कालवती। रसाश्रयैः-रसस्य-शृङ्गारादेः हर्षस्य वाऽऽश्रयैः-आधारभूतजनैः यद्वा रसा-पृथ्वी आश्रयो येषां तैर्महीरुहैः यद्वा रसो-जलं तदाश्रयैः जलाशयैरित्यर्थः मधुरा-मनोज्ञा. शौर्यपुरं-शौर्यस्य परा-

क्रमस्य पुरम्-आश्रयः ॥

श्रीऋषभदेवरामपक्षयो 'युद्ध्यापि अयोध्या' इति विशेष्यम्, अपिना नाम्नाऽपि अयोध्या एवेत्यवधार्यम्। श्रीहास्तिनस्थानमित्यस्य हस्तिनां समूहो हास्तिनं, श्रिया हास्तिनस्य च स्थानम् इत्यर्थो विदेलिमः।

श्रीपार्श्वनाथपक्षे-'शिवपूः' इति विशेष्यं सा च वाराणसी काशीपुरीत्यर्थः अत्रपक्षे वसुश्रिया-घनशोभया ज्ञैः वीक्ष्यते इत्यर्थः॥

श्रीमहावीरपक्षे 'श्रीमण्डनब्राह्मणकुण्डसंज्ञया-श्रियाः-लक्ष्म्या मण्डनं=भूषणभूतं यद् ब्राह्मणकुण्डं=तदाख्यं स्थानं तद्रूपसंज्ञया=नाम्ना सुप्रभाता-सुप्रसिद्धा ॥

श्रीकृष्णपक्षे—'मधुरा'-तदपरनाम्नी मथुरापुरीत्यर्थः रसाश्रयैः उपलक्षिता इति सम्बन्धः ॥

श्रीनेमिनाथपक्षे 'शौर्यपुरम्' इति विशेष्यं शेषविशेषण सम्बन्धः पूर्ववद्बोद्धव्यः। अर्थश्लेषः।

रसो गन्धरसे स्वादे तिक्तादौ विष रागयोः। शृङ्गारादौ द्रवे वीर्ये देहधात्व-म्बु-पारदे। रसा तु सल्लकी-पाठा-जिह्वा-धरणि-कङ्गुषु इति विश्वः ॥ ४० ॥

यद्विस्रसाभीरु रनङ्गराज,
स्तन्मन्त्रविद्वीरुरतः प्रपन्नः।
स्थानं परायोध्य सहाश्वसेनं,
सहास्तिनं सन्मधुरं स शौर्यम् ॥ ४१ ॥

अन्वय —यद् विस्रसाभीरु अनङ्गराज तन्मन्त्रविद्वीरः (अस्ति) अत तत् स्थान प्रपन्न पराऽयोध्य सहाऽश्वसेन सहास्तिन सन्मधुर सशौर्यम् ॥४१॥

व्याख्या—यद्–यस्माद्धेतोः विस्रसाद्भीरुः–जरात्रस्तुः अनङ्गराजः–कामनरपतिः तन्मन्त्रविद्भीरुः–तस्याः–विस्रसायाः मन्त्रवित्–गुप्तचरः मन्त्रज्ञो तस्माद् भीरुः–भयशीलः अस्ति इति शेषः अतः कारणात् तत् स्थानं=देशं प्रपन्नः–प्राप्तः कीदृशं तत्स्थानमित्याह––परायोध्यं–परैः–शत्रुभिः अयोध्यं–योधनाऽनर्हम् सहाश्वसेनम्–अश्वानां–घोटकानां सेनया–सैन्येन समूहेनेत्यर्थः सहितं, सहास्तिनं––हस्तिनां समूहो हास्तिनं तेन सहितं, सन्मधुरं–मधु–मद्यं लक्षणया युद्धाय युद्धखेदाऽपनुत्तये वा सुरापानं रान्ति–कुर्वन्ति धातूनामनेकार्थत्वात् ते मधुराः–युद्धपरिश्रमाऽपनोदनार्थं संस्कृतसुरापानशीला वीराः 'वीरपानं तु यत्पानं, वृत्ते भाविनि वारणे, इत्यमरः। वीराणां संग्रामार्थं मद्यपानस्याऽऽचाराऽविरोधित्वात् सन्तः–प्रशस्ता मधुरा यत्र तत् तथोक्तम्। यद्वा सतां मधुरं–प्रियम्। स शौर्यम्–शौर्येण–पराक्रमेण सहितम्॥ अनेन तीर्थंकरजन्माधिकरणीभूतनगराणामन्वर्थनामधेयत्वं, तत्रत्यानां च जनानां सान्द्रदर्प–कन्दर्पसौन्दर्यसोदर्यहृद्याऽनवद्यरूपशालित्वं सूचितं भवतीति सहृदयैर्विभावनीयम्॥ ४१॥

सदारमण्याश्रितदुर्गशैलं,
सक्षत्रियत्वाद्बहुलक्षणाढ्यम्।
सुराजराज्यादरविप्रयुक्तं,
रम्यैर्गृहाणामुदयैर्विराजत्॥ ४२॥

अन्वयः—सदा रमण्याश्रितदुर्गशैलं सक्षत्रियत्वाद् बहुलक्षणाढ्य।
सुराजराज्यादरविप्रयुक्त रम्यैर्गृहाणामुदयैर्विराजत्॥ ४२॥

व्याख्या—पुनश्च तत्स्थानं कीदृशमित्याह—सदेति सदा–सर्वस्मिन् काले रमण्याश्रितदुर्गशैलं–दुःखेन गच्छति गम्यते वाऽत्रेति–दुर्गः–पर्वत-प्राकार-परिखादिदुर्गमकोट्टः स शैल इवेति दुर्गशैलः–रम-

णीभिः–स्त्रीभिः आश्रितो दुर्गशैलो यत्र तत्तथोक्तम् । सक्षत्रियत्वात्–राजन्यसहितत्वात् सुशासकरक्षितत्वादितिभावः । बहुलक्षणाढ्यं–बहुलैः=बहुसंख्यैः प्रभृतैः क्षणैः–उत्सवैः आढ्यम्–विशिष्टम्। यद्वा बहुभिः–अनेकैः लक्षणैः–पूर्वोत्तरप्लवत्वादिशुभचिह्नैः आढ्यं=युक्तम् । अथवा बहुलक्षणाः–प्रचुरोत्सवशालिनः आढ्याः–धनिनो यत्रतत्तथोक्तम् बहुभिःलक्षणैः–सारसपक्षिभिराढ्य–युक्तमिति वा । तथा सुराजराज्यादरविप्रयुक्तम्–सुरा–मदिरा जरा–वार्द्धक्यं, ज्या मौर्वी चापरज्जुरित्यर्थः दरः–त्रासस्तैर्विप्रयुक्तं–विहीनम् । यद्वा सुरेभ्यः–देवेभ्यः अजाः–बल्यर्थमुपकल्पिताऽजाः स्तेषां राजौ–श्रेण्यामादरोयेषां ते तादृशा ये विप्राः–वामोपचारितया काल्यादि देव्याराधका द्विजविशेषास्तैर्युक्तं=विशिष्टम् । अथवा शोभनो राजा सुराजा तस्य राज्ये आदरः–सम्मानः अदरः–त्रासाभावो वा येषां तादृशैर्विप्रैर्युक्तम् । सुराज्ञो राज्ये–राजकर्मणि च आदरस्तेन विप्रयुक्त–विशेषेण युक्तम् इति वा । गृहाणां–प्रासादादीनां रम्यैः–मनोहरै उदयैः–प्रथम दर्शनयोग्यभवनभागैः सिंहद्वारैरित्यर्थः समुन्नतिभिर्वा विराजत्–शोभमानम् ॥ ४२ ॥

इहाऽभवद्वैभवसंभवेन,
पुरी पुरीणां गणने धुरीणा ।
निरीक्षणीया ह्यनिमेषनेत्रै–
श्चित्रैर्विचित्रैरिव मेरुचूला ॥ ४३ ॥

अन्वय.–इह वैभवसंभवेन पुरीणां गणने धुरीणा पुरी विचित्रैः चित्रैः । मेरुचूला इव अनिमेषनेत्रैः निरीक्षणीया अभवत् ॥ ४३ ॥

व्याख्या—इह–अस्मिन् स्थाने वैभवसंभवेन–वैभवानां–विभूतीनां सम्भवेन–उत्पत्त्या वैभवकारणेन वा पुरीणां–गण्यनगरीणां

गणने=संख्याने एक-द्वि-त्र्यादिसंख्यया गणनायामित्यर्थः धुरीणा= मुख्या अग्रगण्येत्यर्थः पुरी=नगरी विचित्रैः=विलक्षणै दिव्यैरित्यर्थः आश्चर्यजनकैर्वा चित्रैः आलेख्यैः हेतुभिः मेरुचूला=मेरुपर्वतशिखर-मिव अनिमेषनेत्रैः=स्पन्दनरहितलोचनैः करणैः यद्वा निःस्पन्दनेत्र-शालिभिः जनै रितिशेषः (मेरुपक्षे) अनिमेषनेत्रैः=देवैः निरीक्षणीया= मस्पृहमवलोकनयोग्याऽभवत् ॥ ४३ ॥

अर्हद्विहारा विविधोपहारा-
द्युसद्विहाराद्दुरिताऽपहाराः ।
दिवो विमाना वसुधांवतेरु,
स्तत्पूर्वदेवैरिव संगमाय ॥ ४४ ॥

(अन्वय.) (इह) द्युसद्विहाराद्-विविधोपहाराः दुरितोपहाराः अर्हद्विहाराः (शोभन्ते) तत्पूर्वदेवैः सङ्गमाय विमानाः दिवः वसुधां वतेरुः इव ॥ ४४ ॥

(व्याख्या) इह द्युसद्विहारात्=दिवि=स्वर्गे सीदन्तीतिद्युसदः= देवा स्तेषां विहारः=विहरणं श्रीजिनेन्द्रमन्दर्शनार्थं भूयोगमनागमनं तस्मात् विविधोपहाराः=विविधाः=नानाप्रकाराः उपहाराः=पूजोपक-रणानि येषु ते तथोक्ताः, दुरितापहाराः=दुष्ट मितं=गमनं नरकादि-स्थानप्राप्तिरनेनेतिदुरितं=पापं तस्याऽपहारः=अपचयो विनाश इत्यर्थो येभ्यस्ते तथोक्ताः पापनिवर्तका इत्यर्थः अर्हद्विहाराः=जिनायतनानि जिनमन्दिराणीत्यर्थः शोभन्ते इति शेषः । अत्रोत्प्रेक्षते-तत्पूर्वदेवैः= तेषां बुद्धिस्थपरामर्शकत्वात्तच्छब्दस्य विमानानां पूर्वे=प्राक्तना देवा· इदानीम्मानवास्तैः सह संगमाय=मेलनाय विमानाः=व्योमयानानि देवप्रासादा वा दिवः=स्वर्गलोकात् वसुधां=पृथिवीम् अवतेरुः=अवती· र्णवन्तः इव । एतेन तत्रत्यजनानां दिव्यत्वं तत्रत्यजिनालयानामभ्रं-कषशिखरत्व-सुरमणीयत्वादीनि च सूच्यन्ते ॥ अत्रातिशयोक्तिरुत्प्रे-क्षाचालंकृती ॥ ४४ ॥

चैत्येषु नित्याऽभयदातुरर्चा,
प्रसङ्गतोऽनङ्गतयाऽभिधानात् ।
श्मशानवेश्मान मवेत्यरुद्रं,
स्मरोऽभियातत्पुरमध्युवास ॥ ४५ ॥

(अन्वयः) स्मरः चैत्येषु नित्याभयदातुः अर्चाप्रसङ्गतः अनङ्गतयाऽभिधानात् रुद्रं श्मशानवेश्मानं मवेत्य चाभियातत्पुरमध्युवास ॥ ४५ ॥

(व्याख्या) स्मरः=कन्दर्पः चैत्ये=जिनायतनेषु नित्याभयदातुः=नित्यं=शाश्वतम् अभयं=वीशिष्टमात्मनः स्वास्थ्यं निःश्रेयसधर्मनिबन्धनभूमिकाभूतं गुणप्रकर्षादचिन्त्यशक्तियुक्तत्वात् सर्वथा परार्थकारित्वात् ददातीति नित्याभयदाता तस्य तथोक्तस्य श्रीजिनेन्द्रभगवतः अर्चाप्रसङ्गतः=पूजाप्रस्तावे अनङ्गतया=शरीररहिततया कामस्य अभिधानात्=आख्यानात् पूजाद्युपक्रमे'ऽनङ्गजिदि'-त्यादिजिनेन्द्रनामस्मरणप्रसङ्गेन कामस्याऽङ्गरहितत्वेनाऽनुकम्पनीयतयाऽभयप्रदत्वेनाम्नातस्य श्रीजिनेशस्याभयदानपात्रतयानुग्रहणात्, रुद्रं=स्वप्राक्तनशत्रुभूतशिवमपि श्मशानवेश्मानं=श्मशानं=शवदाहस्थानमेव वेश्म=वासस्थानं यस्य स तं तथोक्तं श्मशानवासिनम् अवेत्य=विदित्वा चाऽभिया=भयरहिततया तत्पुरं=व्यावर्ण्यमानस्वरूपं नगरम् अध्युवास=अध्युषितवान् ॥ ४५ ॥

सूनोरनूनोदयमत्र धैर्याद्,
रमाऽवधार्येव दधौ स्थिरत्वम् ।
चालश्चलत्वं विजहौ महौजा-
स्तत्किमया धार्यमितिह्रियेव ॥ ४६ ॥

(अन्वयः) रमा सूनोः अत्र अनूनोदयम् अवधार्येव(स्थिरत्वं दधौ)महौजाः

बालः चलत्वं विजहौ तत् मया किं धार्यमितिह्रियेव स्थिरत्वं दधौ ॥ ४६ ॥

(व्याख्या) रमा=लक्ष्मीः सूनोः=स्वपुत्रस्य कामस्य अत्र नगरे अनूनोदयं=बहुतराऽभिवृद्धिम् अवधार्य=निश्चित्य इव धैर्यात्=अव्याकुलत्वात् स्थिरत्वं=निश्चलत्वं दधौ=धृतवती. अत्रोत्प्रेक्षान्तरं दर्शयति बालः=मत्पुत्रः कामः महौजाः=महाबलशाली प्रकृतिचपलश्च सन्नपि यदा चलत्वं=चाञ्चल्यं विजहौ=परितत्याज इतिहेतोः तत्=चलत्वं मया=लक्ष्म्या किं धार्यं=धर्त्तव्यं तथा तु बालादपि न्यूनाभवेयमिति ह्रिया=लज्जया इव स्थिरत्वं दधौ इति सम्बन्धः ॥उत्प्रेक्षालङ्कारः॥४६

अस्या व्यवस्येयमहं वयस्यां,
द्यामेव पद्यां नयसंशयाब्धौ ।
पतिः सुधावज्जयवाहिनीशः,
श्रेयान् निवासः सुमनोविलासः ॥४७॥

(अन्वयः) नयसंशयाब्धौ (निमग्नः) अहम् अस्याः वयस्यां द्याम् एव पद्यां व्यवस्येयम् । पतिः सुधावज्जयवाहिनीशः निवासः श्रेयान् सुमनोविलासः ।४७।

(व्याख्या) स्वर्गसादृश्यं दर्शयति अस्या इति । नयसंशयाब्धौ=नीति विषयक शङ्कासागरे निमग्न इति शेषः अहं=मेघविजयाऽभिधः कविः अस्याः=नगर्याः वयस्यां=सखीं सदृशीमित्यर्थः, द्यां=स्वर्गपुरीम् एव पद्या=मार्गभूतां व्यवस्येयं=निर्धारयेयम् । अस्यां नगर्यां कीदृशी नीतिरितिविचारपारावारनिमग्नोऽहं स्वर्गं चेतसि निधाय स्वर्गसदृशी नीतिरितिनिश्चित्य शङ्काकलङ्कपङ्कसङ्करं दूरयामीतिभावः । साम्यमुद्भावयति पतिः=अधिपः प्रस्तुतनगर-स्वर्लोकयोः, सुधावज्जयवाहिनीशः-प्रथमपक्षे-सुधावतां ससत्वरं गच्छतां या जयवाहिनी=जयं वहतीत्येवंशीला सेना तस्या ईशः=शासकः, द्वितीयपक्षे-सुधावतां=सुधा=अमृतं वद्वतां=देवानां जयवाहिनीशः इति पूर्व-

यत् पुनरनयोः नगर्योः निवासः=जातावेकवचनम् वसतिसंहतिः श्रेयान्=अतिशयेन प्रशस्यः, कथमित्याह यतः सुमनोविलासः=सुमनसां–प्रशस्तचित्तानां जनानां विलासाः–आनन्दा यत्र सः यद्वा सुमनोभिः–पुष्पैः विलासोयत्रसः अथवा सुमनसां–कोविदानां विलासाः–विनोदा यत्रसः तथोक्तः। पक्षे–सुमनसां–देवानां विलासोयत्रस इत्यर्थः। सुमनाः पुष्प-मालत्यो स्त्रिदशे कोविदेऽपि चेति मोदिनी श्लेपः, उपमाध्वनिः।

लक्षे जनोऽस्मिन् कृतहस्त एव,
लक्षे पुनर्नो मनसा दधाति।
स्वं मन्यते दानविधौ परार्थं,
परार्थ सङ्गे मनुते ह्यनर्थम् ॥ ४८ ॥

(अन्वयः) अस्मिन् जनः लक्षे कृतहस्त एव पुनः लक्षे मनसा नो दधाति। दानविधौ स्वं परार्थं मन्यते परार्थसङ्गे हि अनर्थं मनुते ॥ ४८ ॥

(व्याख्या) तत्रत्यजनानां शौर्यौ-दार्यादिगुणशालितां दर्शयति। अस्मिन्=प्रस्तुतनगरे जनः=लोकः लक्षे=लक्ष्ये तत्साधने इत्यर्थः कृतहस्तः=कृतः=अभ्यस्तो हस्तो यस्य स तथोक्तः सुशिक्षितशरविद्य इत्यर्थः एव पुनः=अन्यच्च लक्षं=दशायुतसंख्यां रूप्यक-मुद्रादीनां मनसा=चेतसाऽपि नो दधाति=चिन्तयतीत्यर्थः अतिसमृद्धिशालित्वात् तेषां मनसि लक्षं न किञ्चिदितिभावः। दान विधौ=दानकर्मणि प्रवृत्तः स्वं=आत्मीयं सर्ववस्तु जातं, यद्वा स्वं=धनम् आत्मानं वा परार्थं=परोपकारफलकं मन्यते। परार्थसङ्गे=परार्थस्य=परकीयधनस्य परकीयवस्तुनो वा सङ्गे=सम्बन्धे अन्यदीयधनप्राप्तावित्यर्थः स्वं=धनम् आत्मानं वा अनर्थम्=अफलम् अनर्थकरं वा मनुते=बुध्यते। विरोधाभासोऽलङ्कारः। लक्षं लक्ष्यं शरव्यं च इत्यमरः ॥ ४८ ॥

न वामनस्य प्रकृति र्द्विधापि,
न संनिभं कोऽपि विभर्तिरूपम् ।
नालीकनाम्नोऽस्त्रवरे प्रयोगो,
भोगे च नालीकमनाजनोऽस्याम् ॥४९॥

(अन्वयः) अस्यां कोऽपि द्विधापि आमनस्यप्रकृतिर्न (अस्ति), कोऽपि वामनस्य संनिभं रूपं न बिभर्त्ति । अस्त्रवरे नालीकनाम्नः प्रयोगः, भोगे च अलीकमना न (अस्ति) ॥ ४९ ॥

(व्याख्या) अस्यां=नगर्यां कोऽपिजनः द्विधापि=मनसा वाचाऽपि आमनस्यप्रकृतिः=आमनस्यं=दुःखं तन्मयी प्रकृतिः=स्वभावो यस्य स तथोक्तः नवा=नैव अस्तीति शेषः, किञ्च कोऽपि वामनस्य=खर्वस्य संनिभं=सदृशं रूपम्=आकृतिं न बिभर्त्ति=धारयति । अस्त्रवरे=श्रेष्ठेऽस्त्रविशेषे नालीकनाम्नः=नालीक इत्येतच्छब्दस्य प्रयोगः लौहमयाऽन्तःसच्छिद्रशरविशेष एव नालीकशब्दस्य व्यवहार इत्यर्थः किन्तु भोगे=सुखे भोजनादौ अलीकमनाः=असत्यचित्तः निष्फलचित्तो वा जनो न अस्तीत्यध्याहृतक्रियासम्बन्धः । परिसङ्ख्याऽलङ्कारः॥४९

कलाविलासा मनसाऽवधार्याः,
कला विलाशा न कदापि कार्या ।
सभाजनैः स्वैरसभाजनै र्वा,
सदा नभोगै रिवदानभोगैः ॥ ५० ॥

(अन्वय) (तत्रत्यजनानां) कलाविलासा मनसाऽवधार्याः, सभाजनैः सभाजनैः वा इव सभाजनैः, नभोगैरिव, सभाजनैः स्वैरसभाजनैः सदानभोगैः (तत्रत्यानां) कलाविलाशा न कार्या (आसीत्) ॥५० ॥

(व्याख्या) तत्रत्यानां जनानां कलाविलासाः=कला=नृत्यगीत वादित्रादिचतुःषष्टिप्रकाराः विभूतयो वा तासु ताभिर्वा विलासाः=

विनोदाः यद्वा कलाऽनुशीलनजनितदीप्तयः मनसा=चेतसा अवधार्याः=अवधारयितुं=निश्चेतुं शक्याः नतु वाचाऽपि तेषामवाग्गोचरकलाकलापशालित्वादितिभावः। कैः सहेत्याह रसभाजनैः=विभावा-ऽनुभाव-व्यभिचारिभावव्यङ्ग्यशमादिस्थायिभावकशान्तादिरसोद्बोधपात्रीभूतैः सभाजनैः=सभ्यैः वा=अथवा स्वैः=आत्मीयैः ज्ञातिभिरितियावत्, कैः करणैः? रसभाजनैः=मधुरादिरसान्वितभोजनपात्रैः। कैः सहेव? नभोगैः=नभश्चरैः विद्याधरादिभिः सहेव किञ्च सभाजनैः=सपात्रैः स्वैरसभाजनैः=स्वैराणां=स्वच्छन्दानां स्वेच्छाचारिणामित्यर्थः 'स्वैरः स्वच्छन्द-मन्दयोः' इत्यमरः सभा=समुदायस्तत्सम्बन्धिजनैः, सदा नभोगैः=वस्त्रादीनां दानैः=सत्पात्रे प्रतिपादनैः भोगैः=फलादीनामुपभोगैश्च सहितैः। किञ्च तद्देशीयजनानां कला विलाशा=कला=मूलविवृद्धिः दत्तधनस्याधिकलभ्यांश इत्यर्थ स्तयाऽऽविलस्य=मलिनस्य धनादेः आशा=तृष्णा न कार्या=करणीया आसीदितिशेषः। विरोधाभासोऽलङ्कारः। कला स्यान्मूलविवृद्धौ शिल्पादावंशमात्रके इतिमेदिनी ॥ ५० ॥

नासत्य लक्ष्मीर्वपुषाऽतिपुष्ण-
न्नाऽसत्यलक्ष्मीं धरते स्वरूपात्।
सत्यागमार्थं श्रयते यतेभ्यः,
सत्यागमार्थं लभते फलं सः ॥५१॥

(अन्वयः) सः नासत्यलक्ष्मीं वपुषा अतिपुष्णन् असत्यलक्ष्मीं स्वरूपात् न धरते यतेभ्यः सत्यागमार्थं श्रयते (अतएव) सत्यागमार्थं फलं लभते ॥५१॥

(व्याख्या) तेजोविशेषादिकं दर्शयति—नासत्येति। सः=वर्णनीयतया प्रक्रान्तो जनः (अत एवयच्छब्दाऽनपेक्षा'प्रक्रान्त प्रसिद्धाऽनुभूतार्थकस्तच्छब्दो यच्छब्दोपादानं नापेक्षते इत्युक्तेः) नामत्य-

लक्ष्मीं=नासत्ययोः=अश्विनीकुमारयो. लक्ष्मी=शोभां वपुषा=शरीरेण अतिपुष्णन्=विशेषेण धारयन् सन् असत्यलक्ष्मीं=कृत्रिमशोभाम् आहार्यशोभामित्यर्थः यद्वा अन्यायोपार्जित धनं 'लक्ष्मीः सम्पत्तिशोभयोः । ऋद्ध्यौषधौ च पद्मायां' मितिमेदिनी । स्वरूपात्=स्वभावाद् एव न धरते=गृह्णाति । 'स्वरूप च स्वभावश्चे'-त्यमरः । किञ्च यतेभ्यः=संयमिभ्यः सकाशात् सत्यागमार्थं=सत्यानाम्=अवितथाना त्रिकालाबाधितस्वरूपाणामित्यर्थः अव्यभिचरितार्थप्रतिपादकानामिति यावत् आगमाना=सिद्धान्तानाम् अर्थम्=अभिधेयं यद्वा सत्याऽऽगमाऽर्थम्=सत्योपदेशरूपं वस्तु श्रयते=गृह्णाति । अतएव सत्यागं त्यागेन=दानेन सहितम् आर्थम्=अर्थ (धन) सम्बन्धि फलं=भोगरूपम् यद्वा सत्य.=नश्वनाराहितत्वान्न्याय्यः आगम.=आयो यस्यतादृशम् अर्थं=धनम् तद्रूपं फलं=लाभम् अथवा सत्यागा=त्यागेन=दानेन सहिता चासौ मा=लक्ष्मीः सम्पद्रूपा तदर्थं फलं=कार्यं, प्रयोजनं लाभं वा लभते=प्राप्नोति ॥ अर्थस्य तावत् दान-भोग नाशरूपास्तिस्रो गतयो(ऽवस्थाः) भवन्ति तत्र च दान भोगावेव तत्रत्यानामास्ता मिति भावः । उक्तमन्यत्र-'दानं भोगो नाश स्तिस्रो गतयो भवन्ति वित्तस्य । यो न ददाति न भुङ्क्ते तस्य तृतीया गतिर्भवति' इति । यमकम् श्लेषः काव्यलिङ्गम् उपमा विरोधाभासः, अतिशयोक्तिश्चाऽलङ्कारा. । फलं जातीफलेऽस्ये हेतुत्थे व्युष्टि लाभयोः इतिमेदिनी । अर्थोऽभिधेय रै वस्तु प्रयोजन निवृत्तिषु इत्यमरः ॥ ५१ ॥

नगोरवं ध्यायति विप्रमुक्तं,
नगोरवं ध्यायति विप्रमुक्तम् ।
पुनर्नवाचारभसा नवार्थाऽ-
पुनर्नवाचारभसानवार्थाः ॥ ५२ ॥

(अन्वयः) विप्रमुक्तं गौरवं न ध्यायति विप्रम् उक्तं गौरवं ध्यायति न? किन्तु ध्यायति पुनः रभसावाचानवार्थाः पुनर्न वाचा रभसा अनवार्था अपुनर्न ॥५२॥

(व्याख्या) विप्रमुक्तं त्यक्तं वस्तु प्रति गौरवं महार्घत्वं नध्यायति न चिन्तयति प्रदत्तवस्तुनो महत्वादिचिन्तां न करोतीत्यर्थः वि-प्रम् विविधं प्राति पूरयतीति विप्रम् शास्त्रम् उक्तम् गुर्वादिजनोपदिष्टम् गौरवम् तदीयमहत्त्वम् न ध्यायतीति न किन्तु ध्यायत्येव, पुनः रभसापौर्वापर्याविचारेण हठादित्यर्थः वाचा वाक्येन नवार्थाः नवीनार्थाः न ध्याय्यन्ते न विचार्यन्ते वाचायाः रभसा औत्सुक्येन अनवार्थाः अभिधेयार्थाः अपुनर्न किन्तु पुनः पुनः तदीयार्था विचारिताः ॥ यमकालंकारः ॥ ५२ ॥

नये प्रसक्ता विनयेऽनुरक्ता,
जयेन तद्वद्विजयेन पूर्णा ।
नवा भयाप्ता बहुशोभयाऽऽप्ताः,
अविक्रिया स्तेऽतिथिसत्क्रियाङ्काः ॥५३

(अन्वयः) ते नये प्रसक्ताः, विनयेऽनुरक्ताः, जयेन तद्वद्विजयेन पूर्णाः, नवा भयाप्ताः, बहुशोभयाऽऽप्ताः, अविक्रिया अतिथिसत्क्रियाङ्काः (आसन्)

(व्याख्या) ते–तत्रत्यजनाः नये–नीतौ, शुक्राचार्यादिप्रणीत नीतिशास्त्रे वा न्याय्ये वा प्रसक्ताः–आसक्तिमन्तः, विनये–नम्रतायां वन्दनीय जनप्रणामे वा शिक्षायां वा विनीतजने वा जितेन्द्रिये वा अनुरक्ताः–अनुरागिणः। जयेन–शत्रूणामभिभावनेन तद्वत्–तथा विजयेन–परिभवपूर्वकग्रहणेन च पूर्णाः–सहिताः अतिविक्रान्ता इत्यर्थः। नवा–नव भयाप्ताः–भयैर्ग्रस्ताः यद्वा नवा भयाप्ता इत्येकम्पदम् नवेन–जिनेन्द्रादिस्तवेन अभयाः–निर्भीकाश्च ते आप्ताः–सत्याः विश्वस्ता वा रागद्वेषादिवर्जिता वा यथार्थज्ञातारोवा च ते तथोक्ताः। यद्वा नवा-

ऽभयाऽऽप्ताः—नवेन—रक्तपुनर्नवया तत्सेवनेनेत्यर्थः, अभयं—शोथादिरोगभयराहित्यम् आप्ताः प्राप्तवन्तः,आप्तं लब्धं यैरिति वा ते तथोक्ताः। बहुशोभया—सातिशयदीप्त्या आप्ताः—व्याप्ता यद्वा बहुशः—अनेकशः असकृदित्यर्थः अभयं—निर्भीकत्वम् अभयदानमित्यर्थः आप्तं—लब्धं येभ्यस्ते तथोक्ताः लोकेभ्योऽभयदायिन इत्यर्थः । बहुशः—बहुलया भया—प्रभया आप्ता इति वा । अविक्रियाः—विकाररहिताः, यद्वा अविः= मेषस्तस्येव क्रिया—कर्म्म सङ्घीभावादिकं येषां ते तथोक्ताः ।

अतिथिसत्क्रियाङ्गाः—अतिथीनां—प्राघूर्णिकानां साधूनां सत्क्रियायै—सत्काराय सम्माननायेत्यर्थः अङ्गं—शरीरं येषां ते तथोक्ताः यद्वा अतिथिसत्क्रियायाम्=अतिथिपूजायाम् अङ्गं—मनो येषां ते तथोक्ताः अथवा अतिथिसत्क्रियाया अङ्गानि—उपायाः साधनानीत्यर्थः सामग्री-इति यावत् येषान्ते तथोक्ताः । यद्वा 'तिथिसत्क्रियाङ्गाः' इतिच्छेदस्तत्र तिथीनां—तीर्थंकर जन्मादि धर्म्मपर्वदिवसानां सत्क्रियायै=सम्माननार्थम् अङ्गं येषां ते तथोक्ताः इत्यर्थः । विनया तु बलायां स्त्री शिक्षायां प्रणतौ पुमान् इति मेदिनी । अनुप्रासः ॥ ५३ ॥

अवनिपतिरिहासीद् विश्वसेनोऽश्वसेनोऽ-

प्यथ दशरथ नाम्ना यः सनाभिः सुरेशः ।

बलिविजयिसमुद्रः प्रौढसिद्धार्थसंज्ञः,

प्रसृतमरुणतेजस्तस्य भूकश्यपस्य ॥ ५४ ॥

(अन्वय) इह विश्वसेन अवनिपतिः आसीत् य, अश्वसेन, दशरथनामा सुरेश सनाभिः बलिविजयिसमुद्र प्रौढसिद्धार्थसंज्ञ तस्य भूकश्यपस्य अरुण तेज (सर्वत्र) प्रसृतम् (आसीत् ॥ द्वि०पक्ष—अश्वसेन अवनिपतिरासीत् विश्व सेन दशरथनामा शेष पूर्ववत् ॥ तृ०प०—'दशरथनामाऽवनिपतिरासीत की विश्वसेन अश्वसेन शेष पू० ॥ च०प०—य नाभि अवनिपतिरासीत् ॥

विश्वसेन अश्वसेन दशरथनामा सुरेश शे१० ॥ प०पक्षे–बलिविजयि समुद्र (विनय) अवनिपतिरासीत् शेष पू० ॥ प प०–प्रौढ 'सिद्धार्थ' सञ्ज अव निपतिरासीत् शे० पूर्ववत् ॥ सप्तमपक्षे–तस्य भूकश्यपस्य प्रसृतम् 'अरुणतेज'= वसुदेव अवनिपतिरासीत् शेष पूर्ववदन्वयशोधनम् ॥ ५४ ॥

व्याख्या–नगराणि प्रदर्श्य सप्तार्थकेन पद्येन भूमिपालान् दर्शयति–अवनिपतिरिति। इह=अस्मिन् नगरे विश्वसेनः= विश्वसेन' इत्येतन्नामकः अवनिपतिः=राजा आसीत्=अभूत्। कीदृशः स इत्याह–अश्वसेनः=अश्वाना=जात्यतुरङ्गमाणा सेना यस्य स तथोक्तः। दशरथनामा=दशसु दिक्षु गतो रथ =कीर्तिरूपं वाहनं यस्य तद् दशरथ तादृशं नाम=अभिधानं यस्य स तथोक्तः कीर्त्यारूढं तदभिधानं दशदिक्षु व्याप्नोतीत्यर्थः। दशरथस्येव सुप्रसिद्ध नाम यस्य स इति वा, सुरेशः=सुरान्=देवान् सुरेषु वा ईष्टे=प्रभवतीति सुरेट्=इन्द्रस्तस्य सनाभिः=ऐश्वर्यादिना सदृशः, बलिविजयिसमुद्रः=बलिनः=पराक्रमिणो विजयत तच्छीलः बलिविजयी स चासौ समुद्रः=सह मुद्रया= प्रत्ययकारिण्या राजकीयत्वप्रमापक चिह्न विशेषेण, यद्वा अङ्गुलिधार्यमुद्राङ्कनयुक्ताऽङ्गुलीयकेन, अथवा सह मुद्राभिः=स्वर्ण-रौप्यादितद्राभिः कोटीश्वरत्वात्. च इति स तथोक्त', प्रौढसिद्धार्थ संज्ञः= प्रौढा=प्रवृद्धा प्रगल्भा वा निपुणा वा सिद्धार्था=सम्पादितोद्देश्या च संज्ञा=बुद्धिर्यस्य स तथोक्तः। 'अवनिपति रासीदि'–ति सम्पूर्णवाक्यम्। तस्य=निरुक्तस्य अवनिपतेः, भूकश्यपस्य=भुवि=भूतले कश्यप इव प्रजापतित्वात् इति भूकश्यपस्यपस्तस्य, अरुणतेजः= सूर्यवत्प्रतापः सर्वत्र प्रसृतं=व्याप्तम् आसीदिति शेषः।

द्वितीयपक्षे–'अश्वसेन' इति विशेष्यम् 'विश्वसेन' इत्यस्य विश्वा=सम्पूर्णा सेना=चमूः यस्य स इत्यर्थः। शेषं पूर्ववत्।

तृतीयपक्षे–'दशरथनामा' इति विशेष्यपदम् तस्य दशरथ इति

नाम यस्य स इत्यर्थः शेषं पूर्ववत्।

चतुर्थपक्षे-'नाभिः' इति विशेष्यम् 'यः, सः' इत्यनयोश्च 'यः नाभिः=तन्नामा अवनिपतिरासीत् स विश्वसेनः अश्वसेन इत्यादिरूप इत्येवं रीत्याऽन्वययोजना कर्त्तव्या। 'सुरेश' इत्यस्य इन्द्र सदृश इत्यर्थश्च बोद्धव्यः ॥

पञ्चमे-बलिविजयी चासौ समुद्रः=नामैक देशग्रहणेन नाम ग्रहणात् 'समुद्रविजयः' इत्येतन्नामकश्चेति स बलिविजयिसमुद्रः। शेषं पूर्ववत्।

षष्ठपक्षे सिद्धार्थ इति संज्ञा=नाम यस्य स सिद्धार्थ संज्ञः प्रौढश्चासौ सिद्धार्थसंज्ञश्चेति स प्रौढ सिद्धार्थसंज्ञः अवनिपतिरासीदित्येवमन्वयः कार्यः। शे० पू०

सप्तमे-'अरुणतेज' इति विशेष्यपदम् तस्य च तस्य=प्रसिद्धस्य भूकश्यपस्य=भुवि स्वांशेनावतीर्णस्य कश्यपस्य=तदाख्यप्रजापतेः प्रसृतं=विस्तीर्णम् 'अरुणतेजः' सूर्यवद्दीप्रतेजोरूपः वसुदेव इत्यर्थः कश्यपतेज एव वसुदेव रूपेण परिणम्याऽवतीर्णमिति लोकप्रसिद्धिः एवंप्रकारेणार्थः कार्यः। अत्रक्रमेण शान्तिनाथ-पार्श्वनाथ-रामचन्द्रा-ऽऽदिनाथ-नेमिनाथ-वीरप्रभु-कृष्णवासुदेवानां पितरः (विश्वसेनः, अश्वसेनः, दशरथः, नाभिः, समुद्रविजयः, सिद्धार्थः, वसुदेव इतिनामानः) प्रदर्शिताः ॥ ५४ ॥

सनाभिभूतेः सुहृदुत्तमानां,
सनाऽभिभूते-र्द्विषदुद्यमानाम्।
सामान्यमासी-दुभयादरेण,
नृपे महींशासति तां चिरेण ॥ ५५ ॥

(अन्वय) नृपे ता महीं शासात (सति) सनाभिभूते सुहृदुत्तमाना, सनाऽभिभूते द्विपदुद्यमाना (च) सामान्यमासीद् उभयादरेण ॥ ५५ ॥

व्याख्या–सामादिराजनीतिमाह–सनाभीति। नृपे=विश्वसेन प्रभृतौ राज्ञि तां=पूर्वोक्तरूपा महीं=पृथ्वीं शासति सति=राज्यं पालयति सति, सनाभिभूतेः=सनाभिः=ज्ञातिस्तस्य भूतिः=भवनं तस्मात् तथा च ज्ञातिभवनात् बान्धववदनुकूलीभावात् सुहृदुत्तमानां=स्वविषयानन्तरितनृपभिन्नमहीपतिनाम् तथा सना=सदा अभिभूतेः=पराभवनात् द्विपदुद्यमाना=द्विपतां=शत्रूणा=स्वविषयाऽनन्तरितनृपाणामुद्यमानां=प्रयत्नाना च चिरेण सामान्यं=साधारणं तुल्यरूपतेत्यर्थः उभयत्र सनाभिभूतित्वस्य सत्वात् आसीत्। अत एव उभयादरेण=उभयैः=शत्रुभिः भयात्कृतेन मित्रैश्च स्नेहात्कृतेन आदरेण=सम्माननेन, उभयेषामादरेण वा यद्वा उभयेषु=शत्रुषु मित्रेषु च आदरेण=शत्रुपक्षे आ=समन्तात् दरेण=भयेन तज्जननेनेतिभावः मित्रपक्षे सत्कारकरणेन नृपे महीशासतीत्यनेन सम्बन्धः। तुल्ययोगीता श्लेपः विरोधाभासश्चालङ्काराः। ॥ ५५ ॥

श्रीविश्वसेनाऽवनिपं तमाप्य–
ज्योत्स्नेव तापं सहसाऽपजह्रे ॥
चलाचलानां च खलानलानां,
सुधाऽभिपिक्ता वसुधातदाऽभृत् ॥५६॥

अन्वय —तम् अवनिपम् आप्यश्रीविश्वसेना ज्योत्स्नेव चलाचलाना खलानलाना ताप सहसाऽपजह्र वसुधाऽपि तदासुधाभिषिक्ताऽभूत् ॥ ५६ ॥

(व्याख्या) तं=पूर्वोक्तं विश्वसेन प्रभृतिम् अवनिपं=राजानम् आप्य=लब्ध्वा श्रीविश्वसेना=श्रिया=शोभयायुक्ता विश्वा=समग्रा सेना ज्योत्स्नेव=चन्द्रिकेव चलाचलानाम्=अत्यन्तचञ्चलस्वभावानां

खलानलानां=खलाः=दुर्जनाः अनलाः=अग्नय इव खला एव अनला इति वा खलानलास्तेषां तज्जनितमित्यर्थः तापं=सन्तापं दौर्जन्यजनितोपद्रवमित्यर्थः सहसा=झटिति अपजह्रे=अपहृतवती । वसुधा=पृथ्वी अपि तदा=तस्मिन् काले राजप्रभाववशप्रशान्तदुर्जनादिजनिताऽशेषाऽशातजात समये इत्यर्थः सुधाऽभिषिक्ता=सुधा=अमृतमिव सुधा=जलं तया अमृतोपमजलेनेत्यर्थः अभिषिक्ता=जातसेका अभूत् ॥ उपमाऽतिशयोक्तिश्चालंकारौ ॥ ५६ ॥

अभीतिनीतिः प्रसृताऽऽसमुद्र-
प्राजाधिपत्याद् युगपत् प्रवृत्त्या ॥
ततः समग्रं वसुदेवतेजो-
न्यक्कृत्यरेजे रजसाऽञ्जसैव ॥ ५७ ॥

अन्वय —ततः आसमुद्रप्राजाधिपत्यात् युगपत् प्रवृत्त्या (च) प्रसृता अभीतिनीतिः समग्र वसुदेव तेज अञ्जसा रजसान्यक्कृत्य रेजे ॥ ५७ ॥

व्याख्या—ततः=तदनन्तरम् आसमुद्रप्राजाधिपत्यात्=समुद्रावधिशासनकरणात् युगपत्=एकदैव प्रवृत्त्या=आज्ञादिप्रचारेण च प्रसृता=विस्तृता व्याप्तेत्यर्थः अभीतिनीतिः=कस्मा अपि भयं न देयमिति मयि दुर्विनीतानां शासितरि केनापि न भेतव्यमिति वाऽभयदानविषयिणी राजनीतिः समग्रं=सम्पूर्णं वसुदेवतेजः=वसूनां=धनानां रत्नानां वा देवाः=अधिपाः ' वसुना दीव्यन्तीति व्युत्पत्त्या ' धनिन इत्यर्थः तेषां तेजः=दुर्विध विविधबाधासंबाधजनकः प्रतापः तत् कर्म्मभूतं रजसा=राजसभावेन धूलीरूपेण वान्यक्कृत्य तिरस्कृत्य अधःकृत्येति वा अञ्जसा=झटिति रेजे=दिदीपे ॥ धनेरत्नेवसुस्मृतम् इत्यमर इति कोषः ॥ ५७ ॥

(व्याख्या)–यथार्थपृथ्वीपतित्वं प्रकटयति–तमीति । तमीश्वराभं=तमी=रात्रिस्तस्या ईश्वरः=पतिः तमीश्वरः=चन्द्रस्तस्येव आभा=छविर्यस्य स तं तथोक्तं चन्द्रसदृशमित्यर्थः तं=पूर्वोक्तम् विश्वसेन प्रभृतिम् ईश्वरं=पतिं राजानमित्यर्थः आप्य=लब्ध्वा धरा=पृथ्वी समर्थ सिद्धार्थ कृतार्थभावात्=द्वन्द्वान्ते श्रूयमाणं पदं प्रत्येकमभिसम्बध्यते इति न्यायादिहत्य भाव शब्दस्य प्रत्येकमन्वयः तथा च समर्थभावात्=कार्यसम्पादने समर्थत्वात्=शक्तिशालिजनाढ्यत्वादिति भावः यद्वा सर्वविधवस्तुप्रकटने क्षमत्वात् सिद्धार्थभावात्=लोकानां सर्वार्थसाधकत्वात्, कृतार्थभावात्=धान्यादिनिष्पादनेन चरितार्थत्वात्=सफलत्वात् इत्यर्थो बोद्धव्यः । कराग्रहात्=करस्य=राजग्राह्यभागस्य अग्रहात्=अनादानात् ग्रहणाभावादित्यर्थः, तथा स्वयम्भूदयनात्=स्वयम्भूः=विष्णुः तद्वद् दयनात्=रक्षणात् यद्वा स्वयम्=आत्मना ननु कर्मकरादिद्वारा भुवः=स्थानस्य आगन्तुकेभ्यः दयनात्=दानात् सत्कृत्यप्रतिपादनात्, अथवा स्वयं नत्वन्यद्वारैव भुवः=पृथिव्याः दयनात्=पालनात् प्रत्यवेक्षणादित्यर्थः, अतएव तुष्टमनाः=प्रसन्नचित्ताः प्रियेव=प्रीत्यावहेव हृद्यैवेत्यर्थः लोकानां नरपतेश्च, यद्वा प्रिया=भार्या तद्रूपेत्यर्थः एव. प्रियेवेति पाठे प्रियेव=भार्येव आसीत् । वनिताऽपि यथा शशाङ्ककान्तं कान्तमासाद्य समर्थ सिद्धार्थ–कृतार्थभावात्=समर्थ–भावात्=सुरतादिक्षमत्वात् सिद्धार्थभावात्=सम्पन्नमनोरथत्वात् कृतार्थभावात् सदपत्यजननादिनाकृतकृत्यत्वात्, कराग्रहात्=योग्यपुरुषकर्तृकपाणिग्रहणात् स्वयम्भूदयानात्=स्वयम्भुवः=कामदेवस्य तद्विकारस्येतिभावः उदयनात्=आविर्भावात् यद्वा स्वयम्भुवोः=स्तनयोः उदयनात्=उत्थानात् यौवनोद्भेदादित्यर्थः तुष्टमनाः=सदाऽऽह्लादितान्तःकरणा पत्युः प्रिया=प्रीतिजनिका भवति. तथेयंधरापी-

त्यर्थः उपमानकक्षायामित्याशयः सविता=प्रजोत्पादयिता अजः=ब्रह्मा एव यद्वा सविता=सूर्यः तेजस्वित्वेन अजः=विष्णुः स्थिति (लोकमर्यादा) कारित्वेन, शिवश्च दुष्टसंहारकत्वेन एव नान्यः कश्चन यस्योपमानभूत इति भावः तस्य राज्ञः आधिपत्ये=प्रभुत्वे स्वामित्वे इत्यर्थः राजत्वकाल इति यावत् जगत्यां=पृथिव्यां लोकेषु सुषमा=शिष्टाऽनुग्रहदुष्टनिग्रहादिविधिविधानजनितसार्वात्रिकशान्तिसमुद्भूतपरमशोभा 'सुषमा परमाशोभा' इत्यमरः। यद्वा सुषमा=शोभना स्थितिरितिशेषः, अथवा सुषमा=समा=तुल्यरूपा वृत्ति रितिशेषः आसीदितिक्रियाध्याहारः, अत एव कस्यापि लोकस्य=जनस्य दुःखलेशः=आध्यात्मिकाऽऽधिदैविका-ऽऽधिभौतिकादिदुःखमात्राऽपि न अभूत्। अन्योन्ययुधायुधानाम्=अन्योन्यं=परस्परं युत्=युद्धम् आयुधानि=प्रहरणानि शस्त्राणीत्यर्थः तेषां तज्जनित इत्यर्थः क्लेशः=पीडा कुतः? नैव सम्भवतीत्यर्थः न्यायपरायणे प्रजारक्षणप्रवणान्तःकरणे धरणीरमणे राजसिंहासनमासीने प्रजानामकुतोभयत्वं राष्ट्रस्य च समस्तेति भीतिराहित्यमनुपमसुषमासाहित्यं च सर्वथैव सम्भावनाऽऽस्पदीभावमधिगच्छतीति नीतिवेदिनाम्मतिः। उपमा, काव्यलिङ्गम् अर्थापत्तिश्चाऽलङ्कृतयः॥अजश्छागे हरि-ब्रह्मविधु-स्मर-नृपे हरे इति मेदिनी ॥५९॥

तमीश्वरं प्राप्य तमीश्वराभं
समर्थ सिद्धार्थ कृतार्थभावात्।
कराग्रहात् तुष्टमनाधराऽऽसीत्
स्वयंस्वयम्भूदयनात्प्रियेव ॥ ६० ॥

(अन्वयः) तमीश्वराभं तम् ईश्वरं प्राप्य धरा समर्थ सिद्धार्थ कृतार्थभावात् कराग्रहात् स्वयम्भूदयनात् तुष्टमनाः प्रियेव (प्रियेव) आसीत् ॥

श्रीकाशिराजस्य महाश्वसेना-
ख्याने श्रुतेऽप्यागमनिश्चयेन ॥
क्षमापि दिङ्मोहविनाशनेन,
पराऽभिघाताय विनाशनेन ॥ ५८ ॥

अन्वय —श्रीकाशिराजस्य महाश्वसेनाख्याने श्रुतेऽपि पराभिघाताय आगमनिश्चयेन अशनेऽपि क्षमा न आपि (शत्रुवर्गे)दिङ्मोहविनाशनेन विना ॥५८॥

व्याख्या-श्रीकाशिराजस्य=श्रिया=राजलक्ष्म्या काशते=दीप्यते तच्छीलः श्रीकाशी स चासौ राजा च इति श्रीकाशिराजस्तस्य तथोक्तस्य महाश्वसेनाख्याने=महत्या स्तुरङ्गमसेनाया आख्याने=प्रसिद्धविवृत्तवर्णने श्रुतेऽपि=श्रवणगोचरी कृतेऽपि पराभिघाताय=शत्रूणां दलनाय आगमनिश्चयेन=इयमागच्छति सेना इत्येवं स्वप्रतीपक्षितिपसेनोपस्थितिनिर्णयेन अशनेऽपि=भोजनेऽपि क्षमा=शान्तिः चित्तैकाग्र्यमित्यर्थः न आपि=प्राप्ता शत्रुवर्गैरिति शेष०। किं सर्वथैव नेत्याह-दिङ्मोहविनाशनेन विना=दिशाभ्रान्ति विनाशो यावन्न तावदित्यर्थः। क्षमा भूमौ तितिक्षायां स्त्रिया युक्ते नपुंसकम् इति मेदिनी ॥ ५८ ॥

अजः सपक्षे सवितैव तावत्,
तस्याऽधिपत्ये सुषमा जगत्याम्।
लोकस्य कस्यापि न दुःखलेशः,
क्लेशः कुतोऽन्योन्ययुधायुधानाम् ॥५९॥

(अन्वय) यस्य सपक्षे सविता अज एव (मान्य) तस्य आधिपत्ये जगत्यां सुषमा (सुषमा स्थिति, वृत्तिर्वा) (आसीत्)। कस्यापि लोकस्य दुःखलेश न (अभूत्) अन्योन्ययुधायुधानां क्लेश कुत (सम्भवति)।

व्याख्या-यस्य राज्ञः सपक्षे=सादृश्यकोटौ तुल्यरूपतायामि-

त्यर्थः उपमानकक्षायामित्याशयः सविता=प्रजोत्पादयिता अजः=ब्रह्मा एव यद्वा सविता=सूर्यः तेजस्वित्वेन अजः=विष्णुः स्थिति (लोकमर्यादा) कारित्वेन, शिवश्च दुष्टसंहारकत्वेन एव नान्यः कश्चन यस्योपमानभूत इति भावः तस्य राज्ञः आधिपत्ये=प्रभुत्वे स्वामित्वे इत्यर्थः राजत्वकाल इति यावत् जगत्यां=पृथिव्यां लोकेषु सुषमा=शिष्टाऽनुग्रहदुष्टनिग्रहादिविधिविधानजनितसार्वत्रिकशान्तिसमुद्भूतपरमशोभा 'सुषमा परमा शोभा' इत्यमरः। यद्वा सुषमा=शोभना स्थितिरितिशेषः, अथवा सुषमा=समा=तुल्यरूपा धृति रितिशेषः आसीदितिक्रियाध्याहारः, अत एव कस्यापि लोकस्य=जनस्य दुःखलेशः=आध्यात्मिका-ऽऽधिदैविका-ऽऽधिभौतिकादिदुःखमात्राऽपि न अभूत्। अन्योन्ययुधायुधानाम्=अन्योन्यं=परस्परं युत्=युद्धम् आयुधानि=प्रहरणानि शस्त्राणीत्यर्थः तेषां तज्जनित इत्यर्थः क्लेशः=पीडा कुतः? नैव सम्भवतीत्यर्थः न्यायपरायणे प्रजारक्षणप्रवणान्तःकरणे धरणीरमणे राजसिंहासनमासीने प्रजानामकुतोभयत्वं राष्ट्रस्य च समस्तेति भीतिराहित्यमनुपमसुषमासाहित्यं च सर्वथैव सम्भावनाऽऽस्पदीभावमधिगच्छतीति नीतिवेदिनाम्मतिः। उपमा, काव्यलिङ्गम् अर्थापत्तिश्चाऽलङ्कृतयः॥अजश्छागे हरि-ब्रह्मविधु-स्मर-नृपे हरे इति मेदिनी ॥५९॥

तमीश्वरं प्राप्य तमीश्वराभं
समर्थ सिद्धार्थ कृतार्थभावात्।
कराग्रहात् तुष्टमनाधराऽऽसीत्
स्वयंस्वयम्भूदयनात्प्रियेव ॥ ६० ॥

(अन्वयः) तमीश्वराभं तम् ईश्वरं प्राप्य धरा समर्थं सिद्धार्थं कृतार्थभावात् करग्रहात् स्वयम्भूदयनात् तुष्टमनाः प्रियेव (प्रियेव) आसीत् ॥

(व्याख्या)-यथार्थपृथ्वीपतित्वं प्रकटयति-तमीति । तमीश्वराभं=तमी=रात्रिस्तस्या ईश्वरः=पतिः तमीश्वरः=चन्द्रस्तस्येव आभा=छविर्यस्य स तं तथोक्तं चन्द्रसदृशमित्यर्थः तं=पूर्वोक्तम् विश्वसेन प्रभृतिम् ईश्वरं=पतिं राजानमित्यर्थः आप्य=लब्ध्वा धरा=पृथ्वी समर्थ सिद्धार्थ कृतार्थभावात्=द्वन्द्वान्ते श्रूयमाणं पदं प्रत्येकमभिसम्बध्यते इति न्यायादिहत्य भाव शब्दस्य प्रत्येकमन्वयः तथा च समर्थभावात्=कार्यसम्पादने समर्थत्वात्=शक्तिशालिजनाढ्यत्वादितिभावः यद्वा सर्वविधवस्तुप्रकटने क्षमत्वात् सिद्धार्थभावात्=लोकानां सर्वार्थसाधकत्वात्, कृतार्थभावात्=धान्यादिनिष्पादनेन चरितार्थत्वात्=सफलत्वात् इत्यर्थो बोद्धव्यः । कराग्रहात्=करस्य=राजग्राह्यभागस्य अग्रहात्=अनादानात् ग्रहणाभावादित्यर्थः, तथा स्वयम्भूदयनात्=स्वयम्भूः=विष्णुः तद्वद् दयनात्=रक्षणात् यद्वा स्वयम्=आत्मना नतु कर्मकरादिद्वारा भुवः=स्थानस्य आगन्तुकेभ्यः दयनात्=दानात् सत्कृत्यप्रतिपादनात्, अथवा स्वयं नत्वन्यद्वारैव भुवः=पृथिव्याः दयनात्=पालनात् प्रत्यवेक्षणादित्यर्थः, अतएव तुष्टमनाः=प्रसन्नचित्ताः प्रियेव=प्रीत्यावहेव हृष्येवेत्यर्थः लोकानां नरपतेश्च, यद्वा प्रिया=भार्या तद्रूपेत्यर्थः एव. प्रियेवेति पाठे प्रियेव=भार्येव आसीत् । वनिताऽपि यथा शशाङ्ककान्तं कान्तमासाद्य समर्थ सिद्धार्थ-कृतार्थभावात्=समर्थ-भावात्=सुरतादिक्षमत्वात् सिद्धार्थभावात्=सम्पन्नमनोरथत्वात् कृतार्थभावात् सदपत्यजननादिनाकृतकृत्यत्वात्, कराग्रहात्=योग्यपुरुषकर्तृकपाणिग्रहणात् स्वयम्भूदयनात्=स्वयम्भुवः=कामदेवस्य तद्विकारस्येतिभावः उदयनात्=आविर्भावात् यद्वा स्वयम्भुवोः=स्तनयोः उदयनात्=उत्थानात् यौवनोद्भेदादित्यर्थः तुष्टमनाः=मदाऽऽह्लादितान्तःकरणा पत्युः प्रिया=प्रीतिजनिका भवति. तथेयंधरापी-

तिभावः । श्लेषेणानुप्राणितंरूपकमुपमा वा काव्यलिङ्गं समासोक्तिर्वा-ऽलङ्काराः । बलि-हस्तां-शवः करा इत्यमरः ॥ ६० ॥

वामाऽभिरामाङ्ग्यचिराऽर्थसिद्धौ,
शिवाऽऽख्ययाऽस्य प्रियकारिणीस्त्री ।
श्रिया सुदेवी सहशीललीला-
कौशल्यकान्ताम्बुजलोचनश्रीः ॥६१॥

(अन्वय) अस्य वामा स्त्री अभिरामाङ्गी, अर्थसिद्धौ अचिरा, आख्ययाशिवा, प्रियकारिणी, श्रियासुदेवी सहशीललीला, कौशल्यकान्ता, अम्बुजलोचनश्री. (आसीत्) ॥ द्वितीये-अस्य अचिराख्री, वामा,ऽभिरामाङ्गी, अर्थसिद्धौ आख्यया शिवा, शेष पूर्ववत् ॥ तृतीये-अस्य आख्यया शिवा स्त्री शे० पू० ॥ चतुर्थे-अस्य सुदेवी=मरुदेवी स्त्री शे० पू० ॥ पञ्चमे-अस्य सुदेवी=देवकी स्त्री श्रिया 'युक्ता' शेष पूर्ववत् ॥ षष्ठे-अस्य कौशल्यका=कौशल्या स्त्री वामाऽभिरामाङ्गी अर्थसिद्धौअचिरा आख्यया शिवा प्रियकारिणी, श्रिया सुदेवी, सहशीललीला, अन्ता,ऽम्बुजलोचनश्रीः (आसीत्) ॥ ६१ ॥

व्याख्याः-अस्य राज्ञः अश्वसेन संज्ञस्य वामा=तदभिधाना स्त्री=भार्या आसीत् कीदृशीत्याह-अर्थसिद्धौ अचिरा=कार्यसम्पादने शैघ्र्यवती शीघ्रंकार्यसाधिकेत्यर्थः । आख्यया=नाम्ना शिवा=कल्याणावहा नाम [स्मरण] मात्रेणैव मङ्गलकारिणीत्यर्थः । अभिरामाङ्गी=अभिरामं=सुन्दरम् अङ्गं=शरीरं यस्याः सा तथोक्ता मनोहरगात्रीत्यर्थः। प्रियकारिणी=पत्युर्हितकारिणी । श्रिया=शोभया सौभाग्यलक्ष्म्या वा रूपसम्पदा वा सुदेवी=उत्तमा देवीव इति देवी. सहशीललीला=

टि० १ समर्थेत्यादिपदे कर-स्वयम्भूपदयोश्च श्लेषात् । २-प्रियेचेतिपाठे । ३-तुष्ट मनस्त्वे पञ्चम्यन्ताना हेतुत्वेनोपादानात् । ४-समानविशेषणबलान्नाय कनायिकाव्यवहारारोपात् तदुक्त 'समासोक्तिः समैर्यत्रकार्यलिङ्गविशेषणे. । व्यवहारसमारोपः प्रस्तुतेऽन्यस्यवस्तुनः' इति साहित्यदर्पणे ॥

शीलं-सद्वृत्तं सत्स्वभावो वा लीला-विलासविशेषः गतिचेष्टिता दिभिःप्रियस्यानुकरणं 'प्रियस्यानुकृतिर्लीला' इति साहित्यदर्पणे ताभ्यां (शील लीलाभ्यां) सहवर्तमाना इति सा तथोक्ता कौशल्य-कान्ता-कौशलमेव कौशल्यं-क्रियानैपुण्यम् तेन कान्ता-कमनीया प्रशंसनीयेत्यर्थः । अम्बुजलोचनश्रीः-अम्बुजस्येव लोचनस्य श्री र्यस्याः सा तथोक्ता कमलसदृशनेत्रशोभाशालिनीत्यर्थः । शीलंस्व-भावे सद्वृत्ते इति मेदिनी ॥

द्वितीयपक्षे-अस्य राज्ञः 'विश्वसेन' नामधेयस्य 'अचिरा' तद-भिधाना स्त्री-भार्या पट्टराज्ञीतियावत् आसीत् सा कीदृशीत्याह-वामा-रम्या मनोहारिणीत्यर्थः, अर्थसिद्धौ-प्रयोजनसम्पादनविषये आख्य-या-नाम्ना शिवा-क्षेमकारिणी। शेषं पूर्ववत्॥ अर्थोऽभिधेय रै-वस्तु-प्रयोजन-निवृत्तिषु इत्यमरः ।

तृतीयपक्षे-अस्य राज्ञः 'समुद्रविजय' नाम्नः आख्यया नाम्ना 'शिवा' इतिलोके प्रसिद्धा स्त्री-पट्टमहिषी आसीत् । शेषं पूर्ववत् ॥

चतुर्थपक्षे-अस्य राज्ञः 'नाभिराज' संज्ञकस्य स्त्री-पत्नी पट्ट-राज्ञी सुदेवी-मरुदेवी इति प्रसिद्धा आसीत् नामैकदेशग्रहणेन नाम-ग्रहणात् सत्या भामा इतिवत् । सा कीदृशीत्याह-श्रिया 'युक्ता' इति शेषः । शेषं पूर्ववत् ॥

पञ्चमपक्षे—अस्य वसुदेवस्य 'सुदेवी'—देवकी इत्यभिधया लोके विदिता स्त्री-भार्या आसीत् शेषं पूर्ववत् ।

षष्ठपक्षेच—अस्य राज्ञो 'दशरथ' नामधेयस्य 'कौशल्यका= 'कौशल्या' इत्येतन्नाम्नीत्यर्थः स्वार्थिकः कः "केऽण" इत्यापोह्रस्वः अभाषितपुंस्काचेत्यनेन नित्यस्त्रीलिङ्गशब्दाद्विहिताऽऽबन्तानिकान्तो-वैकल्पिकेत्त्वविधानमाथर्ष्याचदभावे नित्यैत्वसाऽप्यभावः । साकीदृ-

शीत्याह–वामाऽभिरामाङ्गी=वामेन=कामदेवेन तद्विकारोदयेन कामनिवासावस्थोद्गमेन वेतिभावः यौवनोद्भेदेनेतियावत् अभिरामं=मनोहरम् अङ्गं यस्याः सा तथोक्ता यद्वा वामस्य=कामस्य अभिरामा=सुन्दरी यद्वा आभिरामा=आभाऽस्त्यस्या इत्याभिनी=सातिशयशोभाशालिनी रामा=रमणी रतिरित्यर्थस्तद्वदङ्गं यस्याः सा तथोक्ता। अन्ता=रम्या पत्युर्मनोहारिणी। वामं धने पुंसिहरे कामदेवे पयोधरे। वल्गु–प्रतीप–सव्येषु त्रिषु नार्यां स्त्रियामिति मेदिनी। मृत्या यवसितेरम्ये समाप्ता चन्त इष्यते इति शब्दार्णवः शेषविशेषणयोजनं पूर्ववत्। श्लेषः दीपकम् उपमाऽलङ्काराः।

श्रीसिद्धार्थराजस्य भार्यानामधेयमग्रेऽभिधास्यते ॥ ६१ ॥

इन्दोरराऽपि कला द्वितीया,
शुभायनूनं समयाऽनुसारात्।
तथा सुदेव्यप्यचिराशिवेन,
वामाध्वना सूरतमूर्तिसाधुः ॥६२॥

(अन्वय) इन्दोः द्वितीया कला अरालाऽपि समयानुसारात् नूनं शुभाय (भवति) तथा सुदेव्यपि अचिराशिवा वामाध्वना (पतंनशीला) सूरतमूर्ति-साधु (अभूत्) ॥ ६२ ॥

यथा इन्दोः=चन्द्रमसः द्वितीया कला=षोडशभागैकभागः कलातु षोडशोभाग इत्यमरः, अराला=कुटिलाऽपि असुदृश्याऽपीतिभावः समयाऽनुसारात्=कालान्तरेण पौर्णमासीमासाद्येत्यर्थः नूनं=निश्चयेन शुभाय=मङ्गलाय पूर्णशशिरूपाय कल्याणायेत्यर्थः भवति तथा=तद्वत् सुदेवी=प्राग्वर्णितरूपा राज्ञी अपि अचिराऽशिवा=अचिरम्=अल्पकालपर्यन्तमेव अशिवं=पुत्रादिराहित्यादिरूपममङ्गलं तज्जनितदुःखमितिभावः यस्याः सा तथोक्ता अभूत्। कीदृशी सेत्याह–

टि. १. सम्यगुदृष्टुमशक्यापि,

वामाध्वना=शिष्टसमष्ट्याचरितरुचिरमार्गेण वर्तनशीलेतिशेषः यद्वा वामः=रम्यः मधुर इत्यर्थः आ=समन्तात् ध्वनो भाषा यस्याः सा मधुरवादिनीत्यर्थः । सुरतमूर्तिसाधुः=सुरतया=दयानत्या मूर्त्या=स्वरूपेण साधुः=मनोहरा सभ्या=शिष्टावा यद्वा सुरता मूर्तिर्यस्याः सा-चासौ साधुः=कुलीना-महाकुलसमुद्भवा-चेति सा तथोक्ता । स्याद्-यालुः कारुणिकः कृपालुः सुरतः समा इति. महाकुलकुलीना र्य स-भ्य-सज्जन-साधव इति चामरः । साधुर्वार्द्धुषिकेचारौ सज्जनेऽप्य-भिधेयवत् इति मेदिनी ॥ ६२ ॥

सौरभ्यवित्तं जलजं प्रदाय,
चन्द्रः कलाकौशल मुज्ज्वलत्वम् ।
जाने तदास्यानुगमाद् विभूतिं,
प्राप्तौकजेन्दू समयं प्रपद्य ॥ ६३ ॥

(अन्वय) कजेन्दू समय प्रपद्य तदास्याऽनुगमात् विभूतिं प्राप्तौ (इति) मन्ये जलज सौरभ्यवित्त चन्द्र कलाकौशलमुज्ज्वलत्व प्रदाय ॥ ६३ ॥

कजेन्दू=कमल-चन्द्रमसौ समयं=क्रमेण दिवस-रात्रि रूपंकालं प्रपद्य=प्राप्य तदास्याऽनुगमात्=तस्या=अनुपदोक्त राज्ञ्याः आस्य-स्य=मुखस्य अनुगमात्=अनुसरणात् सेवनादित्यर्थः तन्मुखसेवनाऽऽ-गादितप्रसादादितिभावः विभूतिं=मुपमानस्थानीयत्वादिमहिमानं प्रा-प्तौ=लब्धवन्तौ इत्यहं जाने=मन्ये उत्प्रेक्षे इत्यर्थः । ननुकिंद्दत्वा ताभ्यां प्रसादो लब्ध इत्याह-जलजं=कमलं सौगन्ध्यरूप धनं, चन्द्रश्च कलाकौशलं=कलासु=चतुःषष्टिप्रकारासु कौशलं=नैपुण्यम् उज्ज्वल त्वम्=औज्ज्वल्यमनुपमकान्तिमत्वम् आह्लादकरत्वं वा प्रदाय=दत्वे-त्यर्थः । कमलगुणाः चन्द्रगुणाश्च तन्मुखेऽप्यपतेति भावः ॥ उत्प्रे-क्षाकाव्यलिङ्गं च ॥ ६३ ॥

सौभाग्यमस्याः प्रवदेत् समस्या-
ख्यानात् सुधा वा सकलार्थसिद्धिः ।
सुधाऽधरस्था करपद्मगाऽन्या
तत्तुल्यता वास्तु न जीवलोके ॥ ६४ ॥

समस्य आख्यानात् (सादृश्यरूपेण) सुधा सकलार्थ सिद्धिर्वा अस्या सौभाग्य प्रवदेत् तु सुधा (अस्या) अधरस्था अन्या करपद्मगा (अतएव) जीवलोके तत्तुल्यता न अस्तु ॥ ६४ ॥

समस्य=संक्षिप्य आख्यानात्=कथनात् सादृश्य रूपेणेतिशेषः सुधा=अमृतं. सकलार्थ सिद्धिः=सकलानां=सम्पूर्णानाम् अर्थानां= धनानां प्रयोजनानां वा वस्तूनां वा सिद्धिः=निष्पत्तिर्वृद्धिर्वा वा शब्दः समुच्चयार्थः अस्याः=पूर्वोक्तराज्याः सौभाग्यं=भाग्यशालिनां पतिप्राप्त्यं वा कर्म्म प्रवदेत्=वक्तुं समर्था स्यात् । द्वितीयो 'वा' तु शब्दार्थकः तथा च वा=तु=किन्तु सुधा प्रक्रमादस्याः अधरस्था= ओष्ठवर्तिनी. अन्या=अपरा द्वितीया सकलार्थसिद्धिरित्यर्थः करप- द्मगा=हस्तपद्मस्था हस्तस्थितकमलरेखामहिम्नभवेत्यर्थः पद्मरेखायुक्त- हस्ते सर्वार्थसिद्धिरिति सामुद्रिकशास्त्रे प्रसिद्धम् । अतएव जीवलोके= मर्त्यलोके तत्तुल्यता=तत्सादृश्यं न अस्तु=नाऽस्तीत्यर्थः । तद्भिन्न- त्वे सति तद्गतभूयोधर्मवत्त्वं हि सादृश्यं तथाऽभिन्नवस्तुनि न सम्भ- वतीति कथं स्वस्था सुधा स्वांसादृश्येन वक्तुं प्रभवेदितिभावः । अत्रा तिशयोक्तिरलङ्कृतिः ॥ ६४ ॥

रूपेण कान्त्या चरणेनलक्ष्म्या,
प्राप्ताशलाकां त्रिपु विष्टपेषु ।
ततः प्रसिद्धा त्रिशलाकनाम्ना-
काराविकारा रमणी मणीव ॥ ६५ ॥

(अन्वयः) रूपेण कान्त्या आचरणेन लक्ष्म्या त्रिपु विष्टपेषु शलाकांप्राप्ता ततः आकाराविकाराद् त्रिशलाकनाम्ना प्रसिद्धा रमणी मणी व (अभूत्) ॥६५॥

व्याख्या–एकषष्टि ६१ मितश्लोकेऽनुक्तां सिद्धार्थराजस्य भार्या मिहिनामत आचष्टे । 'अस्ये'-ति पूर्वतोऽनुषज्यते. प्रकरणाद्वाऽनुसन्धेयः । तथा च अस्य=सिद्धार्थराजस्य, रूपेण=सौन्दर्येण सत्स्वभावेन वा 'रूपं स्वभावे सौन्दर्ये' इति मेदिनीः, कान्त्या=लावण्येन, आचरणेन=सदाचारेण सम्यक्चारित्रेणेत्यर्थः लक्ष्म्या=धनसम्पदा च त्रिपु विष्टपेषु=त्रिलोक्यां शलाकाम्=सर्वोत्तमतां प्राप्ता=अधिगतवती ततः= तस्मात्कारणात् आकाराविकारात्=आकारस्य='त्रिशलाका' घटककका-रोत्तरवर्तिन आरूपस्वरवर्णस्य अविकारात्=संज्ञा शब्दतया 'ङ्यापोः संज्ञा-छन्दसोर्बहुलम्' इत्येतच्छास्त्रेण ह्रस्वविधानवशसञ्जाताद् अरूपवर्णविकारात् अन्यथा त्रिशलाका' इत्यापत्तेः, 'त्रिशलाक' नाम्ना= त्रिपुशलाका यस्य तत्रिशलाकं तादृशं नाम=अभिधानं तेन त्रिशला-नाम्नेत्यर्थः प्रसिद्धा=शास्त्रे लोकेच विदिता भूपिता वा 'प्रसिद्धौ ख्यात-भूपितौ' इत्यमरः रमणी=स्त्रीरत्नम् अभूत् केव? मणीव=सद्रत्नमिव सापि रूपादिना प्रसिद्धा=भूपिता, शलाकां=वेधनास्त्रं प्राप्ता, आकार विकार रहिता भवति । श्लिष्टोपमा काव्य लिङ्गंचाऽलङ्कारौ॥६५

सुवर्णकूर्मप्रतिमाक्रमत्वा--

त्तस्या मधोलोकसुरप्रणामम् ।

वराङ्गरत्ने न तदोर्ध्वलोक–

प्रणम्रतां वक्तितदीयकायः ॥ ६६ ॥

तदीयकायः सुवर्णकूर्मप्रतिमाक्रमत्वात् तस्या मधोलोकसुर प्रणामम् तथा वराङ्गरत्नेन ऊर्ध्वलोकप्रणम्रता वक्ति ॥ ६६ ॥

व्याख्या–तदीयकायः=पूर्वोक्तराज्ञीशरीरं सुवर्णकूर्मप्रतिमाक्रम-

त्वात्=सुवर्णस्य=काञ्चनस्य तन्निर्मितस्येत्यर्थः कूर्मस्य=कमठस्य प्रतिमा=प्रतिकृतिर्मूर्तिरित्यर्थ स्तद्वत् क्रमौ=चरणौ यस्य यस्मिन् वा स सुवर्णकूर्मप्रतिमाक्रमस्तस्यभावस्तत्वं तस्मात्तथोक्तात् हेमरचितकच्छपप्रतिमापृष्ठदेशसदृशपदयुगलशालित्वादित्यर्थः 'शुभः कमठपृष्ठाभः' इति सामुद्रिकोक्तेः । तस्यां=राज्यां विषये अधोलोकसुरप्रणामम्=अधोलोकसुराणां=भूलोकावस्ताद्वर्त्तिभुवनस्थदेवानां प्रणामं=प्रणतिम् । तथा वराङ्गरत्नेन=भाग्यशालित्वसूचकमस्तक श्रेष्ठेन 'चराङ्गं मूर्द्ध-गुह्ययोः' इति हैमः रत्नं स्वजाति श्रेष्ठे स्यान्मणौ राजानुपार्थिवे ऊर्ध्वलोकप्रणम्रतां=ऊर्ध्वलोकाः=भूलोकादुपरिवर्तमानलोकाः तत्रत्यादेवा इति भावः प्रणम्राः=प्रणता यं स ऊर्ध्वलोकप्रणम्रस्तस्य भावस्तत्ता तां तीर्थङ्करजननक्षेत्रतया ऊर्ध्वाधोलोकवर्तीदेवादीनां प्रणम्यतामितिभावः वक्ति=कथयति ज्ञापयतीत्यर्थः ॥ ६६ ॥

मुक्ताकलापे स्तनयोर्विभूषा,
केशेषु शोभा शिखिनां कलापे ।
नितम्बशोभा रसनाकलापे,
कलापरूपं तदिदं कवीनाम् ॥ ६७ ॥

(अन्वय) मुक्ताकलापे स्तनयोर्विभूषा शिखिनांकलापे केशेषु शोभा, रसना कलापे नितम्बशोभा तदिदं कवीना कलाऽपरूपम् (अभिमतम्) ॥६७॥

व्याख्या-मुक्ताकलापे=मुक्तावल्यां हारे इत्यर्थः स्तनयोः=वक्षोजयोः विभूषा=भूषकत्वम् स्तनशोभासंवर्द्धकत्वकथनमितिभावः, शिखिनां=मयूराणां कलापे=बर्हे उपमानभूते उपमेयतयाऽभिमतेषु केशेषु=कुन्तलेषु शोभा, रसनाकलापे=काञ्चीदाम्नि सति नितम्बशोभा=नितम्बस्य=कटिपश्चाद्देशस्य शोभा=छविस्तद्वर्णनमित्याशयः इदं=तच्च-

दभिधानं कवीनां=काव्यनिर्मातॄणां कलापरूपं=कलायाः=सामर्थ्यस्य कल्पनाशक्तेरित्यर्थः अपरूपम्=अपकृष्टस्वरूपम् विपरीतरूपंवाऽभिमतमितिशेषः। अनुपमानां प्रकृतिरमणीयानां रमणीरत्नानामुपमानपरिकल्पनमाहार्यसौन्दर्यसाधनोपसन्निधापनं च कविकल्पनाशक्तेर्दौर्बल्यं द्योतयतीतिभावः। कलापो भूषणे बर्हे तूणीरे संहतावपि इति मेदिनी। कला स्यान्मूलविघृधौ शिल्पादावंशमात्रकेषोडशांशे च चन्द्रस्य कलनाकालमानयोरितिमेदिनी। अपः स्यादपकृष्टार्थे वर्जनार्थ–वियोगयोः। विपर्ययेच विकृतौचौर्ये निर्देश–हर्षयोः इतिमेदिनी।

अथ च कवीनां काव्यकर्तॄणां तत्तस्मात् इदं एतद्वर्णनीयस्वरूपं स्त्री रूपं वस्तु कलापरूपम् समूहरूपं, सर्ववर्णनीयवस्तु समष्टिरूपम् यद्वा कलारूपम् भूषणस्वरूपम् प्रसन्नताजनकम् एकत्रैव सर्वन्याचर्णनीयवस्तुमिलनात् किंवाकवीनां मयूराणां कलापरूपम् बर्हस्वरूपम् अनेकरूपत्वादित्यर्थः ॥ ३७ ॥

नृपेन्द्रभावे जयवाहिनीयं,
तद्वैष्णवे साकमलाऽवतीर्णा।
तद्राजयोगे खलुरोहिणीव,
व्यावर्णनीया बहुलब्धवर्णैः ॥ ६८ ॥

(अन्वयः) सा इयं नृपेन्द्रभावे जयवाहिनी, तद्वैष्णवे कमलाऽवतीर्णा। तद्राजयोगे रोहिणीव बहुलब्धवर्णैः व्यावर्णनीया खलु ॥ ६८ ॥

व्याख्या–सा इयं=पूर्वोक्ता राज्ञी नृपेन्द्रभावे=नृपस्य=राज्ञः स्वभर्त्तुः इन्द्रभावे=इन्द्रत्वे देवराजत्वे इत्यर्थः अष्टानांलोकपालानां,वपु धीरयतेनृपः इत्युक्ते रिन्द्रकलयाऽवतीर्णतयाऽभिमतत्त्वे जयवाहिनी= जयं=जयन्तं=पाकशासनिं तदाख्यशक्रपुत्रमित्यर्थः वहति=धारयति

प्राप्नोति वा पुत्रत्वेन तच्छीला शचीरूपेत्यर्थः तद्वैष्णवे=तस्य=राज्ञः स्वभर्तुः वैष्णवे=विष्णुत्वे ‘ ना विष्णुः पृथिवीपति ’ रित्युक्ते राज्ञो विष्णुकलयाऽवतीर्णत्वेनाभिमतावित्यर्थः कमला=लक्ष्मीस्तद्रूपेणेति भावः अवतीर्णा=गृहीतावतारी। तद्राजयोगे=तस्य राज्ञः राजयोगे चन्द्रवाचकराजन् शब्देन योगे=नृपरूपेतरार्थवाचकतया सम्बन्धे, यद्वा राज्ञः=चन्द्रस्य लोकपालान्यतमस्य योगे=कलयासम्बन्धे रोहिणी=चन्द्रभार्या इव यहुलब्धवर्णैः=बहुभि र्लब्धवर्णैः=कविभिः व्यावर्णनीया=विशेषेण वर्णयितुं प्रशंसितुं योग्या. खलु वाक्यालङ्कारे ॥ राजाप्रभौ च नृपतौ क्षत्रिये रजनीपतौ इति मेदिनी। धीमान् सूरिः कृतिः कृष्टिर्लब्धवर्णोविचक्षण इत्यमरः उल्लेखालंकारः ॥ अथ च नृपेन्द्रभावे नृपाणामिन्द्रः स्वामी तद्भावे सर्वराजस्वामिभावे जयवाहिनी जयंविजयंवहते प्राप्नोतीति तच्छीला जयवाहिनी च जयवाहिनीतिमध्यमपदलोपीसमासः संग्रामविजयसंपादिकासेनेवेतिभावः "पतीन्द्रस्वामिनाथार्या इति हैमः" निदर्शनालङ्कारः ॥ ६८ ॥

धर्मः कवीनामुपमा नवीना-
ऽऽधेयाऽभिधेयार्थसमानभावे ॥
अस्यास्त्वसामान्यतयैवदूरा-
दालोक्यतां साम्यदशा त्रिलोक्याम् ॥६९॥

अन्वयः—अभिधेयार्थ समानभावे नवीना उपमा आधेया[इत्ययं] कवीनां धर्मः ॥ अस्याः असामान्यतया त्रिलोक्य साम्यदशा दूरादालोक्यताम् ॥

व्याख्या—अभिधेयार्थसमानभावे=अभिधेयार्थस्य=वर्णनीयपदार्थस्य (वस्तुनः)समानभावे=तुल्यतायां=सादृश्ये कल्पयितव्ये नवीना=काव्यनाहिततयाऽभिनवा उपमा=सादृश्यम् आधेया=योजनीया स्वकाव्ये संघटनीयेत्यर्थः इत्ययं कवीनां धर्मः=आचारः स्वभावो या

'धर्माः पुण्य-यमा-न्याय-स्वभावा-ऽऽचार सोमपाः' इत्यमरः । तु=किन्तु अस्याः पूर्वोक्तराज्ञ्याः असामान्यतया=अनन्यसाधारणतया त्रिलोक्यां=लोकत्रये साम्यदशा=सादृश्यं दृगदालोक्यतां=कविभिर्दूरतो दृश्यताम् भूयोभूयो विमृश्य यत्किञ्चित् सादृश्यं परिकल्पयन्तु किन्तु वास्तविकी समानता नास्तीति तत्र कवीनां वाग्व्यापारं विरुद्धमेवेति निष्कर्षः॥सम्बन्धेऽसम्बन्धरूपातिशयोक्तिरलङ्कारः॥६९॥

गुणाधिरोहः परमस्तु कोटौ,

तस्यास्तुलाकोटिरपि क्रमाब्जे ।

यस्माद् गुणानां शतकोटिरस्यां,

मन्ये नतोऽस्मात् शतकोटिशाली॥७०॥

अन्वयः—परमः गुणाधिरोहः कोटौ तस्याः क्रमाब्जेऽपि तुलाकोटिः (अस्ति) (इत्थं) यस्मात् अस्यां गुणानां कोटिः अस्मात् शतकोटिशाली नत इति मन्ये

व्याख्या—परमः=उत्कृष्टः गुणाधिरोहः=रज्जुसम्बन्धः कोटौ=अग्र भागे तुलादण्डस्य भवतीतिशेषः, तस्याः=पूर्वोक्तराज्ञ्याः क्रमाब्जे=पादकमले तुलाकोटिरपि=तुलाचिह्नस्य तत्र सत्वात् तदग्रभागोऽपि तस्मात्=तुलाकोटीनां तत्र सत्त्वात् अत्र कोटिशब्दः शतलक्षसंख्यावाची तथा च एकैकतुलायां कोटिद्वयस्य प्रत्येककोटौ गुणानां सत्त्वात् अस्यां=महापुरुषमातरि गुणानां=धैर्यादीनां शतकोटिः संख्याऽस्तीति मन्ये=जाने इति कविकल्पना तदेव द्रढयति अस्मात् कारणात् शतकोटिशाली=कोटीश्वरः नतः=प्रणतः नवशतकोटिशालिनं शतकोटिशाली नमस्करोतीति भावः ॥

अथवा तस्याः=पूर्वोक्तराज्ञ्याः परमः=अनन्यसाधारणः गुणाधिरोहः=गुणोत्कर्षः कोटौ=शतलक्षसंख्यायां संख्येयतयाऽस्तीतिशेषः यद्वा गुणाधिरोहः कोटौ वर्तते इति

तस्याः=राज्ञ्याः क्रमाब्जे=चरणकमलेऽपि तुलाकोटिः=तुलानां सादृश्यगुणानां कोटिः संख्यावर्त्तते 'तुला सादृश्य-मानयोः' इति मेदिनी। अथ च तुलाकोटिः=मञ्जीरः चरणभूषणविशेषः अस्तीतिध्वनिः। पादाङ्गदं तुलाकोटिर्मञ्जीरो नूपुरोऽस्त्रियामित्यमरः। इत्थं यस्मात् कारणात् अस्यां राज्ञ्यां गुणानां सौशील्यादीनां शतकोटीरासीत् अस्मात् कारणात्। शतकोटिशाली=शतकोटिना=वज्रेण शालते=शोभते तच्छील इन्द्रः, यद्वा शतगुणितकोटिसंख्याकधनाऽधिपतिरपि विश्रुतान्यः नतः=प्रणतिप्रवणः अभूत् इति मन्ये=उत्प्रेक्षे। शतकोटिः स्वरुः शम्बो दम्भोलिरशनिद्वयो रित्यमरः। कोटिः स्त्री धनुषोऽग्रेऽश्रौ संख्याभेद-प्रकर्पयोः इति मेदिनी। श्लेषः काव्यलिङ्गं च ॥ ७० ॥

उच्चैर्दशा स्यान्नु परोपकाराद्,
युक्ता तदुच्चैस्तनतास्तनाङ्गे।
सतां न चारम्भरिताकदाचित्,
तनु स्वमध्यं तत एव तस्याः ॥ ७१ ॥

अन्वयः—तस्याः स्तनाङ्गे उच्चैस्तनता युक्ता (यतः) परोपकारात् नु उच्चैर्दशा स्यात् (यतः) सतां कदाचिद् आरम्भरिता न भवति तत एव तस्याः स्वमध्यं तनु ॥

व्याख्या:—अवयवान् वर्णयति-तस्याः=राज्ञ्याः स्तनाङ्गे=वक्षोजयुगलरूपाऽवयवे उच्चैस्तनता=उच्चैर्भव उच्चैस्तनः भवार्थे तनुप्रत्ययः तस्य भावस्तत्ता उच्चता औन्नत्यमित्यर्थः युक्ता=समुचिता यतः परोपकारात्=दुग्धरूपस्वधनेन परस्य=स्वभिन्नस्य शिशोः उपकरणात्=शरीरपोषणरूपोपकारजननात् नु=निश्चयेन उच्चैर्दशा=उन्नता यस्या उन्नतिरित्यर्थः स्यात्=भवेत् लोकेऽपि परोपकारकरणात् उन्नतयस्था भवतीति प्रसिद्धैव। यतश्च सतां=सज्जनानां कदाचित् आरम्-

म्भरिता=स्वोदरमात्रपूरण प्रवणता स्वार्थितेतिभावः न भवति तत एव हेतोः तस्याः स्वमध्यम्=उदरं तनु=कृशं जातमित्यर्थः। स्तनोन्नतत्वं परोपकारफलं तनूदरत्वं सज्जनशिलञ्च शिक्षयतीतिभावः ।। उत्प्रेक्षा काव्यलिङ्गं चालङ्कारौ ॥ ७१ ॥

अनल्पतल्पे सुमनो विकल्पे,
प्रसुप्तयाऽदर्शिपतोन्निशान्ते।
स्वप्ना मणिश्रेणिमये निशान्ते,
तदा तया नर्तितया व्यवर्त्ति ॥ ७२ ॥

अन्वयः—मणिश्रेणिमये निशान्ते सुमनो विकल्पे अनल्पतल्पे प्रसुप्तया तया उन्निशान्ते स्वप्ना अदर्शिषत तदा नर्तितया व्यवर्त्ति ॥

व्याख्या—मणिश्रेणिमये-समन्तान्मणिपंक्तिविराजिते निशान्ते प्रासादे सुमनोविकल्पे सुमनसां=पुष्पाणां विकल्पः-विविधकल्पनं विविधा विशिष्टा वा रचनेत्यर्थः यस्मिन् स तस्मिन् तथोक्तरूपे अनल्पतल्पे= अनल्पं=महत् तल्पं शय्या तस्मिन् तल्पं=शय्याऽट्ट–दारेषु इत्यमरः प्रसुप्तया=शयितया तया-प्राग्वर्णित राज्ञ्या उन्निशान्ते=उत्=ऊर्ध्वं निशान्तात्=रात्रिशेषात् इत्युन्निशान्तं तस्मिन् निशा शेषात्किञ्चिदूर्ध्वमित्यर्थः स्वप्नाः=प्रसुप्तविज्ञानविशेषाः अदर्शिषत दृष्टाः तदा=तस्मिन्काले तया राज्ञ्या नर्तितया=अभिनीतवत्या=कल्याणातिशयसंसूचिस्वप्नदर्शनजन्याऽनन्य सामान्यसान्द्राऽऽनन्दसन्दोहतुन्दिलाऽन्तः करणताऽभिनयं कुर्वत्या व्यवर्त्ति-अभावि पुष्परचितशयनेशयिता राज्ञी रात्रिशेषे स्वप्नानवलोक्य हर्षोत्कर्षनिर्भराऽवर्तिष्टेति सरलार्थः। निशान्त–पस्त्य–सदन मित्यमरः। स्वप्नः स्वापे प्रसुप्तस्यविज्ञाने दर्शने पुमानिति मेदिनी॥७२॥

गजादिमश्रीवृषभादिसिंहा,
दिमेन्दिरा-दाम-मृगाङ्क-सूर्याः।

ध्वजोल्लसत्कुम्भसरःपयोधि-
विमानरत्नोच्चयवह्न्योऽमी ॥ ७३ ॥

अन्वयः—गजादिम–श्रीवृषभादि–सिंहादिमे–न्दिरा–दाम–मृगाङ्क–सूर्या. ध्व-जो–ल्लसत्कुम्भ–सरः–पयोधि–विमान–रत्नोच्चय–वह्नय इत्यमी स्वप्नाः ॥

व्याख्या—स्वप्नदृष्टपदार्थान् नामत आचष्टे–गजादिमः=गजेषु गजानां वा आदिमः=आद्यः प्रधानः हस्तिश्रेष्ठ इत्यर्थः, श्रीवृषभा-दिः=वृषभानामादिर्यस्मात्सवृषभादिः शोभायुक्तवृषभोत्तम इत्यर्थः एवं सिंहादिमः=श्रेष्ठकेसरी. इन्दिरा=लक्ष्मीदेवी. दाम=पुष्पमाला. मृगाङ्कः=चन्द्रः, सूर्यः=दिवाकरः, ध्वजः=केतनम्, उल्लसत्कुम्भः= पूर्णकुम्भः, सरः=तडागः, पयोधिः=समुद्रः, विमानं=देवरथः रत्नोच्च-यः=रत्नराशिः, वह्निः=अग्निः इत्यमी १४ स्वप्नाः ॥ ७३ ॥

दृश्या अवश्यं भुवनै र्नमस्यया
जने जनन्यापि जिनस्य चक्रिणः
स्वप्नास्तु हर्यश्वमिताः पयोनिधे-
र्वलस्यमात्रप्रथिता यथाविधि ॥ ७४ ॥

अन्वयः—जने भुवनैर्नमस्यया चक्रिणः जिनस्य जनन्या (चतुर्दश) चक्रिणः जनन्या हर्यश्वमिताः, वलस्यमात्रा पयोनिधेः (मानेन) प्रथिताः स्वप्नाः यथा-विधि अवश्यं दृश्या (जाताः) ॥ ७४ ॥

व्याख्या—जने=लोके भुवनैः=विष्टपैः त्रिभुवनलोकैरित्यर्थः नमस्यया=नमस्करणीयया चक्रिणः=धर्मवरचातुरन्तचक्रवर्तिनः जिन-स्य=अर्हद्देवस्य प्रस्तुतकाव्ये वर्णनीयतीर्थकृत्पञ्चकस्येत्यर्थः जनन्या= मात्रा उपर्युक्त चतुर्दश (स्वप्नाः)। चक्रिसामान्योपादानात् तन्त्रा-ऽऽवृत्त्यन्यतरेण अर्द्धचक्रिणोऽपिग्रहणम् तथा च–चक्रिणः=अर्द्धच-क्रिणः=वासुदेवस्य श्रीकृष्णचन्द्रस्य जनन्या=देवकया हर्यश्वमिताः=

हरेः=सूर्यस्य अश्वाः=घोटकास्तन्मिता =परिच्छिन्नाः सप्तसंख्यका इत्यर्थः सूर्याश्वानां सप्तसंख्याकत्वात्। तथा बलस्य=रामचन्द्रबलदेवस्य मात्रा=जनन्या कौशल्यादेव्या पयोनिधेः=समुद्रस्य मानेनेति शेषः। चतुःसंख्ययेत्यर्थः प्रथिताः=प्रतीताः चत्वार इत्यर्थः स्वप्नाः यथाविधि=यथोचितरीत्या अवश्यं दृश्या जाता इति शेषः। दृश्यन्ते स्मेत्यर्थः ॥ ७४ ॥

स्वप्नान् विलोक्याऽम्बुनिधिप्रमाणान्,
स्वच्छाशयैवद्विगुणान् यथार्हम्।
असंशयानाऽप्यभृशंशयाना,
राज्ञीस्मराज्ञीकृतविश्वरूपा ॥ ७५ ॥

अन्वयः—स्वच्छाशया स्मराज्ञीकृतविश्वरूपा राज्ञी द्विगुणान् अम्बुनिधिप्रमाणान् स्वप्नान् यथार्हं विलोक्य असंशयानाऽपि अभृशंशयाना आसीत् ॥ ७५ ॥

व्याख्या--स्वच्छाशया=स्वच्छः=निर्मलः आशयः=अभिप्रायः चित्तं वा वासना वा यस्याः सा तथोक्ता. स्वराज्ञीकृतविश्वरूपा असराज्ञा सराज्ञा सम्पद्यते तथाकृतं विश्वं येन तत् यद्वा स्मरस्य=कामस्य आज्ञा=शासनं यत्र तत् स्मराज्ञम् अस्मराज्ञं स्मराज्ञं सम्पद्यमानं कृतं विश्वं=जगद् येन तत् स्मराज्ञीकृतविश्वं तादृशं रूपं=सौन्दर्यमाकारो वा यस्याः सा तादृशी सकलजगत्कामपारतन्त्र्यकार्यनुपमसौन्दर्येत्यर्थः अतिशयरूपवतीति यावत् राज्ञी=पूर्वोक्ता वामा प्रभृतिः पट्टमहिषी द्विगुणान्=द्विगुणितान् द्विरावृत्तानित्यर्थः अम्बुनिधि प्रमाणान्=सप्तसंख्यकान् द्विरावृत्त्या चतुर्दशसंख्याकानित्यर्थः वासुदेवमाता तु द्विगुणान्=प्रकृष्टान् अम्बुनिधिप्रमाणान्=कस्यचिन्मते समुद्रस्य सप्ततया तेन तत्प्रमाणान्=तत्परिमितान् सप्तसंख्याकानित्यर्थः। बलदेव मात्रा च अम्बुनिधिप्रमाणान्=अम्बुनिधिः प्रमाणं येषां तान् 'पयो-

धरीभूत चतुः समुद्रामित्याद्युक्तेः समुद्रस्य चतुःसंख्यतयाभिमतत्वेन तत्प्रमाणान् चतुःसंख्याकानित्यर्थः । स्वप्नान् यथार्हं=स्वस्वयोग्यान् विलोक्य=दृष्ट्वा असंशयाना=स्वप्नविषयक सफलीभवनसंशयरहिताऽपि अभृशंशयाना स्वप्नदर्शनान्तरं भूयोऽप्यकृतशयना आसीदिति शेषः शुभशंसिस्वप्नावलोकनात्परं जागरणेन स्वप्नाऽनुरूपफललाभस्याऽवश्यम्भावाभिधानात् । समुद्रस्य सप्तपरिमितत्वे 'सोऽयं सप्तसमुद्रमुद्रितमहीपस्याऽर्जुनस्योद्धतं, क्षिप्त्वा भैरवसंगरेऽतिकठिनं कण्ठं कुठारेण यः' इति हनुमन्नाटकस्थपद्यमप्यनुकूलतामावहति ॥ अर्थश्लेषः, तृतीयचरणे यमकम् चतुर्थे छेकानुप्रासश्चालङ्काराः ॥ ७५ ॥

तत्राऽवतीर्णस्त्रिदशावतारी.
सुरः प्रभाभासुर एव कश्चित् ।
आपन्नसत्त्वा मणिनेव भूमी,
राज्ञी विरेजे गरभाऽनुभावात् ॥ ७६ ॥

अन्वय —तत्र प्रभाभासुर त्रिदशाऽवतारी कश्चित् सुरः अवतीर्णः (अभूत्) (तदनु) राज्ञी आपन्नसत्त्वा गरभाऽनुभावात् मणिनाभूमीव विरेजे ॥ ७६ ॥

व्याख्या–तत्र=तस्मिन्काले प्रभाभासुरः=कान्त्या देदीप्यमानः त्रिदशावतारी=त्र्यधिकास्त्रिरावृत्ताश्च दश परिमाणमस्य स त्रिदशः= त्रयस्त्रिंशन्मुख्यगणवान् देवस्तस्य तदंशेनेत्यर्थः अवतारी=अंशावेशवशेन प्रादुर्भवनशीलः कश्चित्=अनिर्दिष्टस्वरूपः सुरः=दिव्यजीवः अवतीर्णः पूर्वोक्तराज्ञी कुक्षौ प्रविष्टः अभूदितिशेषः । तदनु राज्ञी-पूर्वोक्ता वामा प्रभृतिर्नृपमहिषी आपन्नसत्त्वा-गर्भवती सती गरभानुभावात्-गर्भप्रभावात मणिना-गर्भस्थरत्नेन भूमिः-वसुन्धरा इव विरेजे-दिदीपे उपमा काव्यलिङ्गं च ॥ आपन्नसत्त्वा स्याद्गुर्विण्यन्तर्वत्नी च गर्भिणी इत्यमरः ॥ गर्भस्तु गरभो भ्रूणो दोहदलक्षणं च

स इत्यभिधानचिन्तामणिः ॥ ७६ ॥

राज्ञे निवेद्याऽऽशयसंशयाप्ति-
मेषा निमेषाद्विनयाद्व्यनैषीत् ।
जहर्ष हर्षातिशयात्कदम्ब-
कदम्बकश्रीर्वपुषा नृपोऽपि ॥ ७७ ॥

अन्वयः-एषा आशयसंशयाप्तिं विनयात् राज्ञे निवेद्य निमेषात् (आशयसंशयाऽप्तिं) व्यनैषीत् (तदनु) हर्षातिशयात् वपुषा कदम्ब कदम्बकश्रीः नृपः अपि जहर्ष ॥ ७७ ॥

व्याख्या---एषा=राज्ञी आशयसंशयाप्तिं=स्वप्नफलविषयकस्वहृदयस्थसन्देहप्राप्तिं 'किमेतेषां (स्वप्नानां) फलं भविष्यतीत्यादिरूप शङ्कामित्यर्थः विनयात्=नम्रतापूर्वकं राज्ञे निवेद्य=सूचयित्वा निमेषात्=अक्षिस्पन्दकालेन आशयसंशयाप्तिं=स्वाप्नफलविषयकशङ्कासम्बन्धं व्यनैषीत्=अपनीतवती पुत्रप्राप्तिरेतेषां फलमितिनृपादाकर्ण्य विगतसंशयाऽभूदित्यर्थः । तदनु हर्षातिशयात्=पुत्रप्राप्तिसम्भावनाजन्याऽतिशयानन्दात् वपुषा=शरीरेण कदम्बकदम्बकश्रीः=कदम्बानां=नीपकुसुमानां कदम्बकस्य=समूहस्य इव श्रीः=शोभा यस्य स तथोक्तः हर्षोत्कर्षाद्रोमाञ्चाऽञ्चितकलेवर इत्यर्थः नृपः=विश्वसेनप्रभृतिमहीपालोऽपि अपिना राज्ञी च. तत्पक्षे 'कदम्बकदम्बकश्रीः' इत्यस्य कदम्बकदम्बकस्येव श्रीर्यस्याः सा तादृशीत्यर्थः । जहर्ष=मुमुदे प्रसन्नमना अभूदित्यर्थः उपमा, काव्यलिङ्गं दीपकं चाऽलङ्काराः'। कदम्बं निकुरम्बे स्यान्नीप-सर्षपयोः पुमान् इतिमेदिनी ॥ ७७ ॥

शुचौ स चैत्रेऽथितिथौ सभाद्रे-
ऽसितेऽन्तिपे पूर्णदिने सचन्द्रे ।

गुणप्रसिद्धेऽवततारदेव-
श्च्युत्वा स्वमार्गोदयनेऽधिकाये ॥ ७८ ॥

अन्वय —स देव. स्वमार्गोदयने(सति)च्युत्वा पूर्णदिनेसचन्द्रे गुणप्रसिद्धे अधिकाये शुचौ असिते अब्धितिथौ (ऋ जी)। भाद्रे असिते अब्धितिथौ (शान्ति.)। अभिद्ये असिते (द्वादश्याम्) (नेमि)। सचैत्रे असिते अब्धितिथौ (पार्श्व)। शुचौ असिते (षष्ठ्या) (वीर)। अवततार ॥ ७८ ॥

व्याख्या—सः=पूर्वोक्तः त्रिदशाऽवतारी देवः=द्योतनात्मक-आत्मा प्रस्तुतकाव्ये वर्ण्यमानस्य तीर्थङ्करपञ्चकस्य जीवात्मा इत्यर्थः स्वमार्गोदयने=स्वस्य=आत्मनः मार्गस्य=शुद्धः=सकल कर्मक्षयज-नितात्मशुद्धेः उदयने=उदये. यद्वा स्वस्य=स्वकीयस्य मार्गस्य=पथः साधनस्य तीर्थकरनाम-कर्म्मरूपस्य उदयने तीर्थङ्करनामकर्मोदये इतिभावः सति च्युत्वा=दिव्यशरीरात् च्यवनं प्राप्य पूर्णदिने=पूर्णम्= अक्षीणं दिनं यस्मिन् तादृशे. 'एकस्मिन् सावने त्वह्नि तिथीनां त्रितयं यदा। तदा दिनक्षयः प्रोक्तः' इत्युक्तलक्षणैकसावनदिनवृत्ति तिथित्र-यात्मकालनाचकदिनक्षयरहिते इति भावः। सचन्द्रे=अनुकूलचन्द्रग्रह-शालिनि. यद्वा 'पूर्णदिनेसचन्द्रे' इति समस्तं तस्य 'पूर्णौ=स्वस्थान-स्थिततयाऽविकलौ अनुकूलावितिभावः दिनेसचन्द्रौ=सूर्याचन्द्रमसौ यस्मिन् तादृशे. रलयोर्डलयोश्चैव श-सयो र्ब-वयोस्तथेति शसयो रेकत्वस्मरणात्। तथा गुणप्रसिद्धे=आध्यात्मिकादि सकलकलाकला-पकलिततयाऽतिवृष्ट्यादिपड्विधेतिभीतिराहित्येन च शान्त्यादिगुण-भूषिते. प्रसिद्धो ख्यात—भूषितौ इत्यमरः। शुचौ=आषाढमासे असि-ते=कृष्णपक्षे, अब्धितिथौ=समुद्रप्रमिततिथौ=चतुर्थ्याम् आषाढ कृष्ण-चतुर्थ्यामित्यर्थः (ऋषभजीवः)। भाद्रे=भाद्रपदमासे असिते=कृष्णे. अब्धितिथौ=सप्तमी तिथौ भाद्रकृष्णसप्तम्यामित्यर्थः (शान्ति०)

जीवः) । अन्विषे=इषात्=आश्विन मासात् अनु=पश्चात् (भवोमासः) अन्विषं तस्मिन् कार्तिकमासीत्यर्थः असिते=कृष्णे. द्वादश्यामिति-शेषः कार्त्तिककृष्णद्वादश्यामित्यर्थः (नेमि० जी०) । सचैत्रे= चैत्रान्विते असितेऽब्धितिथौ चैत्रकृष्णचतुर्थ्यामित्यर्थः (पार्श्वजी०) शुचौ असिते 'षष्ठ्या'-मितिशेषः आषाढकृष्णषष्ठ्यामित्यर्थः (वीर जी०) अवततार=पूर्वोक्ततत्तद्राज्ञीकुक्षौ अवतीर्णः प्रविष्ट इत्यर्थः । पञ्चघटकेषु 'शुचौ, असिते, अब्धितिथौ' इत्येषु पदेषु तन्त्रमावृत्तिर्वा तेन प्रोक्तार्थसङ्घटनम् । शुचिस्त्वयम्-आषाढे इति कृष्णे नीलाऽसित-श्याम० इति चामरः ॥ ७८ ॥

देवावतारं हरिणेक्षितं प्राग्-

द्राग् नैगमेषी नृपधाम नीत्वा ॥

तं स्वादिवृध्या शुभवर्द्धमानं,

सुरोऽप्यनंसीदपहृत्य मानम् ॥ ७९ ॥

अन्वयः—हरिणा प्रागीक्षितं देवावतारं नैगमेषी द्राक् नृपधाम नीत्वा स्वादिवृध्या शुभवर्द्धमानं तं सुरोऽपि मानम् अपहृत्य अनंसीत् ॥ ७९ ॥

व्याख्या-हरिणा-सुरेन्द्रेण प्राक्=पूर्वम् ईक्षितं=दृष्टं देवाऽवतारं= दिव्यांशेनाऽवतीर्णम् प्रस्तुतकाव्ये वर्णनीयं तीर्थकृत्पञ्चकं कृष्णवा-सुदेवं रामबलदेवं च नैगमेषी=तदभिधानादेवता नयविद्या-वणिग्वा द्राक्=शीघ्रं नृपधाम=पूर्वोक्ततत्तन्महीपसदनं नीत्वा=प्रापय्य स्वा-दिवृध्या=धनादिवृध्या शुभवर्द्धमानं=शुभं वर्द्धमानं यस्य यस्माद्वा तं यद्वा शुभेन=(तीर्थकृत्पक्षे)-श्रुतिमत्यवधिज्ञानलक्षणकल्याणेन वर्द्धमा-नम्=वर्द्धिष्णुम् । शुभेन=उत्पत्तेरारभ्य ज्ञानादिलक्षणक्षेमेण वर्द्धते तादृशं तं=वर्णनीयतत्तन्महापुरुषं, मानम्=अहङ्कारम् अपहृत्य=परि-त्यज्य सुरोऽपि=नैगमेषी अपि ननाम=विनयप्रणतोऽभूत् ।

. महावीरपक्षेत्वियान् विशेषः—नैगमेषी हिरण्यनैगमेषी देवः नृपधाम=नीत्वा ऋषभदत्तगृहात् सिद्धार्थराजगृहं प्रापय्य स्वादिवृध्या=गर्भस्थे भगवति ज्ञातकुलस्य धनधान्यादिवर्द्धनेन हेतुना शुभवर्द्धमानं शुभं=जगतां ज्ञातकुलस्य वा कल्याणं वर्द्धते=अन्तर्भावितण्यर्थतया वर्द्धयतीति शुभवर्द्धमानस्तं, यद्वा उत्पत्तेरारभ्य ज्ञानादिभिर्वर्द्धते इति. गर्भस्थेऽस्मिन् ज्ञातकुलं धनधान्यादिभिर्वर्द्धतेऽस्मादिति वा वर्द्धमानः=शुभः जगतांकल्याणावह सचासौ वर्द्धमानः—तदाख्यश्चेतिशुभवर्द्धमानस्तं तादृशं तं महावीरदेवमित्यर्थः ॥ ७९ ॥

येनाऽवतारा विहिता हितारा,
मेयानते विंशतिभिर्नृपेन्द्रैः ॥
श्रद्धादिनासन्नदशाप्रधाना
गुणाभिधानाः श्रुतिसंनिधानाः ॥८०॥
सम्यग्दृशं प्राप्य यदङ्गभाजा ।
ये त्रित्रिकोणैकभवा अवाप्ताः ॥
त एव संख्यामुपयान्ति तेषां ।
यतस्तदन्ये गणनास्वगम्याः ॥ ८१ ॥

अन्वयः—ये अवतारा हितारा न विहिताः तेन मेयाः (किन्तु) यत् अङ्गभाजा सदृशं प्राप्य ये त्रित्रिकोणैकभवा अवाप्ताः विंशतिभिः नृपेन्द्रैः (अभिकाङ्क्षिताः) श्रद्धादिनासन्नदशाप्रधानाः गुणाभिधानाः श्रुतिसंनिधानाः त एव तेषां भवाः संख्यामुपयान्ति यतस्तदन्ये गणनासु अगम्याः ॥ ८० ॥ ८१ ॥

व्याख्या—ये अवताराः=भवाः ताराः=आत्मानं जगन्ति च तारयितुं क्षमाः, यद्वा हिताराः=हितम्=आत्मनोमोक्षरूपकल्याणम् इयति=प्राप्नुवन्तीति ते तादृशा न विहिताः न संवृत्ताः ते=अवतारा न

मेयाः=परिच्छेद्याः संख्येया इत्यर्थः संख्याकरयोग्या नेतियावत्, यतु=किन्तु अङ्गभाजा=त्तीर्थकृदात्मना सम्यग्दृशं=सम्यग्दर्शनं प्राप्य=उपलभ्य सम्यग्दर्शनप्राप्त्यनन्तरमित्यर्थः ये त्रित्रिकोणैक-भवाः=(त्रिकोणं=ज्यौतिषशास्त्रोक्तं लग्नात् नवम-पञ्चमस्थानं तेन चेह 'पञ्च, नव' च संख्या गृह्यते, कोणशब्दो विदिग्वाची तेन चतुः संख्याग्राह्या तथा च)–त्र्यधिकं त्रिसहितं वा त्रिकोणं=नव त्रित्रि-कोणं=द्वादशः तत्सहितम् एकं=प्रथम संख्या त्रित्रिकोणैकं त्रयोदशे-त्यर्थस्तन्मिताः भवाः=अवताराः इत्यादिनाथमभुणा। त्रायाणां संघ स्त्रिकं=त्रित्वसंख्या, त्रिगुणितं त्रिरावृत्तं वा त्रिकं त्रित्रिकं=नवेत्यर्थ-स्तान्मिताः=एके=श्रेष्ठा, भवाः नेमिनाथस्वामिना। त्र्यधिकं त्रियुक्तं वा त्रिकोणं=नवसंख्या त्रित्रिकोणं=द्वादशेत्यर्थ स्तत्प्रमिता एके= मुख्या भवाः श्रीशान्तिनाथस्वामिना। त्र्यधिकात्रिसहिता वा त्रयः त्रित्रयः=षट् तत्सहितः कोणः=चतुःसंख्या त्रित्रिकोणः=दशेत्यर्थस्त-त्परिमिता एके श्रेष्ठा भवाः पार्श्वनाथः स्वामिना। त्रिगुणितं त्रिरावृत्तं वा त्रिकोणं नव संख्या त्रित्रिकोणं सप्तविंशतिरित्यर्थस्तत्परिच्छिन्ना एके=प्रधानभूता भवाः श्रीमहावीरस्वामिना च अवाप्ताः गृही-ताः विंशतिभिः=बहुविंशतिसंख्याकैर्नृपेन्द्रैः-नृपैः-भूतलवार्त्तिमहीपालैः इन्द्रैः=शक्रेन्द्रादिभिश्च 'सादरमभिकाङ्क्षिता' इति शेषः कुसिद्धान्ति-प्रचारितनानाविधाऽऽद्यहिंसादिपापकर्म्माचरणमलीमसशेमुषीमुषितस-ज्ज्ञानानां जनानां देशनावचनैरात्महितसाधनज्ञानरत्नोद्बोधनार्थम-भीप्सिता इत्यर्थः। श्रद्धादिनासन्नदशाप्रधानाः=श्रद्धादिनात्=सम्य-ग्दर्शनप्राप्तिदिवसात् आरभ्य आसन्नदशा=मोक्षदशा प्रधाना=श्रेष्ठा येषां ते यद्वा श्रद्धादिना=श्रद्धा=सम्यक्श्रद्धानं=सम्यग्दर्शनम् आदि-र्यस्य तेन, सम्यग्दर्शनेन आदिपदग्राह्यसम्यग्ज्ञान–सम्यक्चारि-

ग्राभ्यां च, अथवा श्रद्धा=शुद्धिः=सम्यग्ज्ञानादिपरिशीलनजनिताऽऽत्मनैर्मल्यं तदादिना आसन्नदशा=मोक्षदशा आत्मनोमुक्ताऽवस्था प्रधानम्=उद्देश्यतया मुख्यभूता येषां ते, श्रद्धादिनात् आसन्नदशायां प्रधानं=बुद्धिर्येषां ते तादृशाः, गुणाभिधानाः=गुणाः सन्त्यस्मिन्निति गुणम्=अनन्तगुणशालि अभिधानं=कथनं=देशनावचनं येषां ते तथाविधाः श्रुतिसन्निधानाः=श्रुतौ=कर्णेन्द्रिये सन्निधानं=नैकट्यं श्रव्यचरित्रतया येषां ते यद्वा श्रुतौ=प्रवचने सन्निधानं=सामीप्यं वर्णनीयतया येषां ते तथोक्ताः श्रुतीनां=प्रवचनानां सन्निधानाः=शोभनाश्रया इति वा श्रुतीनाम्=आगमानां सतां=सज्जनानां च निधानाः=निधिरूपा इति वा ते=निरुक्तरूपा एव तेषां=प्रस्तुतकाव्यवर्ण्यमानतीर्थङ्कराणां भवाः संख्यां=संख्येयतां यद्वा संख्यां=विचारणां प्रस्तुतकाव्येवर्णनीयतया चर्चामित्यर्थः उपयान्ति=प्राप्नुवन्ति, यतः=यस्माद्धेतोः तदन्ये=अनुपदगणितव्यतिरिक्ता भवाः गणनासु=संख्याने संख्याकरणे अगम्याः=दुरवबोधाः 'गणनास्वगम्याः' इति समस्तपाठ कल्पने गणनायां सुतरामगम्या इत्यर्थः । कालचक्रस्याऽनादिकालतो बम्भ्रम्यमाणशीलतया भवानामसंख्येयतया इयत्तयाऽवगन्तुं दुःशका इत्यर्थः ॥ ८० ॥ ८१ ॥

एवं श्री आदिदेवप्रमुख मुनिमितार्थाऽवतारैः प्रभाव्ये ।
काव्ये श्राव्ये सतां स्वे मनसिविहसतां वीक्ष्य दक्षप्रयत्नम्॥
अर्हद्भक्तिं चिरायुर्विपुलमनुभवं वैभवं राज्यभाजाम् ।
दत्तां चित्राङ्कवार्त्ताऽप्युदयमपि चिरं सप्तधाऽऽविर्भवन्ती॥

इति श्रीसप्तसंधाने महाकाव्ये राज्याङ्के महोपाध्यायमेघविजयगणिविरचिते "अवतारवर्णनोनाम" प्रथमः सर्गः ॥

सेवातु देवातुलकामिनीभि-

श्चक्रे च शक्रेरणया तदीया ॥ २ ॥

अन्वय —शची शुची इति (इमा) तदौचित्यपद विचिन्त्य अमुष्यै शुचीराणि ददौ (किञ्च) शक्रेरणया देवातुलकामिनीभि तदीया सेवा चक्रे॥ २॥

व्याख्या-शची=इन्द्राणी शुची=गर्भस्थाऽनुपमपुत्ररत्नशालितया पवित्रेयम् इति हेतोः इमा तदौचित्यपदं=नेपा=दित्सितसुचीरादीनाम् औचित्यं=न्याय्यं योग्यमित्यर्थः पद=दानीयस्थान विचिन्त्य=विचार्य अमुष्यै=राज्ञ्यै सुचीराणि=मनोहरवस्त्राणि ददौ । किञ्च-शक्रेरणया= इन्द्रप्रेरणया देवातुलकामिनीभिः=अनुपमदेवाङ्गनाभिः तदीया=राज्ञी-सम्बन्धिनीसेवा परिचर्या कुमारभृत्या चक्रे=कृता यमकालंकारः॥२॥

अपौनरुक्त्याद् बहुमौनभाजा,

राजा समाजात् सहसाऽभ्युपेत्य ।

तया समं प्रेमवचोऽपिचोद्यं,

श्रद्धाविशुद्ध्यै निजगाद्सद्यः ॥ ३ ॥

अन्वय·—राजा समाजात् सहसा अभ्युपेत्य अपौनरुक्त्याद् बहुमौन-भाजा तया समं श्रद्धा विशुद्ध्यै चोद्य प्रेमवचोऽपि सद्य निजगाद ॥ ३ ॥

व्याख्या-राजा-पूर्वोक्तो विश्वसेनादिनृपतिः समाजात्-मन्त्रि-सुधी सुहृदादिमण्डलीतः सहसा-अतर्कितम् अभ्येत्य-राज्या अभ्य-र्णमागत्य अपौनरुक्त्यात्-पुनरुक्तस्यभावः पौनरुक्त्यं तथा न इत्य-पौनरुक्त्यं तस्मात् अपुनरुक्तेरित्यर्थः दोहदपूरणेच्छया तदभीप्सित-वस्तुनामाप्रार्थनं मुहुरुक्तयाऽप्रीतिभावः बहुमौनभाजा-लज्जया बहु-चिरं मौनम्-अभाषणशीलता भजतीति बहुमौनभाक् तया स्वदोह-दप्रकटने ह्रिया तूष्णीम्भावमाश्रयन्त्येत्यर्थः. तया-वामाप्रभृतिराज्या समं-सह श्रद्धा विशुद्धे-श्रद्धा-गर्भिणीमनोऽभिलाषस्तस्या विशुद्धौ-यथा-

द्वितीयः सर्गः

—:o:—

सुधाशनानामशनान्यभूवं,
स्तन्व्यास्तनूजाश्रयणेन सम्यक् ।
शय्याऽनुकूला प्रसरद्दुकूला,
मूलात्सचूलाभरणादरेण ॥ १ ॥

अन्वयः—सम्यक् तनूजाश्रयणेन तन्व्या. सुधाशनानाम् अशनानि अभूवन् (अपरं च) प्रसरद्दुकूला आमूलात् सचूलाभरणा आदरेण (उपरचिता) शय्या-अनुकूला (आसीत्) ॥ १ ॥

व्याख्या-सम्यक्=आबाधाराहित्येन तनूजाश्रयणेन=बालस्य गर्भधारणेन तन्व्याः=कृशशरीरायाः राज्ञ्याः सुधाशनानां=सुधाभुजां देवानाम् अशनानि=आहारा अमृतोपमभोजनानीत्यर्थः अभूवन् । अपरं च प्रसरद्दुकूला=प्रसरत्=आस्तीर्णं दुकूलं=श्लक्ष्णवस्त्रं सूक्ष्मवस्त्रं वा प्रच्छदपटस्थानीयतया यस्यां सा तादृशी. आमूलात्=मूलात्=चरणात् चरणधार्यदेशादित्यर्थः आरभ्य मूलपर्यन्तं वा सचूलाभरणा=चूडाभूषणसहिता, अङ्घ्रिधार्यस्थानादारभ्य शिरःस्थान पर्यन्तं यथोचित शयनीयोपकरणकलितेतिभावः आदरेण=स्नेहेन पुत्ररत्नजननयोग्यताशालित्वहेतुकसम्माननेनेत्यर्थः उपरचितेति शेषः शय्या=शयनीयं पल्यङ्को वा अनुकूला=स्वामिरुचिता आसीदिति शेषः. अभूवन्नित्यत्र विभक्तिविपरिणामेन अभूद्वा ॥

अस्मिन्सर्गे षोडशश्लोकपर्यन्तमिन्द्रवज्रावृत्तम् ।
स्यादिन्द्रवज्रा यदितौजगौग इति तल्लक्षणात् ॥ १ ॥

शची सुचीराणि शुचीत्यमुष्यै,
ददौ तदौचित्यपदं विचिन्त्य ।

अन्वय –एव श्रीआदिदेवप्रमुखमुनिमिताऽर्थावतारैः प्रभा ये श्राव्ये काव्ये दक्षप्रयत्न वीक्ष्य विहसता सता स्वेमनसि सप्तधाऽऽविर्भवन्ती चित्राङ्गवार्ता अर्हद्भक्तिश्चिरायु विपुलमनुभवं राज्यभाजा वैभवम् उदयमपि च चिरदत्ताम् ॥८२॥

व्याख्या–उपसंहरति–एवमिति–एवम्=अनेकप्रकारेण श्रीआदिदेवप्रमुखमुनिमिताऽर्थावतारैः=श्रीआदिदेवप्रमुखानां=श्रीमदृषभस्वामिप्रभृतीनां मुनिमितानां=सप्तसंख्यकानाम् अर्थानां=तत्तच्छ्लोकव्याख्यार्थभूतानाम् अवतारैः=आविर्भावैः यद्वा आदिदेवप्रमुखमुनिभिर्मिताः=वाच्यतया परिच्छिन्ना अर्थाः=अभिधेयानि तेषामवतारैः, श्रीआदिदेवप्रमुखैः कृत्वा मुनिमिताः=सप्त अर्थाः=वाच्यानि तेषामवतारैरितिवा प्रभाव्ये=प्रभावार्हे प्रभावशालिनीत्यर्थः। श्राव्ये=व्युत्पत्सुकृते श्रावयितुं योग्ये काव्ये=श्रव्यकाव्ये 'सप्तसन्धाना'भिधाने दक्षप्रयत्नं=सप्तार्थसङ्घटनविषयकनिपुणोद्यमं वीक्ष्य विहसतां=विस्मय हर्ष समुद्भूतस्मितशालिनां सतां=सभ्यानां स्वेमनसि=निजाऽन्तःकरणे सप्तधा सप्तप्रकारेण आविर्भवन्ती=प्रकटी भवन्ती चित्राङ्गवार्ता=चित्रा अनेकविधा अङ्गवार्ता अवयवार्था अर्हद्भक्ति=जिनानुरागं, चिरायुः=चिरजीविताम्, विपुलमनुभवं=विशालज्ञानं,राज्यभाजां वैभवं=राजसम्पदमित्यर्थः। उदयम्=अभ्युदयम् उन्नतिमितियावत् चिरं=बहुकालं दत्ताम्। अपिः समुच्चयार्थः ॥ ८२ ॥

अत्रश्लोकेस्रग्धरावृत्तं म्रभ्नैर्यानांत्रयेणत्रिमुनियतियुता स्रग्धराकीर्तितेयमितितल्लक्षणात्।

इति शास्त्रविशारदकविरत्नभट्टारकाचार्यश्रीविजयामृतसूरीश्वर–प्रणीतायां सप्तसंधानमहाकाव्यीय "सरणी" टीकायां

प्रथमः सर्गः समाप्तः ॥ १ ॥

द्वितीयः सर्गः

—:०:—

सुधाशनानामशनान्यभूवं,
स्तन्व्यास्तनूजाश्रयणेन सम्यक् ।
शय्याऽनुकूला प्रसरद्दुकूला,
मूलात्सचूलाभरणादरेण ॥ १ ॥

अन्वयः—सम्यक् तनूजाश्रयणेन तन्व्याः सुधाशनानाम् अशनानि अभूवन् (अपरंच) प्रसरद्दुकूला आमूलात् सचूलाभरणा आदरेण (उपरचिता) शय्या-अनुकूला (आसीत्) ॥ १ ॥

व्याख्या-सम्यक्=आबाधाराहित्येन तनूजाश्रयणेन=बालस्य गर्भधारणेन तन्व्याः=कृशशरीरायाः राज्ञ्याः सुधाशनानां=सुधाभुजां देवानाम् अशनानि=आहारा अमृतोपमभोजनानीत्यर्थः अभूवन् । अपरं च प्रसरद्दुकूला=प्रसरत्=आस्तीर्णं दुकूलं=श्लक्ष्णवस्त्रं सूक्ष्मवस्त्रं वा प्रच्छदपटस्थानीयतया यस्यां सा तादृशी. आमूलात्=मूलात्=चरणात् चरणधार्यदेशादित्यर्थः आरभ्य मूलपर्यन्तं वा सचूलाभरणा=चूडाभूषणसहिता, अङ्घ्रिधार्यस्थानादारभ्य शिरःस्थान पर्यन्तं यथोचित शयनीयोपकरणकलितेतिभावः आदरेण=स्नेहेन पुत्ररत्नजननयोग्यताशालित्वहेतुकसम्माननेनेत्यर्थः उपरचितेति शेषः शय्या=शयनीयं पल्यङ्को वा अनुकूला=स्वाभिरुचिता आसीदिति शेषः. अभूवन्नित्यत्र विभक्तिविपरिणामेन अभूद्वा ॥

अस्मिन्सर्गे षोडशश्लोकपर्यन्तमिन्द्रवज्रावृत्तम् ।
स्यादिन्द्रवज्रायदितौजगौग इति तल्लक्षणात् ॥ १ ॥

शची सुचीराणि शुचीत्यमुष्यै,
ददौ तदौचित्यपदं विचिन्त्य ।

सेवातु देवातुलकामिनीभि-

श्चक्रे च शक्रेरणया तदीया ॥ २ ॥

अन्वयः—शची शुची इति (इमां) तदौचित्यपदं विचिन्त्य अमुष्यै शुचीराणि ददौ (किञ्च) शक्रेरणया देवातुलकामिनीभिः तदीया सेवा चक्रे॥ २॥

व्याख्या-शची=इन्द्राणी शुची=गर्भस्थाऽनुपमपुत्ररत्नशालितया पवित्रेयम् इति हेतोः इमां तदौचित्यपदं=तेषां=दित्सितसुचीरादीनाम् औचित्यं=न्यायं योग्यमित्यर्थः पदं=दानीयस्थानं विचिन्त्य=विचार्य अमुष्यै=राज्ञ्यै सुचीराणि=मनोहरवस्त्राणि ददौ । किञ्च—शक्रेरणया= इन्द्रप्रेरणया देवातुलकामिनीभिः=अनुपमदेवाङ्गनाभिः तदीया=राज्ञी-सम्बन्धिनीसेवा परिचर्या कुमारभृत्या चक्रे=कृता यमकालंकारः॥२॥

अपौनरुक्त्याद् बहुमौनभाजा,

राजा समाजात् सहसाऽभ्युपेत्य ।

तया समं प्रेमवचोऽपिचोद्यं,

श्रद्धाविशुद्ध्यै निजगाद सद्यः ॥ ३ ॥

अन्वयः—राजा समाजात् सहसा अभ्युपेत्य अपौनरुक्त्याद् बहुमौन-भाजा तया समं श्रद्धा विशुद्ध्यै चोद्यं प्रेमवचोऽपि सद्यः निजगाद ॥ ३ ॥

व्याख्या-राजा-पूर्वोक्तो विश्वसेनादिनृपतिः समाजात्-मन्त्रि-सुधी सुहृदादिमण्डलीतः सहसा-अतर्कितम् अभ्येत्य-राज्ञ्या अभ्य-र्णमागत्य अपौनरुक्त्यात्-पुनरुक्तस्यभावः पौनरुक्त्यं तथा न इत्य-पौनरुक्त्यं तस्मात् अपुनरुक्तेरित्यर्थः दोहदपूरणेच्छया तदभीप्सित-वस्तुनामाख्यातुं सकृदुक्त्याऽपीतिभावः बहुमौनभाजा-लज्जया बहु-चिरं मौनम्-अभाषणशीलतां भजतीति बहुमौनभाग् तया स्वदोह-दप्रकटने ह्रिया तूष्णीम्भावमाश्रयन्त्येत्यर्थः तया-वामाप्रभृतिराज्ञ्या समं-सह श्रद्धा विशुद्ध्यै-श्रद्धा-गर्भिणीमनोरथस्तस्या विशुद्धौ-यथा-

वद्विज्ञाय तत्पूर्त्यै अन्यथा वैद्यकशास्त्रवचनानुसारेण सन्ततेर्वैगुण्याप-त्तिसंभवात् चोद्यम्=अनुयोज्यं दोहदविषयकप्रश्नांशगर्भितं प्रेमवचः=प्रीतिवचनं सद्यः=सपदि निजगाद। आधिकरणिकादिकार्यार्थसमयं प्राप्तावकाशो नरेशः राज्ञीमुपेत्य मनिर्बन्धमनुयुक्तयापि त्रपाभरवशात् स्वदोहददुःखशीलतामभिव्यञ्जितुमपारयन्त्या राज्या सह तदीयदोहदबुभुत्सया चटुवचनैरालापमकार्षीदिति सरलार्थः। 'दोहदं दौर्हृदं श्रद्धा लालसा' इत्यभिधानचिन्तामणिः। अतर्किते तु सहसा इत्यमरः॥ ३॥

चान्द्रीं क्रियां चक्रिरुपेत्य चान्द्री,
सौरी च गौरी दधिरात्मदर्शम्॥
शैपी च योपाभरणाद्यनैपीत्,
तस्या उपास्याविधिरेवमासीत्॥ ४॥

अन्वय—चान्द्री उपेत्य चान्द्रीं क्रियां चक्रि सौरी गौरी च (उपेत्य) आत्मदर्शं दधि शैपी योपाऽऽभरणादि अनैपीत् एवं तस्या उपास्याविधिरासीत्॥ ४॥

व्याख्या—चान्द्री–चन्द्रशक्तिः उपेत्य–राज्ञीसमीपमागत्य चान्द्रीं–चन्द्रसम्बन्धिनीं क्रियां–कार्यम् दिनानुदिनशरीर-लावण्यानुपचयलक्षणं चक्रिः–कृतवती. सौरी गौरी च–तत्तन्नामिका देवी उपेत्य आत्मदर्श–दर्पणं दधिः–धारितवती। शैपी–नागकन्या योपाभरणादि–स्त्रीजनधारणयोग्यभूषण-वसनादिकम् अनैपीत्–उपानीतवती। एवंरूपः तस्याः–राज्याः उपास्याविधिः–देवकन्या-नागकन्यादिकर्तृक परिचर्या प्रकार आसीत् अनुप्रासः॥ ४॥

उच्चामरीवाचमनेन चामरी–
द्वयींदधानाभजतेस्म चामरीम्।

सेवारसान्नाप्सरसस्तदन्तिकं,

जहुर्मुहुर्भक्तिमुहूर्तभावनैः ॥ ५ ॥

अन्वयः—उच्चामरीव अमरी चामरीं द्वयीं दधाना आचमनेन(ता) भजतेस्म अप्सरसः सेवारसात् मुहुर्भक्तिमुहूर्तभावनैस्तदन्तिकं न जहुः ॥ ५ ॥

व्याख्या—उच्चामरीव=चमरी-चामराख्यव्यजनोपयोगि पुच्छशालि महिषाकृतिकमृगविशेषस्त्रीजातिः सैव चामरी उत्-उत्कृष्टा चामरी उच्चामरी सेव अमरी-देवाङ्गना चामरीं-चामर-चमरपुच्छकृतव्यजनसम्बन्धिनीं द्वयीं-द्वितयीं द्वित्वसंख्यां चामरयुगलमित्यर्थः दधाना धारयन्ती आचमनेन-मुखादिप्रक्षालनेन वैधकर्मादिना वा लक्षणया आचमनक्रिया सम्पादनेनेत्यर्थः भजतेस्म-सेवतेस्म । अप्सरसश्च सेवारसात्-परिचर्याजनितानुरागात् मुहुः-अभीक्ष्णं भक्ति मुहूर्तभावनैः-भक्तीनां-गर्भिण्युचितोपचाराणां मुहूर्ते-अल्पकाले मुहूर्तं मुहूर्तमित्यर्थः भावनैः-चिन्तनैः प्रतिक्षणं गुर्विण्युचितोपचारचिन्तन—सम्पादनादिनेत्यर्थः तदन्तिकं-तस्याः-राज्ञ्या अन्तिकं-सदेशदेशं न जहुः-परितत्यजुः । अनुप्रासः ॥ ५ ॥

सांकर्य कार्यं प्रविचार्य वार्यं,

विरोधमुत्सार्य समर्त्तवस्ते ॥

सामान्यमाधायसमा-धिसाग-

धिकारमीयुर्भुविनिर्विकाराः ॥ ६ ॥

अन्वयः—ते समर्त्तवः सांकर्यं कार्यं वार्यं विचार्य विरोधम् उत्सार्य सामान्यमाधाय भुवि निर्विकाराः समाधिसागराधिकारमीयुः ॥ ६ ॥

व्याख्या—ते=प्रसिद्धाः समर्त्तवः=समे=सर्वे ऋतवः='शिशिरः पुष्पसमयो ग्रीष्मो वर्षा शरद्धिमः । माघादिमासयुग्मैस्तु ऋतवः षट्क्रमादिमे' इत्युक्तरूपाः सांकर्यकार्यं=स्वस्वकार्यसांकर्यं, वसन्ते

शिशिरकार्यं शिशिरे च वसन्तसेत्यादिरूपं वार्यं=परित्याज्यं विचार्य विमृश्य विरोधं च उत्सार्य=परिहृत्य सामान्यं=समानतां तुल्यवृत्तित्वामित्यर्थ आधाय=स्वीकृत्य समाधिसाराधिकारं=समाधिना नियमेनव्यवस्थया सारं=न्याय्यं स्वस्वोचितमित्यर्थः अधिकारं=कार्यकारित्वम् यद्वा-समाधिसारं=शान्तिप्रधानम् अधिकरं=नियोगम् ईयुः प्राप्तवन्तः । ऋतवः कीदृशाः ? भुवि=भूतले निर्विकाराः=निः=न सन्ति विकाराः=व्याधयो येभ्यस्ते तथोक्ताः रोगाद्युपद्रवाऽजनकाः॥ समाधिर्नियमे ध्याने नीवाके च समर्थने इति मेदिनी, सारो बले स्थिरांशे च न्याय्ये क्लीबं वरे त्रिषु इत्यमरः ॥ ६ ॥

काचित्तु साचिव्यमलङ्क्रियायां,
दधौ सुरी स्नानविधानतोऽन्या ।
काचित् समस्या धरणात्समस्याः,
पप्रच्छ काप्यच्छधियाऽप्यतुच्छा ॥ ७ ॥

अन्वय.—काचित् सुरी अलङ्क्रियायाम् अन्या (सुरी) स्नानविधानतः काचित् (सुरी) समस्या धरणात् (तस्याः) साचिव्यं दधौ कापि अतुच्छा अच्छधिया समस्याः पप्रच्छ ॥ ७ ॥

व्याख्या—काचित्=अनिर्दिष्टनाम्नी सुरी=सुरीवाचरतीति सुरीयतीति सुरी देवांगनेव देवी परिचारिका अलङ्क्रियायां=प्रसाधनकर्मणि अन्या=अपरा स्नानविधानतः=स्नानादिकर्मसम्पादनविधौ सार्वविभक्तिकस्तसिः । काचित् सुरी समस्या धरणात्=गूढाभिप्रायधारणात् साचिव्यं=साहाय्यं दधौ 'तस्याः' इति शेषः कापि अतुच्छा अहीना=उत्कृष्टा गूढाशयेनि यावत्=अच्छधिया=निर्मलाशयेन समस्याः=गूढाभिप्रायकविषयान् यद्वा राज्ञ्या विदुषितरत्वात् समस्याः= संक्षेपेणोक्तस्य श्लोकपादादेः परकृतेन स्वकृतेन वाऽवशेषेण भागा-

न्तरेण सङ्घटनारूपां गूढाभिप्रायप्रहेलिकादिरूपां वा कविक्रियां पप्रच्छ=अनुयुयोज ॥ ७ ॥

पात्राण्यमर्त्या ननृतुः पदे पदे,
समुन्ननादाऽऽनकदुन्दुभिर्मुदे ।
घनाघनस्य भ्रमतो वदावदे,
मयूरवर्गे नटनान्निसर्गतः ॥ ८ ॥

अन्वयः—आनकदुन्दुभिः मुदे समुन्ननाद अमर्त्याः पात्राणि पदेपदे ननृतुः, घनाघनस्य भ्रमतः वदावदे मयूरवर्गे निसर्गतः नटनात् ॥ ८ ॥

व्याख्या—आनकदुन्दुभिः=आनकः=प्रोत्साहकः दुन्दुभिः=देववाद्यविशेषः मुदे=सुर-नरादीनां प्रीत्यै समुन्ननाद=दध्वान अत एव अमर्त्याः देवाः पात्राणि=नाट्यार्थोऽभिनयशीलनायकादिरूपाः सन्तः पदेपदे=प्रतिस्थानं ननृतुः=नृत्यंकृतवन्तः । यद्वा अमर्त्याः पात्राणि=दिव्यनाट्यार्थाभिनेतॄन् गन्धर्वाद्यप्सरादीन् वा ननृतुः अन्तर्भावितण्यर्थतया नर्तयामासुरित्यर्थः तथाहि—घनाघनस्य=वर्षुकमेघस्य 'वर्षकाब्दो घनाघनः' इत्यमरः भ्रमतः=प्रावृषि नभसि सञ्चरतः सतः वदावदे=मुहुः केकामातन्वाने मयूरवर्गे=मयूरसंहतौ निसर्गतः स्वभावादेव नटनात् नर्तनात् नृत्यप्रवणत्वदर्शनादित्यर्थः ननृतुरित्यर्थः । अत्रोदात्तालंकारः ॥ ८ ॥

दिवानिशं केलिकलाकलापैः,
रालीषु तालीविधिनोपजापैः ।
सख्याः सुदत्या दिवसाः सुखेन,
सुर्यः सतूर्या गमयाम्बभूवुः ॥ ९ ॥

अन्वयः—दिवानिशम् आलीषु केलिकलाकलापैः (तथा) तालीविधिना उपजापैः सुदत्याः सख्याः (राज्ञ्याः) दिवसाः सतूर्याः सुर्यः सुखेन गमयाम्बभूवुः

व्याख्या—दिवानिशं=रात्रिन्दिवम् आलीषु=सखीषु केलिकलाकलापैः=क्रीडाविधानैः नृत्यादिकलाविधानैश्च तथा तालीविधिना=तालीदानेन उपजापैः=उपांशुजपैः रहस्याख्यानैर्वा सुदत्याः=शोभनदशन (दन्त) शालिन्याः सत्याः राज्याः दिवसाः=दिनानि सतूर्याः=वाद्यविशेषसहिताः सुर्यः=देव्यः तत्तुल्याः परिचारिका वा सुखेन=अक्लेशेन गमयाम्बभूवुः=यापयामासुः ॥ ९ ॥

निश्चक्रमुः शक्रमुदा तदेवं,
मासा विलासाऽतिशयान्नवापि ।
समन्विताः सप्तदिनैः पुरोधः,
प्रजप्तमन्त्रैर्मुदितावरोधम् ॥ १० ॥

अन्वय—तदेवं शक्रमुदा (उपलक्षिता) सप्तदिनैः समन्विताः नवापि मासाः विलासाऽतिशयात् पुरोधः प्रजप्तमन्त्रैर्मुदिताऽवरोधं (यथास्यात्तथा) निश्चक्रमुः ॥

व्याख्या—तदेवं शक्रमुदा=इन्द्रहर्षेणोपलक्षिताः सप्तदिनैः समन्विताः समेताः नवापि मासाः विलासातिशयात्=आनन्दाऽतिरेकात् विविध विनोदातिरेकेण वा पुरोधसा=पुरोहितेन प्रजप्तानि=असकृदुच्चारितानि मन्त्राणि शान्तिमन्त्राणि तैः मुदितावरोधं=मुदितः=हृष्टः अवरोधः=अन्तः पुरजनो यस्मिन् कर्मणि तद्यथास्यात्तथा निश्चक्रमुः=निःक्रान्ताः व्यतीता इत्यर्थः ॥ १० ॥

शान्तासु सर्वासु दिशासु रेणु–
र्न रेणुवाधां तु मनाग् व्यधासीत् ॥
दध्वान देवाध्वनि दुन्दुभीनां,
नादः प्रसादो नभसोऽम्भसोऽभात् ॥११॥

अन्वय—सर्वासु दिशासु शान्तासु रेणुः मनाक् रेणुवाधां न व्यधासीत् ।

देवाध्वनि दुन्दुभीनां नादः दध्वान नभसः प्रसादः अम्भसः अभात् (अम्भसः प्रसादो नभसोऽभात् । नभसो ऽम्भसश्च प्रसादोऽभात्) ॥ ११ ॥

व्याख्या—सर्वासु प्राच्यादिषु दिशासु शान्तासु=प्रसन्नासु सतीषु रेणुः=धूलिः मनाक्=अल्पमात्रामपि रेणुबाधां=धूलीवर्षणादिजनितदुःस्थितिं न व्यधासीत्=नाऽकार्षीत् । किञ्च देवाध्वनि=आकाशे दुन्दुभीनां=देववाद्यविशेषाणां नादः दध्वान ध्वनिरजनिष्ट नभसः आकाशस्य प्रसादः=निर्मलत्वादिरूपः अम्भसः अभात् जलस्याभूदित्यर्थः, अम्भसो वा प्रसादः नभसोऽभात् । यद्वा नभसः अम्भसश्च प्रसादोऽभात् उभे अपि प्रसन्ने अभूतामित्यर्थः । निदर्शनालंकारः॥११॥

ग्रहेषु शुद्धोच्चकृताग्रहेषु,
लोकस्पृणे प्रासघृणे ऽनृणे च ॥
लोके पुनश्चित्रकृताऽवलोके,
भावस्तदाऽभूत् सुकृतानुभावः ॥ १२ ॥

अन्वयः—ग्रहेषु शुद्धोच्चकृताग्रहेषु (सत्सु) लोके (च) पुनः लोकस्पृणे प्रासघृणेऽनृणे च चित्रकृतावलोके च (सति) तदा सुकृतानुभावः भावः (लोकानाम्) अभूत् ॥ १२ ॥

व्याख्या—ग्रहेषु=सूर्यादिसप्तग्रहेषु शुद्धोच्चकृताग्रहेषु=शुद्धे=निर्दोषे उच्चे=उच्चस्थाने मेषादिराशिस्थाने कृतः आग्रहः=सम्यक्स्थितिर्यैस्ते शुद्धोच्चकृताग्रहास्तेषु तादृशेषु यद्वा शुद्धाः=सूर्यगत्यादिवैगुण्यरहिताः ते च ते उच्चकृताग्रहाश्चेति शुद्धोच्चकृताग्रहास्तेषु तादृशेषु सत्सु अत्रेदंबोध्यम् 'अर्काद्युच्चान्यजवृषमृगकन्याकर्कमीन दिग्दहनाष्टाविंशतितिथीषुनक्षत्रविंशतिभिः ॥ ११ ॥ स्वोच्चतः सप्तमंनीचमिति आरम्भसिद्धौ गणिद्वारे । इति सूर्यादीनां सप्तानां ग्रहाणां मेषवृषभादयोराशयो यथाक्रममुच्चस्थानानि, स्व स्व तुङ्गापेक्षया सप्तम-

स्थानानि च नीचानि. तत्रोच्चेष्वपि दशमादयो राशित्रिंशांशा यथा-क्रममुच्चेषु परमोच्चा नीचेषु परमनीचा इति तदर्थः ! अत्रांश स्त्रिंशो-भागः । यथाह नारदः—त्रिंशद्भागात्मकं लग्नम् इति । सूर्यप्रत्यासत्ति-र्ग्रहाणामस्तमयो नाम । तदुक्तं लघुजातके—रविणाऽस्तमयो योगो-वियोगस्तूदयोभवेत्' इति । ते च स्वोच्चस्थाः फलन्ति नास्तगा नापि नीचगाः । तदुक्तं राजमृगाङ्के—स्वोच्चे पूर्णं, स्वर्क्षकेऽर्धं, सुहृद्भे पादं, द्विड्भेऽल्पं, शुभंखेचरेन्द्रः । नीचे स्थायी नास्तगो वा न किञ्चो-त्पापं नूनं स्वत्रिकोणे ददाति।इति अत उक्तं 'शुद्धोच्चकृताग्रहेष्विति। एवं च सति यस्य जन्मसमये पञ्चादिकाग्रहाः स्वोच्चास्थाभवन्ति स एव तुङ्गोभवति । तदुक्तं कूटस्थीये—सुखिनः प्रकृष्टकार्या राजप्रति-रूपश्च राजानः। एक द्वि-त्रि चतुर्था जायन्तेऽतः परं दिव्याः । इति' लोके=जने च लोकम्पृणे=जनतानन्दविधायिनि, प्राप्तघृणे=दीनाऽना-थजनविषयकाऽनुग्रहशालिनि अधिगतावद्यकर्म्मकारुण्ये वा 'कारुण्यं करुणा घृणा इत्यमरः' । अनृणे=समृद्धिसम्पन्नतयाऽऽधमर्ण्यरहिते, चित्रकृताऽवलोके=सचित्रीकृतावलोके च सति सुकृताऽनुभावः=' सुकृतं=पुण्यं तज्जनककर्म्मादीत्यर्थः अनुभावयति=चिन्तयतीति स तादृशः भावः=स्वभावः अभिप्रायो वा चेष्टा वा तदा लोकानामि-तिशेषः अभूत् । अन्त्यानुप्रासः भावः सत्ता स्वभावाऽ-भिप्रायचेष्टा-त्म जन्मसु इत्यमरः ॥ १२ ॥

आरोग्य-भाग्या-ऽभ्युदया जनानां,
प्रादुर्बभूवुर्विगतैजनानाम् ॥
वेपाविशेषान्मुदिताननानां,
प्रफुल्लभावाद्भुवि काननानाम् ॥ १३ ॥

अन्वय —भुवि विगतैजनानां वेषाविशेषान्मुदिताननानां जनानां (विगतैजनानां) प्रफुल्लभावात् काननानां (च) आरोग्य-भाग्या-ऽभ्युदयाः प्रादुर्बभूवुः ॥ १३ ॥

व्याख्या—भुवि=भूतले, विगतैजनानां=विगतं=निवृत्तम् एजनं=कम्पनं परिपन्थ्यादिजनितत्रासमम्भूतगात्रादिकम्पो येषां ते यद्वा विशेषेण गतं=प्राप्तम् एजनं=कम्पः=शृङ्गारादिरसाऽनुगुणः सात्विकभावविशेषो यैस्ते तेषाम् तत्रत्यानां जनानां रसिकत्वाच्छृङ्गारसमुद्भव एव कम्पो न वैरिप्रभवोऽपि समजनिष्ट । काननपक्षे—विगतम् एजनं= महावातादिजनितो महाकम्पो येषां ते तादृशानां यद्वा विभिः=पक्षिभिः गतं=प्राप्तम् एजनं=कम्पो यैस्ते तेषां तथोक्तानाम् । वेषाविशेषात्=वेषस्य=नेपथ्यस्य भूषणवसनादिभिरात्मप्रसाधनस्य आ= सर्वतोभावेन विशेषात्=अतिशयात् मुदिताननानाम्=प्रसन्नमुखानाम् यद्वा वेषस्य=वसनाऽलङ्कारणादिना निजपरिष्करणस्य अविशेषात्= साधारणात् मण्डनां-ऽशुकादिसामान्ये सत्यपि मुदिताननानाम्= प्राकृतसौन्दर्यसम्पन्नतया सदा प्रसन्नवदनानाम् जनानां=लोकानाम् । प्रफुल्लभावात्=मकरन्दविन्दुमिलिन्दगुञ्जित-पुष्प-पल्लव-फलसमृद्धतया विकसितत्वात् काननानां=वनानां च आरोग्य-भाग्या-ऽभ्युदयाः= आरोग्यं=नैरुज्यं, भाग्यम्=अनुकूलदैव (त्व)म् अभ्युदयः धनधान्यादिवृद्धिः, काननपक्षे च—आरोग्यं=(रुजनं) रोगः=भञ्जनमामर्दनम् स नास्त्यस्यासौ अरोगस्तस्यभावस्तथा) हस्त्यादिकर्तृकशाखाभङ्ग समूलोन्मूलनादिराहित्यम्, भाग्यं=शोभनाधिपतिशालितया, अभ्युदयः=फलपुष्पादिसमृद्धिः प्रादुर्बभूवुः=प्रकटीबभूवुः । अन्त्याऽनुप्रासः तुल्ययोगिता श्लेषश्चालङ्काराः ॥ १३ ॥

प्रीत्या विशिष्टा नगरेषु शिष्टाः,
कारविकारा न कृताधिकाराः ।

बाधा नवाऽधान्नरकेऽसुरोऽपि।
परोऽपि नारोपितवान् प्रकोपम् ॥१४॥

अन्वयः—नगरेषु शिष्टाः प्रीत्या विशिष्टाः, कृताधिकाराः काराविकारा न (आसन्) नरके (नैरयिकजीवेषु) असुरोऽपि बाधा नाऽधात् । परोपि प्रकोपं (कस्यापिविषये) नारोपितवान् ॥ १४ ॥

व्याख्या—नगरेषु शिष्टाः=तत्तत्कर्मणि नियोजिता अधिकारिजनाः सज्जना वा प्रीत्या=हर्षेण विशिष्टाः=युक्ताः, कृताधिकाराः=कारागाराधिकृतपुरुषाः काराविकाराः=कारा=बन्धनालयः लक्षणया तद्बद्धपुरुषास्तद्विषये विकारः=प्रकृतेरन्यथाभावः क्रुद्धत्वचण्डत्वादिरूपो येषां ते तथाविधा न आसन्निति शेषः । नरके=रत्नप्रभादौ 'नैरयिकजीवेषु' इति शेषः असुरोऽपि=परमाधार्मिकोऽपि बाधाः=नारकीयपीडाः न अधात् । परः=अन्यः शास्त्रवादिरपि प्रकोपं=प्राचण्ड्यं नारोपितवान् कस्यापिविषये नोपयोजितवान् सोऽपि प्रशान्तस्वभावोऽभूदितिभावः। वृत्त्यनुप्रासः, दीपकम्, अर्थापत्तिश्चालङ्काराः॥ कारा स्याद्बन्धनालये इत्यमरः ॥ १४ ॥

मृगेऽङ्गसारेऽर्कविदोः प्रभादौ,
कर्कोदये देवगुरोः सुधांशोः ।
शनेस्तुलाभे वृषभे सुकाव्ये,
तमोव्ययेऽभूज्जिनदेवजन्म ॥ १५ ॥

अन्वय.—अङ्गसारे मृगे अर्कविदोः प्रभादौ कर्कोदये देवगुरोः सुधांशोः शनेः तुलाभे सुकाव्ये वृषभे व्यये तमः जिनदेवजन्म अभूत् ॥ १५ ॥

व्याख्या—अङ्गसारे तनुभावे मृगे मकरे अर्कविदोः सूर्यबुधयोः स्थितयोः प्रभादौ प्रकृष्टश्चासौभश्चेति प्रभः सआदिर्यस्य तस्मिन् प्रभादौ प्रकृष्टनक्षत्रादौ कर्कोदये कर्कराशौ देवगुरोः बृहस्पतेः सुधांशोश्चन्द्रस्य

स्थितिसत्वे सतीतिशेषः तुलाभे तुलाराशौ नक्षत्रे शनेः शनैश्चरस्य वृषभे वृषनक्षत्रे सुकाव्ये शुक्रे व्यये व्ययस्थाने तमः राहुः एतत्समये जिनदेवजन्म जिनेन्द्राणां जनिः अभूत् अजनिष्ट ॥ १५ ॥

ज्येष्ठेऽसिते विश्वहिते सुचैत्रे,
वसुप्रमे शुद्धनभोऽर्थमेये ।
साङ्के दशाहे दिवसे सपोषे,
जनिर्जिनस्याऽजनि वीतदोषे ॥ १६ ॥

अन्वयः—वीतदोषे, ज्येष्ठेऽसिते विश्वहिते (शान्तेः) । सुचैत्रेऽसिते वसुप्रमे (ऋषभस्य) । शुद्धनभोऽर्थमेये (नेमेः) । सपोषेऽसिते दशाहे (पार्श्वस्य) । सुचैत्रे सिते विश्वहिते (वीरस्य) सुचैत्रे सिते साङ्के (रामस्य) । (भाद्रे) असिते वसुप्रमे (कृष्णस्य) जिनस्य जनिः अजनि ॥ १६ ॥

व्याख्या—वीतदोषे=वीताः=अपगताः दोषाः=ग्रहवैगुण्यादिरूपा यत्र तादृशे, ज्येष्ठेऽसिते=कृष्णपक्षे विश्वहिते=त्रयोदशीतिथौ ज्येष्ठकृष्णत्रयोदश्यामित्यर्थः श्रीशान्तिनाथाख्यस्य । सुचैत्रे=चैत्रमासे असिते, वसुप्रमे=अष्टमीतिथौ चैत्रकृष्णाष्टम्यामित्यर्थ ऋषभनाम्नः । शुद्धनभोऽर्थमेये=शुद्धस्य=शुभ्रस्य वर्द्धिष्णुचन्द्रचन्द्रिकाधवलितस्य नभसः=श्रावणमासस्य अर्थमेये=पञ्चमीतिथौ श्रावणशुक्लपञ्चम्यामित्यर्थः श्रीनेमिनाथाभिधानस्य । सपोषे=पौषमासेऽसिते, दशाहे=दशमीतिथौ पौषकृष्णदशम्यामित्यर्थः श्रीपार्श्वनाथनामधेयस्य । सुचैत्रे सिते=शुक्लपक्षे विश्वहिते चैत्रशुक्लत्रयोदश्यामित्यर्थः श्रीवीरविभुस्वामिनः । सुचैत्रे सिते=शुक्लपक्षे साङ्के=दिवसे अङ्कमिततिथौ नवमीतिथौ चैत्रशुक्लनवम्यामित्यर्थः श्रीरामचन्द्रबलदेवस्य । असिते वसुप्रमे 'भाद्रे' इति शेषः भाद्रकृष्णाष्टम्यामित्यर्थः कृष्णवासुदेवस्य । जिनस्य=रागादिजेतृत्वात् तच्छीलस्य जनिः=जन्म अजनि=अभूदित्यर्थः॥

अत्र 'असिते, विश्वहिते, सुचैत्रे वसुप्रमे' इत्येतेषु पदेषु 'सितें' इतिच्छेदपक्षे तत्र च तन्त्रमावृत्तिर्वा तेनोक्तार्थ लाभः ॥ १६ ॥

उक्तार्थमेव व्यासेन स्पष्टमाह—

मधावष्टम्यां तन्नवमदिवसे विश्वमहिते-
ऽसिते ज्येष्ठे पञ्चम्यहनिनभसो भाद्रवहुले ॥
तदष्टम्यां पोषे दशमदिवसे प्रौढविभवै-
र्महोत्साहे पूर्वं प्रसरति विभोर्जन्मसमयः ॥१७॥

अन्वयः—पूर्वं प्रौढविभवैः महोत्साहे प्रसरति सति मधौ असितेऽष्टम्याम् (ऋषभस्य)। ज्येष्ठे असिते विश्वमहिते (शान्तिनाथस्य)। नभसः पञ्चम्यहनि सिते (नेमिनाथस्य)। पोषेऽसिते दशमदिवसे (पार्श्वस्य)। मधौ सिते विश्वमहिते (वीरस्य)। मधौ सिते तन्नवमदिवसे (रामस्य)। भाद्रबहुले तदष्टम्यां (श्रीकृष्णस्य)। विभोर्जन्मसमयः (आसीत्)

व्याख्या—पूर्वं=जननात्प्राक् प्रौढविभवैः=प्रौढैः गर्भवासादारभ्यानुदिनमुत्तरोत्तरं प्रवृद्धैः, यद्वा निपुणैः समस्तजनताभरणक्षमैरित्यर्थः विभवैः=धनधान्यसमृद्धिभिः महोत्साहे=प्रभूतोत्साहे सर्वजनानामिति शेषः प्रसरति=व्याप्नुवति सति। मधौ=चैत्रमासे असिते=कृष्णपक्षे अष्टम्याम्=अष्टमीतिथौ चैत्रकृष्णाष्टम्यामित्यर्थः ऋषभस्वामिनः। ज्येष्ठे=वैशाखमासाव्यवहितोत्तरवर्तिमासे, असिते, विश्वमहिते=त्रयोदशीतिथौ ज्येष्ठकृष्णत्रयोदश्यामित्यर्थः शान्तिनाथस्य। नभसः=श्रावणमासस्य सिते=शुक्लपक्षे पञ्चम्यहनि=पञ्चमीतिथौ श्रावणशुक्लपञ्चम्यामित्यर्थः नेमिनाथस्वामिनः. पोषे=सहस्यमासे मार्गशीर्षमासाव्यवहितोत्तरवर्तिमासे असिते=शुक्लेतरपक्षे, दशमदिवसे=दशमीतिथौ पौषकृष्णदशम्यामित्यर्थः पार्श्वनाथस्य। मधौ सिते=कृष्णेतरपक्षे विश्वमहिते चैत्रशुक्लत्रयोदश्यामित्यर्थः श्रीवर्द्धमानस्वामिनः।

मधौ सिते=शुभ्रपक्षे तन्नवमदिवसे=नवमीतिथौ चैत्रशुक्लनवम्या मित्यर्थः श्रीरामचन्द्रबलदेवस्य । भाद्रबहुले=भाद्रस=भाद्रपदमासस्य बहुले=कृष्णपक्षे तदष्टम्यां भाद्रकृष्णाष्टम्यामित्यर्थः श्रीकृष्णवासुदेवस्य । विभोः=प्रभोः जन्मसमयः=उत्पत्तिकालः आसीत् । अत्रापि 'मधौ, विश्वमहिते, असिते' इत्येतेषु पदेषु 'सिते' इतिच्छेदकल्पने तत्पदे च तन्त्रमावृत्तिर्वा तेनोक्तार्थलाभः । स्याच्चैत्रे चैत्रिकोमधुः इति. श्रावणे तु स्यान्नभाः श्रावणिकश्च सः इति. कृष्णे नीला-ऽसित-श्याम-काल-श्यामल-मेचकाः इति. शुक्ल-शुभ्र-शुचि-श्वेत-विशद-श्येत-पाण्डराः । अवदातः सितोगौर इति. स्युर्नभस्य प्रौष्ठपद-भाद्र-भाद्रपदाः समा इति. पौषे तैप-सहस्यौ द्वौ इति चामरः। बहुलः कृष्णपक्षेऽग्नौ ना. त्रिषु प्राज्य-कृष्णयोः ॥ मेदिनी ॥ अत्र श्लोके शिखरिणीवृत्तम् रसैरुद्रैश्छिन्ना यमनसभलागः शिखरिणीति लक्षणात् ॥ १७ ॥

मधुशुचिपरभाद्रे, सन्नभस्संनियोगे
वसुनवनिधिविश्वानन्दिपंश्चाङ्किते ऽह्नि ।
सहपरदशमानाद्युत्सवे जायमाने–
ऽजनि रजनिविरामे जन्म हर्षाज्जनन्याः ॥१८॥

अन्वयः—मधुशुचिपरभाद्रे सन्नभः सन्नियोगे वसुनवनिधिविश्वानन्दिपंचाङ्किते ऽह्नि सहपरदशमानाद्युत्सवे जायमाने सति जनन्याः हर्षात् रजनिविरामे जन्म अजनि ॥ १८ ॥

व्याख्या—मधुशुचिपरभाद्रे मधुश्चैत्रः शुचिपरः शुचिराषाढः परोऽग्रे यस्मात् स शुचिपरो ज्येष्ठः भाद्रः भाद्रमासः तस्मिन् सन्नभः सन्नियोगे सन् शोभनश्चासौ नभसः श्रावणस्य सन्नियोगः संबन्ध स्तस्मिन् तयोक्ते वसुनवनिधिविश्वानन्दिपंचांकितेऽह्नि तथा च मधो-

श्चैत्रस्य वस्वंकिते चैत्रकृष्णाष्टम्यां श्रीमदृषभस्वामिनः एवं चैत्रशुक्लनवसंख्यांकितेऽह्नि रामचन्द्रस्य शुचिपरे ज्येष्ठे विश्वानन्दि त्रयोदश्यंकिते ज्येष्ठकृष्णत्रयोदश्या शान्तिनाथस्य भाद्रे वस्वंकितेऽह्नि भाद्रकृष्णाष्टम्यां कृष्णस्य सन्नभः मन्नियोगेपञ्चांकिते श्रावणशुक्लपञ्चम्यां श्रीनेमिनाथस्य मधुविश्वानन्दयकितेऽह्नि चैत्रशुक्लत्रयोदश्यां श्रीवीरप्रभोः सहपरदशमानादौ सहसः सहपरः पौषस्तस्यदशमानादौ अङ्किते पौषकृष्णदशम्यां श्रीपार्श्वनाथस्य जनन्यामातुः हर्षात्प्रमोदात् उत्सवे महोद्भवे जायमाने क्रियमाणे सति रजनि विरामे निशावसाने जनिरुत्पत्तिर्जन्मेत्यर्थः अजनि अभूत् ॥ १८ ॥ अत्रश्लोकेमालिनीच्छन्दः ननमयययुतेयंमालिनीभोगिलोकैरितिवल्लक्षणात् ॥



यो लक्ष्मणासंगत एव देवो,

गवाऽद्भुतत्विड् हरिणात्मनाऽयम् ।

सुरर्पभाऽर्च्यक्रमवारिजेन,

रराज राजव्रज पूज्यमूर्त्तिः ॥ १९ ॥

अन्वय —राजव्रजपूज्यमूर्त्ति अद्भुतत्विद् हरिणात्मना (उपलक्षित) यः देवः गवालक्ष्मणा सगत एव अयम् सुरर्पभार्च्य क्रमवारिजेन रराज ॥ १८ ॥

व्याख्या—राजव्रजपूज्यमूर्त्तिः=राज्ञां महीपतीनां व्रजेन=समूहेन पूज्या=अर्हणीया मूर्त्तिः=शरीरं स्वरूपं यस्य स तथोक्तः, अद्भुतत्विड्=अद्भुता=लोकातिशायितयाऽऽश्चर्यकारिणी त्विद्=कान्तिर्यस्य स तादृशः हरिणात्मना=हरिणस्य=विष्णोरिव शिवस्येव वा उदारः आत्मा=स्वभावः बुद्धिर्वा तेन यद्वा हरिणा=स्वर्णेन स्वर्णसच्छायेनेत्यर्थः अथवा हरिणा=पीतेन हरिद्राभच्छविच्छुरितेनेत्यर्थः आत्मना=देहेन । उपलक्षितः यः देवः=दीप्तिमान् घात्यन्तरायादिकर्मविजिगीषुर्वा श्रीमान् ऋषभदेवः गवा=वृषभेण वदाकृति-

केनेत्यर्थः लक्ष्मणा=लाञ्छनेन संगतः=युक्तः अयम्=असौ सुरर्षभार्च्यक्रमवारिजेन=सुरर्षभैः=शक्रेन्द्रादिभिः अर्च्येन=पूजनीयेन क्रमवारिजेन=चरणारविन्दद्वन्द्वेन रराज=शुशुभे । गोष्ठा-ऽध्व-निवहा व्रजाः इति. मूर्त्तिः काठिन्य-काययोरितिचामरः ।

शान्तिनाथपक्षे—गवाद्भुतत्विड्=गोः=सूर्यस्येव अद्भुता त्विड् यस्य सः, राजव्रजपूज्यमूर्त्तिः=वर्णितार्थः यः देवः शान्तिनाथस्वामी हरिणात्मना=मृगरूपेण लक्ष्मणा=चिह्नेन संगतः अयं सुरर्षभार्च्यक्रमवारिजेन रराज । गौः स्वर्गे च बलीवर्दे रश्मौ च कुलिशे पुमान् । स्त्री सौरभेयीदृग्बाणदिग्वाग्भूष्वप्सुभूम्नि चेतिमेदिनी । कलङ्का-ऽङ्कौ लाञ्छनं च चिह्नं लक्ष्म च लक्षणमित्यमरः ।

नेमिनाथपक्षे—गवाद्भुतत्विड्=गवोः=नेत्रयोः अद्भुतात्विड्=शोभायस्य सः यद्वा गोषु=इन्द्रियेषु विषये अद्भुता=ऽसाधारणतया विस्मयजननी त्विड्=व्यवसायः=निग्रहोद्यमो जिगीषा वा यस्य स तथोक्तः । हरिणा=हरित्कान्तिशालिना अञ्जनाभेनेत्यर्थः आत्मना=शरीरेण उपलक्षितः राजव्रजपूज्यमूर्त्तिः यः देवः श्रीनेमिनाथप्रभुः सुरर्षभार्च्यक्रमवारिजेन=सुरर्षभैः=शक्रेन्द्रादिभिरर्च्ययोः क्रमयोः=चरणयोः वारिजेन=शङ्खेन तदाकृतिकेन लक्ष्मणा संगतः रराज । गौरुदके दृशि स्वर्गे दिशि पशौ रश्मौ वज्रे भूमाविषौगिरि रित्यनेकार्थसंग्रहः त्विट् शोभायां जिगीषायां व्यवसाये रुचौ गिरि इति हैमः । हरिर्दिवाकरसमीरयोः यमवासवसिंहांशुशशांककपिवाजिपु पिंगवर्णे हरिद्वर्णेभेकोपेन्द्रशुकाहिषु इत्यनेकार्थ संग्रहः । आत्मा यत्नो धृतिर्बुद्धिः स्वभावो ब्रह्म वर्ष्म च इत्यमरः ।

पार्श्वनाथपक्षे—गवाद्भुतत्विड्=गवि=वाचि देशनावचने अद्भुता=सुरनरविस्मयजनिका त्विड्=छटा यस्य सः तीर्थकृतां वच-

नातिशयशालित्वात् । हरिणा=हरिद्वर्णेन इन्द्रनीलमणिमेचकच्छवि-नेत्यर्थः आत्मना=देहेन उपलक्षितः राजव्रजपूज्यमूर्त्तिः यः देवः हरिणा=सर्पेण तदाकारेण लक्ष्मणा=लाञ्छनेन संगतः अयं सुरपभार्च्यक्रमवारिजेन=इन्द्रार्चनीयचरणक्रमलेन रराज ।

महावीरस्वामीपक्षे—गवाद्भुतत्विट्=गवि=भूमौ देशनाकालिकस्वाश्रय क्षेत्रे इत्यर्थः अद्भुता=विस्मयावहा त्विट्=प्रभा 'भामण्डल' रूपा यस्य सः । आत्मना=धृत्या सचित्तेन वा सद्बुध्या वा उपलक्षितः राजव्रजपूज्यमूर्त्तिः यः देवः श्रीवर्द्धमानस्वामी हरिणा=सिंहेन तदाकारकेण लक्ष्मणा संगतः अयं सुरपभार्च्य क्रमवारिजेन रराज । आत्मा चित्ते धृतौ यत्ने धिषणायां कलेवरे । परमात्मनि जीवेऽर्के हुताशनसमीरयोत्यनेकार्थसंग्रहः ॥

रामपक्षे—गवाद्भुतत्विट्=गवि=बाणेऽद्भुता वीरविस्मयकरी त्विट्=दीप्तिर्यस्य सः गवि=भूमौ अद्भुता त्विट्=जिगीषा यस्य सः राजव्रजपूज्यमूर्त्तिः यः देवः श्रीरामचन्द्रबलदेवः हरिणा=कपिना= हनूमता तथा लक्ष्मणासंगतः=लक्ष्मणेन=सौमित्रिणा आ=सर्वतोभावेन संगतः=मिलितः अयं सुरपभार्च्यक्रमवारिजेन=देवेन्द्रसमभ्यर्च्य चरणकमलशालिना आत्मना शरीरेण रराज ।

कृष्णपक्षे—गवाद्भुतत्विट्=गवि=पृथिव्यां गोषु=धेनुषु वा विषये अद्भुता=सर्वाश्चर्यकारी त्विट्=व्यवसायो रक्षणात्मको यस्य सः गवोः=दृशोः अद्भुता त्विट्=सर्वमोहिनी शोभा यस्य स इति वा राजव्रजपूज्यमूर्त्तिः, सुरपभार्च्यक्रमवारिजेन=शक्रसंपूज्यपदाम्बुजशोभिना आत्मना=शरीरेण उपलक्षितः. यः देवः श्रीकृष्णचन्द्रनामा वासुदेवः अयं हरिणा=गरुडेन लक्ष्मणा=लाञ्छनेन ध्वजेन संगतः= वदनीयतया सम्बद्धः रराज=दिदीपे ॥

शब्दार्थोभयश्लेषः । तुल्ययोगिता—

गौः स्वर्गे च बलीवर्दे किरण-क्रतुभेदयोः । स्त्री तु स्याद्दिशि-भारत्यां भूमौ च सुरभावपि । नृस्त्रियोः स्वर्ग-वज्रा-ऽम्बु-रश्मि-दृग्-बाण-लोमसु इतिमेदिनी ॥ १९ ॥

इन्द्रा-ऽश्वे-भ-शुक-प्लवा ऽहि-पवन-स्वर्णां ऽशु-लोकान्तरैः,
भा-ऽरि-ध्रुव-कपी-न्दु-पीत-गरुड-श्री-शुक्र-विष्णव-कँजैः॥
सूत-स्कन्द-शनी-श-वंश-वरुण-प्राणा-ऽग्नि-भीता-ऽसितैः।
रथैस्त्वां हरिजैः क्षमाञ्जिनपते त्रिंशन्मितैः स्तौम्यहम् ॥

सारूप्यमारोप्य दिशां कुमार्यः,
स्मेराम्बुजाक्षीषु मनस्विनीषु ।
रम्भालयेषु त्रिषु देवदेवं—
नीत्वा स्वरागात्स्नपयाम्बभूवुः ॥२०॥

अन्वयः—दिशां कुमार्यः स्मेराम्बुजाक्षीषु मनस्विनीषु सारूप्यमारोप्य (राम-कृष्णपक्षे-कुमार्यः स्मेराम्बुजाक्षीषु मनस्विनीषु=दिशां सारूप्यमारोप्य) त्रिषु रम्भालयेषु देवदेवं नीत्वा स्वरागात्स्नपयाम्बभूवुः ॥ २० ॥

व्याख्या—दिशांकुमार्यः=अष्टौ दिक्कन्यकाः स्मेराम्बुजाक्षीषु=विकसितकमलसदृशलोचनशालिनीषु मनस्विनीषु=स्त्रीषु सारूप्यम्=समानरूपताम् एकरूप्यमित्यर्थः आरोप्य=कृत्वा स्त्रीणां रूपाणि विधायेत्यर्थः । राम=कृष्णपक्षे—कुमार्यः=कन्याकाः स्मेराम्बुजाक्षीषु मनस्विनीषु=स्त्रीषु दिशां सारूप्यं=भूषणवसनादिना समानरूपं विधाय। त्रिषु रम्भालयेषु=मङ्गलार्थन्यस्तकदलीस्तम्भशालिभवनेषु यद्वा रम्भा-स्तम्भादिसम्भारविरचितमाङ्गल्यगृहत्रितये देवदेवं=देवेषु मध्ये दीव्य-ति=द्योतते इतिदेवदेवस्तं नीत्वा=प्रापय्य स्वरागात्-स्वभक्त्या स्नपयाम्बभूवुः-स्नानक्रियां सम्पादयामासुः ॥ २० ॥

काश्चिद् भुवः शोधनमादधाना,
जलानि पुर्यां ववृपुः सपुष्पम् ।
छत्रं दधुः काश्चन चामरेण,
तं वीजयन्तिस्म शुचिस्मितास्या ॥२१॥

अन्वयः—काश्चिद् (कन्यकाः) भुवः=शोधनम् आदधानाः पुर्यां सपुष्पं जलानि ववृपुः शुचिस्मितास्याः काश्चन छत्रं दधुः (काश्चन) चामरेण तं वीजयन्तिस्म ॥ २१ ॥

व्याख्या—काश्चिद् कन्यकाः भुवः=स्थानस्य शोधनं=सम्मार्जन्या दिनाऽवकरनिकरनिरसनाद्यात्मकं सस्कारकर्म आदधानाः=कुर्वन्त्यः पुर्यां=नगर्यां सपुष्पं=पुष्पोपहारसहितं जलानि=केतकीशतपत्र्याद्यधिवासितसुगन्धिसलिलानि ववृपुः=वृष्टवत्यः अभिषिषिचुरित्यर्थः । शुचिस्मितास्याः=शुचि=अनवद्यं स्मितं=मन्दहसितं यस्मिन् तादृशमास्यं=वदनं यासां तास्तथोक्ताः काश्चन कन्यकाः छत्रम्=आतपत्रं दधुः=धारितवत्यः । काश्चन चामरेण=चमरमृगपुच्छरचितव्यजनेन तं देवदेवं वीजयन्तिस्म=व्यजनसञ्चालनकर्म कुर्वन्तिस्मेत्यर्थः ॥ २१ ॥

उद्दीप्य दीपानपराः परेश-
श्चक्रुश्च वालव्यजनेन वातम् ।
मणीमयादर्शकराः परास्ताः,
पुरस्सरा गीतविधिं वितेनुः ॥ २२ ॥

अन्वयः—अपराः (दिक्कन्यकाः) दीपान् उद्दीप्य परेशः वालव्यजनेन वातं चक्रुः पराः ताः (दिक्कन्याः) मणीमयादर्शकराः पुरस्सराः गीतविधिं वितेनुः ॥

व्याख्या—अपराः दिक्कन्यकाः दीपान् उद्दीप्य=प्रज्वाल्य परेशः=परमेशितुः जिनस्य वालव्यजनेन=लघुनावृन्तेन चामरेण वा

वातं=पवनं चक्रुः=चालयामासुरित्यर्थः। पराः=अन्याः ताः=पूर्वोक्ताः दिक्कन्याः मणीमयादर्शकराः=हस्तनिहितमणिखचितदर्पणाः सत्यः पुरस्सराः=अग्रेसराः गानक्रियायांअग्रीयाभूत्वा गीतविधिं=माङ्गलिकगानकर्म जिनगुणगानक्रियां वा वितेनुः=चक्रुरित्यर्थः ॥ २२ ॥

कृत्वैव होमं वरचन्दनाद्यै-
ग्रन्थिंबबन्धुः करयोर्विभूतेः ।
आस्यं सलास्यं प्रविलोक्य रम्भा,
स्तस्थुः पुरो लोकविभोरदम्भाः ॥२३॥

अन्वयः—अदम्भाः रम्भा वरचन्दनाद्यैः (अरणिसंघर्षणोद्भववह्नौ) होमं कृत्वैव (जिनस्य) करयोः विभूतेर्ग्रन्थिं बबन्धुः (तदनु) लोकविभोः आस्यं प्रविलोक्य सलास्यं (यथास्यात्तथा) पुरः तस्थुः ॥ २३ ॥

व्याख्या—अदम्भाः=कैतववर्जिताः रम्भाः=देवकन्याः वरचन्दनाद्यैः=सुरभिदिव्यचन्दनप्रभृतीन्धनैः 'अरणिघर्षणोद्भववह्नौ' इति शेषः होमं=हवनं कृत्वैव=विधायैव करयोः=जिनहस्ताम्बुजयुगे विभूतेः=हुतचन्दनभस्मनः ग्रन्थिं=रक्षापोट्टलिकां बबन्धुः=बध्नन्तिस्म। तदनु लोकविभोः=जगत्प्रभोः आस्यं=मुखं प्रविलोक्य तदनुमता सलास्यं=स्त्रीनृत्येन सहितं यथास्यात्तथा पुरो=ऽग्रे तस्थुः= आसांचक्रिरे ॥ २३ ॥

जाते जिनेशे त्रिजगद्दिनेशे,
लेभे भुवि स्वामिवरैश्चलत्वम् ।
चलाचलस्वासनभावनेन,
जन्मावबोधे हृदि पावनेन ॥ २४ ॥

अन्वयः–त्रिजगद्दिनेशे जिनेशे भुवि जाते पावनेन चलाचलस्वासनभावनेन जन्मावबोधे सति स्वामिवरैः हृदि चलत्व लेभे ॥ २४ ॥

व्याख्या—त्रिजगद्दिनेशे=त्रिभुवनविद्योतनसूर्यरूपे जिनेशे भुवि=भूतले जाते=अवतीर्णे सति. पावनेन=पवित्रतासम्पादकेन चलाचलस्वासनभावनेन=चलाचलं=कम्पनशीलं यत् स्वासनं=स्वीय-सिंहासनं तस्य भावनेन विमर्शेन जन्मावबोधे=जिनजन्मज्ञाने सति स्वामिवरैः=अच्युतादिदेवेन्द्रैः हृदि=मनसि चलत्वं=तरलता=संभ्रमं लेभे संभ्रान्तचित्तता प्राप्तेत्यर्थः। जिनप्रभौ जाते देवेन्द्रस्य सिंहासनं कम्पितं भवतीति जैनसमये सुप्रतीतम् ॥ २४ ॥

आकृष्टा भगवद्गुणैरिव दिवः श्रीअच्युताद्याः समे ।
देवेन्द्राः समुपेयुरत्र मनसा चित्रीयमाणश्रिया ॥
आलोक्याऽद्भुतधामधाम सुचिरं राज्यं त्रिलोक्या इह ।
न्याय्यं कर्तुमतोऽभिषेकमचले मेरौ पयोभिः प्रभोः॥२५॥

॥ इतिश्री सप्तसन्धाने महाकाव्ये जन्मवर्णनो नाम द्वितीय सर्गः ॥

अन्वयः—श्रीअच्युताद्याः समे देवेन्द्राः भगवद्गुणैः आकृष्टा इव चित्रीयमाणश्रिया मनसा दिवः अत्र आगत्य अद्भुतधामधाम सुचिरम् आलोक्य इह त्रिलोक्या राज्य न्याय्यम् अतो मेरौ अचले पयोभिः प्रभोः अभिषेकं कर्तुं समुपेयुः ॥ २५ ॥

व्याख्या—श्रीअच्युताद्याः=अच्युतवासवप्रभृतयः समे=सर्वे-देवेन्द्राः सुरेश्वराः भगवद्गुणैः=जिनदेवगुणैः आकृष्टाः इव=आकृष्याऽऽनीता इव चित्रीयमाणश्रिया=चित्रीयमाणा=विस्मयनीयतया प्रतिभाता श्रीः=जिनलक्ष्मीर्यस्मिन् तादृशेन मनसा उपलक्षिताः दिवः=द्युलोकात् अत्र आगत्येति शेषः अद्भुतधामधाम=अद्भुतानां विस्मयावहानां धाम्नां=तेजसां शक्तीनां वा प्रभावाणां वा त्विषां वा धाम=आश्रयीभूतं जिनमिति शेषः यद्वा अद्भुतं=विस्मयनीयं धाम्नः=

जिनप्रभुशरीरस्य धाम=स्वयंप्रकाशे त्विषं वा तेजो वा शक्तिं वा सुचिरं चिरकालपर्यन्तम् आलोक्य=आलोक्य=निरीक्ष्य इह=अस्मिन् जिनदेवे त्रिलोक्याः=जगत्रयस्य राज्यं=राजत्वम् आधिपत्यमित्यर्थः न्याय्यं=समुचितं=योग्यं अतः=अस्मात् भगवत्त्रिजगदधीशभवनार्हत्वाद्धेतोः मेरौ अचले=सुमेरुपर्वते पयोभिः=क्षीरार्णवाहृतनीरैः प्रभोः=जिनदेवस्य अभिषेकं=स्नात्रमहोत्सवं कर्तुं=सम्पादयितुं समुपेयुः=समुपेताः संगताः सम्मिलिता अभूवन् यद्वा समुपेयुः=सम्प्राप्ताः मेरुमिति शेषः विस्मयोऽद्भुतमाश्चर्यं मित्यमरः। धाम शक्तौ प्रभावे तेजोमन्दिर-जन्मसु इति विश्वः।

पयः क्षीरे च नीरे च इति हेमचन्द्रः।

अत्र पद्ये शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम्॥

सूर्याश्वैर्मसजस्ततः सगुरवः।

शार्दूलविक्रीडितमितिलक्षणात्॥ २५॥

इति श्री शास्त्रविशारद कविरत्नभट्टारकाचार्य विजयामृतसूरीश्वर प्रणीतायां सप्तसंधान महाकाव्यसरणीटीकायां

द्वितीयः सर्गः॥



तृतीयः सर्गः

निन्युः सुरासुरगणा अथ देवगोत्रं,
यत्राद्रयः सकलकालमपि प्रफुल्लाः ।
पुष्पैः फलैरविरलैः प्रवलै र्दलैश्च,
प्रीणन्ति भूचर-नभश्चर चारुनारीः॥१॥

अन्वय —अथ सुरासुरगणा (प्रभु) देवगोत्र निन्यु यत्र सकलकालमपि प्रफुल्ला अद्रय अविरले पुष्पै· फलै प्रवलैर्दलैश्च भूचरनभश्चरचारुनारीः प्रीणति ॥ १ ॥

व्याख्या—अथ=दिक्कुमारीकृतसूतिकर्माऽन्तरं सुरासुरगणाः=सुराणां=सौधर्मादिदेवलोकनिवासिदेवानाम् असुराणां=भुवनपत्यादीनां गणाः=संघाः 'प्रभु'—मितिशेषः देवगोत्रं=देवपर्वतम् तीर्थकृत्पक्षे—सुमेरुशैलम् रामपक्षे—देवानां गोत्रं=पर्वतम् 'अष्टापद' संज्ञकम् अयोध्यापार्श्वे उरसवेषु रमणीयस्थानत्वेन तस्याभिमतत्वात् कृष्णपक्षे—देवात्=मुसलधारां वृष्टिकुर्वतो घनाघनात् इन्द्राद्वा गाः=सौरमेयीः गां=गोकुलं=व्रज वा नामैकदेशग्रहणेनामग्रहणात् सत्या भामेतिवत् त्रायते=रक्षति स तं 'गोवर्द्धन' नामानं व्रजपार्श्ववर्तमानपर्वतविशेषं निन्युः=नीतवन्तः । अधुना देवगोत्रं वर्णयति—यत्र=यस्मिन् देवगोत्रे सकलकालमपि=षट्स्वपि ऋतुषु प्रफुल्लाः=विकसिताः अद्रयः=वृक्षाः 'अद्रयो द्रुम-शैला-ऽर्काः' इत्यमरः । अविरलैः=निरन्तरैः पुष्पैः=चम्पकादिकुसुमैः फलैः=आम्रादिभिः प्रवलैः=भङ्कुरैः दलैः=किसलयैश्च यद्वा प्रवलैः=प्रवालैः=अभिनवपल्लवैः दलैः=निष्पन्नपत्रैश्च भूचरनभश्चरचारुनारीः=भूचराणा=मनुजतिरश्चां, नभश्चराणा=देव-यक्ष-गन्धर्व-किन्नर-विद्याधरादीना चार्वीः=मनोहराः नारीः

रमणीजनान् प्रीणन्ति=आनन्दयन्ति ॥ अत्र सर्गे वसंततिलकं वृत्तम्। ज्ञेयं वसन्ततिलकं तभजाजगौग इति तल्लक्षणात् ॥ १ ॥

श्रीभद्रशालवनमप्यतिपावनं तद्,
यत्रास्ति सौमनसमद्भुतशाखिजन्यम् ॥
सानन्दनन्दनवनं बहुसौरभाढ्यं,
सापाण्डुकम्बलशिलाग्रमिला विभर्त्ति॥२॥

अन्वयः—यत्र तद् अतिपावनं श्रीभद्रशालवनम्, अद्भुतशाखिजन्यं सौमनसं (वनं), सानन्दनन्दनवनं, बहुसौरभाढ्यं पाण्डुक (वनंच) अस्ति सा इला बलशिलाग्रं विभर्त्ति (इति तीर्थंकरपञ्चकपक्षे)। (वासुदेवपक्षे-) यत्र सा इला (यत्र) अद्भुतशाखिजन्यं (बहुसौरभाढ्य) सौमनसम् अस्ति, तद् अतिपावनं श्रीभद्रशालवनं, सापाण्डुकम्बलशिलाग्रं बहुसौरभाढ्यं नन्दनन्दनवन (च) विभर्त्ति। (श्रीरामबलदेवपक्षे तु) यत्र सा इला (यत्र) अद्भुतशाखिजन्यं बहुसौरभाढ्यं सौमनसम् अस्ति तद् अतिपावनं श्रीभद्रशालवनं सापाण्डुकलशिलाग्र सानन्दनन्दनवनं (च) विभर्त्ति ॥ २ ॥

व्याख्या—तीर्थंकरपञ्चकपक्षे—यत्र=यस्मिन् देवगोत्रे सुमेरुपर्वते तद्=प्रसिद्धम् अतिपावनम्=अतिपवित्रं सातिशयपावित्र्यजनकं वा 'श्रीभद्रशालवनं'=तदभिधानम् अस्ति=विद्यते एवम् अद्भुतशाखिजन्यम्=अद्भुतानि=चित्रविचित्राणि शाखिजन्यानि=वृक्षसंभवानि पुष्प-फलादीनि यस्मिंस्तत् तादृशं 'सौमनसं'-तदाख्यवनम् अस्ति। तथा नन्दनन्दनवनम्=सानन्दम्-आनन्दकारित्वेन आनन्द-हर्ष-सहितं, यद्वा आनन्देन सहितः सानन्दस्तं करोति सानन्दयति. सानन्दयतीति सानन्दम्-आनन्दयुक्तविधायकम् नन्दनवनं-देवोद्यानम् अस्ति। तथा बहुसौरभाढ्यं-साऽतिशयसौगन्ध्यशालि पाण्डुकं-तन्नामकवनम् अस्ति। सा-प्रसिद्धा स्नात्रशैलसम्बन्धिनी इला-पृथ्वी बलशिलाग्रं-बलानां-विशालानां शिलानां मध्ये अग्रं-प्रधानं स्नात्रसिंहासनं बिभर्ति॥

कृष्णवासुदेवपक्षे—यत्र देवगोत्रे गोवर्द्धनपर्वते सा–पर्वत सम्बन्धिनी इला यत्र अद्भुतशाखिजन्यं=चित्रविचित्रवृक्षसमुद्भवं बहुसौरभाढ्यं प्रचुरसौरभ्ययुक्तसौमनसं–पुष्पसमूहः अस्ति तद् अतिपावनं श्रीभद्रशालवनं=श्रीणां–बिल्ववृक्ष–सरलवृक्ष–लवङ्गानां भद्राणां देवदारु–कदम्बवृक्ष–स्नुहीवृक्षाणां शालानां–सर्जवृक्षाणां, यद्वाऽनुपदोक्त श्री भद्रादीनां शालानां–वृक्षाणां वनं–काननम् अन्तर्वर्त्ति यस्मिन् तत् तादृम् यद्वाश्रिया भद्रं–मनोहरम् शालवनं यस्मिंस्तत्तादृशं, सपाण्डुकम्बलशिलाग्रम्–आ–सर्वतोभावेन पाण्डुकम्बलाः–प्रस्तरविशेपास्तदात्मिकाः शिलाः पाण्डुकम्बलशिलास्तासां ताम्र वा अग्राः–श्रेष्ठाः याः शिलाः ताभिः सहितं, यद्वा पाण्डुकम्बलसदृश्यो याः शिलास्तासामग्राभिः–मुख्याभिः शिलाभिः सहितं, बहुसौरभाढ्यं–प्रभूतसौगन्ध्यकलितं यद्वा सुरभीणां–श्रीगवीनां समूहः सौरभं बहुना सौरभेण आढ्यं–युक्तम् एवं विधं नन्दनन्दनवनं–नन्दं–श्रीकृष्णपितरं नन्दयति–हर्षयतीतिनन्दनन्दनं तादृशं वनं विपिनं–बिभर्त्ति–धारयति ॥

श्रीरामचन्द्रबलदेवपक्षे—यत्र देवगोत्रे अष्टापदपर्वते सा इला यत्र हि अद्भुतशाखिजन्यं बहुसौरभाढ्यं सौमनसम् अस्ति तद् अतिपावनं श्रीभद्रशालवनं सा पाण्डुकम्बलशिलाग्रमेतादृशं सानन्दनन्दनवनं–सानन्दान्–आनन्दनिर्भरानपि किमुत सोद्वेगान् जनान् नन्दयति–प्रीणयतीति सानन्दनन्दनं तादृशं वनं बिभर्त्ति । विशेषणानामर्थश्च वासुदेवपक्षीयरीत्याऽवगमेलिमः ॥ २ ॥

यस्मिन्नलं फललदलशालिशाल-

वृन्दावनी सुरजनी रजनीश्वरास्या ॥

गीतस्वरैः सुरमणी रमणीप्रणीतै-
स्तन्तन्यते तनुभृतामतनूदयं सा ॥ ३ ॥

अन्वयः—यस्मिन् अलं फलललद्दलशालिसालवृन्दाऽवनी, रजनीश्वरास्था सा सुरजनी च सुरमणी रमणीप्रणीतैः गीतस्वरैस्तनुभृतामतनूदयं तन्तन्यते । इति मेरुपक्षे । (अन्यपक्षे) यस्मिन् अलं फलललद्दलशालिसालवृन्दा, सुरजनी रजनीश्वरास्था अवनी (यद्वावनी) सुरमणीरमणीप्रणीतैः गीतस्वरैः तनुभृताम् अतनूदयं तन्तन्यते ॥ ३ ॥

व्याख्या—यस्मिन् मेरौ तद्वने वा अलम्=अत्यर्थं फलललद्दल-शालिसालवृन्दा=फलैः=सस्यैः ललद्भिः=वायुसंबन्धाचलद्भिः विलसद्भिर्वा दलैः पत्रैश्च शालन्ते=शोभन्ते तच्छीलानां सालानां=वृक्षाणां वृन्दं=समूहो यस्यां सा तादृशी अवनी=सौमेरवीभूमिः, तथा रजनीश्वरास्या=चन्द्रानना सा=प्रसिद्धा सुरजनी=दिव्याङ्गना च सुरमणीरमणीप्रणीतैः=सुष्ठु रमयन्ति शोभनं रम्यते आसु वा इति सुरमण्य स्तादृशीभिः रमणीभिः प्रणीतैः=विहितैः गीतस्वरैः=गानकालीनगेय-पदसमूहवर्तिनिषादादिस्वरैः तनुभृतां=प्राणिनाम् अतनूदयम्-अतनोः अनङ्गस्य उदयम्=अभिवृद्धिं कामोद्रेकमित्यर्थः प्रचुराऽऽनन्दसमृद्धिं वा तन्तन्यते=पुनः पुनरतिशयेन वा तनोति=विस्तारयति जनयतीत्यर्थः । इति सुमेरुपक्षीयोऽर्थः ॥

अष्टापदपक्षे गोवर्द्धनपक्षे च—यस्मिन् अष्टापदशैले, गोवर्द्धने च अलम् फलललद्दलशालिनः-फलचलत्पत्रशोभिनः सालाः-वृक्षाः वृन्दाः-तुलस्यश्च यस्यां सा तादृशी, पुनः सुरजनी-सु-शोभना समृद्धा वाऽतिशयिता वा रजनी=हरिद्रा जतुका वा यस्यां सा तथाविधा रजनीश्वरास्था=रजनीश्वरस्य=चन्द्रस्य आस्था=स्थितिरस्यां सा तादृशी चन्द्रमस ओषधीपतित्वाद्वन्यौषधीषु तत्स्थितिकल्पनात् यद्वा सुरजनीरजनीश्वरास्या-सु=शोभना रजनी=रात्रिः सुरजनी=राका रात्रि

रजनीश्वरः=चन्द्रः स एव आस्यम् आस्यमिव वा यस्याः सा तथाविधा अवनी=अधित्यकादिरूपा पर्वतभूमिः यद्वा वनी=अटवी सुरमणीरमणीप्रणीतैः सुरमण्यः=संगीतपण्डितरत्नभूता या रमण्यः=उत्कृष्टस्त्रीविशेषास्ताभिः प्रणीतैः=प्रयोजितैः गीतस्वरैः=निषादादिगानस्वरैः तनुभृतां=शरीरिणाम् अतनूदयं कामोद्रेकं प्रभूताऽऽनन्दसमृद्धिं वा तन्तन्यते=भूयोविस्तारयतीत्यर्थः ॥ ३ ॥

गोपाः स्फुरन्ति कुसुमायुधचापरोपात्,
कोपादिवाऽम्बुजदृशः कृतमानलोपाः ॥
क्रीडन्ति लोलनयनानयनाच्च दोला-
स्वान्दोलनेन विबुधाश्च सुधाशनेन ॥ ४ ॥

अन्वयः—गोपाः विबुधाः कुसुमायुधचापरोपात् कोपादिव कृतमानलोपाः स्फुरन्ति । लोलनयनानयनात् अम्बुजदृशः सुधाशनेन दोलासु आन्दोलनेन च क्रीडन्ति ॥ ४ ॥

व्याख्या—गोपाः=गाः=किरणान् पान्तीति ते तथोक्ताः तेजस्विन इत्यर्थः यद्वा गां=स्वर्गं पान्ति=रक्षन्तीति ते तादृशाः विबुधाः=देवाः यद्वा गां=वज्रास्त्रं पान्तीति ते गोपाः=शक्रेन्द्रादयः विबुधाः=देवसामान्याश्च कुसुमायुधचापरोपात्=कन्दर्पधनुर्मुक्तबाणात् तन्निपातादितिभावः हेतोः अत्रोत्प्रेक्षते=कोपादिव=कामस्य क्रोधादिव कृतमानलोपाः=कृतः मानस्य=स्वामीष्टश्लेष=वीक्षादिविरोधिकृत्रिमकोपस्य लोपः=विनाशो येषां ते तथोक्ताः स्फुरन्ति=प्रकाशन्ते । किञ्च लोलनयनानयनात्=लोलनयनानां=चञ्चलाक्षीणाम् आसर्वतोभावेन नयनात्=कर्षणात् आनयनात्=आकर्षणेन अम्बुजदृशः=पद्माक्ष्याः सुधाशनेन=अधरामृतपानेन. दोलासु=हिन्दोलादिदोलनयन्त्रविशेषेषु आन्दोलनेन=दोलनक्रियया च क्रीडन्ति=विहरन्ति आत्मानं विनो-

दयन्तीत्यर्थः। स्वामीष्टश्लेषवीक्षादिविरोधी मान उच्यते इति दशरूपके। अर्थश्लेषः उत्प्रेक्षा च। तीर्थंकर-बलदेव वासुदेवैतत्त्रिकपक्षे समानोऽर्थः ॥ ४ ॥

अन्योन्यवन्यफलमाल्य विभाजनेन,
का स्वर्वशा नहि वशीक्रियते जनेन ॥
यत्रोर्वशीजनकृतेन विमोहितेन,
सोऽस्मिन् वशीभवति नाम वशीहितेन ॥ ५ ॥

अन्वयः—अस्मिन् अन्योन्यवन्यफलमाल्यविभाजनेन का स्वर्वशा जनेन न हि वशीक्रियते यत्र उर्वशीजनकृतेन ईहितेन विमोहितेन स वशी वशीभवति॥५॥

व्याख्या—अस्मिन् गिरौ=वने वा अन्योन्यवन्यफलमाल्यविभाजनेन=अन्योन्यं=परस्परं यद् वन्यानां=वनभवानां फलानां=सस्यानां=माल्यानां पुष्पस्रजां विभाजनेन=वण्टनेन विनिमयेन वा का स्वर्वशा=दिव्यस्त्री "वशा वन्ध्या=सुता=योषा=स्त्रीगवीकरिणीषु चे-ति विश्वमेदिन्यौ" जनेन=कामिजनेन न वशीक्रियते=स्वायत्तीक्रियते सर्वापीत्यर्थः। यत्र उर्वशीजनकृतेन=अप्सरोभिर्विहितेन ईहितेन=चेष्टितेन चेष्टयेत्यर्थः करणेन विमोहितेन=विमोहनेन वश्यतापादनेन हेतुना सः=प्रसिद्धः वशी=जितेन्द्रियोऽपि वशीभवति=वश्यतां यातीत्यर्थः। अर्थश्लेषः अन्त्याऽनुप्रासः। काव्यलिङ्गं चाऽलङ्काराः॥५॥

अष्टापदोन्नतगिरिर्विहते महत्त्वम्,
गोवर्द्धनोऽपि घनवानिव दिक्प्रसारी ॥
तत्राऽऽनिनाय किल वासवनाम देव-
स्तं जातमात्रमतिमात्रविबोधपात्रम् ॥ ६ ॥

अन्वय —अष्टापदोन्नतगिरि महत्त्व वहते गोवर्द्धन धनवानिव दिक्प्र सारी तत्र वासवनामदेव जातमात्रम् अतिमात्रविबोधपात्र त किल आनिनाय ॥६॥

व्याख्या— स्नात्रमहोत्सवाधिकरणीभूतं पर्वतं नाम्ना निर्दिशति= (तीर्थङ्करपक्षे) अष्टापदोन्नतगिरि=अष्टौ धातवः पदानि=स्थानान्यस्य तत् अष्टसु धातुषु पदं=प्रतिष्ठाऽस्येति वा अष्टापदं=सुनर्णं तस्य तन्मयो वा उन्नतगिरि=सर्वोच्चशैलः सुवर्णशैलः सुमेरुपर्वत इत्यर्थः महत्त्व=तीर्थङ्करस्नात्रमहोत्सवाधिकरणीभवनजनितमहिमान वहते. किञ्च गोवर्द्धनः=गाः=किरणान् स्व=स्वाश्रिततेजासीत्यर्थ. वर्द्धयतीति स तथोक्तः धनवानिव व्यवहारीवेत्यर्थ' दिक्प्रसारी=अष्टसु दिक्षु प्रसरण=व्यापन=शीलः व्याप्तसर्वदिक इत्यर्थः तत्र पर्वते वासवनाम देवः=शक्रेन्द्रः जातमात्र=गर्भान्निर्गतमात्रं जन्माऽनन्तरक्षण एवेत्यर्थः अतिमात्रविबोधपात्र=सातिशयज्ञानभाजनम् अवधिज्ञानस्य तदानीं सद्भावात् तं=पूर्वोक्तम् ऋषभादिम् किल=निश्चयेन आनिनाय।

बलदेवपक्षे-अष्टापदोन्नतगिरिः=अष्टापदनामधेयः उन्नतपर्वतः महत्त्वं=श्रीरामचन्द्रबलदेवजन्मोत्सवाश्रयीभवनजनितमहनीयत्वं वहते शेषं पूर्ववत् ॥

वासुदेवपक्षे—अष्टापदोन्नतगिरि=अष्टापदः=कैलासपर्वत स इव उन्नतः=उच्चैः उच्छ्रितो गिरिः=शैलः यद्वा अष्टापदः=शरभाख्यवन्य पशुविशेषो यः सिंहमपि विरोधयति तद्युक्त उन्नतगिरिः=तुङ्गशैलः 'गोवर्द्धनः' तदाख्यः,महत्त्व=श्रीकृष्णवासुदेवजन्मोत्सवाधारीभवनजन्यमहिमानं वहते, धनवानिव दिक्प्रसारी तत्र वासवनाम देवः जातमात्रमतिमात्रविबोधपात्र त=वासुदेवम् आनिनाय ॥ अष्टापदश्चन्द्रमाल्या लूतायां शरभे गिरौ कनके शारिफलके इति अनेकार्थसंग्रहः । श्लेषोपमालंकारौ ॥ ६ ॥

त्वं नन्द-नन्दनपदं सफलीकुरुष्व,
कान्तापि वर्द्धयतु कान्तिरसौ यशोदा ॥
स्नात्राभिषेकसविशेषसरेखभूषा-
नेपथ्यतथ्यकरणात्सुभगाकृतिस्त्वम् ॥ ७ ॥

अन्वय—त्वं नन्द (हे नन्द!) त्वं नन्दनपदं सफलीकुरुष्व यशोदा कान्ताऽसौ (तव) कान्तिं स्नात्राभिषेकसविशेषसरेखभूषानेपथ्यतथ्यकरणात् सुभगाऽऽकृतिः त्वं वर्धयतु । कृष्णपक्षे-(हे प्रभो! त्वं नन्दनन्दनपदं सफलीकुरुष्व यशोदा कान्ताऽपि तव कान्ति-रसौ वर्द्धयतु । (तथा) स्नात्राभिषेक-तथ्यकरणात्सुभगाकृतिः त्वं (भव) ॥ ७ ॥

व्याख्या—आनयनाऽनन्तरकालिकवृत्तवृत्तान्तमाह-हे प्रभो! त्वं नन्द तीर्थकृल्लक्ष्मीसमृद्धो ज्ञानादिसमृद्धो वा भव यद्वा हे नन्द!= आनन्दरूप! यद्वा नन्दिः=आनन्दोऽस्यास्तीति नन्दः अर्शआदित्वा-दच् तत्सम्बोधने हे नन्द!=शाश्वताऽऽनन्दपरिपूर्ण! त्वं नन्दनपदं= देवोद्यानरूपस्थानं यद्वा नन्दयति=मोक्षलक्ष्मीप्राप्त्या हर्षयतीति नन्दनं तादृशं पदं तीर्थकरपदं सफलीकुरुष्व=सार्थकं कुरु। यशोदा=कीर्तिजननी कान्ता=मनोहरा असौ तव कान्तिः=शोभा, स्नात्राभिषेक-सविशेषसरेखभूषानेपथ्यतथ्यकरणात्=स्नात्राभिषेके तत्समय इत्यर्थः सविशेषाणां=सातिशयानामुत्तमाना वा सरेखाणां=साभोगानां परि-पूर्णानामित्यर्थः श्रेणीबद्धानामिति वा भूषाणां=तीर्थकरोचितालङ्कर-णानां नेपथ्येन=प्रसाधनकर्मणा तथ्यकरणात्=याथार्थ्यापादनात् यद्वा स्नात्राभिषेक-सविशेषसरेखभूषाभिः नेपथ्यस्य=तीर्थकृत्कर्मकमण्डनी-करणस्य तथ्येन=यथावद्रूपेण करणात्=निष्पादनात् सुभगाकृतिस्त्वं सुभगा=सुदृश्या आकृतिः=स्वरूपं यस्य स तद्भावस्तत्वं सुदृश्यरूपतां सौन्दर्यमित्यर्थः वर्द्धयतु इति तीर्थकरपक्षकसाधारणोऽर्थः ।

श्रीरामचन्द्रपक्षे—हे प्रभो ! त्वं नन्द शौर्यादिगुणसमृद्धो भव। नन्दनपदं=पुत्रमम्पाद्यपित्राज्ञापालनादिकार्यस्थानं सफलीकुरुष्व । यशोदा कान्ताऽसौ तव कान्तिः स्नात्राभिषेकसविशेषसङ्गेरभूषाने पथ्यतथ्यकरणात् सुभगाकृतित्वं वर्द्धयतु ।

श्रीकृष्णवासुदेवपक्षे—हे विभो ! त्व नन्दनन्दनपदं=नन्दस्य= गोपाधिपविशेषस्य नन्दनपदं=पुत्रपदं सफलीकुरुष्व । यद्वा हे नन्दनन्दन !=नन्दपुत्र ! त्वं पदं=वासुदेवव्यवसितं शिष्टाऽनुग्रहदुष्टनिग्रहादिरूपं सफलीकुरुष्व । यशोदा=तदभिधाना कान्ता=नन्दगोपभार्याऽपि तव कान्ति=रसौ=क्रान्ति=शोभा तेजो वा रसं=वीर्यं वर्द्धयतु । तथा स्नात्राभिषेकसविशेषसङ्गेरभूषानेपथ्यतथ्यकरणात् सुभगाकृतित्वं व्रजेति शेषः ॥ ७ ॥

इत्युद्दिशन् सदसि संगमने गवेशां,
शक्रः क्रमोपनतमच्युतमैक्ष्य भक्त्या ॥
तच्छासनेन विधिना सहितः सराम-
मीशानमेव हरिमत्र पुरो व्यधत्त ॥ ८ ॥

अन्वय—शक्र इत्युद्दिशन् गवेशा सगमने सदसि क्रमोपनतम् अच्युतम् ऐक्ष्य भक्त्या तच्छासनेन विधिना सहित सरामम् ईशान हरिं पुर व्यधत्त । रामपक्षे च शक्र रामम् ईशान हरिम् अत्र पुरो व्यधत्त । कृष्णपक्षे-स शक्र इत्युद्दिशन् गवेशा सगमने सदसि क्रमोपनतम् अच्युतम् ऐक्ष्य भक्त्या तच्छासनेन सहित रामम्=अभिरामम् ईशान हरिम् अत्र पुरो व्यधत्त ॥ ८ ॥

व्याख्या—शक्रः=सौधर्मेन्द्रः अनुपदोक्तवासवनामदेव इत्यर्थः इत्युद्दिशन्=इति=पूर्वोक्तप्रकारेण उद्दिशन्=उच्चैर्वदन् गवेशां=त्रिदिवेशानामिन्द्राणां संगमने=सम्मेलके सदसि=गोष्ठ्यां क्रमोपनतं=प्रभुचरणयोरानतं तदन्तिकमुपस्थितं वा अच्युतम्=एकादश द्वादश देव-

लोकाधिपम् ऐक्ष्य=सम्यङ्निभाल्य भक्त्या=अनुरागेण तच्छासनेन=अच्युताज्ञया विधिना=विधानेन सहितः विधानपूर्वकमित्यर्थः सरामं=तीर्थकरसहितम् ईशानं हरिम्=ईशानेन्द्रं पुरः=अग्रतः पूर्वाऽभिमुखं वा व्यधत्त=विहितवान्=अतिष्ठिपदित्यर्थः इति तीर्थङ्करपञ्चकसाधारणोऽर्थः ॥

श्रीरामचन्द्रपक्षे–सः=प्रसिद्धः शक्रः=महीमहेन्द्रः इत्युद्दिशन् गवेशां=महीपतीनां संगमने सदसि क्रमोपनतम् अच्युतम् ऐक्ष्य भक्त्या तच्छासनात् विधिना सहितः रामं=तदाख्यम् ईशानम्=ईशितारं हरिं=बलदेवम् अत्र=अष्टापदपर्वतस्थस्नात्रसिंहासने पुरः=पूर्वाभिमुखमेव व्यधत्त ।

श्रीकृष्णवासुदेवपक्षेतु—स शक्रः इत्युद्दिशन् गवेशां=महीपतीनां गोपालानां वा संगमने सदसि क्रमोपनतम् अच्युतम् ऐक्ष्य भक्त्या तच्छासनात् विधिना सहितः रामम्=अभिरामम् ईशानं=द्वारकाया ईशितारं हरिं=वासुदेवम् अत्र=गोवर्धनपर्वतवर्तिस्नात्रसिंहासने पुरः=पूर्वाऽभिमुखं व्यधत्त । शब्दाऽर्थोभयश्लेषः। गौः स्वर्गे च बलीवर्दे रश्मौ च कुलिशे पुमान् । स्त्री सौरभेयी–दृग्–बाण–दिग्–वाग्–भूष्वप्सु भूम्नि च इति मेदिनी ॥ ८ ॥

क्षीराम्बुधेरिव पयोभिरिहाभिषेकं,
चक्रे क्रमेण मणिकाञ्चनरूप्यकुम्भैः ॥
देवस्य तस्य वरचन्दनचन्द्रलेपा–
दभ्यर्चनानि दधतेस्म शची सरूपाः ॥ ९ ॥

अन्वयः—शक्र इह क्षीराम्बुधेरिव पयोभिः (भृतैः) मणिकाञ्चनरूप्यकुम्भैः क्रमेण देवस्य अभिषेकं चक्रे, सरूपा शची (शचीसरूपाश्च) तस्य वरचन्दनचन्द्रलेपात् अभ्यर्चनानि दधतेस्म ॥ ९ ॥

व्याख्या—शक्रः इह=अतिपाण्डुकम्बलशिलापीठे क्षीराम्बुधेरिव=क्षीरसागरस्येव पयोभिः=क्षीरैरम्बुभिः 'पयः क्षीरे च नीरे च इत्यनेकार्थसंग्रहः भृतैरिति शेषः मणि–काञ्चन–रूप्यकुम्भैः=मणिमय–सौवर्ण–राजतकलसैः क्रमेण=परिपाट्या प्रथमं मणिमयेन ततः सौवर्णेन तदनु राजतेन कलसेनेत्येवं क्रमपूर्वकमित्यर्थः देवस्य=द्योतनशीलस्य प्रभोः जिनदेवस्य अभिषेकं=स्नात्रं चक्रे। तदनु सरूपा=रूप-सौन्दर्यशालिनी शची=इन्द्राणी प्रशस्ताः शचीशाः=इन्द्राः शचीशरूपाश्च शचीसरुपा इत्यत्र तन्त्रम् तेनास्य भङ्गाभङ्गाभ्यामर्थद्वयपरत्वम् श-सयोश्चैकत्वात्। सुगन्धिवाससा सम्मृष्टवपुषः तस्य–देवस्य वरचन्दनचन्द्रलेपात्–वरं–कुङ्कुमं, चन्दनं–तैलपर्णिक–गोशीर्ष–हरिचन्दनादिकं चन्द्रः–कर्पूरस्तैः लेपात्–विलेपनात् अभ्यर्चनानि पूजाः दधतेस्म–कुरुतेस्म। शचीपक्षे दधधातोः प्रथमपुरुषैकवचनं, शचीशरूपपक्षे च धाधातोः प्रथमपुरुषबहुवचनरूपम्।

बलदेवपक्षे—शक्रः–महीमहेन्द्रः इह–अष्टापदपर्वतस्थस्नात्रपीठे क्षीराम्बुधेः पयोभिरिव मणिकाञ्चन–रूप्यकुम्भैः क्रमेण अभिषेकं चक्रे ततः शचीसरूपाः-शच्याः समानं रूपं यासां ताः तथोक्ता राजमहिष्यः सुगन्धिनिर्णिक्तवसनेन प्रमृष्टगात्रस्य तस्य श्रीरामचन्द्रबलदेवस्य वर–चन्दन–चन्द्रलेपात् अभ्यर्चनानि दधतेस्म।

वासुदेवपक्षे—शक्रः इह=गोवर्द्धनपर्वतोपरिवर्त्तिस्नात्रपीठे क्षीराम्बुधेरिव पयोभिः=क्षीरैः भृतैः मणि–काञ्चनरूप्यकुम्भैः क्रमेण देवस्य=वासुदेवस्य श्रीकृष्णचन्द्रस्येत्यर्थः देवदत्तो दत्त इतिवत् नामैकदेशग्रहणे नामग्रहणात् अभिषेकं=स्नात्रविधिं चक्रे। तदनु सुगन्धिनिर्णिक्तां शक्रेण प्रमृष्टकलेवरस्य तस्य=श्रीकृष्णवासुदेवस्य वरचन्दन–चन्द्रलेपात् अभ्यर्चनानि–नानाविधपूजाः दधतेस्म॥ शब्दार्थोभय-

श्लेषः, क्षीराम्बुधेरिवेत्यंशे उत्प्रेक्षा च. अथ कुङ्कुमम्। चन्द्रः कर्पूर-काम्पिल्ल-सुधांशु-स्वर्ण-वारिषु इति मेदिनी ॥ ९ ॥

सारात्रिकां प्रवरमङ्गलदीपयुक्तिं,
सम्यग् विधाय सह गीतविनीतनृत्यैः ॥
साष्टोत्तरं शतमितैश्च नवीनकाव्यै-
स्तुष्टाव तुष्टिभरपुष्टमना गवेन्द्रः ॥ १० ॥

अन्वय,—गवेन्द्रः गीतविनीतनृत्यैः सह सारात्रिकां प्रवरमङ्गलदीपयुक्तिं विधाय तुष्टिभरपुष्टमना.सन् साष्टोत्तरं शतमितैः नवीनकाव्यैः स्तुतिं चकार॥१०॥

व्याख्या—गवेन्द्रः बृहस्पतिः स्वर्नायको वा। राम-कृष्णपक्षे गवेन्द्रः-भूमदेन्द्रः गीतविनीतनृत्यैः-गीतानि-गानानि विनीतनृत्यानि-उदारचरितयोग्यनर्तनानि तैः सह तत्पूर्वकमित्यर्थः सारात्रिकाम्-नीराजनक्रियया सहितां प्रवरमङ्गलदीपयुक्तिं-स्नेहदशासमृद्धिकलित-माङ्गलिकविशिष्टप्रदीपयोजनां सम्यग् विधाय-उत्तार्य तुष्टिभरपुष्टमनाः-सन्तोषातिशयनिर्भरचेताः सन् साष्टोत्तरशतमितैः-अष्टोत्तरशतसंख्यकैः नवीनकाव्यैः-अभिनवस्तुत्यात्मककाव्यैः तुष्टाव स्तुतिंचकार ॥ १० ॥

एवं सुरासुरकृताऽभिषवोत्सवश्री-
र्देवः प्रभावविभवाऽनुभवत्रयेण ॥
अङ्गुष्ठजामृतसमाशनलब्धिपूर्ण-
स्तूर्णं सनन्दभवने ववृधे शशीव ॥ ११ ॥

अन्वय—एवं सुरासुरकृताऽभिषवोत्सवश्रीः अंगुष्ठजामृतसमाशनलब्धिपूर्णः प्रभाव-विभवाऽनुभवत्रयेण देवः स नन्दभवने (सनन्दभवने) शशीव तूर्णं ववृधे ॥ ११ ॥

व्याख्या-एवम् पूर्वोक्तप्रकारेण सुरासुरकृताऽभिषवोत्सवश्रीः=सुरैः=देवैः असुरैः=भुवनपतिविशेषैश्च कृता=सम्पादिता अभिषवोत्सवश्रीः=स्नात्रोत्सवशोभा यस्य सः। अङ्गुष्ठजामृतसमाशनलब्धिपूर्णः=अङ्गुष्ठजाऽमृतं-जिनेन्द्राः स्तन्यपायिनो न भवन्तीति क्रमं विजानता नाकनायकेन स्वभक्तिशक्तिवशतः प्रभोरतिनिर्मले हस्ताङ्गुष्ठतले सञ्चारितसुधा तस्य समाशनं=सम्=सम्यक्, आ=सर्वतो भावेन अशनं=भोजनं पानमितिभावः तद्रूपा लब्धिः=अतिशयविशेषस्तया पूर्णः=सम्पन्नः यद्वा अङ्गुष्ठजामृतरूपं यत् समाशनं-शोभनभोजनं तस्य लब्ध्या=लाभेन पूर्णः=भृतः पुष्ट इत्यर्थः जिनेन्द्रदेवः प्रभाव=विभवाऽनुभवत्रयेण=प्रभावः=तेजः शान्तिर्वा सामर्थ्यं वा विभवः=ऐश्वर्यम् अनुभवः=ज्ञानविशेषस्तेषां त्रयेण=त्रिकेण देवः=द्योतमानः सः—प्रसिद्धः सक्रान्तो वा जिनेन्द्रदेवः नन्दभवने=प्रागुदक्षिणद्वारप्रासादे=यद्वा सनन्दभवने=नन्दया=सम्पत्त्या=त्रिदिवेशनिदेशेन तीर्थेशपितुर्वेश्मनि धनपतिमुक्तरूप्य-रत्ननन्दासनभद्रासनाऽनेककोटिमितकाञ्चनादिरूपसमृद्धि महिते भवने=प्रासादे शशी=चन्द्रमा इव तूर्णं शीघ्रम् अल्पकालेनेत्यर्थः ववृधे=वृद्धिम्=अवयवोपचयं लेभे। नन्दासंपद्यलिङ्गरे इत्यनेकार्थसंग्रहः। इति तीर्थकृत्पक्षीयोऽर्थः॥

बलदेवपक्षे-एवं सुरासुरकृताऽभिषवोत्सवश्रीः=सुरासुरकृतो योऽभिषवस्तद्वदुत्सवश्रीः=जन्मोत्सवशोभा यस्य सः अङ्गुष्ठजाऽमृतसमाशनलब्धिपूर्णः=अङ्गुष्ठजनितसुधापानोपलब्धिपरिपुष्टः देवः प्रभाव-विभवा-ऽनुभवत्रयेण सह सनन्दभवने-प्रभूतसम्पत्तिशालिसदने शशीव तूर्णं ववृधे।

वासुदेवपक्षे-तृतीयचरणपर्यन्तं रामपक्षवद्व्याख्याय सः=प्रसिद्धो देवः=श्रीकृष्णवासुदेवः नन्दभवने=नन्दगोपवेश्मनि प्रभाव=विभवाऽनुभवत्रयेण सार्द्धं शशीव तूर्णं ववृधे॥ ११॥

नाम्नान्वयेन कलितः कलितन्त्रहारी,
पित्रा दधे स्वजनभोजनरञ्जनाद्यैः ॥
निर्बाधसाधनविधिः शतशो जिनार्चा-
निर्माणनर्मणि परं कृतकर्म्मणापि ॥ १२ ॥

अन्वयः—कृतकर्मणा पित्रा स्वजनभोजनरञ्जनाद्यैः कलितन्त्रहारी (सः) नाम्नाऽन्वयेन कलितः आदधे । शतशः जिनार्चा निर्माणनर्मणि निर्बाधसाधनविधिः आपि ॥ १२ ॥

व्याख्या—कृतकर्म्मणा=पुण्यकर्मवता पित्रा=जनकेन 'द्वादशेऽन्हि पितानामकुर्यादिति'शास्त्राज्ञानुसारेण द्वादशे दिने इति शेषः स्वजनभोजनरञ्जनाद्यैः-स्वजनेभ्यः बन्धुजनेभ्यः यद्वा स्वेभ्यः=बान्धवेभ्यः जनेभ्यः=साधारणलोकेभ्यः भोजनं=भोज्यदानं रञ्जनं=संगीतकादिना मनोविनोदनम् आदिना नगरमार्गसंस्कारादिस्तैस्तत्पूर्वकमित्यर्थः कलितन्त्रहारी=कलिविजृम्भितविनाशनशीलः सः इति शेषः प्रकृतपुत्रः नाम्ना=अभिधानेन अन्वयेन=वंशे च कलितः=अन्वितः आदधे=चक्रे । किञ्च शतशः बहुशः 'शतं सहस्रमयुतं सर्वमानन्त्यवाचकम्' इत्युक्तेः । जिनार्चानिर्म्माणनर्मणि=जिनपूजनविधानरूपेप्स्करकार्ये निर्बाधसाधनविधिः-निर्बाधः प्रतिबन्धरहितःसाधनविधिः=सम्पादनक्रिया आराधनाप्रकारो वा आपि=प्रापि लब्ध इत्यर्थः॥१२॥

अभिधानान्येव सप्तार्थकेनाह—

सर्वज्ञराजिवृषभः कृतशान्तिकर्मा-
नेमिर्व्रतान्तसि शशियुतिवर्धमानः ।
पार्श्वः स्वमातृशयने-क्षितदुर्जनाङ्के-
कृष्णः पयोदविभया प्रभया स रामः ॥१३॥

अन्वयः—सः सर्वज्ञराजिवृषभः कृतशान्तिकर्मा, व्रतानसि नेमिः, शशिद्युतिवर्धमानः क्षितदुर्जनाङ्के स्वमातृशयने पार्श्वः पयोदविभया प्रभयाऽकृष्णः सरामः (अभूत्) । २ पक्षे-कृतशान्तिकर्मा ३ व्रतानसि नेमिः, पयोदविभयाप्रभया कृष्णः । ४ पक्षे-क्षितदुर्जनाङ्केस्वमातृशयने पार्श्वः पयोदविभया प्रभया कृष्णः । ५ पक्षे-शशिद्युति वर्धमानः, पयोदविभया प्रभया अकृष्णः । ६ पक्षे स रामः सर्वज्ञराजिवृषभः...पयोदविभया प्रभया कृष्णः । ७ पक्षे—कृष्णः पयोदविभया प्रभया उपलक्षितः, स्वमातृशयनेक्षितदुर्जनाङ्के पार्श्वः शेषं सर्वत्र पूर्ववत् ॥ १३ ॥

व्याख्या—सः=प्रकृतः सर्वज्ञराजिवृषभः=सर्वज्ञेषु=जिनेषु राजते शोभते तच्छीलः सर्वज्ञराजी वृषभो लक्ष्मरूपेणास्त्यस्येति वृषभः सर्वज्ञराजी चासौ वृषभश्चेति सः यद्वा सर्वज्ञानां राजौ=श्रेण्यां वृषभः=श्रेष्ठः सर्वप्रथमत्वात् स तथोक्तः अथवा सर्वज्ञराजी चासौ वृषभः=उर्वोर्वृषभ (बलीवर्द) लाञ्छनमभूद्भगवतो जनन्या च चतुर्दशानां स्वमानामादौ वृषभोदृष्टस्तेन तदाख्यःप्रथमतीर्थंकरः । कीदृशः कृतशान्तिकर्म्मा=कृतं जगतां शान्तिकर्म=सकलोपसर्गोपशमनलक्षणकृत्यं येन सः । व्रतानसि=अहिंसादिव्रतरूपशकटे नेमिः=चक्रधारारूपः । शशिद्युति वर्द्धमानः=शशिनः=चन्द्रस्येव द्युतिः=कान्तिर्वर्द्धमानाऽस्येति सः शशिवद् द्युत्या वर्द्धमान इति वा शशिद्युतिवद्वर्धमान इति वा स तथोक्तः । क्षितदुर्जनाङ्के=क्षितं=पीडितं दुर्जनानां=खलानां शत्रूणाम् अङ्कं येन तत् तस्मिन् राज्ञः पुत्रजनने वैरिणां पीडोत्पत्तेः तादृशे स्वमातृशयने=स्वस्य माता=जननी तस्याः शयने=शय्यायां पार्श्वः=पार्श्व =कक्षाधोभाग इव । पयोदविभया पयोदस्य=वृष्टजलमेघस्येव विभा=शोभा यस्याः सा तया तादृश्या प्रभया—दीप्त्या अकृष्णः=गौरः पयोदकथनात् पयोदानात्—वर्षणात्—परं मेघस्य शुभ्रत्वात् । पुनः स रामः रमणं रामः=आनन्दस्तेन सहितः अभूत् इति प्रथमपक्षीयोऽर्थः ।

शान्तिनाथपक्षे—'कृतशान्तिकर्म्मा' इति विशेष्यम् तस्य कृतं=जनितं शान्तिकर्म्म=अशिवोपशमनरूपकृत्यं गर्भस्थेनापि येन सः अत एव पित्रा शान्तिः इति कृतनामधेयः श्रीशान्तिनाथप्रभुरित्यर्थः। सर्वज्ञराजिवृषभः=सर्वज्ञराजिषु=सामान्यकेवलिषु वृषभः=श्रेष्ठः। अन्यत् पूर्ववत्।

नेमिनाथपक्षे—नेमिरिति विशेष्यम्। तथा च—व्रतानसि=व्रतरूपरथे नेमिरिव नेमिः=तदाख्यः इत्यर्थः शशिद्युतिवर्द्धमानः—शशिद्युतिवत्=चन्द्रकलेव वर्द्धमानः=अनुदिनमुत्तरोत्तरमुपचीयमानः पयोदविभया प्रभया=हरित् कान्त्याऽञ्जनद्युत्या कृष्णः=श्यामलः अञ्जनाभ इत्यर्थः। शेषं पूर्ववत्।

पार्श्वनाथपक्षे—क्षिप्तदुर्जनाङ्के स्वमातृशयने पार्श्वे इव पार्श्वः=तदाख्य इत्यर्थः श्रीपार्श्वनाथ इति यावत्। पयोदविभया प्रभया=नीलिमकान्त्या कृष्णः=नीलः ऐन्द्रनीलमणिमेचकच्छविरित्यर्थः शशिद्युतिवर्द्धमानः चन्द्रकलेववर्धिष्णुः। शेषं पूर्ववत्।

श्रीमहावीरपक्षे—शशिद्युतिवर्धमानः=शशिन इव द्युतिर्यस्य स चासौ वर्द्धमानः=उत्पत्तेरारभ्यज्ञानादिभिर्वर्धते इति गर्भस्थे भगवति ज्ञातकुलं धनधान्यादिभिर्वर्धते इति वा सः वर्द्धमानस्तदाख्यः पयोदविभया प्रभया अकृष्णः=गौरः। शेषं पूर्ववत्।

श्रीरामपक्षे—सर्वज्ञराजिवृषभः=सर्वज्ञेषु जिनेषु राजते तच्छीलः सर्वज्ञराजी स चासौ वृषः=धर्म्मः आर्हतप्रवचनप्ररूपितलक्षणस्तेन भाति=शोभते इति सः यद्वा सर्वे ज्ञाः=पण्डितास्तेषां राजौ=श्रेण्यां वृषभः श्रेष्ठः पुरुषोत्तमत्वात्। शशिद्युतिवर्द्धमानः-चन्द्रकलेववृद्धिशीलः पयोदविभया प्रभया कृष्णः=श्यामलकान्तिः सः=प्रसिद्धः रामः=दाशरथिरामबलदेवः राम इत्येतन्नामक इत्यर्थः अभूत् शेषं पूर्ववत्॥

श्रीकृष्णवासुदेवपक्षे—कृष्णः=इत्येतत्कृतनामधेयः पयोदविभया प्रभया उपलक्षितः नूतनजलधररुचिरित्यर्थः। स्वमातृशयनेक्षितदुर्जनाङ्गे=स्वमात्रा=देवक्या शयने ईक्षितं यद् दुर्जनस्य=दुष्टात्मनः कंसस्याङ्गं तस्मिन् पार्श्व इव=पर्शुसमूहवान् इवच्छेदकत्वात् पर्शूनां समूहः पार्श्वं तदस्यास्तीति पार्श्वः अर्शआद्यच् शेषं रामवत् ॥ १३ ॥

आराम एव मरुतां तरुवन्नमेरो-
रारात् स्थितः सपदि वृद्धिमियाय गौणीम् ।
आमोदिनां सुमनसां निकरैः परीतः,
स्फीतोऽभिनन्दितसुपात्रविलासिगात्रः ॥ १४ ॥

अन्वयः—मरुताम् आरामे एव नमेरोः आरात् स्थितः (कुमारः) तरुवत् सपदि गौणीं वृद्धिम् इयाय । आमोदिनां सुमनसां निकरैः परीतः स्फीतः अभिनन्दितसुपात्रविलासिगात्रः ॥ १४ ॥

व्याख्या— मरुतां=देवानाम् 'मरुतौ पवना-ऽमरौ' इत्यमरः। आरामे=लीलोपवने एव नमेरोः=छायावृक्षस्य 'छायावृक्षो' नमेरुः स्यादितिशब्दार्णवः यद्वा सुरपुन्नागवृक्षस्य नमेरुः सुरपुन्नाग इति वैजयन्ती। आरात्=समीपदेशे 'आराद्दूर-समीपयो'-रित्यमरः स्थितः कुमारः तरुवत् वृक्ष इव सपदि झगिति गौणीं=वृक्षपक्षे प्राथमिकीं, कुमारपक्षे गुणसंबन्धिनीं वृद्धिम्=उपचयम् इयाय=प्राप। आमोदिनां=तीर्थकरजन्मोत्सवाभिनयनजनिततोषेण परमानन्दशालिनां सुमनसां=देवानां तरुपक्षे—आमोदिनाम्=अत्यन्तमनोहरपरिमलशालिनां सुमनसां=पुष्पाणां=निकरैः=समूहैः परीतः=सेवितः अन्यत्र व्याप्तः। स्फीतः=गुणैः समृद्धः अन्यत्र पुष्प-फलपल्लवादिसमुपचितः अभिनन्दितसुपात्रविलासिगात्रः=अभूदिति शेषः ॥ १४ ॥

क्रीडा महीशरुचिताह्युचिताः कुलीने-
ऽप्यापीडधारिणि कुमारवरे न कापि ।
पीडाऽन्ववापि जनरञ्जनमेव जातं,
स्वातन्त्र्यमस्य भुवि तत्पितुराज्ञयैव ॥ १५ ॥

अन्वयः—आपीड्धारिणि कुलीने कुमारवरे महीशरुचिताः उचिताः क्रीड़ाः (कलयति सति) कापि पीडा न अन्ववापि (कुमारेण) अस्य स्वातन्त्र्यं भुवि तत्पितुराज्ञयैव (प्राप्तं) जनरञ्जनमेव जातम् ॥ १५ ॥

व्याख्या—आपीड़धारिणि=शिरोभूषणशालिनि कुलीने=प्रशस्तकुलसंभवे कुमारवरे महीशरुचिताः=राज्ञोऽभिमताः उचिताः=शैशवावस्थायोग्याः तास्ता मनोविनोदनसाधनीभूताः क्रीड़ाः=क्रीडनानि बाललीला इत्यर्थः कलयति सतीतिशेषः कापि पीड़ा=आयासः न अन्ववापि=न प्राप्ता कुमारेणेत्यर्थः किञ्च अस्य=कुमारस्य स्वातन्त्र्यं तत्पितुराज्ञयैव-तज्जनकादेशेनैव प्राप्तं न तु स्वयमेव गृहीतं एवमपि जनरञ्जनं-लोकरञ्जकमेव जातं नत्वितरराजराजपुत्राणामिवापितृदत्तं स्वातन्त्र्यं जनपीडनाय जातमित्यर्थः । ॥ १५ ॥

कौमारकीमपि कलां कलयन्नजस्रं,
विस्रम्भमेव विदधे भुवि मुक्तरम्भः ।
तारुण्यमस्य निगमस्य शमस्य लब्धे-
रब्धेरिवाऽजनि सदावधिसंनिधानात् ॥ १६ ॥

अन्वयः—कौमारकीं कलाम् अजस्रं कलयन् मुक्तरम्भः (असौ) भुवि विश्रम्भमेव विदधे । निगमस्य शमस्य च लब्धेः अस्य तारुण्यम् सदावधिसंनिधानात् अब्धेरिव अजनि ॥ १६ ॥

व्याख्या—कौमारकीं=कुमारः=पञ्चवर्षीयो-बालकस्तत्सम्बन्धिनीं

कलां=चेष्टाम् अजस्रम्=अनवरतं कलयन्=कुर्वन् मुक्तः रम्भः=परित्यक्तराजमभावः त्यक्तारम्भो वा भावितीर्थकरत्वात् मुक्तदम्भ इति पाठान्तरे निष्कपटः असौ कुमारः भुविमहीतले विश्रम्भं=विश्वासं प्रणयं वा विदधे=जनयामास। किञ्च निगमस्य=शास्त्रस्य शमस्य-शान्तेश्च लब्धेः-लब्धिरूपस्य अस्य-कुमारस्य तारुण्यम्-यौवनम् अब्धेः-समुद्रस्येव जनतानन्ददायकम् अजनि=अभूत् अत्र हेतुमाह—, सदावधिसंनिधानात्-सदैव अवधिः-(कुमारपक्षे) नीतिमर्यादा (अब्धिपक्षे) नीरमर्यादा तस्य संनिधानात्=सामीप्यात् समीपावस्थानात्। अथ च मुक्तरंभः मुक्तात्यक्ता रंभा तदाख्यदेवांगना येन सः कुमारावस्थायां प्रभोः सेवार्थमागच्छतिस्म सेति भावः यद्वा मुक्ता निवृत्ता रंभा गौरी अष्टवर्षावस्था यस्य सः अथवा रम्यते उच्यते इतिरंभः अव्यक्त शब्दः मुक्तः परित्यक्तः रंभः बालावस्थाजनिताव्यक्तशब्दो येन सः। सदावधिसंनिधानात् सदा जन्मत एव अवधेऽवधिज्ञानस्य संनिधानादाश्रयादित्यर्थः॥ १६॥

पोतस्तरत्यपि महाह्रदमध्यनीरं,
गाम्भीर्यशालि वयसः पटुपक्षभाजः।
किञ्चोच्यते नभसिसंगतिरेतदीया,
तत्कारणेन महतः प्रतिपत्तिरुक्ता॥ १७॥

अन्वय.—पटुपक्षभाज वयसः पोतः अपि गाम्भीर्यशालि महाह्रदमध्यनीरं तरति। एतदीया नभसि सगति, उच्यते (जनैः) तत्कारणेन महतः प्रतिपत्तिः उक्ता॥ १७॥

व्याख्या—पटुपक्षभाजः=उड्डयनसमर्थपक्ष-गरुत्-शालिनः वयसः=पक्षिणः पोतः=शिशुर्बालोऽपि गाम्भीर्यशालि—अतिगम्भीरं महाह्रदमध्यनीरं=नदीनदपानीयमध्यं दुस्तरमपीतिभावः तरति। किञ्च

एतदीया=पक्षिशावकसंबन्धिनी नभसि=अनवलम्बने महाविशाले आकाशेऽपि संगतिः=संगमः संबन्धस्थितिरिति यावत् उच्यते जनैः। एतत्सर्वं पटुपक्षभाजः पक्षिणः परिश्रमेणैव भवति। तत्कारणेन= तस्माद्धेतोः महतः=महीयसः प्रतिपत्तिः=सेवा आराधना संगतिर्वा उक्ता कर्त्तव्यत्वेन नीतिज्ञैः कथितेत्यर्थः। किञ्च गांभीर्यशालि अनौद्धत्यशोभियसः शरीरावस्थाविशेषस्य किञ्च पटुपक्षभाजः चतुरसहायस्य पोतः शिशुः महाहृदमध्यनीरं समुद्रवद्दुरवगाहजलाशयमध्यजलमिव नितान्तकठिनमपि बुद्धिगम्यकार्यजातं तरत्यपि तरत्येव "एवार्थकोऽपिः" महुत्तरमपि चिन्तनीय कार्यजातं बुद्धिप्रभावेण सरलयतीति भावः। अत्र=विषय इति शेषः एतदीया प्रभावशालिबालकसम्बन्धि नभसि संगतिः निर्मलगाम्भीर्य संगतिरेव कारणत्वेनेति शेषः उच्यते अभिधीयते मनोरमहृदयावधानमेवहेतुत्वेनोत्प्रेक्ष्यते तत् कारणेन महतः सज्जनपुरुषस्य संगतिरुक्ता कथिता महतां संगतिः अवश्यमेवविधातव्येत्यर्थः ॥ १७ ॥

बाल्यं व्यतीत्य तरुणस्तरुणेव साम्यं,
धत्ते फलैरपि कलैः किशलैर्दलै र्वा।
संपूर्णतामनुनयन् सुमनोभरेण,
सामोद एव कृतया–वनसम्पदा स्यात् ॥ १८ ॥

अन्वय —(कुमारः) बाल्य व्यतीत्य तरुण तरुणैव साम्य धत्ते। फलैः कलैः किशलैर्दलैश्च। सुमनोभरेण संपूर्णताम् अनुनयन् कृतया वनसम्पदा सामोद एव स्यात् ॥ १८ ॥

व्याख्या—महत्प्रतिपत्तिवान् कुमारः बाल्यं=शैशवावस्थां व्यतीत्य=अतिक्रम्य तरुणः=यौवनस्थः सन् तरुणा=वृक्षेण एव साम्यं= सादृश्यं धत्ते=धारयति कैरित्याह—फलैः=परोपकारादिकार्यैः पक्षे– सस्यैः प्रसवैरित्यर्थः। कलैः=कलाभिः पक्षे पक्षिणां मधुराव्यक्तशब्दैः।

किशलैर्दलैः=पल्लववत्सवनैः सैन्यैः पक्षे पल्लवैः पत्रैश्च । किञ्च सुमनोभरेण पण्डितवर्गेण संपूर्णताम् अनुनयन्=प्राप्यमाणः कृतया अवनमंपदा=रक्षणसम्पत्त्या सामोदः=सानन्द एव स्यात् वृक्षपक्षे=पुष्पसमृद्ध्या सम्पूर्णतां प्राप्यमाणः वनसम्पदा=वनलक्ष्म्या सामोदः=अत्यन्तजनमनोहरसुगन्धिसहितः स्यात् । किशलः पल्लव इति शब्दस्तोमसहानिधिः । श्लिष्टोपमा ॥ १८ ॥

नम्रीभवेत् सविटपोऽपि वटो जनन्यां,
भूमौ लता-परिवृतो निभृतः फलाद्यैः ।
कौ-लीनतामुपनतां निगदत्ययं किं,
सम्यग्गुरोर्विनय एव महत्त्वहेतुः ॥ १९ ॥

अन्वय —लता-परिवृत फलाद्यैः निभृतः सविटपः अपि वटो जनन्यां भूमौ नम्रीभवेत् (किन्तु) अयं उपनताम् आत्मनः कौलीनतां किं निगदति गुरोः सम्यग् विनय एव महत्त्वहेतु ॥ १९ ॥

व्याख्या—लतापरिवृतः=वल्लीभिर्व्याप्तः फलाद्यैः=फल=पत्रादिभिः निभृतः=पूर्णः सविटपः=शाखादिसहितः अपि वटः=न्यग्रोधः वृक्षः जनन्यां=स्वोत्पत्तिहेतुभूतायां भूमौ=पृथिव्यां नम्रीभवेत्=पृथ्वीमभिनतोभवतीत्यर्थः परम् अयं वटः उपनतां=प्राप्ताम् आत्मनः कौलीनताम्=आभिजात्यं कौ=पृथिव्यां लीनतां च किं निगदति स्वयं प्रकटयति नैव निगदतीत्यर्थः युक्तं चैतत् यतः गुरोः सम्यग् विनयः=शिक्षा एव महत्त्वहेतुः=महिम्नः कारणं भवति । अत्र समासोक्त्या-ऽप्रस्तुतप्रशंसया वा इदमर्थान्तरं व्यज्यते यत् धनजनयौवनरूपसम्पन्नोऽपि जनो विनयाऽऽनतो न स्वीयमहत्त्वं स्वयं प्रकटयति किन्तु तदीयविनय एव तस्याऽऽभिजात्यं महत्त्वं च लोके ख्यापयति । कुमारोऽपि राजराजपुत्रस्तारुण्यमनोहरः सर्वगुणसम्पत्समृद्धः सन्नपि गुरुजनेषु विनयानत आसीदित्यर्थः ॥ १९ ॥

तेजो वहन्नसहनो दहनः स्वजन्म-
हेतून् ददाह तृणपुञ्जनिकुञ्जमुख्यान् ।
लेभे फलं त्वविकलं तदयं कुनीते-
र्भस्मावशेषतनुरेष ततः कृशानुः ॥ २० ॥

अन्वय —दहनः असहन तेजो वहन् स्वजन्महेतून् तृणपुञ्जनिकुञ्जमुख्यान् ददाह ॥ अय कुनीते. अविकलं तत् फलं लेभे यत. एप कृशानु भस्मावशेषतनुः जात ॥ २० ॥

व्याख्या— विनयफलमुक्त्वाऽविनयफलमाह— दहनः=अग्निः असहनः=असह्यः असहिष्णुश्च तेजः=तापकतालक्षणस्वभावं तीव्रतां च वहन्=धारयन् स्वजन्महेतून् स्वोद्भवनिमित्तभूतान् तृणपुञ्जनिकुञ्जमुख्यान्=तृणराशि=लतागृहादीन् ददाह=भस्मीचकार । तु=किन्तु अय दहनः कुनीतेः=कृतघ्नतायाः अविकलं=सकलं तत् अनिर्वचनीयं फलं लेभे=लभतेस्म यतः एष कृशानुः=आश्रयाशः भस्मावशेषतनु = भस्ममात्रावशिष्टरूपः जातः स्वयमपि नष्ट इत्यर्थः । समासोक्त्याचायमर्थो ध्वन्यते=असहिष्णुप्रकृतिस्तीव्रतां दधत् स्वोपजीव्यमपि विनाशयति ततश्च तत्कृतघ्नताविजृम्भितदुष्फलं लभमानोऽवसाने स्वयमपि समूलमुन्मूलितोभवति ॥ २० ॥

अस्याग्रजो न मुशली हलभृन्न किन्तु,
ख्यातो नवाशवलधी--रथ- नेमिरूपः ।
श्रीनन्दिवर्धनमतिः स्फुरितोऽनुजन्मा,
सौमित्रिलक्ष्मणकलाकुशलादिनामा ॥ २१ ॥

अन्वय —अस्य अग्रज मुशली हलभृत् न (इति) न, किन्तु ख्यात नवाशवलधी अथ नेमिरूप श्रीनन्दिवर्द्धनमतिस्फुरित सौमित्रलक्ष्मणकला–

कुशलादिनामा अनुजन्माऽभूत् (इति कृष्णपक्षे) । अस्य रथनेमिरूपः अग्रजः मुशली न हलभृत् न किन्तु ख्यातः अशबलधी श्रीनन्दिः । सौमित्रलक्ष्मणकलाकुशलादिनामा अनुजन्मा न आसीत् अस्य श्रीनन्दिवर्द्धनमतिस्फुरितः अग्रजः (शेषं द्वितीयवत्) । अस्य अग्रजः न (आसीत्) । सौमित्रलक्ष्मणकलाकुशलादिनामाऽनुजन्माऽपि मुशली हलभृच्च न किन्तु ख्यातः नवाशबलधी·''अथ नेमिरूपः श्रीनन्दिवर्धनमतिस्फुरितश्च ॥ २१ ॥

व्याख्या—अस्य श्रीकृष्णवासुदेवस्य अग्रजः=ज्येष्ठभ्राता मुशली=मुशलास्त्रभृत्, हलभृत्=हलास्त्रधारी न इति न किन्तु मुशल्येव हलभृदेव हलं मुशलं च बलदेवस्य चिह्नभूतमिति नाप्रसिद्धम् नवाशबलधीः नवा=नवीना नवनवोन्मेषशालिनीत्यर्थः अशबला=एकरूपा धीः प्रज्ञा यस्य सः प्रतिभाशालीत्यर्थः अथ च नेमिरूपः=नेमिषु=दुर्गवस्तु प्रशस्तः नेमिरूपः । श्रीनन्दिवर्द्धनमतिः=श्रियाः=शोभायाः कीर्तेर्वा, नन्देः=आनन्दस्य च वर्द्धने मतिर्यस्य सः श्रियं नन्दिं च वर्द्धयतीति श्रीनन्दिवर्द्धना तादृशी मतिर्यस्येतिवा, श्रीः=कल्याणी नन्दिवर्द्धने=मित्रे मतिर्यस्येति स तथोक्तः । स्फुरितः=स्फूर्त्तिशाली । अनुजन्मा=कनिष्ठभ्राता गदः 'अनुजो गद' इत्यमरः सौमित्रलक्ष्मणकलाकुशलादिनामा=शोभनं मित्रमस्यासौ सुमित्रः शोभनं मित्रं सुमित्रमिति वा स एव (तदेव) सौमित्रः (त्रं) लक्ष्मणः=लक्ष्मीवान्, कलाकुशल इत्यादिभिर्नाम्यते–ऽभ्यस्यते इति स तथाऽभूत् ।

नेमिनाथपक्षे–अस्य=श्रीनेमिनाथप्रभोः रथनेमिरूपः=रथनेमिनामा अग्रजः मुशली=मुशलधारी न हलभृत्=हलधरो न किन्तु ख्यातः=लोके विदितः शबलधीः श्रीनन्दिवर्द्धनमतिः स्फुरितः । सौमित्रलक्ष्मणकलाकुशलादिनामाऽनुजन्मा नवा=नैव आसीत् ।

श्रीवीरप्रभुपक्षे—अस्य=वर्द्धमानप्रभोः श्रीनन्दिवर्द्धनमतिस्फुरितः=मतिः=प्रज्ञा स्फुरिता=स्फूर्तिशालिनी यस्य स मतिस्फुरितः

श्रीनन्दिवर्द्धनः=तदाख्यश्चासौ मतिस्फुरितश्चेति स तथोक्तः नन्दिवर्द्धनसंज्ञ इत्यर्थः अग्रजः=ज्येष्ठभ्राता मुशली न हलभृत् न किन्तु ख्यातः नवा शबलधीः नेमिरूपश्च । सौमित्रलक्ष्मणकलाकुशलादिनामाऽनुजन्मा नवा=नैवाऽऽसीत् ।

श्रीरामपक्षे—अस्य श्रीरामचन्द्रबलदेवस्य अग्रजः=ज्येष्ठभ्राता न आसीदिति शेषः ;सौमित्रिलक्ष्मणकलाकुशलादिनामा अनुजन्मा=कनिष्ठभ्राताऽपि मुशलीहलभृत् च न किन्तु ख्यातः नवाशबलधीः नेमिरूपः श्रीनन्दिवर्द्धनमतिः स्फुरितश्च । सौमित्रिलक्ष्मणेत्यादेश्चायमर्थः सौमित्रिः (सुमित्रायांभवत्वात् लक्ष्मणः कलाकुशलः इत्यादीनि नामानि अस्य सः इत्यादिभिः म्नायते=अभ्यस्यते अभिधीयते इत्यर्थ इति वा स तथोक्तः ॥ २१ ॥

अस्य प्रिया न समभूत् कमलाऽनुरूपा,
पूर्वा सुमङ्गलवचास्त्वपरा सुनन्दा ।
नाम्ना प्रभाति-रतिकृत्सुभगा च भैमी,
शीतांशुपुर्णवदना सदया यशोदा ॥ २२ ॥

अन्वयः—अस्य प्रिया कमलाऽनुरूपा न समभूत[1] नाम्ना च पूर्वा सुमंगलवचाः । अपरा सुनन्दा[2] प्रभाति रतिकृत् सुभगा भैमी शीतांशुपूर्णवदना सदया यशोदा । २ अस्य नाम्ना यशोदा यशोगतीप्रिया कमलानुरूपा न समभूत् । अपूर्वा सुमंगलवचाः अपरा सुनन्दा शेष पूर्ववत । ३ अस्य कमलाऽनुपूर्वा यशोदा प्रिया न समभूत् । ४ अस्य प्रिया नाम्ना प्रभा–प्रभावती कमलानुरूपा न समभूत् (शे. पू.) ५ अस्य प्रिया नाम्ना यशोदा ६ अस्य प्रिया नाम्ना शीता अंशुपूर्णवदना । ७ अस्य प्रिया भैमी नाम्ना ॥ २२ ॥

व्याख्या–अस्य=श्रीऋषभदेवस्य प्रिया=भार्या कमलाऽनुरूपा=लक्ष्मीसदृशी एव न समभूत् ततोऽप्यधिकरूपवतीत्यर्थः नाम्ना च

पूर्वा=प्रथमपरिणीता ज्येष्ठा सुमंगलवचाः=सुमङ्गल इति वचः=वाचकशब्दो यस्याः सा सुमङ्गलाभिधेयेत्यर्थः। अपरा=द्वितीया सुनन्दा=तन्नामिकेत्यर्थः। सा कीदृशीत्याह—प्रभाति रतिकृत्=प्रभाति=प्रकाशं रतिं=रागं च पत्यौ करोति या सा यद्वा प्रकर्षेण भातीतिप्रभा, अतिरतिंकरोतीत्यतिरतिकृत्। अथवा=प्रभया=निजवपुःकान्त्या अति=अतिशयेन रतिं=कामभार्यां कृन्तति=धात्वनेकार्थत्वात् जयतीति सा तथोक्ता। सुभगा=पतिवल्लभा, सुदृश्या वा शोभनैश्वर्यशालिनी वा पुनश्च भैमी=भैमीवेति लुप्तोपमा दमयन्तीव रुक्मिणीव वा पतिव्रतेत्यर्थः शीतांशुपूर्णवदना=चन्द्रमुखी, सदया=निष्कारणपरदुःखप्रहाणेच्छावती यशोदा कीर्तिदायिनी।

२ शान्तिनाथपक्षे—अस्य=श्रीशान्तिनाथप्रभोः नाम्ना यशोदा=यशोमती नाम्नी प्रिया कमलानुरूपा एव न ततोऽप्यधिकसौन्दर्यशालिनी समभूत् सा कीदृशीत्याह—अपूर्वा=लोकोत्तरशीलसौन्दर्यशालित्वेन विलक्षणा सुमङ्गलवचाः=सुमंगलं=हितावहत्वात् कल्याणं वचः=वचनं यस्याः सा पुनः अपरासु=सपत्नीषु नन्दा=नन्दयतीति नन्दा=आनन्दयित्री शेषं पूर्ववत्।

३ नेमिनाथपक्षे—अस्य=श्रीनेमिनाथप्रभोः कमलानुरूपेत्यादिविशेषणविशिष्टा प्रिया=पाणिगृहीती न समभूत् किन्तु आजन्मब्रह्मचारितया निष्प्रिय एवायमवतस्थे।

४ पार्श्वनाथपक्षे—अस्य श्रीपार्श्वनाथप्रभोः प्रिया=सहधर्मिणी नाम्ना प्रभा=प्रभावतीनाम्नी कमलानुरूपा एव न किन्तु तदधिकरूपवती समभूत् शेषं पूर्ववत्।

५ वीरविभुपक्षे—अस्य=श्रीवर्द्धमानप्रभोः प्रिया=भार्या नाम्ना च यशोदा कमलानुरूपा एव न किन्तु ततोऽप्यधिकरूपशालिनी-

त्यर्थः समभूत् । शेषं प्राग्वत् ।

६ श्रीरामपक्षे—अस्य=श्रीरामचन्द्रबलदेवस्य प्रिया=पत्नी नाम्ना च सीता कमलानुरूपा=लक्ष्मीरूपिणी न समभूदिति काक्वा समभूदेवेत्यर्थः राघवत्वे भवेत् सीता रुक्मिणी कृष्णजन्मनी-त्यन्यत्रोक्तेः । सा··कीदृशीत्याह अपूर्वा, सुमङ्गलवचाः=सुमङ्गलसतीत्वेन प्रातःस्मरणीयतया कल्याणावहं वचः=उक्तिर्यस्याः । सा अपरासु=सपत्नीषु नन्दा=आनन्दकारिणी । जैनानां मतये रामचन्द्रस्य बहुपत्नीकत्वात् सीतायाः सपत्नीजनहर्षकारित्वोपपत्तेः । प्रभातिरतिकृत् सुभगा भैमी, अंशुपूर्णवदना=अंशुभिः=प्रभाभिः=कान्तिभिः पूर्णं=भृतं वदन मुखं यस्याः सा । सदया, यशोदा च विवरणं प्राग्वत् ।

श्रीकृष्णपक्षे—अस्य श्रीकृष्णवासुदेवस्य कमलानुरूपा लक्ष्मीरूपिणी "राघवत्वेभवेत्सीतारुक्मिणीकृष्णजन्मनीत्यन्यत्रोक्तेः" भैमी रुक्मिणी प्रिया=भार्या यद्वा भार्याणां मध्येऽतिशयप्रेमपात्रीभूता न समभूत् काक्वा समभूदेवेत्यर्थः शेषं पूर्ववत् ॥ २२ ॥

तेना·हता वृषभ केशिखरा विरूपा,
नव्याहताः समितिसंगतिगुप्तिकार्ये ।
वाग्नोदितासमिति संगतिगुप्तिकार्येऽ—
लक्ष्यस्वरूपमत एव मतं हि तस्य ॥ २३ ॥

अन्वयः—तेन वृषभ केशिखराविरूपा अहताः समिति संगति गुप्तकार्ये व्याहता, न समिति संगति गुप्तकार्ये वाग्नोदिता, अत एव तस्य मतं अलक्ष्यस्वरूपम् ॥ २३ ॥

व्याख्या—तेन तीर्थङ्करप्रमुणा वृषभकेशिखराविरूपाः वृषभः वृषः, केशी सिंहः, खरो मृगस्तेषान्द्वन्द्वस्ते, विरूपाश्च निरूपाश्चन्ये-

क्लेशेपस्ते विरूपा विम्पक्षिणं रूपयन्ति अन्विपन्तीति विरूपाः सर्पाः अथ च विविशब्दं स्वच्छं रूपं वर्णो येषान्ते विरूपाः शंखास्ते, अहता नपरित्यक्ताः किन्तु स्वस्वलाच्छनरूपेण स्वीकृता एव, यथा आदीश्वरस्य वृषः महावीरस्य केशी सिंहः शान्तेः खरः खे रमते प्लवतीति खरो मृगः पार्श्वस्य विरूपः सर्पः नेमे शंख एवं रूपा इत्यर्थः समितिसंगतिगुप्तिकार्ये समितेः सभायाः या संगतिः सम्मेलनम् तत्र यत् गुप्तिकार्यं रहोमंत्रणम् तस्मिन् न व्याहता न हता न प्रतिबद्धा इत्यर्थः किन्तु संगता एव तथा समितिसंगतिगुप्तिकार्ये सभासम्मेलनरहोमंत्रणे वाग् वाणी नोदिता प्रेरिता प्रयोजिता न केवलं संख्यापूरणाय तत्र स्थिताः किन्तु स्वमतमपि तत्र प्रकाशयन्तः अत एव वाग्नोदनादेव स्वमतप्रकाशनादेवेत्यर्थःतस्य जिनेन्द्रस्य मतमभिप्रायः अलक्ष्यस्वरूपं पामरैरनधिगम्यस्वरूपम् कार्यादेव तन्मन्त्रितं ज्ञायते न पूर्वमित्यर्थः।

रामपक्षे—वृषभकेशिखराः तत्तदभिधाना राक्षसाः विरूपा सूर्पणखा च तेन रामेण आहता आसमन्ताद्विनाशिताः अन्यदुक्तस्वरूपम्। कृष्णपक्षे—वृषभकेशिखराः विरूपाः वृषभासुरकेशिदानवगर्दभासुराः विरूपा अघासुरप्रभृतयश्च आहता विध्वंसिता हिंसिता अन्यत् पूर्ववत्॥ अत्रश्लोकेयमकः श्लेषश्च ॥ २३ ॥

सम्यक्कलाकुशलताध्ययनं विनास्य,
लोकेऽन्यगौरवधियाऽध्ययनं प्रपद्य।
सूर्यः करोति भुवनं प्रकटं स्वतस्तत्,
किं पाटवेऽस्यघटते परसंपरायः ॥ २४ ॥

सन्वय—लोकेऽन्यगौरवधियाऽध्ययन प्रपद्य सम्यक् कलाकुशलता अस्य अध्ययन विनैव, सूर्यः स्वतः तत् भुवनं प्रकट करोति, अस्य पाटवे परसंपरायः किं घटते ॥ २४ ॥

व्याख्या—लोके जने जगति वा अन्यगौरवधिया अन्यस्मिन् जने गुरुवद्बुद्ध्या अध्ययनं पठनं प्रपद्य प्राप्य सम्यक् सर्वथा कलाकुशलता चतुःषष्टिकलानैपुण्यं भवतीति शेषः अस्य वर्णनीयमहापुरुषसप्तकस्य अध्ययनं विनैव अध्यापकाद्यालम्बनकपठनं विनैव कलाकुशलता अभूदित्यर्थः, अत्र दृष्टान्तं प्रदर्शयति सूर्यः स्वत एव आत्मनैव तत् प्रसिद्धं भुवनं प्रकटं करोति प्रकाशयति किं च अस्य सूर्यस्य पाटवे जगत्प्रकाशनकौशले परसंपरायः अन्यमह्वायः अन्याश्रयणं किं घटते युज्यते न घटत इत्यर्थः। अथ च अस्य चरित्रनायकस्य सम्यक्कलाकुशलता सर्वथाकलानैपुण्यं अध्ययनं पठनम्विनैव गुरुकुलशुश्रूषणं विनैव किन्तु लोके जगति अन्यगौरवधिया अन्येऽप्येवं कुर्युरित्येवं बुद्ध्या अध्ययनं गुरुकुलनिवासं प्रपद्य सम्यक् कलाकुशलता अभूदित्यर्थः ॥ अत्र दृष्टान्तालंकारः ॥ २४ ॥

कं स प्रयोगमधिगत्यपरस्परेण,
कं सं जहार करणाय जने हितस्य ॥
नैपुण्यपुण्यवशतोऽतिशयाश्रयेण,
निष्कण्टकत्वमजनिष्ट निजेष्टदेशे ॥२५॥

अन्वयः—परस्परेण कं स प्रयोगम् अधिगत्य जने हितस्य करणाय कं सं जहार नैपुण्यपुण्यवशतः अतिशयाश्रयेण निजेष्टदेशे निष्कण्टकत्वम् अजनिष्ट ॥२५॥

व्याख्या—स प्रभुः आदीश्वरादिः कम् कमपि प्रयोगम् अनुष्ठानम् व्यापारम् परस्परेण क्रमेण अधिगत्य प्राप्य यद्वा कम् कमपि प्रयोगमश्वम् " प्रयोगः अनुष्ठाने निदर्शने अश्वे चेति शब्दस्तोममहानिधिः " परस्परेण अन्योन्यतः अधिगम्य प्राप्य जने लोके हितस्य पथ्यस्य मंगलस्येत्यर्थः करणाय विधानाय स्थापनाय कं सं पानभाजनं मद्यपानपात्रं "काम्यते कामिभिरिति" मावावद्यमित्यौणादिकः सः"

"मल्लिकाचपकः कंसः पारीस्यात्पानभाजनमिति हैमः" जहार हृतवान् सर्वत्रनिवारयामास नैपुण्यपुण्यवशतः नैपुण्यं सर्वसम्पत्समर्पकं यत्पुण्यं शुभादृष्टम् तस्यवशत आनुकूल्यात् अतिशयाश्रयेण सर्वतोऽधिकत्वेन सर्वश्रेष्ठत्वेनेत्यर्थः निजेष्टदेशे स्वीयाभिमतप्रदेशे निष्कण्टकत्वम् निराबाधत्वम् निर्वैरत्वम् अजनिष्ट सर्वतो निरुपद्रवो जात इति भावः॥

कृष्णपक्षे—परस्परेण कर्णाकर्णितः जनवचनतः कंस प्रयोगं कंसस्य स्वमातुलस्य व्यवहारं नीचाचारं अधिगत्यश्रुत्वा जने सज्जने हितस्य क्षेमस्य करणाय क्षेमं कर्तुं कंसं कंसनामानं नृपं जहार जघान नैपुण्यपुण्यवशतः अत्यधिकपुण्यमाहात्म्यात् अतिशयाश्रयेण आतिशय्यमधिकुर्वतानिजेष्टदेशे स्वाभिमतप्रदेशे निष्कण्टकत्वं निर्वैरत्वं शत्रुराहित्यं अजनिष्ट अजनि ॥ २५ ॥

सन्तोऽपि ये स्वसमयज्ञविधिं प्रपन्ना,
दैत्योपरुद्धमनसो भुवि दुर्जना ये ॥
पूर्वेष्टसाधनविधानमनन्तरायं,
कर्तुं ययौ स विपिनं परवारणेन ॥ २६ ॥

अन्वय—ये सन्तस्ते स्वसमयज्ञविधिं प्रपन्नाः ते दुर्जनास्ते दैत्योपरुद्धमनस. पूर्वेष्टसाधनविधानम् अनन्तरायं कर्तुं स परवारणेन विपिनं ययौ॥२६॥

व्याख्या—अथेन्द्रः प्रभोर्विवाहसमयमधिगम्य तदनुज्ञां जिघृक्षुर्व्यजिज्ञपत् प्रभुश्चमौनेन तदुत्तरन्ददावित्याह सन्तोऽपीति । ये सन्तः सत्पुरुषाः कर्तव्याकर्तव्यविवेकिन स्वसमयज्ञविधिम् स्वसमयं स्वावशिष्टकर्मभोगसमयं ज्ञापयति बोधयतीति स्वसमयज्ञः स चासौ विधिश्च तन्तथोक्तम् अवधिज्ञानादिना तद्बुद्धा प्रपन्नाः स्वीकृताः अङ्गीकृता इत्यर्थं ये भुवि पृथिव्यां दुर्जना दुर्हृदयः ते दैत्योपरुद्धमनसः अज्ञानोपहततया कर्तव्याकर्तव्यनिर्धारणपराङ्मुखा भवन्तीति शेषः

अनन्तरायं अन्तरायरहितं निर्बाधं पूर्वेष्टसाधनविधानं पूर्वपूर्वनिर्धारितं यदिष्टसाधनम् चतुर्थपुरुषार्थसाधनम् विपिनम् दुःसाध्यम् तत् कर्तुमनुष्ठातुम् परवारणेन अत्युत्कृष्टात्मबलेन मदोन्मत्तगजेन वा ययौ जगाम॥

पार्श्वनाथपक्षे—दैत्योपरुद्धमनसः दैत्येन छेदनभेदनादिना उपरुद्धम् अभिभूतं व्याप्तं मनो येषान्ते सदसद्विवेकरहिता ये भुवि भूमौ दुर्जना, दुराचारिणो यवननृपप्रभृतयः सन्तीति शेषः पूर्वेष्टसाधनविधानं पूर्वं पूर्वकर्त्तव्यं यद् इष्टसाधनविधानम् प्रभावती परिणयरूपम् अनन्तरायम् निष्प्रत्यूहं कर्तुं प्रयोजितुं परवारणेन अत्युत्कृष्टहस्तिसाधनेन विपिनम् भयजनकम् यवननृपंप्रति ययौ इयाय ॥

रामपक्षे-ये सन्तः सत्पुरुषा महान्तस्ते स्वसमयज्ञविधिं स्वकीयसमयज्ञापकविधिं कर्त्तव्यं प्रपन्नाः कर्त्तव्योन्मुखाः भवन्ति ये दुर्जना दुश्चरित्रास्ते दैत्योपरुद्धमनसो जायन्त इति शेषः पूर्वेष्टसाधनविधानं सीतापरिणयरूपेष्टप्रथमकर्त्तव्यं अनन्तरायं निर्बाधं कर्तुं विधातुम् परवारणेन परेषां शत्रूणां वारणेन दैत्यजननिरोधेन विपिनं ययौ ॥

कृष्णपक्षे—रुक्मिणीविवाहरूपेष्टसाधन कर्तुं ययाविति, शेषं पूर्ववत् ॥ २६ ॥

तीव्रव्रतानुचरणा नधिगम्य जानेः "जातेः"
पूर्वेऽवशिष्टमपि तन्मनसा ननाम ॥
इत्याश्रयन्निव विधिन्तदगाधि जातं,
ज्ञातं भजन् वनमियाय स गाधिजातं॥२७॥

अन्वयः—जानेः "जाते." तीव्रव्रतानुचरणान् अधिगम्य पूर्वे अवशिष्टमपि तत् मनसा ननाम अगाधि जातम् विधिम् तद्आश्रयन्निव स ज्ञातम् भजन् गाधिजातम् वनम् इयाय ॥ २७ ॥

व्याख्या—जानेः " जातेः " उत्पत्तेः जन्मनः फलानि हेतून् तीव्रव्रतानुचरणान् महत्पुण्यपरिपाकप्रभावसाध्यदुःसाध्यनियमपरि-

रिपालनरूपान् अधिगम्य ज्ञात्वा विचार्य "मदीयजन्मनस्तीव्रव्रताचरणमेवफलमिति" निश्चित्य पूर्वं पूर्वभवेऽवशिष्टम् अजीर्णतया किञ्चित् स्थितम् अपि तत् कर्म मनसा हृदयेन ननाम सस्मार तत् तस्मात् अगाधिजातम् गाध्यते लिप्यते इति गाधिर्लिप्सा तस्माज्जातम् इति गाधिजातम् तन्न भवतीत्यगाधिजातम् अयत्नोपनतम् विधिम् अदृष्टम् कर्मेत्यर्थः "दैवन्दिष्टम्भागधेयं भाग्यं स्त्रीनियतिर्विधिरित्यमरः" आश्रयन्निव इति ज्ञानरूभजन सेवमानः स प्रभुर्जिनेन्द्रः गाधिजातम् प्रतिष्ठाजनकम् वनम् आलयम् अरण्यम् वा इयाय ययौ ॥

कृष्णपक्षे—जानेः जायतेऽस्मादिति जानिः तस्य जानेः समुद्रस्य जलरूपतया जलस्य च जीवनत्वेन समुद्रस्य तत्त्वमिति भावः स कृष्णः तीव्रव्रतानुचरणान् अष्टमतपःप्रभृतीन् अधिगम्य प्राप्य कृत्वेत्यर्थः पूर्वं प्रथमम् अवशिष्टम् अतिरिक्तम् अधिकम् तत् समुद्रम् जीवनत्वेन क्लीबनिर्देशः मनसा हृदयेन भक्त्या ननाम तत् समुद्रजलम् इति पूर्वोक्तरूपं विधिमनुष्ठानमाश्रयन्निव स्वीकुर्वन्निव ज्ञानम् कृष्णोऽयम्नसामान्य इति बुद्ध्या जानन् इति स्मरन् अगाधि जातम् अतिगम्भीरं स प्रतिष्ठमिति भावः वनं समुद्रजलम् स गाधिजातम् अनिम्नं सुप्रचारमियाय ययौ द्वारकाजनप्रचाराय किञ्चित् प्रसमारेति भावः ॥२७॥

कन्यान्यदाकृत सुमंगलका विदर्भे,
प्रासाति शैशववयोऽभिधया सुनन्दा ॥
सीताप्रभा समधिकक्षमया विभूषा,
सद्रुक्मिणा वरहिताहिकजा यशोदा ॥ २८ ॥

अन्वयः—अन्यदा कृतसुमंगलका अतिशैशववयःप्राप्ता अभिधयासुनन्दाकन्या सीता समधिकक्षमया विभूषामद्रुक्मिणी वरहिताहिकजा यशोदा आसीदिति शेषः ॥ २८ ॥

व्याख्या–आदीश्वरपक्षेअन्यदा कदाचित् विदर्भे विगतो दर्भः कुशोयत्रतस्मिन् यद्वा विशेषेणदर्भो यत्र युगलित्वाद्वनाधिवासतस्तस्मिन् विदर्भदेशे कृतसुमंगलका कृतम् विहितं सुमंगलं विवाहपूर्वलत्त्व्यकुमारीकृत्यं यया सा कृतसुमंगलका अथ च सुमंगलाभिधाना अतिशैशववयः प्राप्ता शैशवादतिक्रान्तमतिशैशवम् " अत्यादयः क्रान्ताद्यर्थे पञ्चम्या " इति समासः अतिशैशवं च तद्वयश्चेति कर्मधारयस्तत् प्राप्ता अतिक्रान्तशैशवा प्राप्तयौवनेत्यर्थः अभिधया संज्ञया सुनन्दा सुनन्दाभिधाना सीता लक्ष्मीस्वरूपा समधिकक्षमया अत्यधिकक्षमाशीलतया विभूषा क्षमाभूषणभूषिता प्रभा कान्तिरूपा सद्रुक्मिणी शोभनस्वर्णभूषणचिता वराहिता वराय हिता वरणयोग्या अहिकन्या नागकन्येव यशोदा यशोविधायिनी आसीदिति शेषः ॥

श्रीशान्तिनाथपक्षे—विदर्भे विगतः दर्भो भयो यत्र तस्मिन् विदर्भे भयरहिते कृतसुमंगलका विहितसुमङ्गका अतिशैशववयः प्राप्ता समधिगततरुणावस्था सीता प्रभा सीता इव लक्ष्मीरिव प्रभाकान्तिर्यस्याः सा समधिकक्षमया निरतिशयसहिष्णुतया विभूषाजगदवतंसभूता सद्रुक्मिणी सत् प्रशस्तं रुक्म स्वर्णं अस्ति अस्याः सा सद्रुक्मिणी यद्वा विभूषायां भूषणे सद्रुक्म यस्याः सा विभूषासद्रुक्मिणी वराहितावरस्य ग्रहण कर्त्तुः कल्याणप्रयोजिका अभिधया संज्ञया यशोदा यशोमती अभूदिति शेषः ॥

श्रीपार्श्वनाथपक्षे— उक्तविशेषणविशिष्टा अभिधया नाम्ना प्रभा प्रभावतीति शेषः ॥

श्रीवीरस्वामिपक्षे—अभिधया यशोदा यशोदा नाम्नीति विशेषोऽन्यत् वर्णितदिशावसेयम् ॥

रामपक्षे–यथोक्तविशेषणवती अभिधया सीता तन्नाम्नीतिनियोज्यम् ॥

कृष्णपक्षे—अभिधया सद्रुक्मिणी सती चासौ रुक्मिणीचेति सद्रुक्मिणी विदर्भे विदर्भजनपदे अन्यत्पूर्ववत् ॥

श्रीनेमिनाथपक्षे-अन्यदा कस्मिन् अपि समये विदर्भे विगतभये प्रभौ नेमिनाथे कन्यादीप्तिः अभूदिति शेषः कापिलोकातिशयकान्तिर्जातेति भावः कथंभूता कृतसुमंगलका कृतं सुमंगलं यया विहितभव्या अतिशैशववयः प्राप्ता अतिशैशवेवयसि यौवनावस्थायां प्राप्ता संगता शैशवानन्तरमधिगता प्रभोर्युवत्वारम्भसूचिकेत्यर्थः सुनन्दा सुष्ठुनन्दयतिजनानिति सुनन्दा सर्वमोदप्रदात्री सीता प्रभा सीता लक्ष्मीरिव प्रभादीप्तिर्यस्याः सा समधिकक्षमया अतिसहनशीलया विभूषा विभूषणरूपा मण्डनायमाना सद्रुक्मिणी स्वर्णसदृशी स्वर्णकान्तिकमनीयेत्यर्थः वरहिता वराश्रेष्ठाचासौ हिताहितप्रयोजिका इति वरहिता अतिशयोपकारकारिणी अहिकजा अहिरेव अहिकः सूर्यस्तस्माज्जाता इवेति सूर्यकान्तिसदृशी यशोदा यशोविधायिनी सर्वाधिकदीप्तिभरेत्यर्थः २८

रागं पुपोष भगवद्वपुषागुणेन,
रूपश्रियातिशयिनं जयिनं विमृश्य ॥
कन्यास्वयम्वरमहं स ततो गवेशः,
प्रारब्धवान् विहित संहित सन्निवेशः ॥ २९ ॥

अन्वयः—गवेशः भगवद्वपुषागुणेन रूपश्रियातिशयिनं जयिनं विमृश्य रागं पुपोष विहित संहितसन्निवेशः सन् कन्यास्वयम्वरमह प्रारब्धवान् ॥२९॥

व्याख्या—गवेशः गोः पृथिव्या ईशः पतिः गवेशः पृथ्वीश भगवद्वपुषा भगवतां जिनेन्द्राणां वपुषा शरीरेण शारीरिकसौन्दर्यातिशयेन गुणेन दयादाक्षिण्यादि गुणमहिम्ना च रूपश्रियातिशयिनः रूपस्य शरीरसन्निवेशस्य श्रीः रूपश्रीस्तया शरीर कान्त्या अतिशय्यं सर्वोत्कर्षेण भूयते इति अतिशयितम् तथोक्तम् जयिनम् सर्वोत्कर्षे

विराजमानम् विमृश्य विचार्य क्वपुनरेन वरो लभ्यते इति विचार्य विहित संहितसन्निवेशः विहितः कृतः संहितः दृढः सन्निवेशः स्थितिः स्थानम्वा येन स कन्यास्वयम्वरमहं कन्यायादुहितुः स्वयम्वरमेव महः उत्सवः तम् कन्यास्वयम्वरोत्सवम् आरब्धवान् आरेभे महउद्धवउत्सव इत्यमरः ॥ सर्वपक्षसाधारणम् ॥ २९ ॥

तत्रासदानव बलस्य बलारिरेप,
न्यायान्तरायकरणं रणतो निवार्य ॥
धात्री जिघृक्षु शिशुपालक राक्षसादि-
दुर्योधनं यवनभूपमपा चकार ॥ ३० ॥

अन्वय—तत्र आसदानवबलस्य बलारिरेप न्यायान्तराय करण रणत निवार्य धात्री जिघृक्षुशिशुपालक राक्षसादि दुर्योधनम् यवनभूपम् अपाचकार ॥३०॥

व्याख्या—आदीश्वरपक्षे—तत्रादीश्वरप्रभोर्विवाहमहोत्सवे आप्त-दानवबलस्य आप्तः प्राप्तः योदानवबलः दैत्यबलस्तस्यबलारिः बलभित् एष इन्द्रः न्यायान्तरायकरणं न्यायस्य न्याय्यस्य यद्वा न्यायस्य भोगस्य अन्तरायकरणं विघ्नसंपादक प्रतिबन्धकमित्यर्थः रणतः शब्दतः रक्षोविद्रावकशान्तिकारकगाथादितः निवार्य विद्राव्य धात्री जिघृक्षु शिशुपालकराक्षसादि दुर्योधनं यवनभूपम् धात्री उपमाता पालयित्रीति यावत् " धात्रीस्यादुपमातापि क्षितिरप्यामलक्यपीत्यमरः " जिघृक्षुः किमपि ग्रहीतुमिच्छुर्यः शिशुपालोबालानस्यापोषकः स एव शिशुपालकः "स्वार्थेकः" राक्षसः रक्षतीतिरक्षः "औणादिकोऽसुन्" स एव राक्षसः रक्षणकर्ता एषांद्वन्द्वः इति धातृजिघृक्षु शिशुपालकराक्षसास्ते आदिर्यस्य स चासौ दुर्योधनश्च तं यवनम् वेगवद्भूपम् सत्वरकार्य-साधकनृपम् अपाचकार आनन्दयामास अत्यधिकप्रेम्णाप्रीणयाम्व-

भूवेत्यर्थः अप–वियोगे–विकृतौ विपरीते–वर्जने–आनन्दे चेति शब्द स्तोममहानिधिः ॥

एवमेव शान्तिनाथपक्षेऽत्रसेयम्—श्रीनेमिनाथपक्षेऽपि विवाहोत्सवस्य वर्णनीयत्वेन तत्र, श्रीमहावीरपक्षे च यथास्थितमेव वर्णनम् ।

श्रीपार्श्वनाथपक्षे—तत्र तस्मिन् समये आप्तदानवबलस्य आप्तः प्राप्तोयो दानवबलस्तस्य समुदितदैत्यभूत दुराचारिवलस्य बलारिः विरोधकः एष पार्श्वप्रभु न्यायान्तरायकरणम् न्यायस्सनीतेः धर्मप्रचारस्य अन्तरायकरणम् विघ्नकारकम् रणतः संग्रामतः निवार्य निराकृत्य धात्रीजिघृक्षुशिशुपालकराक्षसादि दुर्योधनं यवनभूपम् धात्री धरतिगुणोत्कर्ष्यमितिधात्री तां जिघृक्षुर्ग्रहीतुमिच्छुः स चासौ शिशुपालकराक्षसाश्च शिशुपालकरोऽक्षः आत्मा यस्य स शिशुतआरभ्य पालकरो रक्षा तत्पर आत्मा यस्येत्यर्थस्तस्य आदिमुख्यः प्रभुः दुर्योधनम् दुःसहम् यवनभूपम् यवननामानम् नृपम् कलिङ्गाधिपतिम् अपा चकार तिरश्चकार दूरी चक्रे ॥

रामपक्षे -तत्र तस्मिन् समये आप्तदानवबलस्य समागतराक्षससैन्यस्य बलारिः विनाशकः एषरामः न्यायान्तरायकरणं नीति निवारकं दुराचरिणम् रणतः संग्रामतः निवार्य निराकृत्य धात्रीम् गुणवतीं जिघृक्षुर्ग्रहीतुमिच्छुः यः शिशुपालकः सर्वदारक्षकः शिशुत एव रक्षा दक्षआत्मायस्य तस्मादिर्मुख्यः दुर्योधनम् दुःसाध्यम् यवनभूपम् म्लेच्छनृपम् जनकराजनिरोधकम् यद्वा धात्रीं सीतां जिघृक्षु रादिर्मुख्यः शिशुपालकराक्षसादिर्दुर्योधनः शिशुमर्भकं पाप्यति ससापपति घातयतीति शिशुपाः स एव शिशुपालकः रलयोरैक्यात् स चासौ राक्षसादिः राक्षसप्रमुखिः स एव दुर्योधनः दुःसाध्यः यवनभूपः म्लेच्छनृपस्तम् अपाचकार निरश्चकार स्तोघ ॥

कृष्णपक्षे—तत्र रुक्मिणी विवाहप्रसङ्गे दानवबलस्य दैत्यबलस्य बलारिः इन्द्र इव दैत्यबल विनाशकारकः एष कृष्णः न्यायान्तराय करणं नीतिनिवारकं रणतः संग्रामात् निवार्य निराकृत्य धात्रीजिघृक्षु शिशुपालकराक्षसादि दुर्योधनम् धात्रीम् रुक्मिणीम् जिघृक्षुः यः शिशुपालस्तन्नामा नृपस्स एव शिशुपालकः स एव राक्षसादिः निशाचरप्रभृतिस्स च दुर्योधनश्च धार्तराष्ट्रस्तम् शिशुपालराक्षसादि प्रभृतिदुर्योधनभूपम् यवनभूपम् जरासन्धतनयम् अपाचकार निरासयामास अत्र श्लोके सभङ्गाभङ्गश्लेषालंकारः ॥ ३० ॥

भूमान् विचार्य जनकोऽपिकृतानुरागां,
रुक्मीस्वसार मधिरोप्यधनुर्वृतांताम् ॥
युध्वाबलेनहलिनावपनेकृतेऽदात्,
देशे हरिः पुनरियायनिजे स कान्तः ॥ ३१ ॥

अन्वय—भूमान् जनकः कृतानुरागाम् विचार्य रुक्मी धनुः अधिरोप्य वृताम् ताम् स्वसारम् हलिनाबलेन युध्वावपनेकृतेऽदात् स कान्तः हरिः निजे देशे पुनः इयाय ॥ ३१ ॥

व्याख्या—आदीश्वरादिजिनेन्द्रपक्षे—भूमान् पृथ्वीपतिः रुक्मीस्वर्णवान् जनकः पिता नाभिराजादिः अन्यजिनेन्द्रपक्षे कन्यापिता स्वसारम् स्वसस्तरम् सारभूतम् बलवत् धनुः कोदण्डम् अधिरोप्य अधिरोपयित्वा क्षत्रियाणामस्त्रधारणपूर्वकमिवाहविधानमिति सम्प्रदायः अत एव धनुर्जिनेन्द्राणामावश्यबलेन हलिना आकर्षयता युध्वा कृत्रिमयुद्धप्रक्रियाम्प्रदर्श्य वपने छेदने कृते सति किमपिच्छेदादिसंप्रदाय संपादने सति कृतानुरागाम् संजातप्रेमातिशयाम् वृतां पूर्वमेववरीतां तां कन्या सुमंगलासुनन्दाप्रभृति अदात् जिनेश्वरायेति शेषः स कान्तः सदारः हरिः हरतिपापमिति हरिर्जिनेन्द्रः निजदेशे स्वकीयस्थाने अन्यजिनेन्द्रपक्षे निजदेशे इयाय आजगाम ॥

रामपक्षे-भूमान् पृथ्वीपतिः रुक्मी स्वर्णवान् जनकः जनकनृपः स्वसारं धनुः अधिरोप्य पणत्वेन निर्धार्य स्थित इति शेषः रामश्चधनुः अधिरोप्य आकृष्य समौर्वीकम्विधायेत्यर्थः हलिना आकर्षयता कृत्रिमयुद्धं विधाय वपने कृते चन्द्रगतिभामण्डलादीनां विलक्षे कृते सति कृतानुरागाम् जातस्नेहाम् वृताम् पूर्वमेवकृतवरणाम् जानकीमिति शेषः अदात् रामाय आर्पयत् सकान्तः सपत्नीकः हरिः रामः निजे स्वकीये देशे अयोध्या नगरे पुनः भूपः इयाय आययौ ॥

कृष्णपक्षे-भूमान् भूमीपतिः रुक्मी रुक्मिनामानरपतिः जनकः ज्येष्ठभ्रातृत्वात् पितृसमत्वेन जनकशब्दप्रयोगः कर्त्तव्याकर्त्तव्यशिक्षकः कृतानुरागाम् कृतप्रणयाम् स्वसारम् भगिनीम् रुक्मिणीम् विचार्य सम्यक् परिभाव्य धनुः आरोप्य अधिज्यम्विधाय हलिना सीरिणा बलदेवेन युध्वा युद्धं विधाय वपने केशच्छेदे कृते सति वृताम् शिशुपालेन पूर्वंकृतवरणामपि ताम् रुक्मिणीम् अदात् कृष्णाय प्रायच्छत् सकान्तः सपत्नीकः हरिः कृष्णः पुनः निजे आत्मीये देशे द्वारकायाम् इयाय आजगाम ॥ ३१ ॥

एवं पुराणचरितान्यधिगत्य देवः,
प्रीत्या व्युवाह ननु धर्मधियं विधाय ।
तस्थुः परःशतनृपा अपरे तथैव,
साम्वत्सरे वितरणे कृतकर्मयोगः ॥ ३२ ॥

अन्वयः—देवः एव पुराणचरितानि अधिगत्य ननु धर्मधियं विधाय प्रीत्या व्युवाह साम्वत्सरे वितरणे कृतकर्मयोगः अपरे परःशतनृपाः तथैव तस्थुः॥३२॥

व्याख्या—देवः द्युतिमान् जिनेन्द्रश्च पुराणचरितानि पुरातनव्यवहाराणि अधिगत्य विचार्य ननु इति कोमलालापे निश्चये वा धर्मधियं धर्मबुद्धिं विधाय ननु धर्मबुद्धिं कृत्वैव खलु धर्मः स्ववंशस्या-

पनमिति निश्चित्य प्रीत्या पित्रोः प्रेम्णा इन्द्रस्य वा प्रणयेन आग्रुग्राह परिणिनाय, सांवत्सरे वितरणे कृतकर्मयोगः सम्वसति ऋतुः स्त्रीमासिकधर्मोऽत्र इति सम्वत्सरः स एव साम्वत्सरः तस्मिन् साम्वत्सरे वितरणे ऋतुदाने कृतकर्मयोगः कृतव्यापारः ऋतुदाने सावधानः ऋतौ भार्यामुपेयादित्यनुसृत्य तत्रैव कृतोपयोगः आसीदिति शेषः । अन्ये परःशतनृपा अनेकशो भूपाः तथैव तदनुसारेणैव तस्थुः यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरोजन इति मतमवलंव्य ततोऽर्वाक् तदीया चरणमेवप्रमाणत्वेन प्रचचारेति भावः पक्षान्तरे यथायोग्यमेतदिति ॥ ३२ ॥

धर्मं सतां (समधि) रोपयताऽग्रकोटौ (?)
कौ–मोदकीमपि रुचिन्दधता भुजाग्रे ।
चक्रेऽर्हता सपदि चक्रभृताङ्गजेन,
भावेन भूतलमलं कृतिभिः सशोभम् ॥३३॥

अन्वयः–कौ अग्रकोटौ सतां धर्मं समधिरोपयता भुजाग्रे मोदकीं रुचिं दधता चक्रभृता अङ्गजेन अर्हता भावेन अलंकृतिभिः सशोभं भूतलं सपदि चक्रे ॥३३॥

व्याख्या–कौ=पृथिव्यां अग्रकोटौ=अग्रभागे सर्वत उच्चप्रदेशे सतां=सत्पुरुषाणां धर्मं=सुकृतं पुण्यमिति यावत् समधिरोपयता स्थापयता भुजाग्रे=स्वबाहौ मोदकीं=मोदयति हर्षयतीति मोदकी हर्षदात्री तां सर्वसम्मोदसम्पादिकां रुचिं दीप्तिं शोभां दधता धारयता चक्रभृता=चक्राख्यं चक्रचिह्नं वा बिभर्तीति तेन, अङ्गजेन=अंगात्मनसो जायते इति अङ्गजः कामः स इवाचरतीति तेन कामसदृशेन अर्हता=पूज्येन जिनेन्द्रेण भावेन विदुषा अलंकृतिभिः=शोभाधायकैः=स्वीयनिर्मलपवित्राचारैः सशोभं सालंकृतं भूतलं धरामण्डलं सपदि सद्यः चक्रे विदधे स्वजन्मना निर्मलाचरणेन च भूमितलं सालंकृतं कुरुतेस्मेति भावः यद्वा चक्रभृतांगजेन चक्रं बिभर्तीति चक्रभृत् स आङ्गजस्तनयो यस्य स चक्रभृतांगजस्तेनेति आदीश्वरपक्षे व्याख्येयम् ॥

रामकृष्णपक्षे—अग्रकोटौ गर्वमूर्धन्ये सतां=सत्पुरुषाणां पुण्यं समधिरोपयता संस्थापयता भुजाग्रे स्वहस्ताग्रे कौमोदकीं तदभिधानां गदां अस्त्रविशेषं दधता गृह्णता अर्हता योग्येन रामेण, कृष्णेन वा चक्रभृता चक्रास्त्रं दधता अङ्गजेन भावेन विलासादिना अलंकृतिभिरलंकारैः निजपवित्रसमुदाचारैः सालंकृतं भूतलं भूमण्डलं सपदि सहसा चक्रे विदधे ॥ ३३ ॥

शंखध्वनिध्वनितदिग्वलयः प्रयोगं,
सद्यो विभिद्य रिपुभूमिभुजां भुजायाः ।
मुक्तेषु–निश्चितधियां स्वधरादरेण,
त्यागाय सर्वविषयस्य तदा बभूव ॥ ३४ ॥

अन्वयः—शंखध्वनिध्वनितदिग्वलयः रिपुभूमिभुजां भुजायाः प्रयोगं सद्यः विभिद्य मुक्तेषु निश्चितधियां स्वधरादरेण सर्वविषयस्य त्यागाय तदा बभूव ॥३४॥

व्याख्या—जिनेन्द्रपञ्चकपक्षे–शंखध्वनिध्वनितदिग्वलयः शंखस्य कंबोर्यो ध्वनिरव्यक्तमधुरशब्दस्तेन ध्वनितं शब्दायितं दिग्वलयं दिग्विभागो येन स तथोक्तः रिपुभूमिभुजाम् भूमिं भुञ्जन्तीति भूमिभुजस्ते च ते रिपवश्चेति रिपुभूमिभुजः शत्रुनृपतयस्तेषां महीभुजां भुजायाः बाहोः प्रयोगम् प्रसरम् गर्वमित्यर्थः सद्योविभिद्य तत्क्षणमेव निराकृत्य मुक्तेषु निश्चितधियां मोक्षेषु विषयेषु निश्चितधियां कृतनिश्चयबुद्धीनां जिनेन्द्राणामिति शेषः स्वधरादरेण स्वस्य धरः स्वधरः स्वकीयसंकल्पस्तस्यादरेण तस्याभिनिवेशेन यद्वा स्वस्ययोधरादरः धरस्य पर्वतादिनिर्जनस्थानस्य आदरः पर्वतादौ गत्वात् तपश्चर्यां विधेयेतिनिश्चयेन आग्रहेण हेतुना सर्वविषयस्य सांसारिकमोहनीयवस्तुजातस्य त्यागाय तदा तस्मिन् काले बभूव तत्र प्रसक्तो जज्ञे ॥

रामपक्षे—शंखध्वनिध्वनितदिग्वलयः कम्बुनादविनादितदिग्विभागो राम इति शेषः रिपुभूमिभुजां विपक्षपक्षाश्रितक्षितिपालानां भुजायाः बाह्वोः प्रयोगम् प्रसरमहंकारं सद्योऽचिमिव विमुज्य निराकृत्य मुक्तेषुनिश्चितधियां मुक्तश्चासाविषुर्बाणश्चेति मुक्तेषुर्विसर्जितबाणस्तत्र निश्चिता लग्ना धीर्बुद्धिर्येषां तेषां, शब्दवेधित्वाद्यवधानविधायकानां स्वधरादरेण धरतीति धरो निजोत्पादकः पिता यद्वा धरति गर्भे या सा धरा माता तस्य तस्या वा आदरेण पूज्यत्वेन तदीयाज्ञावश्यं पालनियेति कृताग्रहेण हेतुना सर्वविषयस्य राज्यादिभोगादेस्त्यागाय निराकरणाय तदा मतिरिति शेषः बभूव जज्ञे। अथवा स्वधरादरेण स्वस्य या धरा दायादत्वेन न्यायतः परिप्राप्ता पृथ्वी "भूर्या पितामहोपात्ता इत्यादि समं तत्र विभागःस्यात्पितुः पुत्रस्य चोभयोरिति दायविभागस्थयोगियाज्ञवल्क्यवचनात्" तस्या आदरेण स्वकीयत्वाभिनिवेशेन हेतुना सर्वविषयस्य स्वराज्यान्तर्गतसर्ववस्तुनस्त्यागाय कतिपयदिनावधिमरवशात् कर्तुं मतिर्बभूव बुद्धिर्जातेति भावः ॥

कृष्णपक्षे—स्वधरादरेण स्वधरा स्वं आत्मानं धरति बिभर्तीति स्वधरा द्वारकाभूमिस्तस्या आदरेण तद्विषयकप्रेम्णा सर्वविषयस्य यावत्परिणाहस्वपुरिपरिसरस्य त्यागाय समुद्रजलररिवाय समुद्र इतो दूरं व्रजेत् मन्नगरपरिसरभूमिपरित्यजेदिति मतिर्बभूव अन्यद्रामपक्षवदवगन्तव्यम् ॥ ३४ ॥

मोहोऽत्रमोहकरणं ककुभां शुभांशु–
व्यावर्तनं नयननर्तनमेव जज्ञे।
क्षोभो मनस्सु सुमनस्सु हरेश्चिरेण,
चक्रे दूरेण वसतिर्लसतिःप्रकम्पे ॥ ३५ ॥

अन्वयः—मोहः ककुभाम् अवमोहकरणम् शुभांशुव्यावर्त्तनं नयननर्त्तनमेव मनःसु क्षोभः सुमनःसु हरेश्चक्रे दरेण वसतिः प्रकम्पे लसतिर्जडे ॥३५॥

व्याख्या—तेपु वर्णनीयचरित्रनायकेपु सत्सु मोहो भ्रान्तिर्मोहनीयकर्म ककुभां दिशामवमोहकारणम् दिग्भ्रान्तिविधायकम् केवलं दिग्भ्रान्तिविधायकमेव मोहोऽभून्नचाज्ञानजनितंकस्मिन्नपिविपये गाढ्यं जातम्, शुभांशुव्यावर्त्तनं शुभसम्बन्धपराहिरयं कल्याणयोगनिरोध इत्यर्थः नयननर्त्तनमेव नेत्रविलास एव प्रणयिनम्प्रत्येव मानवत्याः कान्ताया नयनविकारादयः सेर्ष्यश्चयननिरीक्षणम् न चान्यत्र शुभांशो मङ्गलांशस्य व्यावर्त्तनम् निवर्त्तनम्, सुमनःसु कुसुमेपु मनःसु क्षोभः मनोमालिन्यम् रात्रौ कमलादिपुष्पेपु विकाशविपर्यासो, न जातु लोकेपु मनःक्षोभः मनोदुःखम्, हरेः विष्णोः चक्रे चक्रास्त्रे चिरेण दरेणभयेन वसतिरधिष्ठानं कृता केवलं विष्णुचक्रास्त्रे विष्णुचक्रविपयकभयसन्निवेशो जातो न च प्रजाजने कुतोऽपिभय सन्निवेशः लसतिः श्लेपः दाहः प्रकम्पे नरके न चान्यत्र यद्वा लसतिर्वेपनम् प्रकम्पे महावाते न च लोके क्वचनापि भयादिना लसतिर्वेपनम् न जडे सुराज्यरनात् सर्वनिराबाधमासीत् अत्र श्लोके परिसंख्यालंकारो विलसति ॥ ३५ ॥

उद्दिश्य कार्यमधिजीवनमेवमर्हन्,
रेमे वनेपु भवनेपु सभावनेपु ।
आश्चर्यमुच्चचरितं रचयञ्जनाना–
मैश्वर्यमङ्ग–परमं वुभुजे भुजेन ॥ ३६ ॥

अन्वयः—अधिजीवनमुद्दिश्यैव कार्यम् अर्हन् वनेपु भवनेपु सभावनेपु रेमे जनानाम् आश्चर्यम् उच्चचरितम् रचयन् भुजेन अङ्गपरमम् ऐश्वर्यम् बुभुजे ॥३६॥

व्याख्या—जीवनम् प्राणधारणमुद्दिश्य प्राणयात्रामनुजीव्य लोकव्यवहारमनुसृत्य कार्यम् लौकिककर्त्तव्यम् अर्हन् कुर्वन् सांसारिक-

व्यवहारमनुभवन् वनेषु उपवनेषु भवनेषु क्रीडामदनेषु सभावनेषु सदौकःसु सभामण्डपेषु च रेमे तथा च जनानां लोकानां आश्चर्यं विस्मयजनकं उच्चचरितं निर्मलचरित्रम् रचयन् विदधत् अङ्ग इति संबोधने भुजेन बाहुबलेन परममत्युत्कृष्टम् ऐश्वर्यं विभवम् बुभुजे भुनक्तिस्म लोकोत्तरमैश्वर्यमनुबभूवेति भावः सर्वपक्षसाधारणमत्रगन्तव्यम्॥३६॥

जाते विवाहसमये न मनाग्मनोऽन्त-
लीनो मलीनविषयेषु महाकुलीनः ।
द्वेधा पुरन्दरबलाद् वसतिस्म येन,
नारेः पुरन्दरबलाद्वसतिस्म येन ॥ ३७ ॥

अन्वयः—विवाहसमये जाते न मनाक् मलीनविषयेषु महाकुलीनः अन्तर्लीनोऽभूदिति शेषः न द्वेधापुरन्दरबलात् स्मये न वसति पुरन्दरबलात् अरेः येन न वसतिस्म ॥ ३७ ॥

व्याख्या—विवाहसमये विवाहविधौ जातेऽपि सम्पन्नेऽपि कृतदारपरिग्रहोऽपि महाकुलीनो महर्द्धैर्यवान् सत्कुलप्रसूतिर्जिनेन्द्रादिर्मलीनविषयेषु कुत्सितव्यापारेषु सांसारिकविषयवासनादिदूपिताचारेषु मनाक् ईषदपि अन्तर्लीनः तदासक्तिप्रवणो न विषयानुभवग्लपितचित्तो, न द्वेधापुरन्दरबलात् पुरन्दारयतीति पुरन्दर इन्द्रः यद्वा पुरन्त्रिपुरासुरन्दारयतीति पुरन्दरः शिवः इति द्वेधा द्विविधपुरन्दरयोर्बलमिव बलं यस्य तस्मादेकत्र विलक्षणशक्तिमत्वादपरत्रवशीकृतमदनत्वाच्च स्मयेऽहंकारे गर्वे न वसतिस्म सत्यपि गर्वसामर्थ्ये महाशयत्वाद् गर्विष्ठो न जात इति भावः "वर्त्तमानसामीप्ये लट्" अथ च इन्द्रवद् बलिष्ठत्वात् अरेः शत्रोः सकाशात् शत्रुजनमुद्दिश्य स्मयेऽहंकारे न वसतिस इति न किन्तु वसत्येव शत्रुसम्मुखे गर्विष्ठ एवासीत् इति भावः यमकालंकारः सर्वविषय साधारणमेतत् ॥ ३७ ॥

कस्तेन संगतिमगान्न मनोरसेन,
कस्तेन सङ्गतिमगान्नमनो रसेनः।
द्वेधाप्यनीतिरगमद् विभुविक्रमेण,
नाशं-कयापि कलया न भुवि क्रमेण ॥३८॥

अन्वयः—मनोरसेन कस्तेनसंगतिम् न अगात् कः मनोरसेन तेन संगतिम् न अगात् विभुविक्रमेण द्वेधा अपि अनीतिः अगमत भुवि कयापि कलया नाशं न क्रमेण ॥ ३८ ॥

व्याख्या—मनोरसेन मनसो हृदयस्य रसोरागः प्रवृत्तिस्तेन मानसयोगेन कः कोऽपि स्तेनसंगतिम् स्तेनेन चोरेण संगतिम् मैत्रीम् न अगात् नापत् पाटच्चरप्रेम, कोऽपि नाकार्षीत् कः मनोरसेनः मनश्च रसा चेत्यनयोः द्वन्द्व इति मनोरसे तयोरिनः स्वामी "इनः सूर्येप्रभौ राजा मृगाङ्के क्षत्रिये नृप इत्यमरः" प्रभुः संयमी भूपतिः तेन प्रभुणा संगतिम् प्रेम न अगात् नाकरोत् सर्वोऽपि तेन सह सौहार्द्रमेवरीरचत् तथा-विभुविक्रमेण विभोः प्रभोः विक्रमेणप्रभावेन तेजसा महिम्नेति यावत् द्वेधा द्विविधापि अनीतिः अन्यायम् दुराचारः अगमत् न्यवर्तिष्ट अन्यत्र अनीतिः "अतिवृष्टिरनावृष्टिः शलभामूषिकाः खगाः। अन्त्यासन्नाश्चराजानः षडेता ईतयः स्मृता" इत्युक्तप्रकारा ईतयो न भवन्तीति अनीतिरीत्यभावः अगमत् प्रापत् सर्वत्र प्रासरत् क्रमेण पर्यायेणापि भुवि पृथिव्याम् कयापि कलया केनाप्यंशेन नाशम् विपत्तिः न कस्यापि वस्तुनो लेशतोऽप्यभावो न जजृम्भे इति तत्त्वम् सर्वसाधारणम् अत्र यमकः ! ३८ ॥

विद्याधनं प्रसृमरं निधनं न लोके,
स्तोके श्रमे सपदि वै-श्रमणत्वमासीत्।
तेजोभरात्प्रतिपदं मणयो नराणां,
रेजुर्विभेजुरत एव महोन्नतिं ते ॥ ३९ ॥

अन्वयः—लोके प्रसृमरं विद्याधनम् आसीत् निधनम् न आसीत् स्तोके श्रमे सपदि वैश्रमणत्वम् आसीत् नराणां तेजोभरात् प्रतिपदम् मणयो रेजुः अत एव ते महोन्नतिम् विभेजुः ॥ ३९ ॥

व्याख्या-लोके जने प्रसृमरं सर्वत्र प्रसरत् सर्वव्यापकम् विद्याधनम् विद्यासम्पत् आसीत् अखिलजना विद्यावन्तःस्तदानीमभवन्निति भावः तथा निधनम् विनाशः अकालमरणादिर्न यद्वा निधनन्निर्धनता दारिद्र्यन्न नैवासीत् स्तोके अल्पे लघीयसि श्रमे आयासे यत्न इति यावत् वैश्रमणत्वम् कुबेरत्वम् धनपतित्वम् आसीत् अल्पायासेनैव महाढ्यत्वमजायतेत्यर्थः अथवा स्तोके तनीयसि श्रमे यत्ने वै इति रक्षनार्थम् श्रमणत्वम् मुनित्वम् साधुत्वम् आसीत् सर्वेषान्निर्मलपवित्रचरित्रत्वात् सज्ज्ञानित्वाच्च चारित्र्यवेषग्रहणादेवमुनित्वं अजायत इति तत्त्वम् जनानां लोकानां तेजोभरात् पुण्यप्रभावात् प्रतिपदम् पदे पदे मणयो रत्नानि रेजुः शुशुभिरे अत एव अस्मादेवपुण्यप्रभावात् ते जनाः महोन्नतिम् सम्यगभ्युदयम् विभेजुः बभ्रुः लभन्तेस्म सर्वत्रसाधारणम् ॥ ३९ ॥

तस्मिन् मही जगति शासति सा सतीव,
लक्ष्मीर्न तु व्यभिचचार नरोत्तमेभ्यः।
जातं कदापि न जने व्यसनं ननन्दा-
नन्दात् कलाव्यसनमेव निषेवणादेः ॥४०॥

अन्वयः—जगति तस्मिन् मही शासति सा लक्ष्मीः सतीव नरोत्तमेभ्यः न तु व्यभिचचार जने व्यसनम् कदापि न जातम् आनन्दात् निषेवणात् कलाव्यसनमेव ननन्द ॥ ४० ॥

व्याख्या—जगति विष्टपे तस्मिन् प्रभौ मही पृथ्वीं शासति योगक्षेमं विधायके सति अधिकुर्वतिसति सा प्रसिद्धा नितान्तचञ्चला

लक्ष्मीः श्रीः सतीव पतिव्रतास्त्रीव नरोत्तमेभ्यःसत्पुरुषेभ्यः न तु व्यभिचचार कदाचिदपि न जहौ कदापि कस्मिन्नपि समये जने लोके व्यसनम् विपद् न जातम् न बभूव "व्यसनं विपदि भ्रंशे दोषे कामजकोपजे इत्यमरः" आनन्दात् हर्षात् निषेवणादेः सेवनादेः कलाव्यसनमेव चतुःषष्टिकलाभ्यासाभिनिवेशमेव ननन्द जजृम्भे सर्वपक्षसामान्यम् ॥४०॥

जज्ञे करव्यतिकरः किल भास्करादौ,
दण्डग्रहाग्रहदशा नवमस्करादौ ।
नैपुण्यमिष्टजनमानसतस्करादौ,
छेदः सुसूत्रधरणात् तदयस्करादौ ॥ ४१ ॥

अन्वयः—करव्यतिकरः भास्करादौ किल दण्डग्रहाग्रहदशा नवमस्करादौ इष्टजनमानसतस्करादौ नैपुण्यम् सुसूत्रधरणात् तदयस्करादौ छेदः जज्ञे ॥४१॥

व्याख्या—प्रभौ राज्ये शासति सतीति पूर्वश्लोकसम्बन्धमनुसृत्याह जज्ञ इति करव्यतिकरः करस्य किरणस्य व्यतिकरो व्यसनम् भास्करादौ सूर्यादिग्रहे न चान्यत्र लोके करस्य अंशोदीप्ते राजग्राह्यभागस्य वा व्यतिकरो व्यसनम् विपर्यासो जज्ञे उत्पेदे " बलिहस्तांशवः करा इत्यमरः" दण्डग्रहाग्रहदशा दण्डस्य यष्टिकादेः ग्रहो ग्रहणम् तस्याग्रहदशा दण्डग्रहणस्य निश्चयाभिनिवेशः नवमस्करादौ नवे नूतने मस्करादौ वंशादौ नवीनवंशकरीरादौ दण्डग्रहणनिश्चयः "मस्करःशतपर्वा चेत्यमरोहैमश्च" जज्ञे बभूव न चान्यत्र जने दण्डस्य दमस्य राजादिकृतनिग्रहस्य यो ग्रहः ग्रहणन्तस्य आग्रहदशा अवश्यकर्त्तव्यदशा न जज्ञे न जाता इष्टजनमानमतस्करादौ इष्टजनस्य स्वामीष्टनायकनायिकादिरूपजनस्य यो मानसो हृदयम् तस्य तस्करादौ चौर्यादौ किञ्चिदपि ग्रहणादौ नैपुण्यम् चातुर्यम् स्वप्रणयिहृदयग्रहणे कौशलम् न चान्यत्र वस्तुविषयकचौर्यनैपुण्यम् प्रभौ शासति कोऽपि पाटच्चरकौशल्यमक-

रोतिस्मेति भावः छेदश्छेदनम् सुसूत्रधरणात् सूत्रधारत्वात् तदयस्कारादौ तदीयतक्षकादौ लोहकारादौ न च केषांश्चिदपिगुणच्छेदोऽङ्गच्छेदो वा जज्ञे अत्र परिसंख्यालंकारः सर्वपक्षसाधारणम् ॥ ४१ ॥

व्यर्थीकृते सुकृतिना कृतिना स्वकामे,
सोऽर्थी जनः पुनरनन्तधनः परार्थी ।
काठिन्यधीः कनकवत्यपि देवशैले,
सिन्धोः परत्र विषये न सदर्णवत्त्वम् ॥ ४२ ॥

अन्वयः—सुकृतिना कृतिना स्वकामे व्यर्थीकृते सोऽर्थीजनः अनन्तधनः पुनः परार्थी काठिन्यधीः कनकवत्यपिदेवशैले सिन्धोः सदर्णवत्त्वम् परत्रविषये न॥४२॥

व्याख्या—कृतिना कुशलेन विदुषेत्यर्थः सुकृतिना पुण्यशालिना स्वकामे स्वमनोरथे स्वाभिलाषे व्यर्थीकृते सति परित्यक्ते सति सततसर्वसौख्यसान्निध्यान्मनोरथाभावे सति इति भावः स अर्थी अर्थेप्सुर्जनो याचकवर्गः अनन्तधनः अतुलितसम्पत् पुनः परार्थी परस्मै अर्थो धनं यस्य स परप्रयोजनदानार्थमेव धनसंग्रहो न स्वार्थमिति तत्त्वम् कनकवत्यपि स्वर्णवत्त्वेऽपि हिरण्मयत्वेऽपि देवशैले सुमेरुगिरौ काठिन्यधीः कार्कश्यमतिः अन्यत्र स्वर्णवति जने काठिन्यधीः कार्पण्यबुद्धिः मितम्पचित्वम्न सिन्धोः समुद्रस्य सदर्णवत्त्वम् सदाजलवत्त्वम् सर्वदैव सजलत्वम् तत इति शेषः परत्रविषये समुद्रादितरत्र जने सदर्णवत्त्वम् सदा=ऋणवत्त्वम् अधमर्णत्वम् नासीदिति शेषः प्रभौ शासति केऽपि ऋणिनो न जज्ञिरे इति भावः अत्र यमकः परिसंख्या चालंकारौ । सर्वत्रसमम् ॥ ४२ ॥

दानं ददत्सु जनवत्सलवत्सदित्सा-
ह्वानेन मार्गणगणस्य महाशयेषु ।

निन्दन्ति देवतरवः स्वभवं विवर्णं,
यन्नाम नः स्वरविधौ पटुतालवोऽपि ॥ ४३ ॥

अन्वयः—जनवत्सलवत् सदित्साह्वानेन मार्गणगणस्य दानन्ददत्सु महाशयेषु देवतरवः विवर्णं स्वभवं निन्दन्ति यत् नः नाम स्वरविधौ पटुतालवोऽपि न ॥ ४३ ॥

व्याख्या—जनवत्सलवत् सर्वदयालुवत् सर्वजनस्नेहपारवश्येनेव सदित्साह्वानेन दानेच्छया आकरणेन मार्गणगणस्य मार्गयति याचते इति मार्गणो याचकस्तस्य गणः संघस्तस्य दानम् ददत्सु दानंयच्छत्सु "शेषत्वविवक्षायां षष्ठी" महाशयेषु महानुभावेषु अतुच्छाशयेषु सत्सु इति भावः देवतरवः कल्पपादपाः विवर्णं मलिनं नितरान्निरुपयोगं स्वभवं निजजन्म निन्दन्ति विगर्हयन्ति यत् यस्मात् नः अस्माकम् नाम अभिधानम् स्वरविधौ शब्दप्रयोगविषये पटुतालवोऽपि दक्षत्वलेशोऽपि स्वकीयाऽभिधेयार्थकणिकाऽपि न लभत इति शेषः प्रभुकर्तृकताहशनिरर्गलदानकालेऽस्माकन्नामलेशतोऽपि न सार्थकमिति कल्पवृक्षादयः स्वमनसि मन्यन्त इति भावः अतिशयोक्तिरलंकारः सर्वपक्षसदृशोऽयमर्थः ॥ ४३ ॥

दिव्या-गमाः पवनदुर्यवनावधूता,
भूता इवातिविषमाकृतयः स्फुरन्ति ।
जाड्यान्न तत्समुचितं बहुपात्रयोगे,
ऽप्येषां यतः फलबले रसभेद एव ॥ ४४ ॥

अन्वयः—पवनदुर्यवनावधूतादि व्यागमा भूता इव अतिविषमाकृतयः स्फुरन्ति बहुपात्रयोगेऽपि जाड्यात् तत् न समुचितं यतः एषां फलबले रसभेद एव ॥ ४४ ॥

व्याख्या—पवनदुर्यवनावधूताः पवनस्य वायोर्योदुर्यवनः असह्यवेगस्तेन अवधूता विलोकिताः कम्पिता इत्यर्थः दिव्यागमाः सुरपादपाः कल्पवृक्षादयः भूता इव व्यन्तरा इव विषमाकृतयः बीभत्सरूपा भयजनकाकृतयः स्फुरन्ति समुल्लसन्ति इति समुल्लसन्तु नाम किन्तु बहुपात्रयोगे अनेकसत्पात्रसमवधाने जाड्यात् स्थावरत्वेन बाह्यज्ञानवैमुख्यात् यत् विषमाकृतित्वम् वैमुख्यत्वम् अर्थिजनपराङ्मुखत्वम् तत् न समुचितम् न योग्यम् उत्तरपदगतस्तत् शब्दः पूर्वपदगतं यत् शब्दमपेक्षत इति भावः यतः वैमुख्याद्धेतो रसभेद एव भिन्नरसतैव तथाहि यन्षां कल्पपादपानां दानवीरता आसीत् तदिदानीम् वैमुख्यात् भूताभिनिवेशाच्च भयानकत्वं पर्यवसितम् भयानकत्वेन परिणमतीति भावः अतद्गुणालंकारः ॥ ४४ ॥

जानन्ति दानविधिमत्र न देववृक्षाः,
शाखाश्रयं फलमलं दधते यदेते ॥
दृष्टं कदाचन सपक्षगणेन लभ्यं,
नामीषु तत्फलवलं प्रतिपात्रमिष्टम् ॥ ४५ ॥

अन्वयः—देववृक्षा अत्रदानविधिमजानन्ति यदेते शाखाश्रयं फलम् अलन्दधते सपक्षगणेन लभ्यं कदाचनदृष्टम् यत् प्रतिपात्रम् इष्टम् तत्फलवलम् अमीषु न दृष्टम् ॥ ४५ ॥

व्याख्या—अत्र लोके देववृक्षाः सुरपादपाः दानविधिम् सत्पात्रार्पणव्यापारञ्च जानन्ति नाववुध्यन्ति यद्यस्मात् एते कल्पशाखिनः शाखाश्रयं स्कन्धशाखाश्रयं विटपाधीनमित्यर्थः फलम् स्वसंपत् अलम्पर्याप्तम् दधते धारयन्ति स्वाधीनफलाभावात् कस्मैचिदपिदातुं कथं प्रभवेयुरिति भावः सपक्षगणेन पतत्रिसंघेन अथ च स्वकीयवर्गेण आत्मीयजनेनेत्यर्थः लभ्यम् प्राप्यम् फलमिति शेषः कदा च कस्मिन्नपि समये न दृष्टम्

नावलोकितम् अतः संभावयामि अमीषु कल्पवृक्षेषु यत्फलवलम् फल-सम्पत् तत् प्रतिपात्रम् प्रतियोग्ययाचकजनम् इष्टम् लभ्यत्र एते प्रति-पात्रन्दानसमर्था न भवन्तीति प्रभवस्तुप्रतिपात्रं दानं यच्छन्तीति व्यतिरेकालंकारो व्यङ्ग्यः ॥ ४५ ॥

चिन्तामणिर्जलधिमध्यमिवाध्युवास,
कल्पद्रुमा दिवमिवारुरुहुर्ह्रियेव ।
नृणां तदाऽनृणकृतां भजनाज्जनानां,
न्याय्ये परिस्फुरति राज्यवले तदीये ॥४६॥

अन्वयः—तदा अनृणकृतां नृणां जनानां भजनात् तदीये न्याय्ये राज्यबले परिस्फुरति ह्रियेव चिन्तामणिर्जलधिमध्यम् अध्युवास इव कल्पद्रुमा दिवम् आरुरुहुरिव ४६

व्याख्या—तदा तस्मिन् समये तदीये वर्णनीयनायकसम्बन्धिनि न्याय्ये न्यायानुगते नीतिमनुसृत्य प्रवर्त्तमाने राज्यबले साम्राज्ये परिस्फुरति जरीजृम्भमाणेसति अनृणकृतां ऋणं कुर्वन्तीति ऋणकृतः न ऋणकृतः अनृणकृतस्तेषामनधमर्णानां जनानाम् लोकानाम् भजनात् सेवनात् चिन्तामणिः चिन्तितार्थप्रदानप्रभविष्णुरत्नम् ह्रियेव लज्जयेव जलधिमध्यम् समुद्रान्तः अध्युवास निवसतिस्म इव यथाऽन्योऽपि लज्जापारवश्याज्जलमज्जनं करोति तथायमपि समुद्रे ममज्ज तथा च कल्पद्रुमाः कल्पवृक्षाः ह्रिया इव लज्जया इव कथम्वयं लोके स्वावमाननं सहामहे इति बुद्ध्यैव किमिति शेषः दिवम् स्वर्गम् आरुरुहुरिव रोहन्तिस्म किम् ॥ सतां माने म्लानेमरणमथवादूरगमनमित्यभियुक्तोक्तिमवलम्ब्यैव स्वर्गयात्रामकुर्वन्निति भावः अत्र श्लोके क्रियोत्प्रेक्षालंकारः ॥ ४६ ॥

अस्मिन् प्रभौ विभवमाश्रयति प्रभावा,
भावाः समीहितविधानकृतावधानाः ।

देवद्रुदेवमणिदेवलतादयोऽपि,
मन्येऽवतेरुरिह देवचिरानुरागात् ॥ ४७ ॥

अन्वयः—अस्मिन् प्रभौ विभवम् आश्रयति प्रभावाभावाः समीहितविधानकृतावधानाः देवचिरानुरागात् देवद्रुदेवमणिदेवलतादयोऽपि इह अवतेरुः इति मन्ये ॥ ४७ ॥

व्याख्या—अस्मिन् वर्णनीयनायके प्रभौ जिनेन्द्रेऽन्यत्र प्रभावशालिनि यद्वा अस्मिन् जगति प्रभौ स्वामिनि विद्यमाने सतीति शेषः तथा च विभवम् ऐश्वर्यम् आश्रयति अधिष्ठिते परमैश्वर्यसम्पन्ने सति प्रभवाः प्रकृष्टेन सर्वतोऽधिकेन भवन्तीति प्रभवाः श्रेष्ठा भावाः पदार्थाः पृथिव्यादयः समीहितविधानकृतावधानाः समीहितस्य अभिलषितस्य विधाने सम्पादने सौलभ्ये कृतावधानाः सयत्नाः आसन्निति शेषः प्रभौ विद्यमाने सर्वेऽपि स्थावरजङ्गमादयो भावाःस्वस्वसेवार्थन्तदीप्सितविधानदक्षा बभूवुरित्यर्थः तथा च देवचिरानुरागात् देवस्य जिनेन्द्रस्य अन्यपक्षे द्योतनात्मकस्य चिरानुरागात् दृढप्रेमतः निरतिशयभक्तिपारवश्यादित्यर्थः देवद्रुदेवमणिदेवलतादयः कल्पवृक्षचिन्तामणिकल्पलताप्रभृतयः इह प्रभुसनाथितभूप्रदेशे सेवार्थमिति शेषः अवतेरुः अवतीर्णाः स्वर्गादाजग्मुरिति मन्ये जाने उत्प्रेक्षालंकारः॥४७॥

कौमारस्फारतेजोदहनमसहनाः प्राप्य निर्दग्धभूमौ,
पादन्यासेऽप्यशक्ता नगनगरकरस्याग्रहे कैषु वार्ता ।
मुक्त्वा राज्यान्यवन्या उपवनपवनैः साहचर्यात् कदर्या,
दर्या मध्ये मृगाक्षीक्षणविषयसुखं भुञ्जते भ्रान्तिभाजः॥४८

इतिश्री सप्तसंधाने महाकाव्ये श्रीराज्याङ्के कौमारवर्णनो नाम तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

अन्वयः—कौमारस्फारतेजोदहनम् प्राप्य असहना निर्दग्धभूमौ पादन्यासेऽपि असक्ताः नगनगरकरस्य आग्रहे एषु कावार्त्ता अवन्या राज्यानि मुक्त्वा उपवनपवनैः साहचर्यात् कदर्या भ्रान्तिभाजः दर्यामध्ये मृगाक्षीक्षणविषयसुखम् भुञ्जते ॥ ४७ ॥

व्याख्या—कौमारस्फारतेजोदहनम् कुमारो युवराजः "जनको युवराजस्तुकुमारो भर्तृदारक इत्यमरः" यद्वा कुमारयति क्रीड़यतीति कुमारः, कुत्सितः अप्राप्तयौवनत्वात् मारोयस्य स अथ च कुत्सितोनिन्दितोमारः कामदेवो यस्मात् स अथवा कौ पृथिव्यां मार इवेति कुमारः तस्मिन् भवम् कौमारं यत् स्फारम् विकटम् अत्युग्रम् तेजः प्रभावम् तदेव दहनो वह्निस्तम् कौमारीयविपुलप्रतापाग्निम् प्राप्य तमग्निमधिगम्य असहनाः असहिष्णवः तदीयप्रतापाग्निसोढुमक्षमा निर्दग्धभूमौ तत् प्रतापाग्निप्लुष्टमेदिन्यां स्वकीयभूमौ पादन्यासेऽपि चरणन्यासेऽपि असक्ता अप्रभविष्णवः असमर्थाः नगनगरकरस्याग्रहे नगनगरस्याग्रहे नगस्य पर्वतस्य नगरस्य पुरस्य करस्य राजग्राह्यस्य राजस्वस्येत्यर्थः तेषां आग्रहे समन्तात् ग्रहणे विषये एषु नगनगरकरेषु का वार्त्ता का चर्चा पलायनमार्गोऽपि न पश्यन्तीति किमुपुनरेतेषां ग्रहणेषु प्रसक्तिरिति भावः ते पुनः अवन्या भूमेः राज्यानि स्वसाम्राज्यानि मुक्त्वा परित्यज्य उपवनपवनैः उद्यानवातैः साहचर्यात् संबन्धात् कदर्याः कदर्थीकृता भ्रान्तिभाजः विवेकविकलाः प्रतीपराजान इति शेषः दर्याः कन्दरायाः गिरिगुहाया अन्तः मृगाक्षीक्षणविषयसुखम् मृगाक्ष्या मृगनयनायाः कामिन्याः क्षणम् क्षणमभिव्याप्यविषयसुखम् सांसारिकविषयेन्द्रियसुखं भुञ्जते अनुभवन्ति विपक्षपक्षाश्रिता नृपा स्तद्भयादितस्ततः पलायमानाः क्वचिन्कन्दरादौ क्षणम् विषयसुखं चकितचकिता अनुभवन्तीति तात्पर्यम् ॥ अत्र श्लोके स्रग्धरावृत्तम् ४८

इति शास्त्रविशारद–कविरत्नभट्टारकाचार्य–श्रीविजयामृतसूरीश्वरप्रणीतायां सप्तसन्धान-महाकाव्य–सरणी टीकायां तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

॥ चतुर्थः सर्गः ॥

देवावतारसमये सममेव देवाः,
सेवार्थिनो भगवतः समुपेयुरुर्व्याम् ।
सर्वे ततः सुमनसो विबुधा विशिष्य,
तद्दानवारिमतयः सततं प्रकृत्या ॥ १ ॥

अन्वयः—देवावतारसमये भगवतः सेवार्थिनः देवाः सममेव उर्व्यां समुपेयुः ततः सर्वे सुमनसः विबुधाः प्रकृत्या विशिष्य तद्दानवारिमतयः बभूवुः

व्याख्या—देवावतारसमये=देवस्य=शक्रस्य अवतारसमये=प्रभो राज्याभिषेकार्थमागमनकाले भगवतः=ज्ञानादिमतः श्रीमदृषभदेवस्वामिनः सेवार्थिनः=उपासनाकाङ्क्षिणः देवाः सममेव=एकदेव इन्द्रेण सहैव वा उर्व्यां=श्रीमज्जिनेन्द्रपदपङ्कजाधिष्ठितभूतले समुपेयुः=समुपाजग्मुः । ततः=तदनन्तरं सर्वे=निखिलाः सुमनसः समुल्लसितचेतसः विबुधाः=देवाः देवसदृशयुगलिनश्च प्रकृत्या=स्वभावेन अन्यप्रेरणांविनैवेत्यर्थः विशिष्य=विशेषरूपेण तद्दानवारिमतयः=तद्दानवारिषु राज्यदानार्थजलेषु तदुपसंग्रहे इति भावः । मतिः=बुद्धिर्येषां ते तादृशाः बभूवुः ।

२-३-४-५-६ पक्षेषु-देवस्य=प्रभोः राज्ञो वा अवतारसमये भूम्यागमनसमये एव भगवतः=ऐश्वर्यादिमतः सेवार्थिनः=उपासिपवः केचिद् देवाः समम्=सहैव उर्व्यां=भगवदधिष्ठितभूमौ समुपेयुः अवतेरुः । ततः योग्यसमये सर्वे ते तद्दानवारिमतयः=तस्मै राज्यदानार्थं कृतबुद्धयः अथवा तस्मिन् (प्रभौ) दानवारिः-देवः अयम् इति मतिर्येषां ते तादृशाः बभूवुः ॥

७ पक्षे-ततः=तदनन्तरं राज्याभिषेकानन्तरं तद्दानवारिमतयः= दानवारिः=कृष्णस्तस्मिन्मतिः=सद्भावना येषां ते दानवारिमतयस्ते च ते दानवारिमतयश्चेति तद्दानवारिमतयः बभूवुः शेषं पूर्ववत् ॥ १ ॥

प्रीत्याशयं दधति भूरिजनास्तदुच्चं,
त्यागं विधाय पुरतः सुरतानुपङ्के ।
मित्त्रश्रियैव कलयन्त्यकलङ्कभावं,
ते दक्षजातिरुचयो वसुधाभुजोऽपि ॥ २ ॥

अन्वय—भूरिजनाः प्रीत्याशयं दधति तत् दक्षजातिरुचयः ते वसुधाभुजः पुरतः सुरतानुपङ्के उच्चं त्यागं विधाय मित्त्रश्रियैव अकलङ्कभावं कलयन्ति ॥२॥

व्याख्या-भूरिजनाः=सर्वे लोकाः नृपविषये प्रीत्याशयं=प्रीतियुक्तम् आशयं=चित्तम् अभिप्रायं वा दधति=धारयन्ति प्रमुदितचेतसो भवन्तीत्यर्थः तत्-तस्माद्धेतोः दक्षजातिरुचयः=दक्षा=पट्वी जातिः रुचिः=दीप्तिश्च येषां ते यद्वा दक्षजाः=अश्विनीप्रभृतितारा अतिक्रान्ता रुचिर्यैषां ते तादृशाः ते=पूर्वोक्ताः वसुधाभुजः=पृथ्वीपतयः श्रीनाभिराजादयः पुरतः=अग्रतः नगरेषु वा गृहेषु वा सार्वविभक्तिकस्तसिः। स्यात्पुरः पुरतोऽग्रतः इत्यमरः। अगारे नगरे पुरमितिचामरः। सुरतानुषङ्गे=सुराणां समूहः सुरता तस्या अनुषङ्गे=सम्पर्के देवानुवृद्ध्येत्यर्थः उच्चं=महान्तं त्यागं=दानं विधाय मित्त्रश्रियैव=सुहृल्लक्ष्म्यैव राकं समासाद्यश्रियः अकलङ्कभावं=व्यावर्तकचिह्नाभावेनाऽभिन्नभावं कलयन्ति=संपादयन्ति ॥ २ ॥

पूर्वानुरागकलया सकृदिन्द्ररूपा,
भूपा जनुर्धनुरुपाश्रयणानुरूपाः ।
स्तूपा इवोदितमहोन्नतपुण्यकर्म-
सौधर्मसंगतिभवद्विशदस्वरूपाः ॥ ३ ॥

अन्वयः—पूर्वानुरागकलयाऽसकृदिन्द्ररूपाः जनुर्धनुरूपाश्रयणानुरूपाः भूपाः स्तूपा इव उदितमहोन्नतपुण्यकर्मसौधर्मसंगतिभवद्विशदस्वरूपाः आसन् ॥३॥

व्याख्या—पूर्वाऽनुरागकलया=पूर्वः=प्राग्भवीयः अनुरागः=स्नेहः तस्य कलया=अंशेन असकृदिन्द्ररूपाः वारंवारमिन्द्रस्वरूपाः जनुर्धनुरूपाश्रयणाऽनुरूपाः=जनुषः=जन्मत एव यद्धनुरूपाश्रयणं=धनुर्विद्याऽभ्यासस्तस्य अनुरूपाः अनुकूला योग्या इत्यर्थः शूरा इति यावत् भूपाः स्तूपाः=देवमन्दिराणीव उदितमहोन्नतपुण्यकर्मसौधर्मसंगतिभवद्विशदस्वरूपाः=उदितं प्राप्तोदयं महोन्नतम्=अतिप्रशस्तम् अत्युच्छ्रितं वा यत् पुण्यकर्म=धर्म्यकृत्यं तेन या सौधर्मसंगतिः=सुधर्मा=देवसभाऽस्त्यस्मिन्निति सौधर्मः=तदाख्यः कल्पस्तत्रभवोपि तात्स्थ्यात् सौधर्मः=सौधर्मेन्द्र इत्यर्थः यद्वा सुधर्मैव सौधर्मस्तस्य संगत्या=संनिधानेन भवद् विशदं रूपं येषां ते तथोक्ता आसन् ॥३॥

साम्राज्यमस्य सुषमासुषमानुभावि-
धर्मादरेण परिशीलयतः सलीलम् ।
यातेऽप्यनेहसि घनेऽथ सुमङ्गला स्त्री,
साऽसूतकाशु-भरतं ननु सूनुरत्नम् ॥ ४ ॥

अन्वयः—सुषमासुषमाऽनुभाविधर्मादरेण साम्राज्यं सलीलं परिशीलयतः अस्य सा सुमंगलाख्या स्त्री घनेऽनेहसि याते भरतं सूनुरत्नम् आशु असूत ॥ ४ ॥

व्याख्या—सुषमासुषमाऽनुभाविधर्मादरेण=सुषमासुषमायाः=एकान्तसुषमायाः चतुःसागरोपमकोटाकोटिप्रमाणक सुषमासुषमाख्य प्रथमारकस्य योऽनुभावः=अनीतिराहित्यादिरूपप्रभावः सोऽस्त्यस्मिन् स तादृशो धर्मः=राजधर्मस्तस्यादरेण=सत्कारेण अनतिक्रमेणेति भावः साम्राज्यं=सार्वभौमत्वं दशलक्षाधिपत्यं वा 'लक्षाधिपत्यं राज्यं स्यात् साम्राज्यं दशलक्षके' इत्युक्तेः । सलीलम्=लीलया सहितमनायासे-

नेत्यर्थः परिशीलयतः=समन्तात्पालयतः अस्य=श्रीमदृषभदेवस्य सा सुमंगला=तदभिधाना स्त्री घने=बहुतरे अनेहसि=काले याते=व्यतीते सति भरतं=तदाख्यं सूनुरत्नं=पुत्रश्रेष्ठम् आशु=शीघ्रम् असूतक=प्रासोष्ट ॥ ४ ॥

अन्यापि देववनिता सुकृतान्नितान्तं,
चक्रायुधं प्रसुषुवे वपुषाभिरामम् ।
नाम्नापि बाहुबलिनं फलिनं द्रुमं भूः,
प्राचीव भानुमुदितं च जयं शचीव ॥ ५ ॥

अन्वयः—अन्यापि देववनिता नितान्तं सुकृतात् नाम्नाऽपि बाहुबलिनं चक्रायुधं वपुषाऽभिरामम् भूः फलिनं द्रुममिव, प्राची उदितं भानुमिव शची जयमिव प्रसुषुवे ॥ ५ ॥

व्याख्या—अन्याऽपि=अपराऽपि द्वितीयापीत्यर्थः देववनिता=आदिदेवभार्या सुनन्दा नामधेया नितान्तं सुकृतात्=पुण्यातिशयमहिम्ना नाम्ना अपिना गुणेनापि बाहुबलिनं=तदाख्यं भुजबलशालिनं चक्रायुधं=चक्राख्यमायुधमस्त्यस्य हस्तादौ चिह्नरूपेणेति तं तादृशं वपुषा=शरीरेण अभिरामं=मनोहरं सूनुरत्नमित्यनुपज्यते प्रसुषुवे=प्रसूतवती। का कामिव भू:=पृथ्वी फलिनं=फलसमृद्धमनवकेशिनमितिभावः द्रुमं=वृक्षमिव । प्राची=पूर्वदिशा उदितं=प्रकाशमानं भानुं=सूर्यमिव । शची=इन्द्राणी=जयन्तमिवेत्यर्थः । इत्याद्यपक्षीयोऽर्थः ।

द्वितीयपक्षे तु—अन्यापि देववनिता=श्रीशान्तिनाथप्रभोः पट्टराज्ञी श्रीयशोमती नाम्नी नितान्तं सुकृतात्=अतिशयपुण्यप्रभावात् वपुषाऽभिरामं=मनोहरकलेवरं बाहुबलिनं=भुजबलवलितं नाम्ना=आख्यया अपि शब्दात् अन्वर्थतागुणेन च चक्रायुधं=तदाख्यं सूनुरत्नं प्रसुषुवे=अजीजनत् । तदुक्तं शान्तिनाथचरिते–गर्भाधानंभजति

भगवत्यग्रमात्रा निरैक्षि, स्वप्ने चक्रं समुदितविभाचक्रकाष्ठावभासं। असाच्चक्रायुध इति सुतस्याऽस्य नामाऽभिधानं, श्रीमान् शान्तिर्व्यधितविधिवल्लोककल्पद्रुकल्पः। १४। २०८।

अन्ये समाहितनया विनयाद्द विरेजुः,
श्रीलक्ष्मणादिविदिता दितशात्रवास्ते।
भूमीभुजां विहितशक्रपराक्रमेण,
शत्रुघ्न इत्यभिधया सुधिया प्रशस्याः ॥ ६ ॥

अन्वयः—अन्ये ते समाः तनयाः विनयात् विरेजुः श्रीलक्ष्मणादिविदिता.दितशात्रवाः भूमीभुजां विहितशक्रपराक्रमेण सुधिया शत्रुघ्न इत्यभिधया प्रशस्याः। रामपक्षे-अन्ये ते श्रीलक्ष्मणादिविदिताः शत्रुघ्न इत्यभिधया यथातः कश्चिच्च सर्वे विनयाद्विरेजुः समाहितनयाः दितशात्रवाः भूमीभुजां विहितशक्रपराक्रमेण सुधिया प्रशस्या. ॥ ६ ॥

व्याख्या—अन्ये=अपरे ते समाः=तुल्याः अष्टनवतिसंख्यकाः तनयाः=भगवत आदिदेवस्य पुत्राः विनयात्=गुरुजनेषु नम्रभावात् विरेजुः=शुशुभिरे। कीदृशा इत्याह—श्रीलक्ष्मणादिविदिताः=श्रीः शोभा बुद्धिर्वा कीर्तिर्वा लक्ष्मणं=नामधेयं तदादिभिर्विदिताः=जगतिप्रसिद्धाः। दितशात्रवाः=दितं=खण्डितं शात्रवं=शत्रुसमूहो यैस्ते यद्वा दिता=छिन्नाः शात्रवाः=वैरिणो यैस्ते शौर्यसम्पन्ना निष्कण्टकाश्चेति भावः भूमीभुजां=राज्ञां विषये मध्ये वा विहितशक्रपराक्रमेण=प्रकटीकृतेन्द्रतुल्यविक्रमेण हेतुना सुधिया=प्राज्ञजनेन शत्रुघ्न इत्यभिधया=इत्याख्यया प्रशस्याः=प्रशंसार्हाः ॥

सिंहावलोकनन्यायेन प्रागनुक्तान् श्रीरामबलदेवभ्रातॄन् इह नाम्ना निर्दिशति कविः-अन्ये=प्रागनुक्तशिष्टा अपरे ते=प्रसिद्धाः, श्रीलक्ष्मणादिविदिताः=श्रीलक्ष्मण आदिर्येषां ते श्रीलक्ष्मणादयस्ते च ते

विदिताः=ज्ञातारश्चेति ते तथोक्ताः आदिना भरतः शत्रुघ्न इत्यभिधया नाम्ना ख्यातः कनीयांश्च सर्वेविनयाद्विरेजुः कीदृशा इत्याह समाहितनयाः=समाहितः=समवलम्बितः सम्यक्स्थिरीकृतो वा नयः= नीतिर्यैस्ते दितशात्रवाः=खण्डितपरिपन्थिजनाः भूमीभुजां विहित शक्रपराक्रमेण सुधिया प्रशस्याः ।

सम्यक् चचाल जनता विनये नये च,
जज्ञेऽस्य राज्यमहिमा विजये जये च ।
सारस्यमेव यशसो निनदेन देव,
वृष्टेः सुखार्जनमनोमदनेऽदने च ॥ ७ ॥

अन्वयः—जनता विनये नये च सम्यक् चचाल । अस्य राज्ञ. राज्य-महिमा विजये जये च जज्ञे। सुखार्जनमनोमदने ऽदने च अस्य राज्ञो यशसो निनदेन देववृष्टेः सारस्यम् (अभूत्) ॥ ७ ॥

व्याख्या—जनता=जनसमुदायः विनये=राजभक्तौ नये=राज-नीतौ च सम्यक्=सुष्ठु चचाल=वर्तनशीलाऽभूत् । अस्य राज्ञः राज्य-महिमा=राजकर्मप्रशंसा शासनप्रभाव इति यावत् विजये=विशिष्टजये जये=सामान्यजये च जज्ञे=जातः । किञ्च सुखार्जन-मनोमदने=सुखा-र्जने=सुखेच्छायां मनोमदने=चित्तहर्षे अदने=भोजने च अस्य राज्ञः यशसो निनदेन=यशःप्रवादेन देववृष्टेः=मेघवृष्टितोऽपि सारस्यं= सरसता अभूत् । मेघवृष्टितः सुखार्जनादिकं भवति ततोऽप्यस्य राज्ञो विशेषेणाऽभूदित्यर्थः ॥ ७ ॥

नाभूद्र भयं प्रस्मरे सवले बले च,
व्यक्ते जवे सुकृतकर्मणि तेजनेन ।
लोके विरोकरूचिरे सुचिरं सतोके.
जातं समाभिरसमाभिरलङ्घनेन ॥ ८ ॥

अन्वयः—सबले बले प्रसूमरे तेजनेन सुकृतकर्मणि जवे व्यक्ते भयं नाऽभूत् लोके विरोकरुचिरे सतोके च सुचिरं समाभिः असमाभिः जातम् घनेन अलं जातम् ॥ ८ ॥

व्याख्या—सबले=बल–शक्ति–सहिते बले=सैन्ये प्रसूमरे=प्रसरणशीले सति. तथा तेजनेन=उत्तेजनेन सुकृतकर्मणि=पुण्यकर्मणि जवे=वेगे व्यक्ते=स्पष्टे सति भयं=राजभयादिसप्तभेदवती मितिः नाभूत्। किञ्च विरोकरुचिरे=विशिष्टो रोकः=दीप्तिः विरोकस्तेनरुचिरस्तस्मिन् यद्वा विशिष्टो रोको दीप्तिर्यस्य सः अथ वा विगतो रोकः=छिद्रं दूषणमित्यर्थः यस्य स विरोकः स चासौ रुचिरश्चेति स तस्मिन्, सतोके=तोकैः=अपत्यैः सहिते च सति सुचिरं=चिरकालाय समाभिः=संवत्सरैः असमाभिः=असाधारणीभिः जातम्=अभावि। घनेन=मेघेन च अलं=कृष्याद्यनुकूलवर्षणसमर्थेन जातम्=समजनि ॥ ८ ॥

सम्यक्श्रिया विलसनैर्व्यसनैर्विनैव,
निस्सीमभीममहसा रिपुकम्पनैश्च ।
पुन्नागनागतुरगैः किमु-दारलक्ष्म्या,
भूचक्रचङ्क्रमणकृद् नृप एष शक्रः ॥ ९ ॥

अन्वयः—एष नृपः भूचक्रचङ्क्रमणकृत् शक्रः किमु। (कैः?) सम्यक् श्रिया विलसनैः व्यसनैर्विनैव निस्सीमभीममहसा रिपुकम्पनैश्च पुन्नागनागतुरगैः दारलक्ष्म्या (पक्षे उदारलक्ष्म्या) भूचक्रचङ्क्रमणकृत् अभूत् ॥ ९ ॥

व्याख्या—एष नृपः=श्रीविश्वसेनादिमहीपतिः, भूचक्रचङ्क्रमणकृत्=भूमण्डलविहरणशीलः शक्रः=इन्द्रः किमु इत्युत्प्रेक्षा तद्बीजमाह—सम्यक्=चारुरूपेण श्रिया=साम्राज्यलक्ष्म्या पक्षे स्वाराज्यलक्ष्म्या विलसनैः=विलासैः, व्यसनैर्विनैव=विपद्राहित्येन निःसीमभीममहसा=निःसीमं=मर्यादातीतं यद् भीममहः=शत्रुभयावहतेजस्तेन, रिपुकम्पनैः=शत्रुजनत्रासजननैश्च=पुनः पुन्नागनागतुरगैः=पुन्नागाः=

नरश्रेष्ठाः मन्त्र्यादयः नागाः=हस्तिनः तुरगाः=अश्वास्तैः इन्द्रपक्षे पुन्नागः=पाण्डुनागः=श्वेतहस्ती ऐरावत इति यावत् नागाः-मेघा वाहनीभूताः 'तुराषाण्मेघवाहन' इतीन्द्रपर्यायेऽमरोक्तेः तुरगः-अश्वः उच्चैःश्रवास्तैश्च तथा दारलब्ध्या-स्त्रीरत्नप्राप्त्या, इन्द्रपक्षे उदारलब्ध्या-महत्या शक्त्येत्यर्थः उपलक्षितः भूचक्रचङ्क्रमणकृत्-विजयार्थं पृथ्वीमण्डले विहारकरणशीलोऽभूत् ॥ ९ ॥

एतत्प्रयाणसमये नमयन् शिरांसि,
शेषो विशेषभृदशेषबलादुवाह ।
भूमिं चलाचलतयोच्छ्वसनैः शनैर्वा,
श्वासप्रयासपवनैः कृतपारणार्थः ॥ १० ॥

अन्वय.—एतत्प्रयाणसमये शेष विशेषभृत् शिरांसि नमयन् शनै उच्छ्वसनै. श्वासप्रयासपवनै कृतपारणार्थं चलाचलतया ऽशेषबलात् भूमिम् उवाह ॥१०॥

व्याख्या—एतत्प्रयाणसमये-एतस्य राज्ञः प्रयाणसमये-विजयार्थं प्रस्थानकाले शेपः-अनन्तनागः विशेषभृत्-पृथ्वीयथावद्धारणार्थसामर्थ्यातिशयमाश्रयन्नपि शिरांसि-फणासहस्रं नमयन्-प्रह्वीकुर्वन् अत एव शनैः-मन्दम् उच्छ्वसनैः-श्रमजनितदीर्घोच्छ्वासैः श्वासप्रयासपवनैः-श्वासग्रहणसंजातप्रयाससमुद्भूतमारुतैः कृतपारणार्थः-कृतभोजनेच्छः सन् चलाचलतया-संभ्रान्ततया ससंभ्रममित्यर्थः अशेषबलात्-यावच्छक्तिमवलम्ब्य भूमिम् उवाह-दधार ॥ १० ॥

बुध्या समृद्धमनसाऽप्यनसा श्रुतीनां,
छन्दोऽनुचारिवचनै रचनैश्चमूनाम् ।
राज्ञः समाहितविधेः सविधे विधेयां,
मन्त्रीजनस्तदुदधेर्विदधेऽस्य सीमाम् ॥११॥

अन्वयः—समाहितविधेः अस्य राज्ञः मन्त्रीजनः उदधेः समीपे विधेयां सीमां विदधे । (कैः ?) बुध्या श्रुतीनामनसा मनसा छन्दोऽनुसारिवचनैः चमूनां रचनैश्च ॥ ११ ॥

व्याख्या—समाहितविधेः- अनुकूलदैवस्य भाग्यशालिन इत्यर्थः अस्य राज्ञः चक्रवर्तिनः वासुदेवस्य वा मन्त्रीजनः उदधेः सविधे समुद्रसमीपे विधेयां करणीयां सीमां-विशेषेण शासनीय (धारणीय) देशमर्यादा विदधे-कृतवान्। कैः कैरुपायैरित्याह-बुद्ध्या-औत्पातिक्यादिभेदभिन्नया मत्या श्रुतीनाम् अनसा-शास्त्रोक्तनीतीनां शकटवद् वाहकेनेत्यर्थः श्रुति-शास्त्र-विज्ञेनेतियावत् समुद्रमनसा-उदारचित्तेन अपिशब्दार्थे छन्दोऽनुसारिवचनैः-अभिप्रायानुगुणवाक्यैः, चमूनां-सेनानां रचनैश्च-यथोचितं सैन्यविभजनैः सैन्यविन्यासैर्वा ॥ ११ ॥

क्षोणीधवे जयिनि भूर्दिवमाजुहाव,
वाद्यैर्गभीरनिनदैः स्वविभुप्रसाद्यैः ।
हित्वा सुधाशनरसान्नरसार्थगोष्ठ्यां
स्वास्थ्येन तस्थुरमराः क्रमरागिणोऽत्र ॥१२॥

अन्वय—क्षोणीधवे जयिनि स्वविभुप्रसाद्यैः गभीरनिनदैः भूः दिवम् आजुहाव (इव) अमराः सुधाशनरसान् हित्वा अत्र क्रमरागिणः नरसार्थगोष्ठ्यां स्वास्थ्येन तस्थुः ॥ १२ ॥

व्याख्या—जयिनि-विजयशालिनि क्षोणीधवे-पृथ्वीपतौ सति यद्वा क्षोणीधवे जयिनि-विजयमाने सति स्वविभुप्रसाद्यैःस्वः-निजः विभुः-राजा प्रसाद्यो येषां तैः गभीरनिनदैः-गम्भीरध्वनिशालिभिः वाद्यैः-नानाविधवादित्रैः कृत्वा भूः-पृथ्वी दिवं-देवलोकं लक्षणया तत्स्थान् देवानित्यर्थः आजुहाव=आह्वयतिस्मेवेति लुप्तोत्प्रेक्षावाचिकोत्प्रेक्षा । अत एव अमराः-देवाः सुधाशनरसान्-अमृतभोजन-

जनितानन्दान् हित्वा-परिहाय अत्र चक्रवर्त्यधिष्ठितदेशे क्रमरागिणः-क्रमे-आचारे चलने वा रागिणः-कृतानुरागाः सन्तः नरमार्थगोष्ठ्यां-जनसमुदायमण्डल्यां स्वास्थ्येन-सुखेन तस्थुः-स्थितवन्तः। चक्रवर्त्यादीनां चक्राद्यधिष्ठायकतया देवानामिहागमनं जैनराद्धान्तप्रसिद्धम् ॥ १२ ॥

न्याये भुवि प्रसृमरे समरे न कोऽपि,
स्थायी मिथःप्रतिघतोऽपि न चाततायी ।
तायी रसादसुमतां सुमताङ्कभाजां,
तद्राजतेस्म तनयस्सनयस्स-राजः ॥ १३ ॥

अन्वयः—भुवि अस्य न्याये प्रसृमरे कोऽपि समरे मिथः न स्थायी । प्रतिघतोऽपि कोऽपि आततायी न [आसीत्] अस्य राज्ञः तनयः सुमताङ्कभाजामसुमतां रसात् तायी सनयः सराजः राजतेस्म ॥ १३ ॥

व्याख्या—भुवि-भूमण्डले अस्य राज्ञः न्याये-नीतौ प्रसृमरे-प्रसरति सति कोऽपि जनः समरे-संग्रामे मिथः-परस्परं न स्थायी-राजभयेन नाऽवतिष्ठते. प्रतिघतः-क्रोधादपि कोपाविष्टोऽपि सन्नित्याशयः कोऽपि आततायी-आततेन-विस्तीर्णेन शस्त्रादिनाऽयितुं शीलमस्य सः-वधोद्यतः अग्निदादिलक्षण इति यावत् तथा चोक्तम्-

अग्निदो गरदश्चैव शस्त्रपाणिर्धनापहः ।
क्षेत्र-दारापहारी च षडेते आततायिनः ॥ इति ।

न आसीदिति शेषः। किञ्च अस्य राज्ञः तनयः-पुत्रोऽपि सुमताङ्कभाजां=सुमतानां-सज्जनानाम् अङ्कम्-उत्सङ्गं-क्रोडं-भजन्ते इति सुमताङ्कभाजस्तेषां तादृशानाम् असुमतां-प्राणिनां रसात् स्नेहात् वात्सल्यादिति यावत् तायी-रक्षणशीलः पुनः सनयः-नीतियुक्तः, सराजः-राजनं राजः-दीप्तिः तेन सहितः राजतेस्म शोभतेस्म ॥१३॥

नृणां गणो निरवधिर्धनवर्धनेन,
प्राप्तावधिर्भजनतो जिनराजिराजाम् ।
कार्पण्यमाश्रयति नैव मनाक् सपण्यः,
प्रावीण्यपुण्यविधिनैव धुनोति पङ्कम् ॥ १४ ॥

अन्वय –नृणांगणः धनवर्धनेन निरवधि जिनराजिराजां भजनतः प्राप्तावधिः । सपण्यः मनाक् कार्पण्य नैवाश्रयति प्रावीण्यपुण्यविधिनैव पङ्क धुनोति ॥१४॥

व्याख्या—नृणांगण जनसमुदायः धनवर्द्धनेन–धनधान्यादि-समृद्धया निरवधिः–अनन्तः धनिकश्रेण्यां सर्वाग्रगण्य इति भावः अथ च अवधिरहितोऽपि जिनराजिराजां=जिनेन्द्रदेवानां भजनतः=आराधनायाः प्राप्तावधिः=अवधिं प्राप्तः सावधिरिति विरोधः प्राप्तः अवधिः=अवधानं=मनोयोगविशेषः (यद्वशान्मनो विषयान्तरतो निवर्त्तते) येन स इति परिहारः । अवधिस्त्ववधाने स्यात्सीम्नि काले बिले पुमानिति मेदिनी । एवं सपण्यः=पण्येन=स्तोतव्येन स्वेष्टदेवेन हृदि सहितः यद्वा पण्यैः=व्यवहार्यवस्तुभिः सहितः । किन्तु मनाक्=अल्पमपि कार्पण्यं=कृपणताम्=उचितव्ययविमुखतया धनसंचयेच्छां मितम्पच-त्वमिति यावत् यद्वा कार्पण्यं=दैन्यं नैव आश्रयति=नावलम्बते । किञ्च प्रावीण्यपुण्यविधिनैव=प्रावीण्येन नैपुण्येन विज्ञतयेति यावत् पुण्यानां=धर्माणां विधिना=विधानेन=अनुष्ठानेनेति यावत् यद्वा पुण्येन=मनोज्ञेन विधिना=कर्मणा एव 'विधिर्विधाने दैवे चे'त्यमरः पुण्यं धर्मे मनोज्ञेऽपीति विश्वः । पङ्कं=पापं दुष्कृतमिति यावत् पङ्कोऽस्त्रीकर्दमे पापे इति मेदिनी धुनोति=क्षालयति दूरयतीत्यर्थः ॥ १४ ॥

क्षेत्रं रराज कुरुनाम गुरुप्रसिद्ध्या,
तत्रापि तद्गजपुरं वपुरश्चितेभ्यम् ।

श्रीशान्तनुर्नयवनप्लवनः सभीष्मः,
स ग्रीष्मवद् वृषभसौररुचिस्तदीशः ॥ १५ ॥

अन्वयः—गुरुप्रसिद्ध्या कुरुनाम क्षेत्रं (कुरुनाम गुरुप्रसिद्ध्या उपलक्षित क्षेत्रं) रराज तत्रापि वपुरश्चितेभ्य तत् गजपुरम् (अभूत्) तदीशः श्रीशान्तनुत (आसीत्) नयवनप्लवनः सभीष्मः ग्रीष्मवद् वृषभसौररुचिः । पक्षान्तरे कुरुनाम गुरुप्रसिद्ध्या उपलक्षितं क्षेत्रं रराज । तदीशः श्रीशान्तनुर्नयवनप्लवनः (शेषं पूर्ववत्) ॥ १५ ॥

व्याख्या—क्षेत्रमिति इतः परे श्लोकाः कृष्णचरितान्तर्गतपाण्डवचरित्रांशे स्पष्टार्थाः अन्येषु प्रकृतकाव्यवर्णनीयमहापुरुषसप्तकेषु मन्दं प्रकाशं पातयन्ति तत्र तावदापाततः प्रतीयमानस्पष्टार्थोऽभिलिख्यते,गुरुप्रसिद्ध्या=महत्याप्रसिद्ध्या=ख्यात्या यद्वा गुरोः=कौरववंशमूलभूत कुरुनामनृपश्रेष्ठस्य प्रसिद्ध्या कुरुनामक्षेत्रं=देशः यद्वा कुरुनामगुरुप्रसिद्ध्या इति समस्तं तस्य कुरु इति नाम्ना या गुर्वी=महती प्रसिद्धिः ख्यातिः प्रतिष्ठा वा तया उपलक्षितं क्षेत्रं=सिद्धस्थानं देश इति यावत् रराज=शुशुभे । तत्रापि=तस्मिन्नपिदेशे वपुरश्चितेभ्यं=वपुषा=शरीरेण अश्चिताः=प्रशस्ता इभ्या यत्र तत्तादृशं तत्=प्रसिद्धम् गजपुरं=नागपुरं हस्तिनापुरमिति यावत् अभूत् । तदीशः=तस्य=गजपुरस्य ईशः=राजा सः प्रसिद्धः, श्रीशान्तनुत=तदाख्यः आसीदिति शेषः स कीदृश इत्याह—नयवनप्लवनः=नयः=न्यायः एव वनं=सलिलं तत्र प्लवते= स्नातीति सः न्यायजलस्नायीत्यर्थः । नीतिजलसंतरणशील इति यावत् सभीष्मः=भीष्मकुमारसहितः । ग्रीष्मवत्=निदाघर्तुरिव वृषभसौररुचिः=वृष=वृषसंक्रान्तौ भातीति वृषभा तादृशी सौरी=सूर्यसम्बन्धिनी रुचिः=कान्तिर्यत्रेति ग्रीष्मपक्षे । राजपक्षे तु वृषः=कामः स इव भातीति वृषभः सुवंति=कर्मणिलोकान्प्रेरयंतीति सूराः=पण्डितास्तेषां समूहः सौरस्तस्मिन् रुचिः=प्रीतिर्यस्य स सौररुचिः वृषभश्चासौ सौररुचिश्चेति स तादृशः ।

अन्यपक्षे तु—कुरुनामवद्गुरुप्रसिद्ध्या उपलक्षितं क्षेत्रं=तत्तद्देशः रराज तत्रापि वपुरञ्चितेभ्यं तत् गजपुरं=पुरेषु गज इवेति तत् पुरश्रेष्ठमित्यर्थः मुख्यनगरमिति यावत्। तदीशः श्रीशान्तनुन्नयवनप्लवनः=श्रीशान्तरसेन नुन्नं=स्फेटितं निराकृतमित्यर्थः यवनानां प्लवनं=ससंभ्रमागमनं येन स तथोक्तः। पुनः सभीष्मः=भीतिहेतुहेतितिसहितः। वृषभसौररुचिः=वृषेण धर्मेण सौररुचिः सौरीचासौ रुचिश्चेति सौररुचिरिव रुचिर्यस्य स सौररुचिः सूर्यतुल्यकांतिः। शुक्रले मूषके श्रेष्ठे सुकृते वृषभे वृष इत्यमरः ॥ १५ ॥

भूश्चित्रवीर्यमधिगत्य नृपं रसेन,
प्रादुश्चकार कलधौतमुखेन्दुहासम्।
कोशा बभुर्नवनवाः प्रकृतेः कुलेषु,
न्याय्यं तदत्र हरिवंशभुवि क्षमापे ॥ १६ ॥

अन्वय—भूः चित्रवीर्यं नृपम् अधिगत्य रसेन कलधौतमुखेन्दुहासं प्रादुश्चकार प्रकृतेः कुलेषु नवनवाः कोशा बभुः अत्र हरिवंशभुवि क्षमापे तत् न्याय्यम् ॥ १६ ॥

व्याख्या—भूः=पृथ्वी तात्स्थ्यलक्षणया भूतलस्थो लोकः चित्रवीर्यं=विस्मयावहपराक्रमशालित्वाच्चाद्भुत नृपं=राजानम् अवाप्य रसेन=प्रेम्णा कलधौतमुखेन्दुहासं=कलधौतं=रजतं तत्सच्छायेन मुखेन=वदनेन इन्दोः=चन्द्रमसोऽपि हासं=परिहासं प्रादुश्चकार=आविष्करोतिस्म। किञ्च प्रकृतेः=प्रजायाः कुलेषु=समुदायेषु नवनवाः=अपूर्वाः विलक्षणाः कोशाः=धान्यादीनां भाण्डागाराः बभुः=शुशुभिरे। अत्र=अस्मिन् क्षेत्रे हरिवंशभुवि=चन्द्रवंशसमुद्भवे क्षमापे=राज्ञि चित्रवीर्ये सति तत्=पूर्वोक्तं सर्वं न्याय्यं=न्यायादनपेतं युक्तमित्यर्थः उचितमिति यावत् चित्रवीर्ये राज्ञि सर्वं सम्भवतीति भावः।

अन्यपक्षेषु-भूः चित्रवीर्यं=विस्मयनीयविक्रमशालिनं नृपं अधिगत्य रसेन=रागेण कलधौतमुखेन्दुहासं=कलधौतं=सुवर्णं रजतं च तन्मुखे यस्य स कलधौतमुखः स चासौ इन्दुहासः=खड्गस्तम् प्रादुश्चकार श्रीमदृषभपक्षे भरतस्य चक्रवर्तित्वात् शान्तिनाथस्यापि चक्रित्वात् वासुदेवानां च खड्गोत्पत्तिः प्रसिद्धैव । कलधौतं सुवर्णे स्याद्रजते च नपुंसकमिति मेदिनी । खड्गे तु निस्त्रिंश-चन्द्रहासा-ऽसि-रिष्टयः इत्यमरः किञ्च-कुलेषु=जनपदेषु गंगा-सिन्ध्वोस्तीरदेशेषु वा प्रकृतेः= स्वभावत एव नवनवाः=नव=नवसंख्यकाः नवाः=नवीनाः कोशा = अर्थराशयो बभुः=विरेजिरे । तत्=एतत्सर्वं अत्रभवं हरिवंशभुवि= हरिः=सूर्यः नामैकदेशग्रहणे नामग्रहणात् सूर्यः=सूर्ययशाः=भरतपुत्रस्तस्य वंश इक्ष्वाकुवंशस्तस्मिन् जाते इति भरत-शान्त्योः । रामपक्षे सूर्यवंशसमुद्भूते । कृष्णपक्षे हरिवंशः=यादवकुलं तज्जाते इत्यर्थः क्षमापे=राज्ञि सति न्याय्यं=युक्तम् । कुलं जनपदे गोत्रे सजातीयगणेऽपि चेति मेदिनी । हरिश्चन्द्रा ऽर्क-वाता ऽश्व-शुक भेक-यमा ऽहिषु। कपौ सिंहे हरेऽजेंऽशौ शक्रे लोकान्तरे पुमान् वाच्यवत् पिङ्ग-हरिरिति मेदिनी ॥ १६ ॥

पाण्डुर्यशोभिरभितः समशोभि कान्त्या,
राजापि सोमवपुषा वृष-भासनाभः ।
प्रीत्याऽनुभाविविदुरेण दुरोदरेणा-
नीत्यादिजन्मधृतराष्ट्रभुवा-रिरंसुः ॥ १७ ॥

अन्वय,—पाण्डुः राजापि यशोभिः कान्त्याऽभित समशोभि । सोमवपुषावृषभासनाभ. अनुभाविविदुरेण प्रीत्या रिरंसुः आदिजन्मधृतराष्ट्रभुवाऽनीत्या दुरोदरेणचाऽरिरंसु. । राजापि अभित यशोभि. पाण्डुः कान्त्या सोमवपुषा च समशोभि । वृषभासनाभ , अनुभावि विदुरेण प्रीत्याः । अनीत्या आदिजन्मधृतराष्ट्रभुवा च रिरंसु. दुरोदरेण अरिरंसुः ॥ १७ ॥

व्याख्या--पाण्डुः=तदाख्यः राजापि यशोभिः=कीर्तिभिः कान्त्या च अभितः सर्वतोभावेन समशोभि=अशोभिष्ट। स कीदृश इत्याह--सोमवपुषा=उमया=कीर्त्या शिवपक्षे पार्वत्या सहितं सोमं= सकीर्तिकं सपार्वतीकं च तादृशेन वपुषा=शरीरेण वृषभासनाभः= वृषभासनस्य=शिवस्येव आभा=शोभा यस्य सः। तथा अनुभाविविदुरेण=अनु=पश्चात् भवति=जायते इति भावः=जन्माऽस्यास्तीति वा अनुभावी=अनुजः तेन विदुरेण=तदाख्येन सह प्रीत्या=ऽनुरागेण रिरंसुः=रन्तुमिच्छुः किन्तु आदिजन्मधृतराष्ट्रभुवा=आदिजन्मनः= अग्रजात् धृतराष्ट्राद् भवति=जायते इत्यादिजन्मधृतराष्ट्रभूस्तया अनीत्या=अन्यायेन दुरोदरेण च अरिरंसुः=निवित्तार्तिपुरित्यर्थः ॥

अन्यपक्षेषु--राजापि=श्रीविश्वसेनादिनृपोऽपि अभितः=विश्वव्यापिभिः यशोभिः पाण्डुः=गौरः कान्त्या सोमवपुषा=चन्द्रवद्रमणीयशरीरेण च समशोभि। स कीदृगित्याह--वृषभासनाभः=वृषस्य= धर्मस्य भासनया=प्रतिभासनेन भाति=शोभते इति सः। किञ्चासौ अनुभाविविदुरेण=अनुभवशीलधीरेण प्रभावशालिनागरेण वा सह प्रीत्या=प्रेम्णा। अनीत्या=न सन्ति ईतयो यस्यां साऽनीतिस्तया तादृश्या आदिजन्मधृतराष्ट्रभुवा=आदिजन्मना=स्वपूर्वजेन धृतस्य= स्वायत्तीकृतस्य राष्ट्रस्य=देशस्य भुवा=पृथिव्या च रिरंसुः। दुरोदरेण= द्यूतकारेण द्यूतेन वा उपलक्षणमिदं व्यसनमात्रस्य अरिरंसुः ॥ १७ ॥

यस्यास्तनावतिगुरू स्वरूचा हिमाद्री,
कान्ता पृथावतिशयेऽस्य मनोनुरागे !
दृष्टा-धरा-सुरपतेरपि राज्यलक्ष्म्या,
सर्वं सुपर्वभवगर्वमपाचकार ॥ १८ ॥

अन्वयः—यस्याः स्तनौ स्वरुचा अतिगुरू (सा) पृथा माद्री (च) अस्य कान्ता अतिशये मनोऽनुरागे (वर्तमाना) धरासुरपतेः अस्य राज्यलक्ष्म्या दृष्टा (अस्य मनोऽनुरागेऽतिशये सति दृष्टाधरा सुरपतेः राज्यलक्ष्म्या) सर्वं सुपर्वभवगर्वम् अपाचकार। पक्षे यस्या अतिगुरू स्तनौ स्वरुचा हिमाद्री (अतिशयाते) साऽस्यकान्ता पृथौ अतिशये मनोऽनुरागे (शेष पूर्ववत्) ॥ १८ ॥

व्याख्या—यस्याः स्तनौ=वक्षोजौ स्वरुचा=निजदीप्त्या अतिगुरू=अतिविशालौ गुरु=महत् (विल्वफलादि) समतिक्रमणशीलौ वा तादृशी पृथा=कुन्ती माद्री च अस्य=पाण्डुराजस्य कान्ता=भार्या अतिशये=अतिमात्रे मनोऽनुरागे=पत्युश्चित्तप्रीतौ वर्तमाना धरासुरपतेः=महीमहेन्द्रस्य अस्य पाण्डुमहाराजस्य राज्यलक्ष्म्या=राजश्रिया दृष्टा सती कृताभिषेका सतीति भावः यद्वा यस्य=पाण्डोः मनोऽनुरागे=मनः प्रीतौ सति दृष्टाधरा=चुम्बितुं निरीक्षितोष्ठदेशा सती सुरपतेः=इन्द्रस्य राज्यलक्ष्म्याः=स्वाराज्यश्रियः सर्वं सुपर्वभवगर्वं=देवलोकाऽभिमानम् अपाचकार=दूरयामासेत्यर्थः।

अन्यपक्षेपु—यस्याःराज्याः अतिगुरू=अतिपीवरौ स्तनौ स्वरुचा-स्वकीयच्छटया स्वीयौन्नत्यगुणेन निजकान्तिगुणेन वा हिमाद्री=हिमपर्वतौ अतिशयाते इति शेषः सा तादृशी अस्य-पूर्वोक्तस्य राज्ञः कान्ता-स्त्रीरत्नम् पृथौ-महति अतिशये मनोऽनुरागे-पतिविषयकचित्तरागे सति शेषं पूर्ववत् ॥ १८ ॥

जाताः सुतास्तत इमे शरसंख्ययाप्ता,
शल्यारिपावनिनरान्वयिबन्धुरूपाः।
तेऽपि स्वमानमपहाय विमानरत्ना-
रूढाः समीयुरपरे वनिस्ययाऽस्य ॥ १९ ॥

अन्वयः—तत इमे शरसंख्ययाऽऽप्ता, शल्यारि-पावनि-नरा-ऽन्वयिबन्धुरूपाः सुताः जाताः। ते अपरे च स्वमानमपहाय विमानरत्नारूढाः अस्य

वरिवस्यया समीयुः। पक्षे—तत इमे सुता जाताः अशरसंख्ययाप्याः शल्यारि-पावनि नरान्वयिबन्धुरूपाः (शेषं प्राग्वत्) ॥ १९ ॥

व्याख्या—ततः तदनन्तरं तस्मात् पाण्डुराजाद्वा इमे=वक्ष्यमाणाः शरसंख्यया–शराः पंच तत्संख्यया आप्याः–प्राप्याः पञ्चसंख्याका इत्यर्थः शल्यारि पावनि-नरा-ऽन्वयिबन्धुरूपाः-शल्यारिः—युधिष्ठिरः, पवनस्यापत्यं पावनिः–भीमः, नरः–अर्जुनः, अन्वयिबन्धू–अन्वयिनोः–संबद्धरूपयोः–अश्विनीकुमारयोः बन्धू–पुत्रौ यद्वा अन्वयिनौ–यमजतया समानोदरसम्बद्धौ बन्धू–भ्रातरौ नकुल–सहदेवौ तद्रूपाः सुताः–पुत्राः जाताः–समजनिषत अपिश्चार्थो भिन्नक्रमश्च तथा ते–शल्यारिप्रमुखाः अपरे–अन्ये च जनाः स्वमानं–स्वमहत्त्वाभिमानम् अपहाय–परित्यज्य विमानरत्नारूढाः–श्रेष्ठविमानमारूढाः सन्तः अस्य–वासुदेवस्य नेमिनाथस्य वा पाण्डोरेव वा वरिवस्यया–परिचर्यया हेतुना शुश्रूषार्थमित्यर्थः समीयुः सम्यग्गतवन्तः नरोऽजे मनुजेऽर्जुने इति मेदिनी. बन्धुशब्दस्य भ्रातृ–पुत्रेत्येतदुभयवाचकत्वं शब्दस्तोममहानिधौ द्रष्टव्यम्।

अन्यपक्षेषु—ततः–तस्मात् श्रीविश्वसेनादिनृपात् इमे–वक्ष्यमाणगुणाः सुताः जाताः कीदृशा इत्याह—अशरसंख्ययाप्याः–न शरैः बाणैः संख्ये–युद्धे याप्याः–विद्राव्याः पलायनार्हाः बाणयुद्धेऽधमा वा इति ते तथोक्ताः। शल्यारिपावनिनरान्वयिबन्धुरूपाः–शल्यानि–बाणान् तोमरान् वा इयति ऋच्छन्ति वा–प्राप्नुवन्ति तच्छीलाः शल्यारिणः शराभ्यासिन इत्यर्थः शूरा इति यावत्। पावयतीति पावनः–जगत्पावित्र्यकारकः यद्वा पं–पातारमपि अवति–रक्षतीति पावनः–शरण्यस्यापि शरण्य इत्यर्थः श्रीविश्वसेनादिस्तस्यापत्यानि पावनयः नरान्वयिबन्धुरूपाः–नराणां–मानवानाम् अन्वयिबन्धुरूपाः सोदरभ्रातृकल्पास्तथाऽनुग्राहिणोऽनुरागिणश्चेत्यर्थः शल्यारि-पावनि-

नरान्वयिबन्धुरूपाणां विशेपणानामयं कर्मधारयः शल्यं तु न स्त्रियां शङ्कौ क्लीवं क्ष्वेडे-पु-तोमरे इति. पा ना त्रताण्ड-पूतेषु पाने पातरि-कीर्तितः इति च मेदिनी। तेऽपरे च खमानमपहाय विमानरत्नारूढाः अस्य श्रीविश्वसेनादेः वरिवस्यया समीयुरित्यर्थः ॥ १९ ॥

या वेदिजातिरुचिता कृतकर्मयोगा-
लेभे प्रपञ्चरमणैर्विषयोपभोगम् ।
स-प्राप्तरूपमहिमा न हि माननेति,
प्रज्ञा-विशेषवशतो दधतां स्म-राज्ञाम् ॥२०॥

अन्वयः—या वेदिजाऽतिरुचिता कृतकर्मयोगात् प्रपञ्चरमणैः विषयोपभोगं लेभे सप्राप्तरूपमहिमा सा स्मराज्ञां दधता राज्ञां प्रज्ञाविशेषवशतः मानं न एति । पक्षे या वेदिजातिः उचिता प्रपञ्चरमणैः विषयोपभोगं लेभे कृतकर्मयोगात् सप्राप्तरूपमहिमा प्रज्ञाः दधतां राज्ञां मानं न एतिस्मेति काकुः ॥ २० ॥

व्याख्या—या वेदिजा=द्रौपदी वेद्याः=होमवेदितो जायते इति व्युत्पत्तेः अतिरुचिता=शोभिता असीमशोभाशालिनीति यावत् कृत-कर्मयोगात् प्राक्कृतकर्मवशात् प्रपञ्चरमणैः-प्रकृष्टाः पञ्चपञ्चसंख्यकाः रमणाः-पतयस्तैः विषयोपभोगं-सांसारिकविषयानुशीलनजन्यसुखा-नुभवरूपं भोगं लेभे-प्राप्तवती सप्राप्तरूपमहिमा-प्राप्तो यो रूपस्य-सौन्दर्यस्य महिमा-आतिशय्यं धारयतां राज्ञां-नृपाणां विषये प्रज्ञा-विशेषवशतः बुद्धिविशेषवशात् मानं-विनयाभावं न एति-प्राप्नोति नम्रतया वर्तत इत्यर्थः ॥

अन्यपक्षेषु—या वेदिजातिः-वेदयः-पण्डिताः तेषां जातिः—सामान्यम् उचिता—सत्कारयोग्या प्रपञ्चरमणैः-विस्तृतक्रीडाभिः अनायासेनेति भावः विषयोपभोगं-देशकार्यं स्वामित्वं लेभे। कृतक-र्मयोगात्-मिलनात् संगमादित्यर्थः सप्राप्तरूपमहिमा-प्राप्तरूपाणां-

बुधानां–पण्डितानां महिम्ना–महत्त्वेन महितः यद्वा आप्तरूपेण–मनोज्ञेन रूपेणेत्यर्थः महिम्ना–उत्कर्षेण महितः प्रज्ञाः=बुद्धीर्दधतां राज्ञां मानं–सन्मानं न एतिस्मेति काका एतिस्मैवेत्यर्थः। वेदिःख्यातपण्डिते पुमान् इति आप्तरूपो ऽरम्ययोरिति च मेदिनी आप्तरूप–स्वरूपाऽभिरूपा बुधमनोज्ञयोरित्यमरः ॥ २० ॥

या नित्ययौवनतया वसुधा-प्रतीता,
पुष्पान्विताऽऽशु फलिता सुतरत्नजात्या ।
व्यूढा भूजाबलवशादवशाऽमुनासौ,
सेवे स्वतः स्वरसतः पुरुषोत्तमं तम् ॥ २१ ॥

अन्वयः—या नित्ययौवनतया वसुधाप्रतीता अवशाऽमुनाभुजाबलवशात् व्यूढा ततः पुष्पान्विता सुतरत्नजात्या आशुफलिताऽसौ स्वतः स्वरसतः तं पुरुषोत्तमं सेवे। पक्षे—या वसुधा नित्ययौवनतया प्रतीता पुष्पान्विता सुतरत्नजात्याऽऽशुफलिताऽवशाऽसौ अमुना भुजाबलवशात् व्यूढा स्वतः स्वरसतः तं पुरुषोत्तमं सेवे ॥ २१ ॥

व्याख्या—या द्रौपदी नित्ययौवनतया–नित्यं–चिरस्थायि यौवनं=तारुण्यं यस्याः सा नित्ययौवना तद्भावस्तत्ता तया सदातनतारुण्यशालितयेत्यर्थः वसुधाप्रतीता=भूतलेप्रसिद्धा अवशा=स्वयंवरा सती अमुना=पाण्डवेन भुजाबलवशात्=स्वबाहुवीर्यप्रभावात् व्यूढा=परिणीता=विवाहिता इति यावत् ततः पुष्पान्विता=पुष्पम्=आर्तवं स्त्रीधर्म इति यावत् तत्सहितो सती सुतरत्नजात्या=सुपरत्नजन्मना आशु फलिता=फलवती असौ द्रौपदी स्वतः=स्वयमेव स्वरसतः=अकृत्रिम निजानुरागात् तं=प्रसिद्ध पुरुषोत्तमं=नरसत्तमं पाण्डवं सेवे=भेजे।

अन्यपक्षेषु–या वसुधा=पृथ्वी नित्ययौवनतया=शस्याद्युत्पादने सर्वदैव युवतीवसमर्थतयेत्यर्थः प्रतीता=विश्रुता पुष्पाऽन्विता=पुष्पेन=

पार्थिवपदार्थसार्थानां विकाशेन अन्विता=युक्ता पुष्पैः=नानाविधकुसुमैरन्वितेति वा सुतररत्नजात्या=खन्यादिसमुद्भूत रत्नजात्या फलिता=सफला अवशा=सर्वदा कस्याऽप्यनायत्तासत्यपि असौ वसुधा अमुना=श्रीविश्वसेनादिमहीपतिना भुजाबलवशात्=निजभुजवीर्यमहिम्ना व्यूढा विधृता स्वायत्तीकृता सती स्वतः स्वयं स्वरसतः=निजरसैः मधुरादिषड्भीः तं पुरुषोत्तमं=श्रीविश्वसेनादिनरेशं सेवे ॥ २१ ॥

कृष्णावता-रसमये त्रिदशावतारे,
राज्ञि स्फुरत्यपि न धर्मभुवाऽत्यवाहि ।
या-याज्ञिकी-ह-तनया कलिभृत्क्रियासौ,
यस्मात्कृतं सुकृतमेव युगं नृपेण ॥ २२ ॥

अन्वयः—कृष्णावतारसमये त्रिदशावतारे राज्ञि स्फुरति सति धर्मभुवा या अयाज्ञिकीहतनया कलिभृत् क्रिया असौ क्रिया न अत्यवाहि यस्मान्नृपेण युगं सुकृतमेव कृतम् ॥ २२ ॥

व्याख्या—कृष्णावतारसमये=कृष्णस्य=विष्णोरष्टमावतारकाले त्रिदशावतारे=देवांशेनावतीर्णे राज्ञि=युधिष्ठिरमहीपतौ स्फुरति=विजयमाने सति धर्म्मभुवा=विप्रेण या अयाज्ञिकी=यज्ञाय=देवपूजायै हिता यज्ञमर्हति वा यज्ञः प्रयोजनमस्या इति वा यज्ञस्येयं मिति वा याज्ञिकी तद्भिन्ना हतनया=हतो=भग्नो नयो=मार्गो यस्याः सा तादृशी अत एव कलिभृत्=कलिं=क्लेशं कलियुगं वा कलहं वा रणं वा बिभर्त्ति धारयति पोषयति वा इति सा तथाविधा क्रिया=कर्म असौ न अत्यवाहि=न आदृता न कृतेत्यर्थः पूजा विना न तपोमुखं धर्मकृत्यं बभूवेति भावः । यस्मात्कारणात् नृपेण युगं=द्वापरकालः कृतं=कृतयुगमेव तत्सदृशमेवेति भावः सुकृतं=सुविहितम् ॥

ऋषभदेवपक्षे—त्रिदशावतारे=त्र्यधिकास्त्युत्तरास्त्रिसहिता वा दश त्रिदश=त्रयोदशेत्यर्थः अवताराः=भवा यस्य स तस्मिन् । शान्ति नाथादिपक्षे । त्रिदशावतारे=देवावतारे देवरूपे इत्यर्थः । यस्मात् नृपेण कृतं नाम प्रथमं युगं सुकृतं=सुसम्पादितम् 'ऋषभशान्त्योः ।' शेषेषु युगं स्वाविर्भावाधिकरणीभूतकालः कृतं=कृतयुगमेव सत्ययुग-मेवेत्यर्थः सुकृतम् ॥

किञ्च रसमये=सुरनरयक्ष-गन्धर्वकिन्नरादीनां हर्षमये आन-न्दप्रचुरे यद्वा अरसमये=दैत्य-दानवादीनां केशि-कंसवृषभादीनां मृत्युहेतुत्वादहर्षमये दुःखबहुले अथवा आरसमये=अरीणां समूहः आरं तस्य समये=बहुशत्रुकण्टकाकीर्णकाले इत्यर्थः त्रिदशावतारे=देवस्य विष्णोः पूर्णावताररूपे राज्ञि=कृष्णवासुदेवे स्फुरति=विजयमानेऽपि सति या याज्ञिकी=यज्ञः=यज्ञसेनः नामैकदेशग्रहणे नामग्रहणात् भीमो भीमसेन इतिवत् तस्येयं याज्ञिकी=यज्ञसेनसम्बन्धिनी तनया=पुत्री द्रौपदी यद्वा याज्ञिकी=याज्ञसेनी द्रौपदी असौ हतनया=हतः=भग्नो नयः=नीतिर्यस्यै सा तया कलिभृत्क्रिया=कलिं विवादं राज्यप्रत्यर्प-णादिविषयककलहं बिभर्तीतिकलिभृत्=दुर्योधनस्तस्य क्रिया=वस्त्राक-र्षणादिरूपकर्म यस्यां सा तादृशी सत्यपि कृष्णावता=कृष्णा=द्रौपदी साऽस्त्यस्यासौ कृष्णावान् तेन द्रौपदीपतिनेत्यर्थः धर्मभुवा=धर्मात्म-जेन युधिष्ठिरेण धर्म इति शेषः न अत्यवाहि=नात्यक्रामि नातिक्रान्त इत्यर्थः । दुरवग्रहदुष्टनिग्रहाग्रहिले श्रीमति वासुदेवेऽवतीर्य भूतले विरा-जमानेऽपि सति दुष्टदुर्योधनेन परिषत्समक्षं द्रौपदीं विवस्त्रीकर्तुं चेष्टिते द्यूतहारितसर्वस्वेन धर्मराजेन तदानीं तद्विरुद्धं किमपि नाचेष्टितमिति भावः । रसः स्वादे जले वीर्ये शृंगारादौ विषे द्रवे इत्यनेकार्थसंग्रहः । कृष्णा स्याद्द्रौपदी-नीली-कणा-द्राक्षासु योषिति इति मेदिनी । कलि-

शूरे विवादेऽन्त्ययुगे युधीति हैमः क्रिया कर्मणि चेष्टायां करणे सम्प्रधारणे, आरम्भोपाय-शिक्षा-ऽर्चा-चिकित्सा निष्कृतिष्वपीति विश्वः। 'आरसमये' इत्यस्य आरम्=अरिसमूहं सम्यगयते=अभियातीति स तादृश इति वार्थः ॥ २२ ॥

यो वा-सुयाधननृपः कृपया समेतः,
काङ्क्षावशेन मनसा विदधे क्षमा-याः ।
जाताऽत्र तस्य विषमा-न-दशाननस्य,
तत्राप्यभाग्यभवनं निरणायि देवैः ॥ २३ ॥

अन्वय —यः सुयोधननृप. कृपयाऽसमेत काङ्क्षावशेन मनसा या. अक्षमा (काङ्क्षावशेन मनसा अक्षमाया विदधे, वशेन मनसा क्षमाया काङ्क्षा, अवशेन तेन क्षमाया काङ्क्षा) विदधे तस्य अत्र आननस्य विषमा दशा न जाता ? तत्रापि देवै. अभाग्यभवन निरणायि । ऋषभादिपक्षे—यः सुयोधननृप. कृपया समेत काङ्क्षावशेन मनसा या क्षमा विदधे तस्यात्र आननस्य दशा विषमा न जाता तत्र देवै आप्यभाग्यभवन निरणायि ॥२३॥

व्याख्या—यः सुयोधननृपः=दुर्योधननृपतिः कृपया=अनुग्रहेण असमेतः=रहितः द्यूतपणीकृतं द्वादशसमाः प्रकाशं वर्षमेकञ्चाप्रकाशं वनवासमतीत्यागतपाण्डवविषये तदीयराज्यप्रत्यर्पणानिच्छुतया निर्दयहृदयः इत्यर्थः । काङ्क्षावशेन=लोभपरवशेन 'इन्द्रप्रस्थं वृकप्रस्थं जयन्तं वारणावतम् । देहि मे चतुरो ग्रामान् पञ्चमं किञ्चिदेव तु' इत्येवं सानुनयमभ्यर्थनेऽपि कृते समग्रराज्यलिप्साविवशेन मनसा=चेतसा याः अक्षमाः=अशान्तीः विदधे=कृतवान् । यद्वा काङ्क्षावशेन=समग्रसाम्राज्यजिघृक्षापरवशेन मनसा अक्षमायाः=पाशकक्रीडनकपटानि छलद्यूतानीत्यर्थः विदधे। अथ वा वशेन मनसा=वशे=आयत्ततायां वशाः=अधीना वा इनाः=नृपतयो यस्य तादृशेन मनसा क्षमायाः=

सर्वभूमेः काङ्क्षा=लिप्सा गर्धेति यावत् विदधे । अथ वा अवशेन=अस्वतन्त्रेण ईर्ष्यापरवशेनेत्यर्थः अप्रशस्तं विरुद्धं=न्यायविरोधि अन्याय्यमिति यावद् वा वशम्=इच्छा यस्य तेन दुर्योधनेन मनसा क्षमायाः=सर्वभूमेः काङ्क्षा विदधे=चक्रे कृता तस्य=दुर्योधनस्य अत्र=अत्युत्कटपाप-पुण्याना मिहैव फलमश्नुते,इति कतिपयैरेव दिवसैः फलप्रत्यक्षीकरणप्रवणाधिकरणे संसरणे(संसारे)आननस्य=मुखस्य विषमा=मानिजनसुदुः सहा दारुणा संकटा वा दशा=अवस्था स्थितिरित्यर्थः न जाता काका जातैवेत्यर्थः । यद्वा विषमानदशा=विषवत्=गरलवत् मानदशा=मानस्य=अहंकारस्य दशा=अवस्था विषतुल्यगर्वावस्थेत्यर्थः जाता=अभूत् । तत्रापि=तस्य तादृगवस्थत्वविषयेऽपि दैवैः=अघटितघटन-घटितविघटनपटीयःपाटवपरिपाटीशालिभाग्याधिष्ठातृभिः अभाग्यभवनं=भाग्यराहित्यं दैवाननुकूलत्वं-दैवप्रातिकूल्यमिति यावत् निरणायि=निर्णीतम् निश्चितमित्यर्थः ॥ क्षमा क्षान्तौ क्षितौ इति हेमचन्द्रः । वशा वन्ध्या-सुता-योषा-स्त्रीगवी-करिणीषु च । त्रिष्वायत्ते, क्लीबमायत्तत्वे चेच्छा-प्रभुत्वयोरिति मेदिनी । तत्सादृश्यमभावश्च तदन्यत्वं तदल्पता अप्राशस्त्यं विरोधश्च नञर्थाः षट् प्रकीर्तिताः । विषमः दारुणे संकटे चेति शब्दस्तोममहानिधिः ।

ऋषभादिपक्षे—यः सुयोधननृपः=सुखेन युध्यतेऽसौ सुयोधनः सुयुध् युच् स चासौ नृपः=नाभिराजादिः कृपया=निष्कारणपरदुःखप्रहाणेच्छालक्षणदयया समेतः=सहितः जीवाऽनुकम्पीत्यर्थः काङ्क्षावशेन=मोक्षेच्छाशालिना मनसा याः क्षमाः शान्तीः विदधे तस्य=राज्ञः अत्र आननदशा विषमा=प्रतिकूला न जाता विषये दैवैः आप्यभाग्य-

वृत्या-जितः कुहनया-न-तयाजितः स-
पाञ्चालिकामवसनां परिपत्समक्षम् ।
चक्रेऽत्र-पावनविधौ हरिजः प्रमीलां,
नश्यत्समस्तसुदृशं च विमोहलीलाम् ॥ २४ ॥

अन्वय — कुहनया वृत्या जित तया (ततया) अजित स परिपत्समक्ष पाञ्चालिकाम् अवसना चक्रे, त्रपावनविधौ (अत्र पावनविधौ) हरिजः नश्यत्समस्तसुदृश प्रमीला विमोहलीला च चक्रे । यद्वा य अनतया कुहनया जित स वृत्याजितः स परिपत्समक्ष पाञ्चालिकाम् अवसना चक्रे (तया न कुहनया आजितः वृत्या जित स पाञ्चालिकाम् अवसनां न चक्रे) इति विचार्य हरिज अत्र पावनविधौ नश्यत्समस्तसुदृश प्रमीला विमोहलीला च चक्रे । ऋषभादि-पक्षे—हरिज अत्र पावनविधौ नश्यत्समस्तसुदृश प्रमीला विमोहलीला च न चक्रे ॥ २४ ॥

व्याख्या — कुहनया=दम्भचर्यालक्षणया वृत्या=वर्तनेन जितः=, वशीकृतः दाम्भिक इत्यर्थः तया=पुण्येन=पुण्यकर्मणा च न जितः अधार्मिक इत्यर्थः यद्वा नतया=नास्ति तः=गर्वोयस्यां सा नता= अनहंकृतिः नम्रतेत्यर्थः तया अजित अवशीकृतः उद्धत इति यावत् स=दुर्योधनः परिपत्समक्ष=सभा (सदा) प्रत्यक्ष एव पाञ्चालिकां= द्रौपदीम् अवसना=नञोऽल्पार्थकत्वेन आकृष्टबहुतरांशुकांशतया अल्प वस्त्रा नग्नप्रायामिति भाव चक्रे असिश्च त्रपावनविधौ=त्रपां=लज्जाम् आनयति=गमयति=प्रापयति ग्राहयति वाऽसौ यद्वा त्रपाया=अवन= प्राप्तिर्यस्मात् त्रपावन =लज्जाजनकः अवतेर्ण्यन्तात्ल्युट्वाद्वाल्युः स चासौ विधिः=विधानं तस्मिन् यद्वा अत्र पावनविधौ=अकीर्तिप्रापककर्मणि । जायमाने हरिजः -जातवैकर- वस्त्राकर्षणलक्षणाऽसद्व्यवहारे इत्यर्थः जायमाने हरिजः-जातवैकर- चनं युधिष्ठिर-भीमाऽर्जुनाः नश्यत्समस्तसुदृशं=निमीलितसर्वजनलो- चना प्रमीलां=अशक्योपायतया नितान्तामद्रदर्शनतया च तन्द्राभावना

दङ्गनिमीलनमिति यावत् विमोहलीलां=मूढभावं च चक्रे। कुहना दम्भचर्यायामिति. तश्चौरा-मृत पुच्छेषु क्रोडे म्लेच्छे च कुत्रचित् अमुमांस्तरणे पुण्ये कथितः शब्दवेदिभिः इति च मेदिनी. नकार श्चौर्य-गर्वयोरित्येकाक्षरकोशः। तत्सादृश्यमभावश्च तद्न्यत्वं तदन्यता. अप्राशस्त्ये विरोधश्च नञर्थाः षट्प्रकीर्तिताः। अथ वा यः नरः अन-तया=मज्ञया तया=प्रसिद्धया कुहनया=दम्भचर्यया=लोभान्मिथ्येर्यापथसंपादनयेत्यर्थः अर्थलिप्सया मिथ्याधर्माश्रयणेनेति यावत् जितः= वशीकृतः सः नरः वृत्त्याजिवः=वृत वर्तनं=चिरस्थितिर्जीवनोपायो वा तेन स्याजितः=परिहापितः स्यात्। स परिषत्समक्षं=जनतासमक्षं पाञ्चालिका=पुत्रिकां वस्त्र-दन्तादिरचितपुत्तलिकाम् अवसनां-नग्नां चक्रे मनरः व्यर्थप्रयास इत्यर्थः धनवत्त्वेऽप्यधनत्वमिति भावः।

यद्वा तया-प्रतीतया न कुहनया-दम्भचर्यया सम्पादितयेति शेषः दम्भरहितयेत्यर्थः आजितः संग्रामात् वृत्त्या=आजीविकया जितः स पाञ्चालिकामवसना न चक्रे नकारस्योभयप्रयोगात् सफलप्रयासो ऽयं पुरुषः इति विचार्य हरिजः इन्द्रजोऽर्जुनः यद्वा हरिः=अनिलस्त स्माज्जातो भीमसेनः अथ वा हरिः-यमः तज्जातो युधिष्ठिरः अत्र- अस्मिन् पावनविधौ- न्यायकार्ये नश्यत्समस्तसुदृशः नश्यन्त्यः-अनि- मिषन्त्यः समस्ताः समस्तानां वा सुदृशः नेत्राणि यस्याः सा तां तादृशीं प्रमीलां-तन्द्रां विमोहलीला-मूढभाव च चक्रे। कुहनालोभा- न्मिथ्येर्यापथकल्पनेत्यमरः। पाञ्चालिका पुत्रिकास्याद्वस्त्रदन्तादिभिः कृतेति चामरः। यमा-ऽनिले-न्द्र-चन्द्रा-ऽर्क-विष्णुसिंहां-ऽशु- वाजिषु। शुका-ऽहि-कपि-भेकेषु हरिर्नाकपिलेत्रिषु इति. तन्द्री प्रमीला इति चामरः।

अन्यपक्षेपु-हरिः-सूर्यः-सूर्ययशा भरतचक्रीवर्तिसुतस्तस्माज्जातः हरिजः-ऋषभप्रपौत्रः। अथ वा हरिजः-हरिः-हरिवंशः नामैकदेश

ग्रहणे नामग्रहणात् पदैकदेशे पदसमुदायोपचाराद्वा हरिवंशे=सूर्यवंशे इक्ष्वाकुवंशे इत्यर्थः जातः नाभिः विश्वसेनः अश्वसेनः सिद्धार्थराजो दशरथश्च. तथा हरिवंशे–यादवकुले जातः समुद्रविजयो वसुदेवश्च अत्रपंस्पष्टम् यथा तथाऽवनविधौ–जीवरक्षाकरणे नश्यत्समस्तसुदृशं प्रमीलां–तन्द्रां प्रमादमिति भावः विमोहलीलां मूढभावमविवेकित्व-मिति यावत् च न चक्रे ॥ २४ ॥

साम्ना प्रभावितरणेन विभेदनेन,
नो वश्यतामुपगता नरपाः क्षितिं ते ।
प्रापुः स्वतस्तुरगहस्तिरथाद्यभावैः,
स्वापुण्यलब्धजननाज्जननादयोग्याः ॥ २५ ॥

अन्वयः—ये नरपाः साम्ना प्रभावितरणेन विभेदनेन वश्यतां नो उपगता ते तुरगहस्तिरथाद्यभावैः स्वापुण्यलब्धजननात् जननादयोग्यां क्षितिं प्रापुः । अथवा ये नरपाः साम्ना प्रभावितरणेन विभेदनेन वश्यामुपगताः ते तुरगहस्ति-रथाद्यभावैः (सह) स्वापुण्यलब्धजननात् जननादयोग्यां क्षितिं स्वतः नो प्रापुः ॥ २५ ॥

व्याख्या—ये नरपाः–सुयोधनादयस्तत्पक्षवर्तिनोऽन्ये च नृपाः साम्ना–परस्परोपकारप्रदर्शनादिना पञ्चविधेन सान्त्वेन प्रभावितरणेन–प्रतिदानादिना पञ्चविधेन दानेन–विभेदनेन–भेदेन स्नेहरागापनय-नादिना त्रिविधेनोपजापेन इत्येतदुपायत्रितयेन यदा वश्यताम्–वश-वर्तितां विधेयतामित्यर्थः अनुकूलतामिति यावत् नो–नैव उपगताः तदा ते प्रतीपाजनिकाः तुरगहस्तिरथाद्यभावैः–अश्व–गज–रथाद्य-योधनसाधनविनाभावेन. द्वन्द्वान्तेश्रूयमाणस्य रथशब्दस्य तुरग-हस्तिभ्यां संबन्धेन अश्वरथ–गजरथादीनां राहित्येनेत्यर्थः तन्त्रेणावृ-त्या वोक्तपदस्योभयार्थपरताविदेलिमा । स्वापुण्यलब्धजननात्–जन-

नादयोग्यां=जननादः=जनरवः कौलीनमित्यर्थः लोकापवाद इति यावत् तस्य योग्यां=तदर्हाम् क्षितिं=क्षयं=नाशमित्यर्थः यद्वा क्षितिं–भूमिं स्वतः=स्वयमेव प्रापुः=लेभिरे पञ्चत्वमापन्ना इत्यर्थः भूमिलाभस्यापि लोके शास्त्रे च मरणवाचित्वेन प्रसिद्धिः तथा च भूमिं प्रापुरित्यस्य मृता इत्यर्थः ॥ यद्वा मामाद्युपायत्रितयेन ये राजानो वश्यतामुपगतास्ते तुरग–हस्तिरथादीनामभावैः सहैव स्वापुण्यलब्धजननात्=जननादयोग्यां क्षितिं=क्षयं नो प्रापुः । अथवा ये सामादित्रिकेण वशवर्त्तितामुपगतास्ते तुरग–हस्ति–रथाद्यानां भावैः=सद्भावैरुदयैर्वा सह स्वापुण्यलब्धजननात्=जननादयोग्यां=जननादः=साधुवादः-धन्यवादलक्षणलोकवादस्तद्योग्यां=तदर्हां क्षितिं=निजगेहं स्वभुवं=निजशास्यराष्ट्रमिति भावः नो प्रापुः काक्वा प्रापुरेवेत्यर्थः अन्यपक्षेष्वप्ययमर्थः साधारणतयैव प्रतिभाति केवलं 'ये नरपाः'=इत्यस्य 'श्रीविश्वसेनादिराजानां ये प्रत्यर्थिपृथ्वीपतयः' इत्यर्थो विदेलिमः । अत्र प्रसङ्गात् सामादिभेदा उच्यन्ते । 'परस्परोपकाराणां दर्शनं गुणकीर्त्तनम् । सम्बन्धस्य समाख्यानमायत्या संप्रकाशनम् ॥ वाचां पेशलया साधुस्तवाहमिति चार्पणम् । इति साम विधानज्ञैः सामपञ्चविधं स्मृतम्' ॥ प्रतिदानं तथा तस्य गृहीतस्यानुमोचनम् । द्रव्यादानमपूर्वं च स्वयंग्राहप्रवर्तनम् देयस्यप्रतिमोक्षश्च दानं पञ्चविधं स्मृतम् ॥ स्नेहरागापनयनं संहर्षोत्पादनं तथा । संतर्जनं च भेदज्ञैर्भेदस्तु त्रिविधः स्मृतः ॥ क्षितिर्गेहे भुवि क्षये इति हैमः ॥ पुंस्यादिः पूर्व–पौरस्त्य–प्रथमा–ऽऽद्याः इत्यमरः ॥२५॥

सोऽयं प्रभावविभवस्तव वास्तवोऽभू–
दित्याह मागधगणः प्रभया प्रभाते ।
नान्यायवर्तनमनास्तु मनाग् जनोघ–
स्त्वच्छासने नरपते ! भुवि वर्तमाने ॥ २६ ॥

अन्वय —हे नरपते ! प्रभया प्रभाते त्वच्छासने भुवि वर्तमाने जनौघ मनाक् तु अन्यायवर्त्तनमना न (अस्ति) सोऽयं तव वास्तव प्रभावविभव अभूत् इति मागधगण आह ॥ २६ ॥

व्याख्या—हे नरपते !=युधिष्ठिरमहाराज ! पक्षे विश्वसेनादि नृपते ! प्रभया=प्रभावादिजनितदीप्त्या प्रभाते=भातु प्रवृत्ते त्वच्छासने=तव शान्तिकर्मणि भुवि=भूतले वर्त्तमाने=विद्यमाने मति जनौघः= लोकसमूहः मनाक्=अल्पम् तु=अपि अन्यायवर्त्तनमनाः=अन्यायेन= असमञ्जस-अनुचित-विधिना अनीत्या वा वर्तनं=आजीविकाकरणे यद्वा अन्याये=असमञ्जसे अन्याय्ये. इत्यर्थ अनुचिते इति यावत् वर्तने जीवनोपाये मनो यस्य स तादृशः न अस्तीति शेषः सोऽयं वास्तवः= यथार्थः तव=भवतः=प्रभावविभवः=प्रतापमहिमाऽभूत् इति मागधगणः=वन्दिजनसमूहः आह ॥ २६ ॥

भीष्मोऽग्रतो-यमविधिः स्वगुरोरनिष्टः,
कृष्णालकग्रहणकर्म सभासमक्षम् ।
वैराग्यहेतुरभवद् भविनो न कस्य,
दैवस्य वश्यमखिलं यद्वश्यभावि ॥ २७ ॥

अन्वय —स्वगुरोरनिष्ट अग्रत (स्वगुरोरग्रत अनिष्ट) भीष्म सभासमक्ष कृष्णालकग्रहणकर्म अयमविधि कस्य भविनो वैराग्यहेतुर्नोऽभवत् यत् अव श्यभावि तत् अखिल दैवस्य वश्यम् । नृपमादिपक्षेषु—स्वगुरोरनिष्ट अग्रत भीष्म सभासमक्ष कृष्णालकग्रहणकर्म यमविधि कस्य भविन वैराग्यहेतुर्ना- भवत् ॥ २७ ॥

व्याख्या—पाण्डवपक्षे-स्वगुरोः=(स्वस्य=आत्मनो गुरोः=पितुः) निजजनकस्य धृतराष्ट्रस्य यद्वा स्वगुरोः=स्वोपदेष्टुर्द्रोणाचार्यादेः स्वगुरुजनस्य=भीष्मादेर्वाऽपि अनिष्टः=अनभीप्सितः अप्रिय इति यावत् अग्रतः=पत्यादिबन्धुजनाना पुरत एव यद्वा स्वगुरोः=स्वपत्युर्युधिष्ठि-

रादेः अग्रतः=पुरस्तादेव अनिष्टः=अत्यन्ताप्रियः भीष्मः=दारुणः असह्यतमः सभामक्षं=परिषत्प्रत्यक्षे कृष्णालकग्रहणकर्म=द्रौपदीकेशाकर्षणव्यापाररूपः अयम् अविधिः=अप्रशस्त-गर्हित-विधानं कस्य भविनः भावुकजनस्य वैराग्यहेतुः=विशिष्टो रागः=मात्सर्यं विरागः स एव वैराग्यं=अत्यन्तमात्सर्यम् (स्वार्थेष्यञ्) यद्वा विगतो रागः=अनुरागः स्नेहो यस्य स विरागस्तस्य भावो वैराग्यं=(दुर्योधनविषये) स्नेहराहितीभावः (स्नेहराहित्यं) तस्य हेतुः=कारणं नाऽभवत् सर्वस्यैवाऽभवदित्यर्थः। 'भीष्मोदितो-यमविधिः' इति पाठे भीष्मम्=दारुणं दुःसहमित्यर्थं उदितम्=उदय उक्तिर्वा यत्र स इति भीष्मेण=शान्तनुपुत्रेण कौरव-पाण्डवपितामहेनेत्यर्थः उदितः=कथित इति वा भीष्मोदितः। अन्यपक्षे-भीष्मः=दारुणः अदितः=अखण्डित इत्यर्थो बोध्यः। यत्=घटनादिकम् अवश्यभावि=निश्चितभवितव्यताकं तत्सर्वं दैवस्य=अदृष्टस्य वश्यम्=अधीनम्। अवश्यंभाविभावानामप्रतीकार्यत्वात्।

ऋषभ-शान्ति-राम-कृष्णपक्षेषु-स्वगुरोः=पित्रादिस्वगुरुजनस्य अनिष्टः-अप्रियः भीष्मः=दारुणः अग्रतः=पुरा=यौवराज्यकाल एवेत्यर्थः सभासमक्षं कृष्णालकग्रहणकर्म=रलयोरेकत्वस्मरणात् कृष्णं=श्यामं पराजयजन्यदैन्यमलीमसमित्यर्थः यत् आलकम्=आरकम्=अरीणां समूह आरं तदेवारकं तस्य ग्रहणकर्म=निग्रहव्यापार इत्ययम् अविधिः=अनुचिताचरणं यद्वा यमविधिः=यमस्य=दण्डधरस्येव विधानं कस्यभविनः=दुष्टनिग्रहाकाङ्क्षिणो जनस्य वैराग्यहेतुः=विशिष्टो रागः=अनुरागः स्नेहः विरागः स एव वैराग्यं तस्य हेतुर्नाभवत्। दैवस्येत्यादिपूर्ववत्।

नेमि-पार्श्ववीरपक्षेषु—स्वगुरोरनिष्टः भीष्मः=दुष्करत्वाद्दारुणः अग्रतः=प्रथममेव वार्द्धक्यावस्थाप्राप्तितः पूर्वमेवेत्यर्थः नेमि-पार्श्वपक्ष-

योस्तु स्वगुरोः=स्वपितुः अग्रतः=अग्रे एव अत एव अनिष्टः=स्वपितुरप्रियश्चेति विशेषः। महावीरपक्षे तु स्वगुरोः=स्वज्येष्ठभ्रातुः अग्रत = अत एव। यमविधिः=अहिंसादिपञ्चमहाव्रतविधानं संयमधारणमित्यर्थः दीक्षाग्रहणमिति यावत् सभामक्षं=गोष्ठीसांमुख्य एव कृष्णालकग्रहणकर्म=कृष्णानां– तारुण्यविजृम्भितश्यामलिमशालिनाम् अलकानां=निजशिरःकेशानां ग्रहणकर्म–पञ्चमुष्टिलोचकर्म च कस्य भविनः–विवेकिजनस्य वैराग्यहेतुः–विगतो रागः–स्रक्–चन्दन–वनितादिविषयेष्वभिषङ्गो येषां ते विरागास्तेषां भावः कर्म वा वैराग्यं तस्य हेतुर्नाभवत् सर्वस्यैवाभवदित्यर्थः। महेन्द्रमहैश्वर्यातिशायिसाम्राज्यशालिकुलसंभवोऽप्येष साम्राज्यविजृम्भितानुपमभोगसुखजातं तृणमिवनिरस्य राजकुमारादिसुदुष्कराऽरुष्करमुष्टिपञ्चकमितकेशलुञ्चनपूर्वकं दीक्षाग्रहणमकरोत् इति धिक् न आपातरमणीयपर्यन्तपरितापिविशंकटविषयाटवीलग्नदावानलविसृमरशिखावलीविकलितचेतस्कान् इत्येवं सर्वस्यैववैराग्यं प्रादुरभूत्। शेषं पूर्ववत् ऋषभ–शान्त्योरप्ययमर्थो विदेलिमः। अहिंसा सत्यवचनं ब्रह्मचर्यमकल्कता। अस्तेयमिति पञ्चैते यमाख्यानि व्रतानिच'। रागस्तु मात्सर्ये लोहितादिषु, क्लेशादावनुरागे च गान्धाराद्रौ नृपेऽपि चेति मेदिनी।

श्रीरामपक्षेरित्थंविधोऽप्यर्थः सम्भवति तथाहि––स्वगुरोः–स्वंपितुर्दशरथस्य अग्रतः अनिष्टः–अत्यन्ताप्रियः भीष्मः–अतिसुकुमाराजकुमार (राम) दुष्करतया पुत्रवियोगजन्यशोकातिरेकसंभावितराजमरणहेतुना वा सुदारुणः यमविधिः–संयमग्रहणं चतुर्दशवर्षावधिकतापसव्रतधारणमिति यावत् तथा सभामक्षं–सर्वसमक्षमित्यर्थः कृष्णालकग्रहणकर्म–कृष्णानां–भृङ्गवदतिश्यामलानाम् अलकानां=चूर्णकुन्तलानां ग्रहणकर्म–तापसधार्यजटावत्संहत्यबन्धनमित्यर्थः कस्य भविनः–सहृदयहृदयस्य वैराग्यहेतुः–विषयरागराहित्यकारणं कैकेयिविषयस्नेहराहित्यकारणं वा नाभवत् सर्वस्यैवाभूदित्यर्थः॥ २७॥

भीमेऽपि पश्यति सुरे यदि-वा-नरेऽपि,
नम्रत्वमाश्रयदहीनकुले कुलीने ।
वन्यव्रताचरणतः सह-देव एव,
राजापि मौनमदधाद् धृतधर्मजन्मा ॥ २८ ॥

अन्वयः—अहीनकुले कुलीने सुरे पश्यति भीमे यदि वा नरे सहदेवे अपि नकुले च नम्रत्वम् आश्रयत् धृतधर्मजन्मा राजापि वन्यव्रताचरणत. मौनमदधात्। ऋषभादिपक्षे-धृतधर्मजन्मा देव. राजापि भीमेऽपि पश्यति सुरे यदि वा नरे रामपक्षे यदि वानरे अहीनकुले कुलीने नम्रत्वमाश्रयत वन्यव्रताचरणतः सह मौनमदधात् ॥ २८ ॥

व्याख्या-पाण्डवपक्षे-अहीनकुले=महाकुलसंभवे कुलीने=क्ष्मजने भूमिस्थिते वा निर्वासितत्वात्. सुरे=पण्डिते विवेकिनि पश्यति=सर्वसमक्षं संवृत्तघटनां साम्राज्यहरण-द्रौपदीकेशांऽशुकाकर्षण-द्वादशवर्षावधिकप्रकाशवनवास-वर्षकावधिकगुप्तवासादिरूपां साक्षात्कुर्वति भीमे=वृकोदरे भीमसेने इति यावत् यदि वा नरे=अर्जुने देवे=सहदेवे नामैकदेशग्रहणे नामग्रहणात् अपि शब्दसंगृहीते नकुले च नम्रत्वं=विनम्रभावः नम्रतेति यावत् आश्रयत्=अवालम्बत न ते व्यक्रियन्तेति भावः तदनु धृतधर्मजन्मा=धृतं=गृहीतं धर्मात्=यमात् जन्म येन स धर्मात्मजो युधिष्ठिरः राजाऽपि वन्यव्रताचरणतः=वन्यानां=वनेवासितपस्विनां व्रतस्य=नियमस्य आचरणतः=सार्वविभक्तिकस्तसिः आचरणेनेत्यर्थः यद्वा वनेभवानि वन्यानि तैर्व्रताचरणं=भोजनक्रियासम्पादनं तेनेति ततः सह=सार्द्धं मौनं मुनित्वं दधौ ।

ऋषभ-नेमि-पार्श्व-वीरपक्षे-धृतधर्मजन्मा-धृतं=गृहीतं धर्मरूपं जन्म येन सः यद्वा धृतं धर्माय=पुण्याचरणाय जन्म येन सः देवः=ऋषभदेवः नेमिः पार्श्वनाथः वर्द्धमानश्च भीमे=रौद्रेऽपि पश्यति सुरे देवे यदि वा नरे=मानवे अहीनकुले=महोचकुलजे कुलीने=कुलवति

भूमिस्थिते वा नग्नत्वम् आश्रयत् किञ्च राजापि वन्यव्रताचरणतः=वनिनां=वननायकानां भिल्लादीनाम् अव्रताचरणतः=भोजनाभावात् मौनं मुनित्वं अदधात्=अपुष्यत् ।

शान्तिपक्षे कृष्णपक्षे—भीमेऽपि पश्यति सुरे अहीनकुले यदि वा कुलीने नरे नग्नत्वं=नग्नभावः आश्रयत् नग्नताऽऽश्रितेत्यर्थः धृतधर्मजन्मा=गृहीतपुण्यार्थजनुः धृतं धर्माय=न्यायाय जन्म येन स इति वा देवः=श्रीशान्तिनाथप्रभुः=राजापि=प्राज्यसाम्राज्यसंजातगातजातानुभवितापीतिभावः वन्यव्रताचरणतः=वानप्रस्थाचर्यनियमात् मौनं धर्मम् अदधात् ।

रामपक्षे—धृतधर्मजन्मा=गृहीतन्यायावतारः देवः=बलदेवः श्रीरामचन्द्रः राजापि=क्षणकतिपयाऽनन्तरमेव सम्भावितराज्याभिषेकोऽपि वन्यव्रताचरणतः वन्यैः=वनभवैः कन्द-फलादिभिर्व्रताचरणतः=अशनक्रियानिष्पादनेन सह मौनं=मुनित्वं तापसत्वमदधात् भीमेऽपि पश्यति सुरे यदि=अथ वा वानरे अहीनकुले ऽकुलीने वा नग्नत्वं आश्रीय वासुदेवधृतधर्मजन्मा=गृहीतधर्मावतारः देवः राजापि॥२८॥

प्राप्तं जयाढ्यविजयैः किमुदारनीत्या,
निर्मीयमाणसुकृतैस्तु युगं कृतं तत् ।
लोकैः पथश्च कलितश्चलितं न किञ्चि-
न्नातिक्रमः स्खलितमीश्वरराज्ययोगे ॥२९॥

अन्वयः—जयाढ्यविजयैः उदारनीत्या निर्मीयमाणसुकृतैः तत् युगं कृतं प्राप्त किमु (यतः जयाढ्यविजयैः निर्मीयमाणसुकृतैश्च) लोकैः पथः किञ्चित् न चलितं, नापि कलितः (चालितैरपि) लोकैः पथः कलितः किञ्चित् न चलितम् । (यतः) ईश्वरराज्ययोगे अतिक्रमः स्खलितं (च न (लोकेऽभूत् ॥ २९ ॥

व्याख्या—जयाढ्यविजयैः=जयसंवलितविजयैः उदारनीत्या= असाधारणनीत्या दानुनीत्या वा निर्मीयमाणसुकृतैः=विधीयमानपुण्यकार्यैश्च साधनैः तत् कृतं युगं=सत्ययुगं प्राप्तं किम् ? यतः (जयाढ्यविजयैः=जयसहितविजयशालिभिः, निर्मीयमाणसुकृतैः=पुण्यकार्यविधायिभिः) लोकैः पथः=सन्मार्गात् किञ्चित्=अल्पमपि न चलितं= स्खलितम् नापि गलितः=कलिना=कलहेन क्लेशेन वा कलियुगेन वा चालितैर्भावीति शेषः यद्वा लोकैः=जनैः पथः=सन्मार्गः कलितः= गृहीतः आश्रितः ततश्च किञ्चित्=मनागपि न चलितम् । युक्तं चैतत् यतः ईश्वरराज्ययोगे=अतिक्रमः=मर्यादोल्लङ्घनम् क्रम–परिपाटी–समुल्लङ्घनं वास्खलितं=स्खलनं=कूटयुद्धादौ प्रवृत्त्या वीरमर्यादातः पतनं मर्यादाभ्रंशो वा सन्मार्गादिश्चलनं वाऽपि न अजनि लोकेषु । वर्त्म–मार्गा–ऽध्व–पन्थानः पदवी सृतिरित्यमरः । पथ इत्यकारान्तत्वे च 'वाटः पथश्च मार्गश्चे'तित्रिकाण्डशेषः प्रमाणम् ॥ २९ ॥

धर्मात्मनाप्यवनलीनतया वनानि,
संसेविरे विहितकैतवसेवनेन ।
मात्रासमं द्रुपदजातिशये-न शीता–
संतापमाप हत-कीचकनीचवृत्त्या ॥ ३० ॥

अन्वय—विहितकैतवसेवनेन धर्मात्मना आप्यवनलीनतया वनानि संसेविरे अतिशयेन शीता द्रुपदजा हतकीचकनीचवृत्त्या । मात्राऽसमं सन्तापमाप । ऋषभादिपक्षेषु—विहितकैतवसेवनेन धर्मात्मना आप्यवनलीनतया (अवनलीनतया च) वनानि (अवनानिच) संसेविरे द्रुपदजातिशयेन कीचकनीचवृत्त्या च मात्रासमं शीताऽऽसन्तापमाप हत ॥ ३० ॥

व्याख्या—विहितकैतवसेवनेन=विहित=कृतं क्षात्रधर्मानुरोधेन द्यूतक्रीडनार्थमाह्वाने कैतवस्य=द्यूतस्य सेवनं येन सः तेन, आहितो

न निवर्तेत द्यूतादपि रणादपीत्युक्ते रणार्थं द्यूतार्थं चाऽऽहूतेन क्षत्रियेण रणद्यूतविधानस्य च क्षात्रधर्मोचितत्वात्। धर्मात्मना=धर्मे=पुण्ये आचारे वा न्याये वा आत्मा=बुद्धिश्चित्तं वा यस्य तेन धर्मात्मजेन युधिष्ठिरेण आप्यवनलीनतया=आप्या=खीन्ता वनवास-गुप्तवासरूपप्रतिपणनिर्वाहार्थं प्राप्यावने=द्वैतवने या लीनता=श्लिष्टता आश्रयाश्रयिभावेन सम्बद्धता निवसतिरित्यर्थः निवास इति यावत् तया हेतुना वनानि-द्वैतवनानि प्रसेविरे-निषेवितानि। तदनु कदाचित् गुप्तवासयापनीयवर्षानधिककालाभ्यन्तरे विराटगृहे पाण्डवैः साकं निवसन्ती द्रुपदजा-द्रौपदी हतकीचकनीचवृत्त्या-हतस्य-दुर्विदग्धस्य कीचकस्य-तदाख्यस्य विराटराजश्यालकस्य द्रौपदीरूपदर्शनचलितचेतसस्तद्धर्षणार्थं चेष्टमानस्य नीचवृत्त्या-सुरतप्रार्थनालक्षणाऽसदाचरणेन मात्रासम-प्रमाणेनातुल्यम् अतिमात्रमित्यर्थं सन्ताप-खेदमाप-लेभे पतिव्रतात्वात् सा कीदृशी? अतिशयेन सीता अतिशयेन-अतिमात्रम् इने पत्यौ पाण्डवे शीता अनुष्णा अतीक्ष्णा इति सा शान्तप्रकृतिकेत्यर्थः। यद्वा सीता-सीता इवेति लुप्तोपमा। अतिशयेनेत्यस्य आपेति क्रिययान्वयः।

ऋषभ नेमि पार्श्व-वीरपक्षेषु—विहितकेतवसेवनेन-हित-मित्रादि कैतव-छल द्यूत वा यद्वा कैतव-शत्रुः तयोस्सेवन-भजनं सम्बन्ध इतिभावः विगत हित-कैतवसेवन यस्मात् सः तेन राग-द्वेषविनिर्मुक्तेनेत्यर्थः। धर्मात्मना-पुण्यशीलेन जिनदेवेन आप्यवनलीनतया-तच्छ्रवणार्थं प्राप्यवननिवासतया यद्वा अवनलीनतया-जीवरक्षणपरायणतया हेतुना वनानि-तपोवनानि अवनानि-जीवरक्षणकर्माणि वा प्रसेविरे-भेजिरे।

अत एव द्रुपदजातिशयेन=द्रूणा=वृक्षाणा पदं=स्थान द्रुपद=वन तत्र जातोऽतिशयः=शयन तेन यथा कीचकनीचवृत्त्या=कीचकाना=

वंशानां कीचकेषु वा नीचवृत्त्या=निम्नावस्थित्या च वंशाधोऽन्यस्थाने-नेत्यर्थः मात्रासमं=प्रमाणेनाऽतुल्यं यथास्यात्तथा शीतासन्तापं=शीतं च आसन्तापश्चाऽनयोः समाहारः हेमन्तादित्रिके शैत्यं ग्रीष्मादित्रिके औष्ण्यं च आप=प्रापेत्यर्थः। हत इति कोमलामन्त्रणे।

शान्तिनाथ-कृष्णवासुदेवपक्षे-धर्मात्मना=धर्मे=धनुषि न्याये वा आत्मा=मनो यस्य स तेन अत एव विहितकैतवसेवनेन=विहितं कैतवैः=रिपुभिरपि सेवनं यस्य स तेन विशिष्टं हित-कैतवयोः=मित्र-शत्र्वोः सेवनं यस्मिन् स तेनेति वा अवनलीनतया=जगद्रक्षणपरायण-तयाऽवनानि=रक्षाकर्माणि संसेविरे=आश्रितानि।

श्रीरामपक्षे धर्मात्मना=धर्मे=शिष्टाचारे आत्मा=मनो यस्य तेन मर्यादापुरुषोत्तमेन विहितकैतवसेवनेन=विगतं हिते=जगदिष्टसाधने कैतवस्य=छलस्य सेवनं यस्मादिति. विशेषेण हितं=गतं कैतवस्य=छल-स्य सेवनं यस्मादिति. विशेषेण हितं=गतं कैतवस्य=छलस्य द्यूतस्य वा सेवनं यस्मादिति वा. विहितं कैतवेन=रिपुणा=क्षणकतिपयशात्रवी भूतेन परशुरामेण शत्रुपक्षीयेण रावणानुजविभीषणेन सेवनं=भक्ति-भावो यस्य स तेन तथाविधेन श्रीरामबलदेवेन आप्यवनलीनतया= आप्या=समासाद्या वने या लीनता=चतुर्दशवर्षानधिकनिवसति-स्तया हेतुना वनानि=दण्डकारण्यानि संसेविरे। अथ शीता=श्रीराम-मनुगच्छन्ती जानकी द्रुपदजातिशयेन=वनस्थलीशयनेन कदाचित् कीचकनीचवृत्त्या=वंशाधोऽस्थित्या मात्रा समं=प्रमाणेनातुल्यम् अ तिमात्रं सन्तापं=खेदम् आप=आसमाद प्राप्तवतीत्यर्थः। कैतवं द्यूत-दम्भयोः। कैतवः कितवे शत्रौ इति हैमः। शीता नभस्सरिति लांगलपद्धतौ च सीता दशाननरिपोः सहधर्मिणी चेति तालव्यादौ धरणिः। कीचको दैत्यभिद्-वाताहतिसस्वनवंशयोः, विराटराजश्याले चेति शब्दार्णवः॥ ३०॥

नारायणः पशुधिया कृतकं स नाशा-
न्नासादयन्नगवनभ्रमणेन दुःखम् ॥
भ्रंशेन पैतृकपदस्य दशामशासीद्,
वारांनिधेश्च सविधे शरणे हरीणाम् ॥ ३१ ॥

अन्वयः—नारायणः नाशात् स पशुधिया उपलक्षितः नगवनभ्रमणेन कृतकं दुःखं नासादयत् पैतृकपदस्य भ्रंशेन वारांनिधेः सविधे हरीणां शरणे दशामशासीत् । रामपक्षे—स नारायणः कृतकं पशुधिया नाशात् नगवनभ्रमणे दुःखं नासादयत् इति च न पैतृकपदस्य भ्रंशेन वारांनिधेः पूर्ववत् ॥ ३१ ॥

व्याख्या—नारायणः=नृणां समूहो नारं तत् अयते=जानाति इति नारम् आययति=प्रवर्त्तयति स्वेष्टकर्मणीति वा नुः इदं नारम्=अज्ञानं तत् आययति=गमयति निवर्तयतीति वा सः । नाशात्=न आशां=लोभं परिग्रहविषयकम् अततीति सः नाऽऽशात् नैकधेत्यादाविवेहापि नञतिरिक्तनशब्दसद्भावान्नलोपाभावः सः=ऋषभः पशुधिया=सम्यग्बुद्ध्या उपलक्षितः अतएव नगवनभ्रमणेन=पर्वतकाननप्रभृतिषु विहरणेन कृतकं=कृत्रिमं दुःखं न आसादयत् न प्राप्तवान् किञ्च पैतृकपदस्य=कुलपरम्परागतराजपदलक्षणपितृसम्बन्धिस्थानस्य भ्रंशेन=अधःपातनेन अवहेलनेन परित्यागेनेति यावत् वारांनिधेः=समुद्रस्य सविधे=समीपदेशे हरीणां=सिंहानां शरणे=आश्रयस्थाने वने इति यावत् दशां=चरमावस्थाम् अशासीत्=तपश्चर्यया तनूकरोतिस्मेत्यर्थः प्रापयामासेति यावत् ॥

श्रीरामपक्षे—सः=प्रसिद्धः नारायणः=नारायण इव विष्णुसदृश इत्यर्थः श्रीरामबलदेवः कृतकं=कृत्रिमं मायया हेममृगरूपधारिणं मारीचमिति यावत् पशुधिया=मृगलक्षणः पशुरयमिति बुद्ध्यैवेत्यर्थः न अशात्=अशातयत् इति नगवनभ्रमणे=रावणाऽपहृतसीतान्वेष-

वंशानां कीचकेषु वा नीचवृत्त्या=निम्नावस्थित्या च वंशाधोऽवस्थाने-नेत्यर्थः मात्रासमं=प्रमाणेनाऽतुल्यं यथास्यात्तथा शीतासन्तापं=शीतं च आसन्तापश्चाऽनयोः समाहारः हेमन्तादित्रिके शैत्यं ग्रीष्मादित्रिके औष्ण्यं च आप=प्रापेत्यर्थः । हत इति कोमलामन्त्रणे ।

शान्तिनाथ-कृष्णवासुदेवपक्षे-धर्मात्मना=धर्मे=धनुषि न्याये वा आत्मा=मनो यस्य स तेन अत एव विहितकैतवसेवनेन=विहितं कैतवैः=रिपुभिरपि सेवनं यस्य स तेन विशिष्टं हित-कैतवयोः=मित्र-शत्र्वोः सेवनं यस्मिन् स तेनेति वा अवनलीनतया=जगद्रक्षणपरायण-तयाऽवनानि=रक्षाकर्माणि संसेविरे=आश्रितानि ।

श्रीरामपक्षे धर्मात्मना=धर्मे=शिष्टाचारे आत्मा=मनो यस्य तेन मर्यादापुरुषोत्तमेन विहितकैतवसेवनेन=विगतं हिते=जगदिष्टसाधने कैतवस्य=छलस्य सेवनं यस्मादिति. विशेषेण हितं=गतं कैतवस्य=छल-स्य सेवनं यस्मादिति. विशेषेण हितं=गतं कैतवस्य=छलस्य द्यूतस्य वा सेवनं यस्मादिति वा. विहितं कैतवेन=रिपुणा=क्षणकतिपयशात्रवी भूतेन परशुरामेण शत्रुपक्षीयेण रावणानुजविभीषणेन सेवनं=भक्ति-भावो यस्य स तेन तथाविधेन श्रीरामबलदेवेन आप्यवनलीनतया= आप्या=समाप्तया वने या लीनता=चतुर्दशवर्षावधिकनिवसति-स्तया हेतुना वनानि=दण्डकारण्यानि संसेविरे । अथ शीता=श्रीराम-मनुगच्छन्ती जानकी द्रुपदजातिशयेन=वनस्थलीशयनेन कदाचित् कीचकनीचवृत्त्या=वंशाधोऽस्थित्या मात्रा समं=प्रमाणेनातुल्यम् अ तिमात्रं सन्तापं=खेदम् आप=आससाद प्राप्तवतीत्यर्थः । कैतवं द्यूत-दम्भयोः । कैतवः कितवे शत्रौ इति हैमः । शीता नमस्सरिति लांगलपद्धतौ च सीता दशाननरिपोः सहधर्मिणी चेति तालव्यादौ धरणिः। कीचको दैत्यभिद्-वाताहतिसस्वनवंशयोः, विराटराजश्याले चेति शब्दार्णवः ॥ ३० ॥

नारायणः पशुधिया कृतकं स नाशा-
न्नासादयन्नगवनभ्रमणेन दुःखम् ॥
भ्रंशेन पैतृकपदस्य दशामशासीद्,
वारांनिधेश्च सविधे शरणे हरीणाम् ॥ ३१ ॥

अन्वयः—नारायणः नाशात् स पशुधिया उपलक्षितः नगवनभ्रमणेन कृतकं दुःखं नासादयत् पैतृकपदस्य भ्रंशेन वारांनिधेः सविधे हरीणां शरणे दशामशासीत् । रामपक्षे—स नारायणः कृतकं पशुधिया नाशात् नगनवनभ्रमणे दुःखं नासादयत इति च न पैतृकपदस्य भ्रंशेन वारांनिधेः पूर्ववत् ॥ ३१ ॥

व्याख्या—नारायणः=नृणां समूहो नारं तत् अयते=जानाति इति नारम् आययति=प्रवर्त्तयति स्वेष्टकर्मणीति वा नुः इदं नारम्=अज्ञानं तद् आययति=गमयति निवर्तयतीति वा सः । नाशात्=न आशां=लोभं परिग्रहविषयकम् अवतीति सः नाऽऽशात् नैकधेत्यादाविवेहापि नञतिरिक्तनशब्दसद्भावान्नलोपाभावः सः=ऋषभः पशुधिया=सम्यग्बुद्ध्या उपलक्षितः अतएव नगवनभ्रमणेन=पर्वतकाननप्रभृतिषु विहरणेन कृतकं=कृत्रिमं दुःखं न आसादयत् न प्राप्तवान् किञ्च पैतृकपदस्य=कुलपरम्परागतराजपदलक्षणपितृसम्बन्धिस्थानस्य भ्रंशेन=अधःपातनेन अवहेलनेन परित्यागेनेति यावत् वारांनिधेः=समुद्रस्य सविधे=समीपदेशे हरीणां=सिंहानां शरणे=आश्रयस्थाने वने इति यावत् दशां=चरमावस्थाम् अशासीत्=तपश्चर्यया तनूकरोतिस्मेत्यर्थः प्रापयामासेति यावत् ॥

श्रीरामपक्षे—सः=प्रसिद्धः नारायणः=नारायण इव विष्णुसदृश इत्यर्थः श्रीरामबलदेवः कृतकं=कृत्रिमं मायया हेममृगरूपधारिणं मारीचमिति यावत् पशुधिया=मृगलक्षणः पशुरयमिति बुद्ध्यैवेत्यर्थः न अशात्=अशातयत् इति नगवनभ्रमणे=रावणाऽपहृतसीतान्वेष-

णार्थं गिरिकाननेषु भ्रमणे तज्जन्यमित्यर्थः दुःख=खेदं नासादयत् इति च न किन्तु अशादेव दुःखमासादेवेत्यर्थः। पैतृकपदस्य पितृसम्बन्धिराजपदस्य भ्रंशेन=कैकेयीवचनपरवशेन राज्ञा दशरथेन भरताय राज्यं दत्त्वा रामश्च वनवासार्थं पित्राज्ञप्ततया साम्राज्यपदस्य राहित्येन वारांनिधेः=समुद्रस्य सविधे हरीणां=वानराणां सुग्रीवादीनां शरणे=गृहे स्थाने इति यावत् दशां=किञ्चित्कालिकस्थितिम् अशामीत्। शब्दशक्तिमहिम्ना रामपक्षीयोऽर्थः प्रदर्शितो न तु स पक्ष इहाश्रयणीयः श्री कौशलाधिपतिनेत्यादि चतुस्त्रिंशपद्यश्लोके तदर्थस्य स्पष्टमभिहितत्वात् ॥ २१ ॥

कालोऽप्यमुष्य चरणेऽनुचरोदयेच्छु-
देव्या-नले-न निहतश्छलमाकलय्य।
तन्मानवो भजतु कोऽपि नवोदयाघं,
क्रीडारसेऽभ्यसनतो व्यवसनासनानि ॥२२॥

अन्वय —कालोऽपि अमुष्यचरणे अनुचरोदयेच्छु देव्या अनले न निहत. छलम् आकलय्य क्रीडारसे अभ्यसनत व्यसनासनानि नव. कोऽपि नवोदयाघम् तत् मा भजतु ॥ २२ ॥

व्याख्या–कालोऽपि समयोऽपि अमुष्य जिनेन्द्रस्य चरणे चारित्र्ये अथवा चरणे पदे अनुचरोदयेच्छुः अनुचरस्य सेवकस्य य उदयः समृद्धिस्तदिच्छुस्तदभिलाषुकः देव्या देवाङ्गनया अप्सरसा अथवा देव्या देवमायया रचितम् उद्भावितमिति शेषः छलम् कपटम् आकलय्य बुध्वाविमृश्येति यावत् अनले अग्नौ यथा वह्निः सर्वं भस्मसात् करोति स्पृष्टस्तथा मामप्ययं कुर्यादिति न निहतः न प्रयोजितः निवृत्तिमकरोदिति भावः क्रीडारसे खेलारसे अभ्यसनतः अभ्यासात् व्यसनासनानि व्यसने दुराग्रहे आसनम् उपवेशनम् तदभिनिवेशः तानि नवोदयाघम्

नवोदयः अघः पापम् यत्र तद्यथास्यात्तथा नवः नूतनः कोऽपि मा भजतु न सेवताम् नास्मिन् प्रसक्तो भवत्विति भावः ॥

अन्यपक्षेऽप्येवमेवेति ॥ अथ च अमुष्य नलस्य चरणे आचरणे अनुचरोदयेच्छुः अनुचरस्य किंकरस्य दासस्येत्यर्थः य उदयः प्राप्तिः दासभावताम् तदिच्छुः अयं राज्याद् भ्रष्टो दासतां भजेदित्यभिलाषुकः कालः कलियुगः देव्या दिव्यते इति देवी भावेऽप् गौरादित्वान्ङीप् तया देव्या देवनक्रियया द्यूतव्यापारेण छलम् कपटम् आकलय्य अभिसन्धाय आश्रित्येत्यर्थः नले नैषधनृपे न निहितः छल इति शेष इति न किन्तु निहित एवेति काका व्यज्यते नले द्यूतव्याजेन कपटो निहित इति भावः तस्मात् तत्कारणात् कोऽपि मानवः नवोदयाघं अभिनवसमृद्धकिल्बिषं माभजतु मासेवताम् तथाहि क्रीड़ारसे क्रीड़नकौतुके अभ्यसनतः अभ्यासात् पौनःपौन्येनासेवनात् व्यसनासनानि व्यसनस्य विपत्तेः आसनानि उपवेशनानि स्थापनानीति यावत् विपत्तिप्राप्तयो भवन्तीति शेषः । अत्र श्लेषोऽर्थान्तरन्यासश्च ॥ ३२ ॥

साम्राज्यमित्थमनुनीय निजप्रजानां,
नित्योदयेन बुभुजे मनुजेश्वरेण ॥
लोकाग्रजेषु ऋणभेण महाभुजेन,
धर्मोन्नतिं विदधताऽननुजेऽनुजे वा ॥ ३४ ॥

अन्वय,—निजप्रजानां साम्राज्यम् इत्थम् अनुनीय नित्योदयेन मनुजेश्वरेण लोकाग्रजेषु ऋणभेन महाभुजेन अननुजे अनुजे वा धर्मोन्नतिं विदधता बुभुजे॥३३॥

व्याख्या-निजप्रजानां स्वकीयजनानाम् अथवा स्वकीयसन्ततीनाम् "प्रजास्यात्सन्ततौ जने इत्यमरः" इत्थम् पूर्वोक्तप्रकारेण साम्राज्यम् आधिपत्यम् अनुनीय स्वानुकूल्यम् विधाय अथवा इत्थम् पूर्वोक्तप्रकारेण प्रजानाम् जनानाम् अनुनीय स्वाधीनम्विधाय "प्रजानामिति

शेषत्वविवक्षया षष्ठी " नित्योदयेन नित्यमहरहः उदयः समृद्धिर्यस्य स नित्योदयस्तेन मनुजेश्वरेण मनुजानाम्मानवानाम् अथ वा मनुजेषु ईश्वरः स्वामी प्रभुः मनुजेश्वरः तेन लोकाग्रजेषु ऋषभेन लोकानाम् जनानाम् अग्रजः श्रेष्ठ तेषु ऋषभेन श्रेष्ठेन महत्स्वपि महत्तरेण अथ वा ऋषभेन ऋषभस्वामिना आदीश्वरेणेत्यर्थः " स्युरुत्तरपदे व्याघ्र पुङ्गवर्षभकुञ्जराः ॥ सिंहशार्दूलनागाद्याः पुंसि श्रेष्ठार्थगोचरा इत्यमर." महाभुजेन दीर्घबाहुना अनेन भाग्यशालिना उच्यते अननुजे अननुचरे अनुजे अनुचरे अननुरोधिनि अनुरोधिनि च धर्मोन्नतिम् पुण्यसमृद्धिम् विदधता कुर्वता प्रचारयता साम्राज्यम् आधिपत्यम् समृद्धिमिति यावत् बुभुजे भुज्यतेस्म सर्वपक्षसाधारणमेतत् अनुप्रासालङ्कारः ॥३३॥

श्रीकोशलाधिपतिना यतिनामधर्तुं
मुख्ये सुते नियमतः पदवीनिधेया ।
कान्तावरिष्ठवचसा भरते न्यधायि
स्वातग्रजन्मनि परे वनवासवृत्तिः ॥ ३४ ॥

अन्वय —यतिनामधर्तुं श्रीकोशलाधिपतिना नियमतः मुख्ये सुते पदवी निधेया कान्तावरिष्ठवचसा भरते न्यधायि परे स्वाताग्रजन्मनि वनवासवृत्ति न्यधायि ॥ ३४ ॥

व्याख्या--यतिनामधर्तुं यतिसंज्ञामनुभवितुम् यतित्वमाकाङ्क्षन् श्रीकौशलाधिपतिना कुशलायामयोध्यायां भवः कौशलः ऋषभदेवः "इतिकल्पसूत्रसुबोधिकावृत्तौ" अथवा कुशलस्यभावः कौशलम् तद्युक्तः अधिपति कौशलाधिपतिः श्रियायुक्तः कौशलाधिपतिः श्रीकौशलाधिपतिः तेन ऋषभस्वामिना नियमतः निश्चयतः गुणतः क्रियातः धर्मतः नीतितः कुलाम्नायतः राजव्यवहारतः मुख्ये प्रधाने जन्मत इत्यर्थः सुते पुत्रे पदवी राजपदवी राज्यभारः निधेया स्थापनीया

अवलम्बनीया इति विचार्येतिशेषः भरते भरताभिधेये ज्येष्ठतनये न्यधायि प्रास्थापि कान्तावरिष्ठवचसा कान्तानाम् कमनीयस्वरूपाणाम् सारस्वतादिरिष्टान्तब्रह्मलोकनिवासिदेवानाम् वचसा तेषां वचनेन स्वतोऽपि तेषां वचनेन च परे चरमे अपुनर्भाविनीत्यर्थः स्वाप्ताग्रजन्मनि स्वस्य आप्तम् कल्याणाभिमुखम् अग्रम् श्रेष्ठम् यत् जन्म तस्मिन् स्वकीयश्रेयोमुखप्रशस्तशरीरे वनवासवृतिः मुनिवृत्तिः न्यधायि अधारि ॥

अथच स्वाप्ताग्रजन्मनि स्वस्मात् स्वतः आप्ताग्रजन्मनि प्राप्तप्रथमजन्मनि परे उत्कृष्टे पूर्वे वा वनवासवृत्तिः युगलिकधर्मप्रवृत्तिः न्यधायि प्रास्थापि स्वतो युगलिकधर्मो न्यवर्त्ततेति द्वितीयार्थो व्यज्यते ॥

श्रीशान्तिनाथ नेमिनाथ पार्श्वनाथ वीरपक्षेषु। श्रीकौशलाधिपतिना कुशलस्य भावः कौशलम् कुशलता क्रियानैपुण्यम् तस्मिन् अधिपतिः चतुरः कौशलाधिपतिः श्रियायुक्तः कौशलाधिपतिः श्रीकौशलाधिपतिः तेन यतिनामधर्तुं यतिसंज्ञामनुभवितुं मुख्ये श्रेष्ठे चरमे इत्यर्थः सुते सूयते उत्पद्यते इति सुतम् शरीरम् तस्मिन् पदवी मुनिपदवी निधेया स्थापनीया आधेया इति विचार्येतिशेषः कान्तावरिष्ठवचसा आसमन्ताद्वरिष्ठः आवरिष्ठः कान्तानां देवानाम् आवरिष्ठम् वचः स्वसंयमग्रहणप्रयोजकम् तेन तेषां वचनेन स्वतश्च स्वाप्ताग्रजन्मनि स्वस्य स्वकीयस्य आप्तम् श्लाघ्यम् यत् अग्रजन्म श्रेष्ठजन्म तस्मिने परे चरमे अथवा स्वः स्वर्गात् आप्तम् प्राप्तं यत् अग्रजन्म तस्मिन् भरते भरति पुण्येन लोकमिति भरते अथवा बिभर्ति पुण्यातिशयमितिभरतस्तस्मिन् वनवासवृत्तिः मुनिवृत्तिः पुण्यारण्यसेवनविधिः न्यधायि आस्थापि अग्राहीत्यर्थः ॥

रामपक्षे—कौशले देशविशेषे भवा कौशल्या तस्या अधिपतिः कौशल्याधिपतिः तेन कौशल्यापतिना दशरथनृपेन यतिनामधर्तुम्

मुनित्वमाश्रयितुम् प्रव्रजितुमिति भावः मुख्ये सुते सर्वतो ज्येष्ठे दयादाक्षिण्यादितः श्रेष्ठ रामे नियमतः स्ववंशपरम्परामनायतः पदवी राजपदवी निधेया स्थापनीया इति कृतनिश्चयेऽपि कान्तावरिष्ठवचसा कान्तायाः कामिन्याः कैकेय्याः वरिष्ठवचसा वरिष्ठम् अत्याज्यम् पूर्वदत्तवरतया अवश्यग्राह्यम् यद्वचः वचनम् तेन अथवा कान्तायाः स्वार्थान्धायाः कैकेय्याः अवरिष्ठम् उभयलोकविरुद्धम् अथवैतल्लोकविरुद्धम् यद्वचस्तेन भरते कैकेयीतनये स्वमध्यमतनये न्यधायि राजपदवी अथापि परे उत्कृष्टे स्वाप्तासाग्रजन्मनि स्वस्य आप्तः अत्यन्तानुगतोवल्लभ इत्यर्थ यः अग्रजन्मा ज्येष्ठतनयः तस्मिन् रामे वनवासवृत्तिः न्यधायि न्यक्षेपि वनवासीन्यधायीत्यर्थः ॥

कृष्णपक्षे—कौशलायाः मित्रविन्दायाः स्वेष्टाष्टपट्टमहिषीणाम न्यतमाया अधिपतिः स्वामी तेन कृष्णेण यतिनामभर्तुम् यतते स्वाचर्णायदुर्गादिकमित्यद्यते इति यतिः अथवा यतिः अथ वा यतिर्विष्णुस्तस्य नाम ख्यातिम् भर्तुमाश्रयितुम् "यतिर्विष्णुरितिशब्दस्तोममहानिधिः" "कृष्णस्तु भगवान स्वयमिति पौराणिकाः" मुख्ये प्रधाने निरुपद्रवे शत्रुभिरलङ्घ्ये सुते सुते अस्मिन् इति सुतः अधिकरणे क्तः भूमौ पदवी स्थितिः विधेया निर्मापनीया कचिन्निर्वाहस्थाने स्वनगरी निवेशयितव्येति भावः कान्तावरिष्ठवचसा आसन्नत्वाद्वरिष्ठः श्रेष्ठः आवरिष्ठः कान्तम् मनोहरम् यत् आवरिष्ठस्येन्द्रादेर्वचः वचनम् तेन देवेन्द्रादिवचनेन भरते भ्रियते धनधान्यादिसमृद्धिभिर्लोकैर्वा इति भरतस्तस्मिन् स्वाप्ताग्रजन्मनि स्वस्य आप्तम् श्लाघ्यम् अग्रजन्म पूर्वजन्म यस्मिन् तस्मिन् आपोनारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनव इति मनूक्तः कृष्णस्य जलप्रसूतत्वात् परे उत्कर्षे द्वारकायामित्यर्थः वनवासवृत्तिः वने समुद्रजले वासवृत्तिः जलवासित्वम् अथवा वनमेव वासवृत्तिः

प्राकारो यत्र सा अथ वा वने जले वासः वृत्तिराजीविका च यस्य स, न्यधायि अस्थापि अत्र श्लोके श्लेषालंकारः ॥ ३४ ॥

श्रीविश्वसेनकृतकर्मनिवृत्तिभावे,
लोकोऽनुगामुकमना नयविक्रमेण ॥
शान्तिप्रधानवचसैव तमाश्वसेनो,
वैदेहिवृत्तिपरिभावनया जुगोप ॥ ३५ ॥

अन्वयः—श्रीविश्वसेनकृतकर्मनिवृत्तिभावे नयविक्रमेण अनुगामुकमना लोकः तम् आश्वसेनः शान्तिप्रधानवचसैव वै देहिवृत्तिपरिभावनया जुगोप ॥ ३५ ॥

व्याख्या—श्रीविश्वसेनकृतकर्मनिवृत्तिभावे-विश्वस्मिन् चतुर्दिग्विभागे सेना यस्य अथवा विश्वस्मिन् सेनया यातीति सेनयतीति सेनः सर्वत्र सेनासहितगमनः नाभिः आदिनाथपिता तेन कृतः सम्पादितः कर्मणो निवृत्तिभावः पित्रादिनियतकर्तव्यलौकिकसंस्कारादिकर्मसमाप्तिर्यस्मिन् तस्मिन् अथ वा श्रीविश्वसेनात् निजसाम्प्रतिकपितुः सकाशात् कृतः जातः कर्मणः शरीरारम्भकदुरदृष्टनिवृत्तिभावः यत्र तस्मिन् नयविक्रमेण नयेन नीत्या विक्रमेण पराक्रमेण अनुगामुकमनाः अनुसरणचित्तो जनः लोकः आसीदिति शेषः आश्वसेनः अश्वप्रधाना सेना यस्य स आश्वसेनः शान्तिप्रधानवचसैव शान्तिप्रयोजकवचनेन वैदेहिवृत्तिपरिभावनया वै इतिपादपूरणेऽनुनयेऽव्ययम्, देही आत्मा तस्य वृत्तिर्व्यवहारः आत्मवद्व्यवहारस्तस्याः भावनया विचारेण तम् जनम् अथवा वैदेह्याः जनकनन्दिन्या या वृत्तिर्वर्तनम् सुखदुःखसहिष्णुत्वम् धर्मपरतन्त्रत्वम् तस्य परिभावनया विचारेण जुगोप ररक्ष ।

श्रीशान्तिनाथपक्षे—विश्वसेनेन तदभिधानेन स्वजनकेन कृतः सम्पादितः कर्मनिवृत्तिभावः जन्मत आरभ्य विवाहादिसंस्कारपर्यन्त-

मुनित्वमाश्रयितुम् प्रव्रजितुमिति भावः मुख्ये सुते सर्वतो ज्येष्ठे दयादाक्षिण्यादितः श्रेष्ठे रामे नियमतः स्ववंशपरम्परामान्यतः पदवी राजपदवी निधेया स्थापनीया इति कृतनिश्चयेऽपि कान्तावरिष्ठवचसा कान्तायाः कामिन्याः कैकेय्याः वरिष्ठवचसा वरिष्ठम् अत्याज्यम् पूर्वदत्तवरतया अवश्यग्राह्यम् यद्वचः वचनम् तेन अथवा कान्तायाः स्वार्थान्धायाः कैकेय्याः अवरिष्ठम् उभयलोकविरुद्धम् अथवैतल्लोकविरुद्धम् यद्वचस्तेन भरते कैकेयीतनये स्वमध्यमतनये न्यधायि राजपदवी अस्थापि परे उत्कृष्टे स्वाप्ताग्रजन्मनि स्वस्य आप्तः अत्यन्तानुगतोवल्लभ इत्यर्थ यः अग्रजन्मा ज्येष्ठतनयः तस्मिन् रामे वनवासवृत्तिः न्यधायि न्यक्षेपि वनवासीऽव्यधायीत्यर्थः ॥

कृष्णपक्षे—कौशलायाः मित्रविन्दायाः स्वेष्टाष्टपट्टमहिषीणाम न्यतमाया अधिपतिः स्वामी तेन कृष्णेन यतिनामधर्तुम् यतते स्वावर्षणायदुर्गादिकम्नियते इति यतिः अथवा यतिः अथ वा यतिर्विष्णुस्तस्य नाम ख्यातिम् धर्तुमाश्रयितुम् "यतिर्विष्णुरितिशब्दस्तोममहानिधिः" "कृष्णस्तु भगवान् स्वयमिति पौराणिकाः" मुख्ये प्रधाने निरुपद्रवे शत्रुभिरलङ्घ्ये सुते सुते अस्मिन् इति सुतः अधिकरणे क्तः भूमौ पदवी स्थितिः विधेया निर्मापनीया क्वचिन्निर्वाहस्थाने स्वनगरी निवेशयितव्येति भावः कान्तावरिष्ठवचसा आसन्नादरिष्ठः श्रेष्ठः आवरिष्ठः कान्तम् मनोहरम् यत् आवरिष्ठस्येन्द्रादेर्वचः वचनम् तेन देवेन्द्रादिवचनेन भरते भ्रियते धनधान्यादिसमृद्धिभिर्लोकैर्वा इति भरतस्तस्मिन् स्वाप्ताग्रजन्मनि स्वस्य आप्तम् श्लाघ्यम् अग्रजन्म पूर्वजन्म यस्मिन् तस्मिन् आपोनारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनव इति मनूक्तः कृष्णस्य जलप्रसूतत्वात् परे उत्कर्षे द्वारकायामित्यर्थः वनवासवृत्तिः वने समुद्रजले वासवृत्तिः जलवासित्वम् अथवा वनमेव वासवृत्तिः

प्राकारो यत्र सा अथ वा वने जले वासः वृत्तिराजीविका च यस्य स, न्यधायि अस्थापि अत्र श्लोके श्लेषालंकारः ॥ ३४ ॥

श्रीविश्वसेनकृतकर्मनिवृत्तिभावे,
लोकोऽनुगामुकमना नयविक्रमेण ॥
शान्तिप्रधानवचसैव तमाश्वसेनो,
वैदेहिवृत्तिपरिभावनया जुगोप ॥ ३५ ॥

अन्वयः—श्रीविश्वसेनकृतकर्मनिवृत्तिभावे नयविक्रमेण अनुगामुकमना लोकः तम् आश्वसेनः शान्तिप्रधानवचसैव वै देहिवृत्तिपरिभावनया जुगोप ॥ ३५ ॥

व्याख्या—श्रीविश्वसेनकृतकर्मनिवृत्तिभावे-विश्वस्मिन् चतुर्दिग्विभागे सेना यस्य अथवा विश्वस्मिन् सेनया यातीति सेनयतीति सेनः सर्वत्र सेनासहितगमनः नाभिः आदिनाथपिता तेन कृतः सम्पादितः कर्मणो निवृत्तिभावः पित्रादिनियतकर्त्तव्यलौकिकसंस्कारादिकर्मसमाप्तिर्यस्मिन् तस्मिन् अथ वा श्रीविश्वसेनात् निजसाम्प्रतिकपितुः सकाशात् कृतः जातः कर्मणः शरीरारम्भकदुरदृष्टनिवृत्तिभावः यत्र तस्मिन् नयविक्रमेण नयेन नीत्या विक्रमेण पराक्रमेण अनुगामुकमनाः अनुसरणचित्तो जनः लोकः आसीदिति शेषः आश्वसेनः अश्वप्रधाना सेना यस्य स आश्वसेनः शान्तिप्रधानवचसैव शान्तिप्रयोजकवचनेन वैदेहिवृत्तिपरिभावनया वै इतिपादपूरणेऽनुनयेऽव्ययम्, देही आत्मा तस्य वृत्तिर्व्यवहारः आत्मवद्व्यवहारस्तस्याः भावनया विचारेण तम् जनम् अथवा वैदेह्याः जनकनन्दिन्या या वृत्तिर्वर्त्तनम् सुखदुःखसहिष्णुत्वम् धर्मपरतन्त्रत्वम् तस्य परिभावनया विचारेण जुगोप ररक्ष।

श्रीशान्तिनाथपक्षे—विश्वसेनेन तदभिधानेन स्वजनकेन कृतः सम्पादितः कर्मनिवृत्तिभावः जन्मत आरभ्य विवाहादिसंस्कारपर्यन्त-

कर्मनिवृत्तिभावः परिसमाप्तिर्यत्र तस्मिन् अथवा विश्वसेनात् कृतः कर्मणः शरीरान्तगरम्भककर्मनिवृत्तिभावः समाप्तिर्यत्र तस्मिन् अन्यत् पूर्वव्याख्यानवत् ॥

श्रीपार्श्वनाथपक्षे--विश्वस्मिन् सेना यस्य स विश्वसेनस्तेन कृतकर्मनिवृत्तिभावे आश्वसेनः एतदभिधानकः पार्श्वनाथपिता वैदेहिवृत्तिपरिभावनया जुगोप अन्यत्पूर्ववत् ॥

श्रीनेमिनाथवर्द्धमानरामकृष्णपक्षे पूर्वपक्षवद्योज्यम् ॥ ३५ ॥

देवस्तथा नृपतिभिः सह पूर्वदेवैः,
प्राप्ते प्रमोदनिवहे महता महेन ।
धर्तुं क्षणाद् विषयतो विमुखः स दीक्षां,
स्वामी स्वमद्भुतरसाद् वनमाससाद ।३६॥

अन्वयः—महता महेन प्राप्ते प्रमोदनिवहे पूर्वदेवैर्नृपतिभिः सह विषयतः विमुखः स देवः दीक्षाम् धर्तुम् स्वामी स्वम् अद्भुतरसाद् वनम् आससाद ३६॥

व्याख्या—पूर्वदेवैः पूर्वोक्तैरिन्द्रादिदेवैः अथवा पूर्वाश्च ते देवाश्च तैः पूर्वदेवैः प्रधानदेवैः अथवा पूर्वम् शरीरधारणात् प्रथमम् देवैः देवभूतैः इदानीं प्रभुसेवार्थं नृपतितां गतैः अथ च सामन्तराजभिः सह सार्धम् महता लोकातिशयेन महेन उत्सवेन प्रमोदनिवहे आनन्दसंभारे प्राप्ते अधिगते सतीत्यर्थः स प्रभुः जिनेश्वरः देवः विषयतः सांसारिकविषयकामिनीकाञ्चनादितः विमुखः पराङ्मुखः स्वामी सर्वशक्तिमान् स्वम् स्वयमेव क्षणात् तत्क्षणमेव दीक्षाम् प्रव्रज्यां धर्तुम् ग्रहीतुम् अद्भुतरसात् विलक्षणशान्तिरसात् वनम् सिद्धार्थनामोद्यानम् आससाद प्राप गतवानित्यर्थः ॥

श्रीपार्श्वनाथपक्षे—आश्रमपदनामानम्वनम् अन्यत्पूर्ववत् ।

श्रीनेमिनाथ-शान्तिनाथ-वर्द्धमानपक्षे—सहस्राम्रवणनामानम्वनमन्यत् समानम् ॥

श्रीरामचन्द्रपक्षे—देवः स्वामीत्यादिशब्दैर्दशरथो ग्राह्यः स च पूर्वदेवैर्दीप्यमाननृपतिभिः सह भूयसा परिवारेण दीक्षान्धर्तुं महामुनेः सत्यधृतेः सकाशात् वनमाससाद प्राप ॥

कृष्णपक्षे-पूर्वदेवैः ज्येष्ठभ्रातृभिः नृपतिभिः सामन्तराजैः सह प्रमोदनिवहे अमन्दानन्दे प्राप्ते अधिगते मति विषयतोऽविमुखः विषयासक्तचित्तः सांसारिकविषयवासनाधिकृतमनाः महता विपुलेन महेन उत्सवेन स कृष्णः देवः द्योतनात्मा दीक्षाम् विवाहविधिन्धर्तुं निर्वर्तितुम् "वीवाहदीक्षात्रिरवत्तयद्गुरुरितिरघुकाव्ये" विवाहविधेरपि दीक्षाशब्दवाच्यत्वमुक्तमन्यैः स्वामी नृपः अद्भुतरसात् अत्युत्कण्ठातः वनम् आलयम् आवासम् आससाद प्राप अरण्ये जले निवासे आलये च वनमिति शब्दस्तोममहानिधिः ॥ ३६ ॥

निष्कोपयामिकविधिं दधताऽत्र राज्ञा,
सांवत्सरात्सरदानकृता यथार्हम् ।
यागाभियोगकलया मलयानुलिप्ता-
लंकारितेन वनपावनता वितेने ॥ ३७ ॥

अन्वयः—अत्र निष्कोपयामिकविधिन्दधता मलयानुलिप्ताऽलंकारितेन राज्ञा यथार्हं सांवत्सरात्सरदानकृता योगाभियोगकलया वनपावनता वितेने ॥ ३७ ॥

व्याख्या—अत्र भुवने निष्कोपयामिकविधिन्दधता निर्गताः कोपात् इति निष्कोपाः शान्तक्रोधा ये यामिका यामे यामे भवा यामिकाः द्वारपालास्तेषाम् विधिर्विधानन्दधता आश्रयता अर्थात् अवारितद्वारतां कुर्वता यथायोग्यम् रूपानुरूपं सांवत्सरात्सरदानकृता

सम्वत्सरे भवम् साम्वत्सरम् तस्य अवसरः समयः तत्र यद्दानम् तत् करोतीति साम्वत्सरावसरदानकृता मलयानुलिप्तालंकारितेन मलयानुलिप्तेन मलयचन्दनानुलेपेन तात्स्थ्यात्ताच्छब्दमित्यनुसृत्य अलंकारितः कृतालंकारस्तेन राज्ञा राजमानेन योगाभियोगकलया योगस्य ये केचन जिघृक्षवस्ते समायान्त्विति रूपस्य योऽभियोगः ख्यापनं तस्य कलया विधानेन वनपावनता वनस्यारण्यस्य पावनता पूतता महत्त्वमित्यर्थः वितेने विस्तारयामास ॥

अन्येषामपि चतुर्णामर्हतां समानमेतत् ॥

श्रीरामपक्षे—निष्कोपयामिकविधिम् निष्क्रोधद्वारपालक्रियाम् दधता धारयता राज्ञा भरतेन अत्र अयोध्यायाम् साम्वत्सरावसरदानकृता सम्वत्सरे भवः साम्वत्सरः चतुर्दशवर्षव्यापकः योऽवसरः समयस्तस्मिन् यत् दानम् पालनम् "दानम्मदजले च्छेदे पालने चेति शब्दस्तोममहानिधिः" तत् करोतीति तेन यथार्हम् यथायोग्यम् क्रममनुसृत्येत्यर्थः योगाभियोगकलया योगस्य कवचादिधारणस्य अथ वा कर्मकौशलस्य योऽभियोगः उद्योगः तस्य कलया तदाश्रयेण अथवा योगः पराराजकृतधर्षणस्तस्य अभियोगः विज्ञानम् तम् कलयति जानातीति कला तया तथोक्तया मलयानुलिप्तालंकारितेन मलयचन्दनानुलेपनकृतालंकारेण वनपावनता वनति हिनस्ति जनानितिवनः तम् पायतिशोषयतीति "पैल्युः" वनपावनस्तस्यभावस्तत्ता वितेने अथ च वनस्य नगरस्य पावनता पवित्रता वितेने विस्तारयामास ॥

कृष्णपक्षे—साम्वत्सरावसरदानकृता श्रीनेमिनाथस्य यत्साम्वत्सरावसरदानम् तत् कारयति सम्पादयतीति अन्तर्भावितण्यर्थः तेन अथवा सम्वसन्ति ऋतवो यत्र तत् सम्वत्सरम् उपवनम् रैवतकवनम् तस्य अवसरःअवकाशः तत्र दानकृता रक्षणकृता वृन्दावनावकाशपालनकृता वा वनस्य समुद्रजलस्य पावनता पवित्रता अथवा स्वालयस्य

द्वारकापुरः पावनता पवित्रता नितेने विस्तारयामास अन्यद्विशेषणं रामपक्षवद्योज्यम् श्लेषः ॥ ३८ ॥

रेजे रजंश्च विषये ननु राजराजां,
लोकान्तकान्तवसतिप्रतिपन्नदेवैः ।
विज्ञापितः स्वसमयं चिकुरार्थराग-
मुत्पाट्य तुष्टसुमनाः सवनानुकूल्ये ॥३८॥

अन्वय —ननु राजराजां विषये रजन् लोकान्तकान्तवसतिप्रतिपन्नदेवैः स्वसमयं विज्ञापितः चिकुरार्थरागमुत्पाट्य तुष्टसुमनाः स वनानुकूल्ये रेजे ॥३८॥

व्याख्या—ननु इति कोमलालापे राजराजां विषये राजसु नृप समूहेषु राजते शोभते इति राजराट् तेषां विषये मध्ये तत्सधे रजन् विलसन् स जिनेन्द्रः लोकान्तकान्तवसतिप्रतिपन्नदेवैः ब्रह्मसदननिवासिभिर्देवैः स्वसमयं दीक्षाग्रहणकालम् विज्ञापितः निवेदितः स्मारित इति यावत् चिकुरार्थरागम् चिकुरे कचे अर्थे सम्पत्तौ यो रागः ममत्वबुद्धिः प्रीतिरिति यावत् तमुत्पाट्य उन्मूल्य निरस्य तुष्टसुमना तुष्टम् हृष्टम् सुष्ठु मनो हृदयं यस्य स वनानुकूल्ये वने न निर्जनतया आनुकूल्ये तपो योग्ये रेजे रेमे विललास ॥ अथवा स वनस्य आभ्यन्तरमलक्षालनरूपध्येयस्नानस्य आनुकूल्ये सौलभ्ये रेजे ॥ पश्चार्हत्पक्षमाधारणमेतदिति ॥

कृष्णपक्षे—राजसु राजन्ते इति राजराजस्तेषां विषये समुदाये रजन् शोभमानः लोकान्तकान्तवसतिप्रतिपन्नदेवैः लोकान्तं लोकेषु अन्तः मनोहरः "अन्तो मनोहरेऽभ्यासे इति शब्दस्तोममहानिधिः" कान्तः कमनीयः तत्र वसतिर्निर्गमः प्रतिपन्नः स्वीकृतः यो देवः दीप्तिमान् वैः अतिमुक्तनाममुनिभिः स्वसमयम् स्वस्य कंसस्य समयम् जीवनदिनम् "यत्निमिचोऽयमुत्मनस्तद्गर्भः सप्तमो हन्ता पतिपित्रो-

स्त्वदीययोरिति ” देवकीविवाहोत्सवे विज्ञापिनः कृतनिवेदनः कंसः तां कचे गृहीत्वा हन्तुमुद्यतः मा एनां हंसि अस्मास्तनयं त्वां समर्पयिष्यामीति चिकुरार्थरागम् कचग्रहणप्रपञ्चम् अथवा चकयन्ते प्रतिहन्यन्ते इति चिकुरा "औणादिक उरः प्रत्ययः" प्रतिहननानि तदर्थं यो रागोऽभिनिवेशः तमुत्पाद्य निरस्य स कंसः वनानुकूल्ये आलयस्य आनुकूल्ये सौलभ्ये रेजे शुशुभे ॥

रामपक्षे— राजराजां विषये सूर्यवंशे रजन् शोभमानः लोकान्तकान्तवसतिप्रतिपन्नदेवैः लोकान्ते वने या कान्तवसतिः मनोहरनिवासस्तत्प्रतिपन्ना तत्र गता ये देवा दीप्यमानास्तैः विज्ञापितः निवेदितः सन् चिकुरार्थरागम् संग्रामरागम् स्वममयम् स्वनिश्चयम् उत्पाद्य दूरीकृत्य सन्धिम्विधायेत्यर्थः तुष्टसुमनाः प्रसन्नचित्तः स रामः वनानुकूल्ये रेजे रमतेस्म ॥

कदाचिद्वने पर्यटन् रामो निर्जनकमपिप्रदेशम्विलोक्य यावच्चिन्तयति तावत् कोऽपि श्रावकः सिंहोदरवज्रकर्णयोर्वृत्तान्तं व्यजिज्ञपत् तयोश्चसन्धिम्विधाय तत्र वने रेजे इति रामायणे पञ्चमसर्गे आदितः ७६ सर्ग यावद्वर्णनमनुसन्धेयम् ॥ ३८ ॥

जातेर्महाव्रतमधत्त जिनेषु मुख्य-
स्तस्मात्परेऽहनि स-शान्ति-समुद्रभूर्वा ।
श्रीपार्श्व एव परमोऽचरमस्तु मार्गे,
रामेऽक्रमेण ककुभामनुभावनीये ॥३९॥

अन्वयः—जिनेषु मुख्यः स शान्तिः समुद्रभूः अचरमः परमः जातेर्महाव्रतम् अधत्त तस्माद् परेऽहनि श्रीपार्श्व एव ककुभामनुभावनीये रामे क्रमेण मार्गे महाव्रतम् अधत्त ॥ ३९ ॥

व्याख्या–जिनेषु अवधिज्ञानवत्सु मुख्यः प्रथमः श्रेष्ठः आदीश्वरः

ऋषभदेवः अव्रतम् तुर्यगुणस्थानकम् अधत्त अथ च जातेः जन्मनः परे उत्कृष्टे अहनि दिवसे चैत्रकृष्णनवम्यां महाव्रतम् चारित्र्यलक्षणम् अधत्त धृतः स कथंभूतः शान्तिसमुद्रभूः शान्तेरुपशमस्य यः समुद्रः आकरस्तस्य भूः उत्पत्तिस्थानम् परमः श्रेष्ठः अचरमः चरमो न भवतीति तथा रामे मनोहरे मार्गे पथि ककुभां दिशामनुभावनीये प्रकाशकारके श्रीपार्श्वे एव श्रियाः मोक्षलक्ष्म्याः पार्श्वे सन्निधौ आमन्मुक्तिलक्ष्म्या एव क्रमेण रीतिमनुसृ-येत्यर्थः ॥

श्रीशान्तिनाथपक्षे—श्रीशान्तिः शान्तिनाथः जातेर्जन्मनः परे द्वितीये अहनि दिवसे ज्येष्ठकृष्णत्रयोदश्यां महाव्रतम् संयमं अधत्त अन्यद्विशेषणम्पूर्ववदवसेयम् ॥

श्रीनेमिनाथपक्षे—शान्तिसमुद्रभूः शान्तेः समुद्र इव समुद्रः समुद्रविजयः तस्मात् भूः उत्पत्तिर्यस्य स नेमिनाथः जातेः जन्मनः परे द्वितीयेऽहनि दिवसे श्रावणशुक्लषष्ठयां महाव्रतम् अधत्त ॥

श्रीपार्श्वनाथपक्षे—श्रीपार्श्वः पार्श्वनाथः जातेर्जन्मदिनात् परे द्वितीयेऽहनि पौषकृष्णैकादश्यां महाव्रतमधत्त ॥

श्रीमहावीरपक्षे चरमः अन्तिमः श्रीवर्धमानस्वामी जातेः परे भिन्ने दिवसे मार्गकृष्णैकादश्यां महाव्रतम् अधत्त अग्रहीत् ॥

रामकृष्णपक्षे—स मुख्यः प्रथमः श्रेष्ठः शान्तिसमुद्रभूः शान्तेरुपशमस्य समुद्रः तस्य भूरुत्पत्तिस्थानम् अथवा शान्तिसमुद्रः दशरथो वसुदेवश्च तस्मात् भवतीति शान्तिसमुद्रभूः परमः उत्कृष्टः चरमो न भवतीति अचरमः सर्वतोऽधिकः परे उत्कृष्टे रामे मोक्षसाधनभूते क्रमेण क्रमतः ककुभान्दिशामनुभावनीये सर्वप्रकाशकारके अहनि न कदाचित् जहाति संमार्गमिति अहनि निश्चले मार्गे जिनशासने विषये जिनेषु अर्हत्सु महाव्रतम् महानियमम् अधत्त अग्रहीत् ॥३९॥

देवर्षभे-जनि-पवित्रदिने-व्रतश्री-
शान्तेः पुनर्बहुलशुक्लपरद्युसत्त्वे ।
अत्रोदिताम्बुधिशिवाङ्गभवे रसाढ्ये,
सम्यक्तिथौ हरिवरस्य तथैव पार्श्वे ॥ ४० ॥

अन्वय —देवर्षभे जनिपवित्रदिने व्रतश्री शान्ते पुन बहुलशुक्लपर-द्युसत्त्वे उदिताम्बुधिशिवाङ्गभवे रसाढ्ये तथैव पार्श्वे हरिवरस्य सम्यक्तिथौ ॥४०॥

व्याख्या—देवर्षभे देवश्चासौ ऋषभश्चेतिदेवर्षभस्तस्मिन् ऋषभ-स्वामिनि जनि पवित्रदिने जनेः जन्मतः पवित्रम् पूतम् तस्मिन् दिने चैत्रकृष्णनवम्या व्रतश्रीः व्रतलक्ष्मीः अजनि अभूत् शान्तेः शान्ति-नाथस्य भगवतः बहुलशुक्लपरद्युसत्वे बहुम् लाति गृह्णातीति बहुलो ज्येष्ठः सर्वतः श्रेष्ठत्वात् तस्य शुक्लपरद्युः शुक्लपक्षपरदिनम् तस्य सत्वे विद्यमाने ज्येष्ठकृष्णत्रयोदशीदिने इत्यर्थः उदिताम्बुधिशिवाङ्गभवे उदितः प्राप्तोदयः य अम्बुधिः समुद्रः समुद्रविजयः स च शिवा च तत्पत्नी ते उदिताम्बुधिशिवे तयोः अङ्गभवस्तनयस्तस्मिन् नेमिनाथे रसाढ्ये षष्ठीतिथौ तथैव पार्श्वे पार्श्वनाथे हरिवरस्य विष्णोः सम्यक्तिथौ एकादश्याम् हरिवरस्य महावीरस्वामिनः सिंहाङ्कितत्वेन तथा निर्देशः तथैव एकादश्यामित्यर्थः व्रतश्रीरजनीति पूर्वेण सम्बन्धः ॥ ४० ॥

मार्गेऽसिते सदशमे हि सुपर्वसङ्गे,
तीर्थेश्वरोऽप्यचरमः परमो निवृत्तः ।
आलोचनाद्विकचचारुमुखारविन्द-
स्तुर्यावबोधनधनी स मनीषिपूज्यः ॥ ४१ ॥

अन्वय —परम —अचरमतीर्थेश्वर आलोचनाद्विकचचारुमुखारविन्द तुर्या-वबोधनधनी मनीषिपूज्य स मार्गेऽसिते सदशमे सुपर्वसङ्गे निवृत्त ॥ ४१ ॥

व्याख्या—अचरमः चरमोऽन्तिमो न भवतीति अचरमः आदीश्वरनाथः परमः श्रेष्ठः तीर्थेश्वरः तीर्थकृत् आलोचनात्=ज्ञानतः पर्यालोचनात् विचारात् विकचचारुमुखारविन्दः विकचं विकसितं सुप्रसन्नमित्यर्थः चारु मनोज्ञं मुखारविन्दम् आननपंकजम् यस्य स तथोक्तः तुर्यावबोधनधनी तुर्यावबोधनम् तुर्यज्ञानमेव धनम् संपद्यस्य स मनीषिपूज्यः विद्वज्जनाराधनीयः स सदशमे सादयति आसादयति शमः शान्तिर्यत्र तस्मिन् सुपर्वसङ्घे देवसङ्घे सिते निर्मले मार्गे साधुमार्गेऽध्वनि निवृत्तः जातः यतित्वमाससादेत्यर्थः ॥

श्रीमहावीरपक्षे—असिते कृष्णे सदशमे दशमेन सहितः सदशमः पूर्वोपस्थितत्वादेकादशो जातस्तत्र मार्गे मार्गशीर्षे मार्गशीर्षैकादश्यां चरमोऽन्तिमस्तीर्थेश्वरः वर्धमानप्रभुः निवृत्तः सांसारिकविषयवासनात इति शेषः ॥

अन्यतीर्थकृताम्पक्षेऽप्येवमेवावसेयम् ॥

रामकृष्णपक्षे—तीर्थेश्वरः "सत्यं तीर्थं क्षमातीर्थं तीर्थमिन्द्रियनिग्रहः सर्वभूतदयातीर्थं सर्वत्रार्जवमेवचे"ति निरुक्ततीर्थानामीश्वरः अधिष्ठाता अन्यत्र तीर्थस्य उपकूपजलाशयस्य द्वारकाया ईश्वरः प्रभुः चरमो जघन्यो न भवतीति अचरम उत्कृष्टः निवृत्तः राज्यादिति शेषः अन्यत्र नितरां म्रियते इति निवृत्तः सामन्तराजपरिवृत्तः आलोचनात् प्रेमतो दर्शनात् विकचचारुमुखारविन्दः प्रसन्नमनोहराननः आलोचनादित्यनेन प्रेमावलोकनत इत्यर्थः शत्रूणां तु अकालकालकरालवदनएवासीदिति ध्वनिः तुर्यावबोधनधनी तुर्यम् तूरम् तेन यदवबोधनम्प्रातर्जागरणन्तेन धनी भाग्यवान् "वाद्यं वादित्रमातोद्यं तुर्यं तूरं स रध्वज इति हैमः" मनीषिपूज्यः मनीषिभिर्विद्वद्भिः पूज्य आदरणीयः स रामः कृष्णश्च असिते निर्मले सदशमे प्राप्तशमे सुपर्वसङ्घे सुपर्वणां

देवानां संगः संगतिर्यत्र तस्मिन् मार्गे स्याद्वादमार्गे निवृत्तः निश्चयेन प्रतिपन्नः ॥ ४१ ॥

अर्थाः सप्त समर्थिताः कणभुजामाभासनेशासने,
सप्त श्रीजिनसन्मते ह्यभिमते प्रामाणिकानामपि।
राज्याङ्गानि तथैव दैवरसतः स्युर्भूभुजः सिद्धये,
काव्येऽस्मिन्नत एव सप्त कथिता अर्थाः समर्थाः श्रियै॥४२॥

इति श्रीसप्तसंधाने महाकाव्ये महोपाध्याय-श्रीमेघविजय-गणिविरचिते पूज्यराज्यवर्णनो नाम-चतुर्थः सर्गः ॥४॥

अन्वयः—कणभुजामाभासने शासने सप्त अर्थाः समर्थिताः प्रामाणिकानामपि ह्यभिमते श्रीजिनसन्मते सप्त तथैव दैवरसतः भूभुजः सिद्धये राज्याङ्गानि स्युः अत एव अस्मिन् काव्ये श्रियै समर्थाः सप्त अर्थाः कथिताः ॥४२॥

व्याख्या—कणभुजां कणादानान्नैयायिकसमानतंत्राणाम्वैशेषिकानाम् आभासने प्रकाशमाने शासने तन्त्रे सप्त अर्थाः द्रव्यगुणादयः समर्थिताः प्रमाणेन सिद्धान्तिताः सन्तीति शेषः तथा प्रामाणिकानां प्रमाणतो वस्तुपरिच्छेदकानामभिमते इष्टे श्रीजिनसन्मते श्रीजिनानां सन्मते शुद्धमते जैनदर्शने सप्त जीवादयोऽर्थाः पदार्थाः समर्थिताः प्ररूपिताः तथैव भूभुजः नृपस्य सिद्धये विजयाय दैवरसतः सप्तसंख्यातः राज्यांगानि स्वाम्यमात्यसुहृत्कोशादीनि समर्थितानि सन्निवेशितानि अत एव शास्त्रे व्यवहारे च निर्णीतत्वादेव अस्मिन् काव्ये सप्तसंधानाभिधाने श्रियै मङ्गलाय समर्थाः अभिधावृत्तिबोध्याः सप्त अर्थाः सप्तसंख्यकाः अभिधेयाः समर्थिता वाच्यत्वेन स्थापिताः ४२॥

इति शास्त्रविशारद-कविरत्नभट्टारकाचार्य-श्रीविजयामृतसूरीश्वर-प्रणीतायां
सप्तसंधान-महाकाव्य-सरणी-टीकायां चतुर्थः सर्गः ॥

पञ्चमः सर्गः

अथ कुवलयोद्भासी राशीभवद्गुणसेवधिः,
परिणतहृदारामः कामं जगाम न वामधीः ।
जिनपवृषभः स्वैरं वैरं त्यजन्नपरे परे,
सितरुचिरिवोदीचीमञ्चन् दिशं हरिणाश्रिताम्॥१॥

अन्वयः—अथ कुवलयोद्भासी राशीभवद्गुणसेवधिः परिणतहृदारामः न वामधीः अपरे परे वैरं त्यजन् जिनपवृषभः उदीचीमञ्चन् सितरुचिरिव स्वैरं कामम् हरिणाश्रिताम् दिशम् जगाम ॥ १ ॥

व्याख्या—अथ अथानन्तरम् दीक्षाग्रहणानन्तरमित्यर्थः कुवलयोद्भासी कुवलये भूमण्डले भासते दीप्यतीत्येवं शीलः पृथ्वीमण्डलमण्डनः राशीभवद्गुणसेवधिः राशीभवन्तः सर्वतो मिलन्तः ये गुणाः दयादाक्षिण्यादयस्तेषां सेवधिः निधिः खानिरितियावत् परिणतहृदारामः परिणतम् कषायादिरहितन्निर्मलमित्यर्थः यत् हृद् हृदयम् तत्र आरमते विहरतीति तथा अथवा परिणतः पुष्टः हृदारामो हृदुपवनं यस्य स तथा स्वात्मसंतुष्टः दयादिगुणयुक्तः इतियावत् न वामधीः नारुन्तुदबुद्धिः ऋजुप्रकृतिः अपरे स्वीये परे अन्ये च वैरम्विद्वेषं त्यजन् परिहरन् स्वीयपारक्यबुद्धिरहितः उदीचीमुत्तरान्दिशम् अञ्चन् गच्छन् सितरुचिरिव शीतांशुरिव चन्द्र इवेत्यर्थः जिनपवृषभः जिनश्रेष्ठः स्वैरं यथेष्टम् कामं यथास्यात्तथा हरिणाश्रितान्दिशम् ऐन्द्रीम् दिशम् प्राचीम् जगाम विचचार अथवा असितरुचिः तीक्ष्णकरः सूर्य इव उदीचिम् दिशम् उत्तरायनम् अञ्चन् गच्छन् स इवेति। सितरुचिरिव असितरुचिरिवेतिचोपमालंकारेण निरतिशयमृदुत्वं धर्ममाङ्गलिकप्रयोजकत्वं च वस्तु व्यज्यते इत्यलंकारेण वस्तुध्वनिः ॥

रामपक्षे=रामः परिणतहृदा परिपक्वबुद्ध्या वामधीः कुटिलबुद्धिर्न जिनपवृषभः जयति संसारमिति जिनः मुनिः तं पातीति जिनपः स श्रेष्ठः आराध्यतया मुख्यो यस्य स अथवा जयति शत्रुमिति जिनः नृपः तम्पाति रक्षति इति जिनपस्तेषु वृषभः श्रेष्ठः हरिणाश्रिताम् सुग्रीवाधिष्ठिताम् दिशम् काशम् जगाम निर्ययौ अन्यत् पूर्ववद्योज्यम् ॥

कृष्णपक्षे—कुवलयोद्भासी कुवलये भूवलये उद्भासी शोभमानः अथवा कुवलयेन हस्तस्थितकमललाञ्छनेन उद्भासते इति तथा अथवा कुवलयमिवउद्भासी कुवलयोद्भासी अथवा कुवलये कुवलयनामा कंसस्य गजरूपोऽसुरः तत्र तद्विसनेन उद्भासते इति कुवलयोद्भासी शशीभवद्गुणसेवधिः सर्वगुणनिधिः परिणतहृदारामः आसमन्तात् सर्वभावेन रामे बलरामे परिणतम् प्रह्वम् हृद् हृदयं यस्य स वामधीर्विप्रतिपन्नबुद्धिर्न अन्यद्विशेषणम्पूर्ववद्योज्यम् ॥ सर्गोऽयंहरिणीच्छन्दो बद्धोभाति न संशयः । तल्लक्षणन्तु रसयुगहयैन्सौम्रौस्लौ गो यदा- हरिणी तदा ॥ १ ॥

क्वचन वचनैर्गोपालीनां तपोधनिनां क्वचिद्,
द्रुवनरचनैर्यक्षादीनां पुरः सुरशासनैः ।
कृतवसुधनोत्पातैर्वा-तैः पराक्रमसंगमैः,
स हि दृढमनाः सेहे देहे प्रतिग्रहनिग्रहम् ॥२॥

अन्वय.—क्वचन गोपालीनाम् वचनैः तपोधनिनाम् यक्षादीनाम् पुरः सुरशासनैः द्रुवनरचनैः पराक्रमसंगमैः कृतवसुधनोत्पातैर्वातैः स हि दृढमनाः देहे प्रतिग्रहनिग्रहम् सेहे ॥ २ ॥

व्याख्या—क्वचन कुत्रापि गोपालीनां गोपश्रेणीनाम् गोपाङ्ग-नानां वा वचनैः यदृच्छाप्रयोजितैर्ग्राम्यभाषाभिः अथवा गांपृथ्वीं पान्तीति गोपाः नृपास्तेषां आलीनां श्रेणीनां वचनैः स्तुतिप्रयोजकैः

क्वचित् क्वचन तपोधनिनाम् तपस्विजनानाम् पुरः अग्रे सुरशासनैः महेन्द्रादिदेवनियोगैर्यक्षादीनां विद्याधरादीनां द्रुवनरचनैः द्रूणां वृक्षाणाम् वनानामिश्रिपिनानां वा रचनैः विधानैः पराक्रमसंगमैः पराक्रमितैः बलवद्भिः कृतवसुधनोत्पातैः कृतोविहितः वसुधनानाम् रत्नबहुलानाम् उत्पातः वृष्टिः यैस्तैः अथवा वसुधनानां वह्निसमूहानामुत्पातः उपद्रवः तैः वातैः पवनैः यत् प्रतिग्रहं प्रत्युपकारं माहात्म्यमित्यर्थः अथवा प्रतिग्रहमुपद्रवम् निग्रहम् भर्त्सनादिकम् तत् दृढमनाः अविचलितबुद्धिः देहे निजकाये स जिनेश्वरः हीति निश्चये सेहे सोढवान् कथञ्चिदपि स्वनिश्चयान्नविचचालेति भावः ॥

अथ च पराक्रमः संगतैः पराक्रमस्य निजदृढसंयमस्य संगमैः संबन्धैः करणभूतैरित्यर्थः हीति निश्चये दृढमनाः सहनशीलप्रकृतिः स सेहे ततो विकृतिं न ययौ ॥

रामपक्षे—क्वचन कुत्रापि गोपालीनां राजश्रेणीनां गोपश्रेणीनां तपोधनिनां मुनीनाम् वचनैः कथनैः शिक्षाप्रयोजकैः सुरशासनैः गोकर्णाभिधयक्षवचनैः यक्षादीनाम् इभकर्णाभिधानादीनां द्रुवनरचनैः वृक्षाटव्यादिविधानैः पुरः नगरस्य च रचनैरित्यर्थः कृतवसुधनोत्पातैः कृतो विहितः वसुधनानां द्रव्यबहुलानां उत्पातः उत्पत्तिर्यैस्तैः वा इति पादपूरणे तैर्यक्षैः पराक्रमसंगतैर्बलवद्भिःसहेति शेषः देहे शरीरे प्रतिग्रहनिग्रहम् प्रतिग्रहस्य अदृष्टार्थदत्तद्रव्यस्य निग्रहं निवर्त्तनं सेहे प्रतिपालयामास तदानीं राज्यच्युतत्वात् प्रतिग्रहस्यापाततः स्वीकारः सम्भवेत्तत्क्षत्रियाणाङ्गर्ह्यमितियक्षकृतसुवर्णादिवृष्टया तन्निग्रहो जात इति भावः ॥ २ ॥

कृष्णपक्षे—क्वचन गोपालीनां गोपराजीनां तपोधनिनां चारणर्षीणां वचनैः कथनैः पुरः प्रथमम् सुराणां रामकृष्णाभिरक्षकदेवानां शासनैर्निर्देशैर्यक्षादीनां द्रुवनरचनैः पर्वतवनादिविधानैः कृतवसु-

धनोत्पातैः अनेकविधसमृद्धिसम्पादनैः पराक्रमसंगतैः बलवद्भिः सहेतिशेषः देहे शरीरे प्रतिग्रहनिग्रहम् जरासन्धादिकृतोपद्रवादिकं दृढमनाः स्थिरचित्तः कालम्प्रतीक्षन् सेहे सोढवान् ॥ २ ॥

अनुपदमगात् सीतात्युष्णातपादिपराभवो,
द्रुपदतनुजाबाधा-व्याधात् प्रभोर्विषमाश्रयम् ।
व्यहरदवनीपीठे देवः सहान्वयिलक्ष्मणो,
विशिखशिरसा धर्माधानाद्वराशयनाग्रही ॥ ३ ॥

अन्वयः—सीतात्युष्णातपादिपराभवः प्रभोः अनुपदमगात् द्रुपदतनुजाबाधा विषमाश्रयं व्याधात् विशिखशिरसा धर्माधानात् वराशयनाग्रही सहान्वयिलक्ष्मणः देवः अवनीपीठे व्यवहरत् ॥ ३ ॥

व्याख्या—सीतात्युष्णातपादिपराभवः शीतश्च अत्युष्णश्च आतपश्च इति सीतात्युष्णातपानि शसयोः साम्यात् तानि आदिर्यस्मिन् स चासौ पराभवश्चेतितथोक्तः हिमग्रीष्मरौद्रादिपराभवः प्रभोः सर्वशक्तिमतो जिनेन्द्रस्य प्रतिपदम् अनुपदम् पदेपदे इत्यर्थः अगात् अभूत् द्रुपदतनुजाबाधा-द्रूणां पदानां तनूनां द्वन्द्वः तेभ्यो जायते इति जा तस्याः द्वन्द्वान्ते श्रूयमाणत्वात् प्रत्येकतः संबन्धः तथा च द्रुजा पदजा तनुजाया बाधा गमनबाधा विहारप्रतिबन्धिका सा प्रभोः जिनेन्द्रस्य विषमाश्रयं वैरूप्यं अव्याधात् न अकृत अथवा तनुजा तनुजः कामः सैव तनुजा कामजनिता बाधा अव्याधात् न अकार्षीत्, किञ्च विशिखशिरसा शिखारहितशिरसा उपलक्षितः सहान्वयिलक्ष्मणः सहान्वयी सहचरो लक्ष्मणः लक्ष्मीवान् नृपो यस्य स अथवा लक्ष्म चिह्नं साधुवेषो यस्य स लक्ष्मणः सहान्वयी यस्येत्यर्थः धर्माधानात् धर्मस्य सुकृतेः आधानात् स्थापनात् आकलनाद्वा रात्रिन्दिवं धर्मचिन्तनात् हेतोः वराशयनाग्रही वरः श्रेष्ठः अनन्यसाधारणः

आशयोऽभिप्रायो यस्य स वराशयः स चासौ नाग्रही चेति आग्रही वृथाविवादनिरतो न भवतीति वराशयनाग्रही अथवा आसमन्तात् गृह्णातीति आग्रही शयनस्य स्वापस्य आग्रही शयनाग्रही स न भवतीति अशयनाग्रही वरश्चासौ अशयनाग्रही वराशयनाग्रही देवः दीप्यमानः अवनीपीठे पृथ्वीतले व्यहरत् व्यचरत् ॥

रामपक्षे-सीता जनकनन्दिनी अत्युष्णातपादिपराभवम् अनुपदम् अगात् अलभत पराभव इति विभक्तिविपरिणामेनान्वयः सहान्वयि-लक्ष्मणः सहान्वयी सहचरो लक्ष्मणो यस्य सः अवनीपीठे व्यहरत् वने व्यचरत् अन्यद्विशेषणं पूर्ववत् विशिखशिरसेत्यस्य विशिखः बाणः शिरः प्रधानं यस्य तेन उपलक्षितः "शिरः मस्तके प्रधाने सेनाग्रे चेती शब्दस्तोममहानिधिः" ॥

कृष्णपक्षे—सीतात्युष्णातपादिपराभवः सीतायाः मदिरायाः य अत्युष्णातपादिः अतितीक्ष्णत्वादिः तेन पराभवः अनुपदम् प्रतिस्थानम् अगात् बलरामस्य तत् प्रियत्वात् द्रुपदतनुजाबाधा द्रुपदतनुजायाः द्रौपद्याः बाधा दुःशासनकर्तृकवस्त्राकर्षणादिः प्रभोः कृष्णस्य विप-माश्रयम् वैरुच्यम् व्याधात् अकरोत् सहान्वयिलक्ष्मणः सहान्वयी मह सम्बन्धः लक्ष्म शंखचक्रादिर्यस्य स अन्यत् पूर्ववदवसेयम् ॥३॥

सरसमितिभाग् गुप्त्याधायी द्विषां विजयं ययौ,
वलिकरिवरस्तादृग्वेलावलादवलाश्रयः ।
अधिगतमहायोगात् संयोगवान् विरतिस्त्रिया, (श्रिया)
विहितमनसा मुक्तेर्मुक्ते शिवे ह्यशिवद्रुहा ॥४॥

अन्वय —शरसमितिभाग् गुप्त्याधायी वलिकरिवर. तादृग् वेलाबलात् अबलाश्रय अधिगतमहायोगात् विरतिश्रिया संयोगवान् मुक्ते शिवे अशिवद्रुहा-विहितमनसा मुक्तेर्द्विषा विजय ययौ ॥ ४ ॥

व्याख्या—शरसमिति भाग् ईर्यासमित्यादिपञ्चमनितिधारकः गुप्त्याधायी गुप्तित्रयधारणशीलः बलिकरिवरः बलिषु आत्मबलवत्सु करिवरो महागज इवेतिलुप्तोपमा संयमिषु मातङ्गः तादृग् तथाभूतः वेलाबलात् वेलायाः सीमाया भूमेः मर्यादाया इत्यर्थः साधुजनोचितक्षमतायाः आश्रयादितिभावः अबलाश्रयः अबलम् असामर्थ्यं आश्रयति धारयतीति तथा सत्यपि त्रिजगद्विपरिवर्तनसामर्थ्ये क्षमित्वाद्योपयुञ्जत इतिभावः अधिगतमहायोगात् अधिगत आश्रितो यो महायोगश्चित्तवृत्तिनिरोधो येन तस्मात् विरतिश्रिया वैराग्यलक्ष्म्या संयोगवान् संयुक्तः विरक्त इत्यर्थं आमुक्तेः मुक्तिसाधनपर्य्यन्तम् अशिवद्रुहा शिवम् कल्याणम् मोक्षमितियावत् नद्रोग्धि न हिनस्तीति अशिवद्रुहा विहितमनसा सावधानचेतसा मुक्ते मोक्षरूपे शिवे आत्यन्तिककल्याणे विषये द्विषाम्प्रतिबन्धकानां बाह्याभ्यन्तरशत्रूणां विजयं ययौ प्राप ॥ विरोधाभासः ॥

रामकृष्णपक्षे—शरसमितिभाग् शराणाम्बाणानां समितिम् संहतिम् भजतीति तथा बाणपुञ्जधारकः गुप्त्याधायी गुप्तिर्गोपनम् रक्षणम् ताम् आदधातीति तच्छीलः युद्धमार्गविशेषनिष्णातः बलिकरिवरः बलिषु बलशालिषु विपक्षेषु करिवर इव मत्तमातङ्ग इव अबलाश्रयः अबलां स्त्रियम् सीताम् सत्यभामाम्वा आश्रयति सहचरितया संगृह्णातीति तथोक्तः “ स्त्रीयोषिदबलेत्यमरः ” वेलाबलात् वेलायाः मर्यादायाः बलात् आश्रयणात् अन्यत्र समुद्रोपकूलस्य आश्रयणात् रामस्य मर्यादापुरुषत्वात् अधिगतमहायोगात् अधिगतः आसादितो यो महान् अयोगः राज्यनिवृत्तिर्येन तस्मात् अथवा अधिगतः महायोगः कवच संबन्धो येन तस्मात् अथवा अधिगतः महायोगः प्रभूतराजसम्मेलो येन तस्मात् विरतिश्रिया वनवासितया वैराग्यलक्ष्म्याः अथवा

विशेषेण रतिरिव श्रीश्शोभा यस्याः तया सीतया सत्यभामया च संयोगवान् सयुक्तः आमुक्तेः मुक्तिमभिव्याप्य, मुक्ते मोक्षंगते शिवे कल्याणजनके देवे जिनेन्द्रे इत्यर्थः विहितमनसा सावधानचेतसा अशिवद्रुहा शत्रुदमनेन द्विषा शत्रूणाविजय जयम् विशेषतः ययौ लेभे ॥ ४ ॥

उपहृतिपदप्रासं नागादिमं वसु चाश्रयत्,
तदुपरिगतः कायोत्सर्गे जिगाय पुराद्विपम् ।
स्वयमपि मनःशुद्ध्या बुद्ध्या जुगोप स गाः समा,
रहसि सुदृशा क्रीडन्नानागमाश्रमबद्धधीः ॥ ५ ॥

अन्वय —स उपहृतिपदप्रासम् इमम् नागात् वसु चाश्रयत् तदुपरिगत कायोत्सर्गे पुराद्विपम् जिगाय अनागमाश्रमबद्धधीन रहसि सुदृशा क्रीडन् स्वयमपि मन शुद्ध्या बुद्ध्या समा गा जुगोप ॥ ५ ॥

व्याख्या—स जिनेश्वरः भगवान् उपहृतिपदप्रासम् उपहारीकृतम् साधुदशायामप्युपढौकितम् इमम् नागादिमम् हस्त्यश्वादिकम् नागात् नस्वीचकार अथवा उपहृतिपदप्राप्तम् त्यक्तपदप्राप्तम् त्यक्तम् इमम् गजादिकम् बहुतरदुःखेऽपि न अगात् नालभत वसु तेजः अलौकिकमित्यर्थः आश्रयत् अङ्गीकृतम् तदुपरिगतः तत्पश्चात् कायोत्सर्गे तदभिधानप्रणिधानक्रियाया पुराद्विपम् पूर्वशत्रुम् कामक्रोधादिकम् जिगाय जितवान् नानागमाश्रमबद्धधीः आगमश्च आश्रमश्च इति आगमाश्रमे न आगमाश्रमे अनागमाश्रमे न अनागमाश्रमे बद्धधीर्यस्य स तथोक्तः आगमाश्रमश्रद्धालुः शास्त्राश्रमबद्धमनाः रहसि सुदृशा एकान्ते निर्जने इत्यर्थः सुदृशा सम्यक्दृष्ट्या तात्त्विकदृष्ट्या क्रीडन् आत्मानन्दमनुभवन् स्वयमपि मनःशुद्ध्या निसर्गतो निर्मलया बुद्ध्या विवेकेन समाः कृत्स्नाः गाः वाणीः जुगोप ररक्ष प्रयोजनातिरिक्तावाचन्नोगाच्च वाचंयमो बभूवेत्यर्थः ॥ ५ ॥

श्रीमहावीरजिनेश्वरपक्षे—उपहृतिपदप्राप्तम् उपह्रियते प्राणादि-र्यस्मिन् इति उपहृतिः बाहुलकात् क्तिः तत्पदमाप्तम् प्राणहारकपद-प्राप्तम् नागादिमम् अतिशयजीवारुन्तुदम् कमपिनागम् सर्पम् प्रति-बोधायेति शेषः आश्रयत् तदुपकण्ठं ययौ तदुपरिगतः तत्समीपमुप-गतः कायोत्सर्गे कायोत्सर्गमुद्रामालम्ब्य पुराद्विपम् पूर्वं सर्वशत्रुम् तं जिगाय तं प्रतिबोध्य सर्वेद्विट्त्वं निवर्त्तयामास अन्यत्पूर्ववदवसेयम् ॥

रामकृष्णपक्षे—उपहृतिपदप्राप्तम् उपहारीभूतम् प्रत्यन्तनृपतिभि-रुपढौकितम् नागादिमम् हस्त्यश्वादिकं वसु धनम् आश्रयत् आत्मसा-दकरोत् तदुपरि तत्पश्चात् गतः द्विषाम् रिपूणाम् कायोत्सर्गे शरीर त्यागे सति जिगाय विजितवान् मरणान्तानि वैराणीत्यनुसृत्येतिभावः रहसि विजने सुदृशा शोभननयनया सह क्रीडन् रममाणः नानाग-माश्रमबद्धधीः नाना अगमे अनेकपर्वते आश्रमे गार्हस्थ्यादौ च बद्धधीः जाताभिनिवेशः, रामपक्षे नानाअगमे पर्वते—वृक्षे—वृक्षतले वा " सामीप्ये सप्तमी " आश्रमे कृतगृहबुद्धिः स्वयमपिमनःशुद्धया बुद्धया निर्मलान्तःकरणेन स रामः कृष्णश्च गाः पृथ्वीः समा अनेकवर्ष यावत् जुगोप ररक्ष पालितवान् ॥ ५ ॥

व्यसनरहितः कन्दुगायं वशीकृतवान् वशी,
विषयमपि न प्रौढाद् यत्नात् स्वनिश्रितमादधे ।
बहुपरिचितं शास्त्रं मात्राधिकं भुवि चालयँ-
ल्लयमुपगता देवाः सेवारसेऽस्य विमृश्य तत् ॥६॥

अन्वयः—वशी व्यसनरहितः कन्दुगायम् वशीकृतवान् प्रौढायत्नात् स्वनिश्रितम् विषयमपि नादधे बहुपरिचितम् शास्त्रम् मात्राधिकम् भुवि चाल-यन् तत् विमृश्य देवाः अस्य सेवारसे लयमुपगताः ॥ ६ ॥

व्याख्या—वशी जितेन्द्रियः विषयपराङ्मुखः कन्दुगाद्यम् तदाख्यशत्रुविशेषम् व्यसनरहितः सांसारिकसावद्यकर्मजदोषरहितः वशीकृतवान् विजितवान् अथवा कन्दुगाद्यम् गेन्दादिकं क्रीडाविशेषं वशीकृतवान् त्यक्तवान् प्रौढाद्यत्नात् बहुतरमनः समाधानात् स्वनिश्चितम् स्वस्य साधोः निश्चितं निरवद्यभिक्षान्नादिकमपि विषयम् न आदधे जग्राह यावता कथमपि प्राणयात्रानिर्वहणं तावदेव जग्राहेति भावः बहुपरिचितम् नित्यमभ्यसितम् शास्त्रम् मात्राधिकम् अतिशयम् इयत्तारहितं यथा स्यात्तथा भुवि–भुवने चालयन् प्रथयन् तत् विमृश्य लोकोत्तरमहिमास्येति विचार्य अस्य जिनेन्द्रस्य सेवारसे परिचर्यायां रसिका इति शेषः देवा लयमुपगता स्वात्मानं प्रच्छाद्य वृक्षादिरूपेण शिष्यादिरूपेण च तिरोभूय सिषेविरे इति भावः ॥

रामकृष्णपक्षे–वशी जितेन्द्रियः स्वतंत्रः व्यसनरहितः अव्यसनासक्तः कन्दुगाद्यम् तदाख्यमान्तरशत्रुविशेषम् वशीकृतवान् स्वायत्तं विदधे स्वनिश्चितम् स्वनिर्धारितम् विषयमपि कार्यमपि पराष्ट्रादिकमपि न प्रौढाद्यत्नात् अनायासेनैव आदधे स्वानुकूलं विदधे बहुपरिचितम् शास्त्रम् शासनम् स्वकीयमित्यर्थः मात्राधिकम् सर्वतः स्वपरमण्डले च भुवि चालयन् प्रसारयन् तत् विमृश्य विचार्य देवा द्युतिमन्तो नृपाः अस्य रामस्य कृष्णस्य च सेवारसे सेवायाम् लयम् तदधीनत्वम् उपगताः प्राप्नुवन्तो वशवर्तिनो बभूवुरितिभावः ॥६॥

सहचरतया ये संजातास्तदा च–रणादिषु,
निरशनतया तेऽपि प्रापुर्भुवं हरशेखराम् ।
सुरसमुदितां सिन्धोः पारे भवस्य परम्परा-
क्रमणवशतो-लङ्कारागं प्रतीत्य महापदम् ॥७॥

अन्वयः—तदा च रणादिषु सहचरतया ये संजातास्तेऽपि सिन्धोः पारे सुरसमुदिताम् भवस्य परम्पराक्रमणवशतः महापदं लंकारागं प्रतीत्य निरशनतया हरशेखराम् भुवम् प्रापुः ॥ ७ ॥

व्याख्या—तदा च रणादिषु तस्य जिनेश्वरस्यादिनाथस्य आचरणादिषु तदीयालौकिकचमत्कारकारिव्यापारेषु सहचरतया अनुगामितया ये संजाताः संगता अनुसृताः तेऽपि निरशनतया उपवासतया प्रभुस्तु निरवद्यभिक्षाऽलाभेन कतिचिद्दिनानि उपवसतिस्म एते पुनस्तथाविधसामर्थ्यविरहेण तथाकर्तुमशक्नुवन्तस्तंपरिजहुरितिकथासन्दर्भः। सुरसमुदितां देवताकृताधिष्ठानाम् हरशेखराम् भुवम् गंगातटम् प्रापुः जग्मुः किंकृत्य सिन्धोः संसारसागरस्य पारे तटे भवस्य जन्मनः परम्पराक्रमणवशतः अनेकजन्मकृतपुण्यपुञ्जप्रभावतः समासादिते महापदम् आत्यन्तिकसुखजनकम् पुनरावृत्तिरहितम् कारागम् आसमन्ताद्रागः आरागः कस्य आत्मनः स्वस्वरूपस्य ब्रह्मणः मोक्षस्येति यावत् रागमनुरागम् अलमतिशयं प्रतीत्य परित्यज्य विहाय, संसारसागरपारगताऽपि किञ्चित क्लेशमसहमाना पुनरागता इति तात्पर्यम् ॥

अन्येषामर्हतांपक्षे—तदा व्रतग्रहणसमये सहचरतया अनुचरतया ये नृपतयःतदाचरणादिषु तेषां जिनेन्द्राणाम् आचरणादिषु व्रतादिग्रहणेषु संजाताः संगताः व्रतं जुगृहुः तेऽपि निरसनतया सांसारिकभोगादिपरित्यागतया "शसयोरैक्यात्" हरशेखराम् हरत्यघमितिहरः पवित्रम् तस्य शेखराम् मूर्धन्यामतिशयपवित्राम् भुवम् प्रापुः लेभिरे किंकृत्य सुरमुदितां सुष्ठुराति ददातीति सुरः देवः तेन समुदिताम् सहिताम् सप्रमत्राम् भुवमित्यर्थः भवस्य संसारसमुद्रस्य पारे परम्पराक्रमणवशतः पुनर्पुनर्गमनागमनतः महापदम् महत्संकष्टजनकम् कारागम् कस्यशरीरस्य के शरीरे वा रागमनुरागम् प्रीतिमित्यर्थः प्रतीत्य परित्यज्य ॥

रामपक्षे--सहचरतया अनुचरतया तदा वनगमनकाले चरणादिषु रामगमनादिषु ये संजाताः अनुसृतास्तेऽपि रामेण परित्यक्ततया निरसनतया हरशेखरां भुवम् अतिशयपवित्रामयोध्यापुरम् प्रापुर्गच्छन्तिस्म किं कृत्वा सुरसमुदिताम् सुरन्ति ऐश्वर्यदीप्तिम प्राप्नुवन्तीति सुराः धनिनस्तैः समुदिताम् संमिलितामयोध्याम् सिन्धोः समुद्रस्य पारे तटे भवस्य भवत्यस्मिन्निति भवः पृथ्वीतलस्तस्य परम्पराक्रमणवशतः सततगमनवशतः लङ्कारागम् लंकायां तन्नामपुर्यां रागोऽनुरागो यस्य तम् महापदम् भयङ्करम् रावणमित्यर्थः प्रतीत्य बुध्वा तत्र वने लंकापतिर्वसतीति भयमुत्प्रेक्ष्य निवृत्ता इति भावः ॥

तदा चरणादिषु तस्य श्रीमदादिनाथस्य आचरणादिषु दीक्षाग्रहणादिव्यापारेषु सहचरतया अनुगामितया ये संजाताः संगता, तदानीं दीक्षा जगृहुः कच्छमहाकच्छादयः तेऽपि निरशनतया निरवद्यभिक्षालाभात् उपवासतया, भवस्य संसारस्य सिन्धो सागरस्य संसारसागरस्येत्यर्थः पारे प्रान्ते सन्निधौ परंपराक्रमणवशतः सततगमनागमनतः कारागं इन्द्रियसुख सांसारिकवैषयिकसुखं अलम् अतिशयम् महापदम् महद्दुःखजनक प्रतीत्य बुद्ध्वा सुरसमुदितां देवाधिष्ठिताम् हरशेखरां भुवं गंगाप्रदेशं प्रापुः ते जटिलास्तापसा भूत्वा तत्र तस्थुरित्यर्थः। पारं प्रान्ते परतटे पारीपूरपरागयोरित्यनेकार्थसंग्रहः॥

कृष्णपक्षे--तदा युद्धादिसमये सहचरतया सहायकतया तदा चरणादिषु तस्य जरासंधस्य आचरणादिषु युद्धादिषु संजाताः संगतास्तेपि निरसनतया कृष्णकृतोपजापतया भेदप्रयोगेण सुरसमुदिताम् महर्द्धिजनसंकुलाम् देवाधिष्ठितां वा सिन्धोः समुद्रस्य पारे स्थितामिति शेषः हरशेखरामतिपवित्रां द्वारकां प्रापुः किंकृत्य भवस्य मंगलस्य परम्पराक्रमणवशतः उत्तरोत्तरसंपादनवशतः कृष्णाश्रयेण दिनानुदिनं

अशितममुना यावद् वर्षं न तादृशयोगतो,
बहुमहिमवान् शान्तिप्रेम्णा स्थिरो हिमवानिव ॥
अभजत परच्छायामायासतः श्रमवान् नवा,
वपुषि समतां बिभ्राणः स्वैः स वै-श्रमणोचिताम्॥१०॥

अन्वयः—अमुना तादृशयोगतः यावद्वर्षं न अशितम् शान्तिप्रेम्णा बहुमहिमवान् हिमवान् इव स्थिरः आयासतः श्रमवान् न वा स वै स्वैः वपुषि श्रमणोचिताम् समताम् बिभ्राणः परच्छायां अभजत ॥ १० ॥

व्याख्या—अमुना जिनेश्वरेण न तादृशयोगतः तादृशयोगस्य निरवद्यभिक्षालाभजनकयोगस्य अभावात् यावद्वर्षं वर्षपर्यन्तं न अशितं न भुक्तं शान्तिप्रेम्णा शमाभिनिवेशेन बहुमहिमवान् महतो भावो महिमा बहु अतिशयं महिमा महत्त्वं यस्य स अतिशयगौरवान्वितः हिमवानिव हिमालय इव स्थिरः शान्तः यथा हिमवान् निश्चलस्तथायं शान्त्याश्रयनेन भूरिमहिमतया दुर्जनादिकृतोपजापेऽपि निराकुल इति तात्पर्यं आयासतः गमनागमनादिपरिश्रमतोऽपि श्रमवान् वा नैवश्रान्तः स वै प्रभुः स्वैः स्वत एव वपुषि शरीरे श्रमणोचितां यतिविहितां मुनिप्रचलितां समतां सामरस्यं बिभ्राणः धारयन् परच्छायामुत्कृष्टकान्तिं सर्वतोऽधिकां दीप्तिं अभजत आश्रयत लोकोत्तरकान्तिरभवत् ॥ १० ॥

रामकृष्णपक्षे—यावद्वर्षं जम्बूद्वीपांशमेदं यावत् भरतक्षेत्रखण्डत्रयमितियावत् अमुना रामेण कृष्णेन वा अशितं व्याप्तं अधिकृतस्वशासनं "अशेः आदिकर्मणि क्तः सेटकत्वं च" नवादृशयोगतः नवानां स्वशरणमुपगतानामासमन्तात् सर्वतोभावेन दृशयोगतो नेत्रपाततः. दयावलोकनतः बहुमहिमवान् अतिशयमहिमासम्पन्नः शान्तिप्रेम्णा शान्तिवात्सल्येन हिमवान् हिमालय इव स्थिरः अप्रकम्पः

आयामतः वनभ्रमणतः प्रजारक्षणतः श्रमवानपि नैव श्रान्तः स्वैः स्वत एव स्वप्रभावादेव वपुषि शरीरे समतां विश्राणः वैश्रमणोचितां कुबेरतुल्यां परच्छायामत्युत्कटकान्तिं अभजत समाश्रयत ॥ ११ ॥

पथि कथमपि श्रान्तः कान्तानुयायिविलम्बित-
स्तपसि रसिकस्तस्थौ मार्गेऽभयः स्वयमप्ययम् ।
वनचरधने दृष्टे दृष्टेर्दधौ न विपर्ययं,
मनसि समयस्यैवं न्याय्यं विचिन्त्य सपर्ययम्॥११॥

अन्वय:—पथि कथमपि श्रान्तः कान्तानुयायिविलम्बितः तपसि रसिक अयम् स्वयमपि मार्गे अभयस्तस्थौ मनसि समयस्यैवं सपर्ययं न्याय्यं विचिन्त्य वनचरधने दृष्टे दृष्टेः विपर्ययमदधौ ॥ ११ ॥

व्याख्या—पथि मार्गे कथमपि यथातथा श्रान्तः जातश्रमः कान्तानुयायिविलम्बितः कान्तो मनोरमो योऽनुयायी अनुसरणशीलस्तेन विलम्बितः आश्रितः कृतधर्मकथानकः तपसि तपश्चर्यायां रसिकः निरतः अयम् जिनेश्वरः स्वयम् आत्मनापि अभयः निर्भीकः मार्गे पथि तस्थौ स्थितः समयस्य कालस्य अवस्थायाः वा सपर्ययम् पर्ययो वैपरीत्यम् तेन सहितम् सपर्ययम् सवैपरीत्यं न्याय्यं नीतिं मनसि हृदये विचिन्त्य विचार्य निश्चित्य वनचरधने वनचराणाम् विपिनवासिनां धने रिक्थे पर्वतीयमण्यादौ निर्मायिको योषिति च दृष्टे नयनगोचरे सत्यपि दृष्टेर्नेत्रस्य विपर्ययम् विपर्यासम् तद्विषयाभिलाषं न दधौ न धृतवान् दृष्टेऽपि विषये विषयाभिलाषो न जात इति भावः ॥

विकारहेतौ सति विक्रियन्ते येषां न चेतांसि त एव धीरा इत्यपि सङ्गच्छते ॥ ११ ॥

रामकृष्णपक्षे–पथि मार्गे वनमार्गे अन्यत्र रैवतकादौ विहारमार्गे कथमपि श्रान्तः जातायासः कान्तानुयायिविलम्बितः कान्ता स्वप्रिया

मङ्गमवश्यम्भावीति निश्चित्य अलमतिशयं के कृष्णे भगवति ऐश्वर्य-शालिनि आरागं समन्ततोऽनुरागं प्रतीत्य ज्ञात्वा विचार्येत्यर्थः श्लेषः॥

गिरिश इव योऽशेताद्रीणां वनेऽनववनेऽप्ययं,
तमपि विदधद् दृश्यं वश्यं गिरीशमिवापरम्।
दिनकर इवोद्दामं धाम प्रपद्य भुजाबले,
परिजनगणव्यावृत्त्याऽग्रे चचाल विशालधीः॥८॥

अन्वयः—योऽयम् अनवनेऽपि अद्रीणां वने गिरिश इव अशेत तमपि अपरं गिरीशमिव वश्यं दृश्यम् विदधत् भुजाबले दिनकर इव उद्दामम् धाम प्रपद्य परिजनगणव्यावृत्त्या विशालधीः अग्रे चचाल ॥ ८ ॥

व्याख्या—योऽयं जिनेश्वरः अनवने अपि अवनम् रक्षणम् नभवतीति अनवनम् अरक्षणम् तस्मिन् रक्षारहितस्थाने निर्जने इत्यर्थः अद्रीणां पर्वतानां वनेऽरण्ये गिरिश इव गिरौ शेते इति गिरिशः वनीयो भिल्लादिः स इव अथवा गिरिम् श्यति उपभोगेन तनू करोतीति गिरिशः "लोमादित्वाच्छः" शिवः स इव शेते स्वपिति यः सर्वदा गिरिशो भवति स कदाचिदपि दृश्यो न भवति तमपि गिरिशमपि स्वमितिशेषः अपरम् द्वितीयम् गिरीशम् शिवम् इव अथवा गिरीणामीशः हिमालयस्तमिव दृश्यम् दर्शनयोग्यम् वश्यम् प्रसा-दसुमुखम् सेवायोग्यम् विदधत् कुर्वन् उद्दामधाम उद्रिक्तं तेजः भुजा-बले बाहौ दिनकर इव प्रपद्य प्राप्य परिजनगणव्यावृत्त्या परिचार-कजनपरित्यागेन विशालधीः महानुभावः अग्रे ततोप्यग्रतः चचाल वव्राज॥८॥ सर्वपक्षसामान्यमेतद्व्याख्यानम्॥

कमपि मनसा नाधान्नाथः प्रियं यदिवाऽप्रियं,
कलिमलमपि त्यक्तुं व्यक्तः क्वचित्प्रययो रहः॥

क्वचनविजने तस्थौ स्वस्थो ररक्ष न रक्षकं,
न खलु परतो रक्षापेक्षा प्रभौ हरिणाश्रिते ॥९॥

अन्वय.—नाथः प्रियं यदि वाऽप्रिय किमपि मनसा नाधात् कलिमलमपि व्यक्तः त्यक्तु क्वचिद्रह॰ प्रययौ स्वस्थः क्वचनविजने तस्थौ रक्षक न ररक्ष हरिणाश्रिते प्रभौ परतो रक्षापेक्षा न खलु ॥ ९ ॥

व्याख्या—नाथः प्रभुः मनसा बुद्ध्या कमपि प्रियं शरीरसुखकरं दुःखजनकं वा नाधात् नाविन्दत प्रियं प्राप्य सुखाभिमानी अप्रियं प्राप्य दुःखाभिमानी न बभूवेति तत्त्वं व्यक्तः स्फुटं कलिमलमपि कलेः कर्मणः मलमपि परिणाममपि "प्रभौ पापस्य दुर्लभत्वात् कलिशब्देन कर्म एव लक्ष्यते" त्यक्तुन्निराकर्तुम् क्वचित् कुत्रापि रहः विजनमेकान्तस्थानम् प्रययौ जगाम स्वस्थः निराकुलः निर्भीकः सन् क्वचनविजने निर्मनुष्यके स्थले तस्थौ स्थितवान् रक्षकम् शरीरपरिपालकम् कमपि न ररक्ष नापेक्षितवान् तथाहि प्रभौ हरिणाश्रिते प्रभौ जिनेश्वरे हरिणाश्रिते संयमाश्रिते सति अथवा इन्द्राश्रिते सति इन्द्राधिष्ठिते सति दिशाश्रिते विहरमाणे सतीति वा परतः अन्यतः स्वभिन्नात् रक्षापेक्षा पालनापेक्षा न खलु नैवभवतीत्यर्थः स्ववीर्यगुप्ता एते भवन्तीति भावः अर्थान्तरन्यासालंकारः ॥

रामपक्षे कृष्णे च—कमपि प्रियम् मित्रं यदिवा अथवा अप्रियं शत्रुम् मनसा चित्तेन न अधात् न धृतवान् कलिमलमपि विरोधपरिणामं युद्धमपि त्यक्तु परित्यक्तुं क्वचित् कुत्रापि व्यक्तः स्पष्टः सन् रहः एकान्तं प्रययौ विजने निर्जने स्वस्थः अकुतश्चनभयः तस्थौ रक्षकं न ररक्ष नापेक्षितवान् हरिणाश्रिते लक्ष्मणाधिष्ठिते समुद्राश्रिते च प्रभौ प्रभावशालिनि रामे कृष्णे च परतः अन्यतः सैन्यादिभिन्नपुरुषात् रक्षापेक्षा पालनाभियोगः न नैव भवतीति ॥ ९ ॥

सीता सत्या वा सैव अनुयायिनी यस्य तेन विलम्बितः कृतविलम्बः तदनुरोधेन कृतविश्रामः तपसि तपोविषये तपोवने वा रसिकः कृतादरः अन्यत्र तपसि फाल्गुनेऽर्जुने वा रसिकः माघमासे वा रसिकः शृङ्गारिजनप्रियत्वात् वनचरघने दृष्टे इत्यादि पूर्ववद्योज्यम् ॥ ११ ॥

कतिपयदिनैरीशः श्रेयानकारयदञ्जसा,
विनयनयभाग् भिक्षोरिक्षोः प्रियां रसपारणाम् ।
सपदि सदने वृष्टिश्चासीत् तदाशु हिरण्मयी,
त्रिदशललनाश्चक्रुर्नव्यं रसादवशाः शुचि ॥ १२ ॥

अन्वय —कतिपयदिनै अञ्जसा विनयनयभाग् ईश श्रेयान् भिक्षो प्रिया इक्षो रसपारणाम् अकारयत् तदा आशु सदने सपदि हिरण्मयी वृष्टि आसीत् अवशा त्रिदशल्लना शुचि नृत्यम् चक्रु ॥ १२ ॥

व्याख्या—कतिपयदिनैः कतिचिद्दिवसै विनयनयभाक् विनयम् विनीतताम् नयम् नीतिश्च भजति सेवते इति तथा सारल्यनयनिपुणः ईशो युवराजः श्रेयान् श्रेयांसकुमारः अञ्जसा झटिति भिक्षोः भिक्षाचरणशीलस्य जिनेश्वरस्य आदीश्वरस्य प्रियां मनोज्ञां पवित्रां निरवद्यामिति यावत् इक्षोः रसालस्य रसालइक्षुरित्यमरः रसपारणाम् रसप्रचुरां पारणां व्रतान्तभोजनम् अकारयत् तदा प्रभुपारणानन्तरम् सपदि सहसा सदने गृहे हिरण्मयी सुवर्णमयी वृष्टिर्वर्षणम् आसीत् अभूत् आशु शीघ्रम् त्रिदशललनाः देवाङ्गना अप्सरस इत्यर्थः रसात् प्रभुभक्तिरसतः अनुरागाद्वा अवशा भक्तिपरतंत्राः शुचि शोभनम् नृत्यम् चक्रुर्विदधुः॥

श्रीशान्तिनाथ पार्श्वनाथ नेमिनाथ वर्धमानस्वामिनां पक्षे—कतिपयदिनैः कतिचिद्व्यतीतैर्दिवसैः ईशः श्रेष्ठः नृपो वा श्रेयान् अतिशयेन प्रशस्यः शुभंयुः विनयनयभाग् दाक्षिण्यनययुक्तः इक्षोः इः कामस्तं क्षौति नाशयतीक्षुः तस्य जितमदनस्य भिक्षोः भिक्षाचारिणो जिने·

न्द्रस्य प्रियाम् रुचिरामनवद्याम् रसपारणाम् मधुररसप्रधानां पारणां व्रतान्तभोजनम् अकारयत् व्यधापयत् तथा च श्रीशान्तिनाथस्य सुमित्रनृपमन्दिरे परमान्नेन पारणा जाता श्रीपार्श्वनाथस्य कोपकनामनगरे धन्यकगृहे पायसेन पारणा जाता नेमिनाथस्य वरदद्विजगृहे परमान्नेन पारणा जाता महावीरस्वामिनः बहुलब्राह्मणगृहे परमान्नेन पारणा जाता सपदि सदने इत्यादि पूर्ववत् ॥

रामपक्षे-ईशः राजा श्रेयान् कल्याणवान् विनयनयभाग् इक्षोः जितकामस्य भिक्षोः चारणर्षेः त्रिगुप्तस्य सुगुप्तस्य च कतिपयदिनैर्द्विमासानन्तरम् अञ्जसा झटिति प्रिया निरवद्याम् रसपारणाम् अकारयत् रामः शेषं पूर्ववत् ॥

कृष्णपक्षे-कतिपयदिनैः कतिपयदिनपर्यन्तं इक्षोः कामजयिनः भिक्षोर्जिनेन्द्रस्य प्रीयाम् प्रीतिमम्पादिकाम् रसपारणाम् अष्टाह्निकृतपर्युपासनाम् द्वारकानिर्माणाय अकारयत् व्यचरयत सपदि हिरण्मयीत्यादिपूर्ववदवसेयम् ॥ १२ ॥

प्रकृतिसुभगः श्रेयोलिप्सुः सुमित्रपवित्रवाक्,
शुचिरसमयं मत्वाऽदत्त प्रभोर्बहुरोचितः ।
सपदि मुदितो धन्यो जन्योज्झितः प्रतिलम्भना-
दरिपरिभवाद् दूरे दूरे यशः स्वमकारयत् ॥१३॥

अन्वय—प्रकृतिसुभग श्रेयोलिप्सुः सुमित्रपवित्रवाक् प्रभोर्बहुरोचित शुचि असमयं मत्वा अदत्त मुदित धन्य जन्योज्झित प्रतिलम्भनात् अरिपरिभवात् दूरे दूरे स्व यशः अकारयत् ॥ १३ ॥

व्याख्या—प्रकृतिसुभगः स्वभावसुन्दरः श्रेयोलिप्सुः कल्याणाभिलाषुकः सुमित्रपवित्रवाक् सुमित्रेण शोभनसुहृदा तत्संगेनेत्यर्थः

प्रभावेन पवित्रवाक् सत्यवचनः प्रभोर्जिनेन्द्रस्य बहुरोचितः अत्यन्त भक्तः "चतुर्थी चाशिष्यायुष्येति विकल्पेन षष्ठी शुचिः पूतः असमयम् भिक्षायाः कालातिक्रमो जात इति अनवसरं मत्वा बुध्वा निवृत्तेषु भिक्षाचरेषु सत्सु अदत्त प्रभवे भिक्षामिति शेषः सपदि तत्क्षणे मुदितः जिनेश्वररूपसत्पात्रदानादतिशयहृष्टमनाः धन्यः अत एव कृतकृत्यः जन्योज्झितः कलिरहितः प्रतिलम्भनात् भिक्षादानात् कथंभूतात् अरिपरिभवात् अरिम् बाह्याभ्यन्तरशत्रुं परिभवति पराकरोतीति तस्मात् दूरे दूरे त्रिलोक्यां स्वम् यशः स्वकीयकीर्तिम् अकारयत् प्राख्यापयत्॥

रामकृष्णपक्षे—प्रभोः स्वामिनः साधोः प्रतिलम्भनात् भिक्षाप्रदानात् अन्यत् यथापूर्वम् ॥ १३ ॥

वनमुपगतं सेवे देवं नमिर्विनमिर्नृपः,
श्रुतिदृगपि च प्रादात्ताभ्यां बलं बहुविद्यया ।
रजतशिखरिस्थाने राज्यश्रिया परिवारितौ,
सुखमनुपमं भुञ्जाते तौ खगामिषु कामितम्॥१४॥

अन्वयः—नमिर्विनमिर्नृपः वनमुपगतम् देवम् सेवे श्रुतिदृगपि च बहुविद्यया बलम् ताभ्याम् प्रादात् रजतशिखरिस्थाने राज्यश्रिया परिवारितौ तौ खगामिषु कामितम् अनुपमम् सुखम् भुञ्जाते ॥ १४ ॥

व्याख्या—नमिः विनमिः नृपः तदभिधानकौ आदीश्वरभगवतः कुलजौ वनमुपगतम् वनस्थम् दीक्षितमित्यर्थः देवम् आदीश्वरम् सेवे भेजे ततः श्रुतिदृगपि धरणेन्द्राभिधो नागोऽपि तयो राज्याभिलाषं ज्ञात्वेतिशेषः ताभ्याम् नृपाभ्याम् बहुविद्यया अनेकविधतिरस्करिण्यादिविद्यया सहेतिशेषः बलम् बहुविधसामर्थ्यम् प्रादात् अर्पयत् रजतशिखरिस्थाने वैताढ्यपर्वते राज्यश्रिया राज्यलक्ष्म्या परिवारितौ

युक्तौ तौ नमिविनमिभूपौ खगामिषु आकाशचारिषु अनुपमम् निरुपमम् कामितम् यथेष्टम् सुखम् भोगम् भुञ्जाते भोगम् कुरुतः अचिन्त्यप्रभावो जिनेश्वरो येन ताभ्याममर्त्यदुर्लभसुखं सद्यः दीयतेस्मेति भावः ॥ १४ ॥

अन्यपक्षे—नमते इति नमिः विशेषेण नमते इति विनमिः तौ वनमुपगतम् वनस्थम् देवम् प्रभुं सेवे श्रुतिः शास्त्रम् दृग् नेत्रं च यस्य स श्रुतिदृग् अथवा श्रूयते प्रख्यायते इति श्रुतिः श्रुतिः प्रख्याता अनन्यसाधारण्येन विख्याता दृग् नेत्रं यस्य स श्रुतिदृग् महस्राक्षः ताभ्याम् सेवकाभ्याम् बहुविधया अनेकविधविद्यया बलम् निरुपम सामर्थ्यम् प्रभुसेवासुखरुः मन्नित्यर्थः प्रादात् ददातिस्म शेषं पूर्ववत्॥

कृष्णपक्षे—नमिविनमिनृपः वनमुपगतं समुद्रजलान्तर्द्वारिकास्थं देवम् दीप्तिमन्तम् कृष्णम् सेवे श्रुतिदृग् शास्त्रदृष्टा कृष्णस्ताभ्यां सेवकाभ्याम् बहुविधया समम् विदन्त्यनया वैषयिकसुखमिति विद्या कन्या तया सह बलम् सैन्यम् प्रादात् प्रायच्छत् तौ रजतशिखरिस्थाने रैवतकपर्वते राज्यश्रिया राज्यश्रीरिवश्रीः शोभा सम्पत् तया परिवारितौ युक्तौ खगामिषु आकाशगामिषु कामितमनोभिलषितमनुपममनन्यसाधारणम् सुखमानन्दमुपभुञ्जाते अनुभवतः ॥ १४ ॥ रामपक्षे द्वितीयपक्षवज्ज्ञेयम् ।

मगधविषये राजा गेहे रुपा प्रतिमाधवं,
विशदसिचयं भूपायोगाच्चचाल बलं नमत् ।
समरसहितं पत्त्यादेशादतिक्रमकृत् समं,
बहलनिनदैस्तूर्यैरापूरयद् वलयं दिशाम् ॥ १५ ॥

अन्वय—मगधविषये राजा गेहे रुपा प्रतिमाधवं भूपायोगात् विशदसिचयं नमत् बलम् चचाल समरसहितम् पत्त्यादेशादतिक्रमकृत् समम् बहल-

निनदैः तूरैः दिशाम् वलयम् आपूरयत् ॥ १५ ॥

व्याख्या–मगधविषये मगधदेशे राजां गेहे राजन्ते इति राजस्तेषां गेहे साम्प्रतं राजगृहनाम्नाप्रसिद्धे प्रतिमाधवं प्रतिवासुदेवम् जरासन्धमुद्दिश्यरुषा विशदसिचयम् विशदाः देदीप्यमानाः असिचयाः खड्गसमूहा यस्मिन् तत्तथोक्तम् अथवा विशदास्तीक्ष्णाः असिचयाः यत्र तद् अथवा विशन्तः प्रविशन्तः संकुलीभवन्तः असिचयाः खड्गाः यत्र तद् भूपायोगात् सांग्रामिककवचाद्याभरणसंबन्धात् नमत् आक्रम्यत् समरसहितम् समरे संग्रामे सहितम् हितविधायकम् नतूपजापादिना पराङ्मुखम् अथवा समरसे शान्तियुक्तेहितम् अबाधकम् पत्त्यादेशात् पत्तेः सेनापतिविशेषस्य " एकेभैकरथा त्र्यश्वा पत्तिः पञ्चपदातिका इत्यमरः " इत्युक्तलक्षणस्य आदेशात् आज्ञातः अतिक्रमकृत् " अहितान् प्रत्यभीतस्य रणे यानमतिक्रम इत्यमरः " इति निर्भीकतया शत्रुसन्मुखगमनकारकम् बलम् सैन्यम् बहलनिनदैः भूरिनिनदमानैः तूरैस्तूर्यैः दिशाम् वलयम् दिग्विभागम् आपूरयत् व्यापयत् चचाल ययौ ॥

अर्हतांपक्षे—विभक्तिविपरिणामेन सर्वत्रान्वयः तथा च मगधविषये मगधदेशे राजां गेहे राजगृहादिपुण्यस्थाने अरुषा अक्रोधेन प्रतिमाधवः प्रतिमा कायोत्सर्ग धन्वति प्राप्नोतीति प्रतिमाधवः कायोत्सर्गकृत् धन्वतेः पचादित्वादच् विशदसिचय विशेषेण सद्गतः त्यक्तशातनो लोकपीडा येन स विशद्, असिचयः सिचयो वस्त्रं नास्ति यस्य स तथोक्तः भूपाया अलंकारस्य अयोगात् असंबन्धाद्राहित्येन चालवलः चाले गमने तस्करादिभयबाधसंबाधितेऽपि अप्रतिहतगमनः नमन् नमन्ति जना यम् स अथवा नमन् सर्वत्र प्रह्वः निरहंकारः समरसहितः शमरसे शान्तरसे हितः युक्तः शान्तिरसयुक्तः अतिक्रमकृत्

अतिशयं क्रमं पादविक्षेपम् गमनम् करोतीति म पाति जगदिति पतिः सूर्यस्तस्यादेशात् दर्शनात सूर्यदर्शनान्तरम् समम् मुनिभिः सहितं बहलनिनदैः बहल यथास्यात्तथा निर्गतः नदः शब्दः येषु तैः शब्दरहितैः तूर्यगमनैः दिशावलयम दिग्विभागम् आपूरयत् पूरयतिस्म ॥

कदाचित् सुगुप्तनामाचारणर्षिर्जटायुपूर्वभववृत्तान्तं कथयन् पालकब्राह्मणकथा कथयति मगधेति । मगं पापं दधातीति मगधः तस्य विषयस्तस्मिन् राजा गेहे कुंभकारकटे नगरे माधवं प्रतिरुपा मायाः चरः भर्ता लक्ष्मीपतिः जितशत्रुनृपनन्दनस्कन्दककुमारस्तं प्रति रुपा क्रोधेन पूर्ववैर स्मरन् पालक. अनेकान्यस्त्राणि स्कन्दकाचार्यनिवास स्थाने रात्रौ भूमौ निचखान प्रातः नृपतिर्मुक्तविशेषणविशिष्टनमनाय तत्रानयत् नाम्नो माधुः कपटयुद्धाय समागत इति युद्धोद्योगमकारयदिति भावः ॥ १५ ॥

वलमविरलाश्वीयं स्वीयं विलोक्य पुरा जरा-
परिगतमहासन्धो गन्धोत्तमापरिणामतः ।
प्रतिहरिधिया तुष्टः स्पष्टं जगर्ज स गर्जवत्,
क्षणमपिकदा प्रेक्ष्ये कंसापराधिविनाशनम् ॥१६॥

अन्वय —पुरा जरापरिगतमहासन्ध गन्धोत्तमापरिणामत अविरलाश्वीय स्वीय बल विलोक्य प्रतिहरिधिया तुष्ट स गर्जवत् स्पष्ट जगर्ज क्षणमपि कदा कंसापराधिविनाशनम् प्रक्ष्ये ॥ १६ ॥

व्याख्या—पुरा जरापरिगतमहासंधः जरया तन्नामकोपमात्रा परिगतः प्राप्त महासन्धः महासंधट्टनः सम्मेलनो येन स जन्मकाले द्वेशकालेस्तस्तदोषमाता संघट्टयामासेतिसन्दर्भः जरासंधनामानृपः प्रतिहरिधिया कृष्णप्रतिस्पर्द्धितया अविरलाश्वीयं अविरलम् निरन्तरम् अश्वीयम् अश्वानांसमूहो यत्र तम् अश्वप्रधानकम् स्वीयम् नैजम्

बलम् सैन्यम् विलोक्य निरीक्ष्य गन्धोत्तमापरिणामतः गन्धोत्तमायाः मदिरायाः परिणामतः परिपाकतः सेवनतः तुष्टः प्रसन्नः सन् गर्जवत् मत्तमातङ्ग इव स्पष्टम् प्रकाशं यथास्यात्तथा जगर्ज ननर्द तथाहि क्षणमपि मुहूर्तमात्रमपि कंसापराधिविनाशनम् कंसम् अपराध्नोतीति कंसापराधी वासुदेवः तस्य विनाशनम् मरणम् कदा कस्मिन् समये प्रेक्ष्ये अवलोकयिष्ये इति दध्याविति शेषः ॥

अर्हतांपक्षे—स महाप्रभुर्जिनेश्वरः जरापरिगलमहासंधः आसर्वतः परिगता आपरिगता जरा जीर्णा आपरिगता आपरिणमिता महासन्धा महती प्रतिज्ञा संयमपालनरूपा यस्य स अवान्तरतत्पुरूषो बहुव्रीहिः दृढसंयमी अविरलाश्वीयम् अश्नुवते विषयमित्यश्वाः इन्द्रियाणि तेभ्यो हितम् रोधकमिति अश्वीयं स्वीयम् इन्द्रियदमनयोग्यं नैजंबलं सामर्थ्यं अविरलम् विलोक्य दृष्ट्वा गंधोत्तमापरिणामतः गंधोत्तमायाः पद्मिन्यादिकामिन्याः परिणामतः त्यागतः अथवा गंध एव उत्तमो यस्यां सा गन्धोत्तमा इन्द्रियविषया तस्याः परिणामतः वर्जनतः जितेन्द्रियत्वात्तद्विषयमपि परिजिहीते प्रतिहरिधिया शिवबुद्धया यथा ॥ स्मरहरस्तथाहमपीतिबुद्धया गर्जवत् गजवत् स्पष्टं प्रकाशं जगर्ज ननाद कंसापराधिविनाशनम् कामयते जयमितिकंसः कामः स एवापराधी दुर्जनस्तस्यविनाशनम् निराकरणम् क्षणमपि कदा प्रेक्ष्ये अवलोकयिष्ये इति दध्याविति शेषः ॥

रामपक्षे—कश्चिन्म्लेच्छसेनापतिस्सीतां जिहीर्षुः प्रतिरामं समागमदिति ॥ अविरलाश्वीयं अश्वबहुलं स्वीयं बलं विलोक्य गन्धोत्तमापरिणामतः मद्यविकारतः जरापरिगलमहासंधः दृढप्रतिज्ञः म्लेच्छसेनापतिः प्रतिहरिधिया प्रतिह्रियते इति प्रतिहरिः भावे प्रत्ययः तस्य धिया सीतामवश्यमेवप्रतिहरिष्यामीतिबुद्धयाहृष्टः सीतासौन्दर्यदर्शनेन तुष्टः स गर्जवत् मदोन्मत्तमातङ्ग इव जगर्ज रामवधाय स्पष्टं ननर्द

कथमित्याह कंमापराधिविनाशनम् कामयते कामिनमिनि कं सा कामिनी सीता तां पराप्नोति स्वीकरोतीति कंमापराधी तस्य विनाशनम् क्षणमपि कदा प्रेक्ष्ये द्रक्ष्ये, अत्रानुप्रासः विरोधाभासश्चालंकार:॥१६॥

मम समधिकं पापं भेत्तुं प्रवर्तनमर्हति,
नयनविपयीभूते तस्मिन् मनोरसमेष्यति।
इति मतिमता सेना तेनाहिता विनिशम्यतां,
क्रमिकचलनात् सैन्यं प्रापद्धरेश्च तटं गिरेः॥१७॥

(अन्वय.) पापं भेत्तुम् प्रवर्तनमर्हति नयनविपयीभूते तस्मिन् मम समधिकम् मनोरसमेष्यति इतिमतिमता तेन सेना आहिता ताम् विनिशम्य हरे. सैन्यम् क्रमिकचलनात् गिरेस्तटम् प्रापत् ॥ १७ ॥

व्याख्या—पापमस्यास्तीति पापः अपराधी वासुदेवस्तं समधिकं वर्धमानं अतएवात्याज्यम् भेत्तुं च्छेत्तुं प्रवर्त्तनम्प्रवृत्तिः अर्हति अवश्यकर्त्तव्यत्वेनावतरति अनुपेक्षणीयो भवतीत्यर्थः नयनविपयीभूते लोचनपथपथिकायमाने तस्मिन् अपराधिनि कृष्णे मम जरासंघस्य मनोरसम् मनसः रसम् शत्रुदर्शनजन्याह्लादविशेषं एष्यति भविष्यति अथवा मनः स्वान्तं कर्तृ रसम् रौद्ररसं एष्यति प्राप्स्यति इतिमतिमता एवं विचारयता तेन सेना पृतना आहिता सञ्चिता सम्मेलिता ताम् आहितसेनाम् सैन्यस्थितिम् विनिशम्य चारादिद्वाराऽवगत्य हरेः कृष्णस्य सैन्यम् क्रमिकचलनात् शनैः शनैर्गमनतः गिरेः पर्वतस्य तटम् सन्निधिम् प्रापत् अयासीत् ॥

अर्हतांपक्षे—मम समधिकं यत्किञ्चिद्वशिष्टम् पापं कर्म भेत्तुं क्षपयितुं प्रवर्त्तनं विचरणम् अर्हति अवश्यमेव कर्त्तव्यं भवति अथवा पापं पात्यतेऽस्मादिति पापम् दुरदृष्टम् तत् भेत्तुम् च्छेत्तुं अर्हति स्याद्वादमते प्रवर्त्तनम् गमनमनुसरणं योग्यमिति शेषः नयनविपयीभूते

नीयते क्षीयते इति नयनम् तस्य विषयीभूते क्षयत्वमुपगते तस्मिन् कर्मणि मनोरसम् मनोरथम् मोक्षम् एष्यति प्राप्स्यति इतिमतिमता एवं कृतविचारेण तेन जिनेन्द्रेण सेना सिनोति बध्नातीति सेना इन्द्रियसंयमना निग्रहणा आहिता संचिता कर्मक्षयायेन्द्रियरोधना कृतेति भावः तां सेनां संयमितां निशम्यालोच्य हरेः जिनेन्द्रस्य सैन्यम् सेनां समयतीति सैन्यं गमनम् इन्द्रियसंयमप्रगुणं विचरणम् क्रमिकचलनात् शनैः शनैर्विचरणात् अथवा हरेरिन्द्रिस्य सैन्यं प्रच्छन्नप्रयुक्तं जिनेन्द्राङ्गरक्षकम् अथ च जिनेन्द्रस्य सैन्यम् साधुपरिवारः गिरेः कस्यचित्पर्वतस्य तटम् समीपम् अगात् अव्राजीत् ॥

रामपक्षे—समधिकमतिशयबलवन्तं पापम् सीतापहारजन्य पापकारकं म्लेच्छसेनापतिं च्छेत्तुमुन्मूलयितुं मम प्रवर्त्तनम् प्रवृत्तिः अर्हति करणीयंभवति तस्मिन् शत्रौ नयनविषयी भूते दृष्टिपथावतीर्णे मनः रसं संग्रामरसं युद्धकौतुकम् एष्यति प्राप्स्यति इति मतिमता एवं विचारयता तेन रामेण सेना उद्योगमुत्साहमित्यर्थः आहिता संचिता तां रामकृतरणोत्साहशक्तिं निशम्य श्रुत्वा क्रमिकचलनात् पादचारतः हरेः रामस्य गिरेः पर्वतस्येव तटम् सन्निकर्षपादमूलसैन्यम् म्लेच्छसेनापतिसहितम् प्रापत् अपराधक्षमापनाय तत्समीपमयासीत् ॥१७॥

समयमनया वृत्यारण्येऽनरण्यजवन्मनो-
रथमथ परे न्यस्यन्नुच्चैर्निनाय सनायकः ।
उदधिरधिकप्रीत्यादित्यस्थितावपि सुस्थिता,
व्यधित नगरीं तत्र द्वागवतीं किमु काञ्चन॥१८॥

अन्वयः—अथ स नायकः अनया वृत्या अरण्ये अनरण्यजवत् उच्चैर्मनोरथं परे न्यस्यन् समयं निनाय उदधि. अधिकप्रीत्या आदित्यस्थितावपि तत्र

काञ्चन द्वारावतीं नगरीं सुस्थितां व्यधित ॥ १९ ॥

व्याख्या—अथ स नायकः वर्णनीयप्रभुर्जिनेन्द्रः अरण्ये वने अनरण्यजवत् नागरवत् अथवा अरण्ये जायते भवतीति अरण्यजः पशु-पक्ष्यादिर्विवेकविकलः स न भवतीति अनरण्यजः सदसद्विवेकी स इव अनया पूर्वोक्तया वृत्त्या आचारेण अथवा बुद्धिवृत्तिचिदाभासरूपया वृत्त्या उच्चैर्मनोरथं कैवल्यपदप्राप्त्यभिलाषं परे किञ्चित् कालानन्तरं न्यसन् अथवा परे निर्मले कर्मक्षयकारके शुभादृष्टे न्यसन् परिणमयन् समयं कालं निनाय यापयामास अथ च उदधिः ज्ञानसमुद्रः क्षमा-सागरः अधिकप्रीत्या प्राणिजातप्रेम्णा मा केषाञ्चिदुपरोधो भवेदिति बुद्धया आदित्यस्थितावपि किञ्चिदवशिष्टदिने एव किमु काञ्चन कामपि द्वारावतीं आगमननिर्गमनप्रचारवतीं नगरीम् नगाः वृक्षाः सन्त्यस्यां वृक्षाश्रयां सुस्थितां सुस्थितिं निवसतिम् तत्र वने व्यधित व्यरचयत् वृक्षतलस्थितिमकरोदिति भावः ॥

रामपक्षे—अनरण्यजवत् दशरथवत् निजजनकवत् अनया वृत्त्या व्यवहारेण अरण्ये वने उच्चैर्मनोरथम्, राज्यपालनरूपं संयमग्रहणरूपं वा परे पश्चात् व्यवस्थापयन् स नायकः रामः समयं वनवासरूपं स्वकीयमर्यादारूपं निनाय व्यतीतयामास उदधिः गाम्भीर्यादिगुण-समुद्रः अधिकप्रीत्या सीताविषयकादरातिशयेन आदित्यस्थितावपि दिववद्द्वारावतीं द्वारयुक्तां काञ्चन कामपि नगरीं वृक्षाश्रयां सुस्थितां निवसतिम् व्यधित अकृत ॥

कृष्णपक्षे—अथ गिरितटप्राप्त्यनन्तरं स नायकः वासुदेवः अनरण्यजवत् दशरथनृप इव यथा स दशसु दिक्षु रथम् स्वसैन्यं निवेश्य स्थितः तथा सर्वतः स्वकीयरक्षासावधानः अनया एवंभूतया सावधानतया वृत्त्या उपचारेण अथवा अनया सव्यसनया जरासंध-

रूपप्रबलशत्रुकृतया वृत्या विधया उच्चैर्मनोरथम् शत्रुपराजयरूपं परे परमेश्वरे न्यस्यन् ईश्वराधीनं कुर्वन् समयं कालं निनाय व्यतीतयामास अथ च उदधिः समुद्रः अधिकप्रीत्या कृष्णविषयकनिरतिशयप्रेम्णा आदित्यस्थितावपि दिवापि रात्रौ किमुतवक्तव्यम् काञ्चन द्वारावतींद्वारकां नगरीं पुरीम् सुस्थिताम् सुरक्षिताम् व्यधित अकृत मा कदाचित् कोऽपि कृष्णासन्निधाने द्वारकां धर्षयेदिति समुद्र एव परिखारूपेण तां ररक्षेति तात्पर्यम् ॥ १८ ॥

अजनि विपये तत्राटव्यां स्थितिः प्रभुरागिणा-
मनिशगमनाशक्तेर्व्यक्तेतराश्रयधारणात् ।
अरमत मनो नृणां मार्गे वने ननु दण्डके-
प्यभयदृदृशाऽन्यत्र भ्रान्त्या विमोहविवेकतः॥१९॥

अन्वयः—व्यक्तेतराश्रयधारणादनिशगमनाशक्तेः प्रभुरागिणां तत्राटव्यां विपये स्थितिरजनि नृणां मनः ननु दण्डके वने भ्रान्त्या विमोहविवेकतः अभयदृशा अन्यत्र मार्गे मनः अरमत ॥ १९ ॥

व्याख्या—व्यक्तेतराश्रयधारणात् व्यक्तिः स्वप्रकाशस्तस्मादितरोऽप्रकाशस्तदाश्रयधारणात् कर्माधीनत्वात् अनिशगमनाशक्तेः नास्तिनिशा अन्धकारोऽज्ञानं यत्र तदनिशम् तत्र गमनाशक्तेः स्वप्रकाशज्ञानमार्गप्रवर्त्तनविरहात् अत एव व्यक्तेतराश्रयधारणं संगच्छते विमोहविवेकतः विमोहज्ञानतः अन्यत्र भ्रान्त्या अन्यत्र भ्रान्तिकारकेण अभयदृशा ज्ञानदृष्ट्या प्रभुरागिणां जिनेन्द्रानुगामिनाम् नृणां मनः ननु दण्डके दण्डकानाम्नि वने मार्गे अरमत अलगत स्थितिश्च अजनि अभूत् ॥

रामपक्षे—प्रभुरागिणां रामासक्तचेतसां तत्राटव्यां विपये दण्ड-

काभिधाने वनेऽरण्ये स्थितिः स्थानम् अजनि कुत इत्याकांक्षायामाह अनिशगमनाशक्तेः निरन्तरव्रजनसामर्थ्यविरहात् व्यक्तेतराश्रयधारणात् चारणर्षिस्पर्शप्रभावेन गन्धाभिधपक्षिणः स्वरूपपरावर्त्तनजटायुरूप धारणात् अन्यत्र भ्रान्त्या भ्रान्तिकारकेण अत्र अभयदद्दृशाज्ञानचक्षुषा विमोहविवेकतः विमोहत्यागतः नृणाम् ज्ञानवतां मार्गे तत्र मनः अरमत अतुष्यत् ॥

कृष्णपक्षे—तत्रारण्यां रैवतकगिरिवने प्रभुरागिणां कृष्णासक्तेतरकानां स्थितिः अजनि जाता कुतः अनिशगमनाशक्तेः व्यक्तेतराश्रयधारणात् अन्यवेशपरिवर्त्तनात् दण्डके दण्ड एव दण्डकस्तस्मिन् अश्वगमनयोग्ये मार्गे वने नृणाम् मनः अरमत व्यहरत ॥ १९ ॥

समुदितगणे क्रीडालीनो हरिः शतपर्वणि,
भगवति परामेदं चक्रे स्फुरत्करवारतः ।
प्रतिपदजपेऽस्यान्तःशीर्णस्तदैव खरात्मजो-
ऽवचनविरतो भावो लोके भवेन्नियतेर्वली ॥२०॥

अन्वयः—शतपर्वणि समुदितगणे क्रीडालीनो हरिः भगवति परामेदं स्फुरत्करवारत चक्रे अस्य प्रतिपदजपे अन्तःशीर्णः तदैवखरात्मजः वचनविरतो भावो (भगमत) लोके नियतेर्वली भवेत् ॥ २० ॥

व्याख्या—शतपर्वणि शतमनेकं पर्व उत्सवो यस्य तस्मिन् अनेकोत्सवशालिनि समुदितगणे गण्यते दिव्यपदप्राप्त्या इति गणः देवादिः, समुदितः स प्रमोदः यद्वा प्रासोदयः तयोः कर्मधारय इति तस्मिन् अथवा समुदित एकत्रीभूतश्चासौ गणश्चेति तस्मिन् क्रीडालीनः परिहासासक्तः हरिरिन्द्रः स्फुरत् दीप्यत् करवारतः खड्गतः भगवति जिनेश्वरे परामेदं सर्वतोरक्षणं चक्रे अन्तर्भूय मदा रक्षां चक्रे इति भावः अस्य विहरमाणस्य जिनेन्द्रस्य प्रतिपदजपे आत्मगुणस्मरणे तदैव

तदानीमेव खरात्मजः कामः खरश्चासौ आत्मजश्चेति मनोजत्वात् अन्तःशीर्णः अन्तः हृदयं शीर्णो विदीर्णो यस्य स वचनविरतो भावः अवाच्यभावः अभूदिति शेषः तथाहि लोके जगति नियतेरदृष्टस्य विधेरिति शेषः उत्कृष्ट इति तत्त्वम् ॥

श्रीमहावीरजिनेन्द्रपक्षे—तदीयशिष्यो गोशालो नियतिवादी तेन विहरन् प्रभुः कदाचित् सिंहनाम्ना ग्रामाधिकारितनयेन गोशालः पराभूत इत्युपक्रम्याह समुदितेति। शतपर्वणि शारदपूर्णिमारात्रौ समुदितगणे नक्षत्रोदये स्फुरत्करवारतः विजृम्भत्खड्गतः भगवति वैराग्यशालिनि गोशाले यत्र मन्दिरे गोशालेन सह भगवानासीत्तत्रैव निर्जनतयाऽवधार्य कयाचिद् भुजिष्यया क्रीडालीनो रममाणः हरिः सिंहनामा ग्रामाधिकारितनयः पराभेदं चक्रे खड्गाघातं विदधे प्रतिपदजपे मंत्रोच्चारणपरायणे अस्य तदीयव्यापारं दृष्ट्वा विहस्यमानस्य गोशालस्य अन्तः शीर्णः विदीर्णो जातः खड्गप्रहारतस्तदैव खरात्मजः गोशालः लोके जगति नियतेर्वचनविरतो भावः अवाग्गोचरः बली सर्वोत्कर्षो भवेत् इति अमन्यत इति शेषः ॥

रामपक्षे—यदा वनस्थो रामस्तदा कदाचिल्लक्ष्मणः परिभ्रमन् दण्डके अन्तर्वंशगह्वरे वटशाखानिबद्धचरणतयाऽधोमुखं कमपि शम्बूकनामानं खरात्मजं सूर्यहासखड्गसाधनतत्परमसिनाऽवधीदित्यनुसंधायाह समुदितेति।

हरिः लक्ष्मणः समुदितगणे सीतारामजटायुसमन्विते निजसमाजे क्रीडालीनः विहरमाणः भगवति समृद्धिशालिनि शतपर्वणि वंशे स्फुरत् करवारतः सूर्यहासखड्गतः पराभेदं आत्यन्तिकच्छेदं चक्रे प्रतिपदजपे मंत्रोच्चार्यमाण अस्य खरात्मजस्य शम्बूकस्य अन्तः हृदयं शीर्णः विदीर्णः तदैव तदानीमेव खरात्मजः शम्बूकः लोके जगति

वचनविरतो भावः आवाच्यभावः अन्तः जात इति शेषः तथाहि लोके नियते विधेर्बली सर्वतः श्रेष्ठः ॥

कृष्णपक्षे–रुक्मिण्या प्रथमपुत्रे प्रद्युम्ने जातमात्रेऽपहृते नारदः केनचिन्मुनिना कथ्यमाने तदुदन्ते रुक्मिणीग्रागभवजन्मवृत्तान्तं कृष्णसन्निधौ व्यावर्णयति समुदितेति । शतपर्वणि दूर्वायां समुदितगणे खसमाजे क्रीडालीनः खेलन् हरिः मयूरशिशुः आसीदिति शेषः तदा रुक्मिणी स्फुरत् विजृम्भित् करवारतः हस्तमुद्राविशेषतः भगवति केकि निपरामेदं मातृवियोगं चक्रे तं शिशुं गृहीत्वा स्वगृहमनयत् प्रतिदिनञ्च तन्नर्तयतिस्मेति प्रतिपदजपे प्रतिपादोत्थाने अस्य मावभूतस्य अन्तः हृदयं शीर्णः विदलितः शिशुवियोगात् जात इति शेषः तदैव खरात्मजः खगात्मजः खे रमते इति खरस्तस्यात्मजः मयूरशिशुः लोके वचनविरतो भावः मृतः भवेत् म्रियेत नियतेर्बलीन मृतस्तदा मातृपितृवचनेन तथा विसर्जितः षोडशवर्षं त्वयापि शिशुविरहः सोढव्य इति मयूरीनिदानात्प्रद्युम्नवियोगो जात इति भावः ॥ २० ॥

रिपुरतिवशो व्यात्तः पुत्रैरिभाश्वपदातिना,
विदलितमतिः पुर्यां धुर्यां गृहे जगृहे रुपम् ।
अनयचलनात् कंसध्वंसं प्रपद्य न पीडये-
दितिगुरुगिरा वन्यैः सिन्धुधिया स तु शिश्रिये २१

अन्वयः–रिपुरतिवशः पुत्रैः इभाश्वपदातिना व्यात्तः विदलितमतिः पुर्यां धुर्यां गृहे रुपं जगृहे अनयचलनात् कंसध्वंसं च प्रपद्य न प्रपीडयेदितिगुरुगिरा सिन्धुधिया शिश्रिये ॥ २१ ॥

व्याख्या—रिपुरतिवशः रिपुषु कामक्रोधादिषु या रतिर्विरतिः तस्या वशः परतन्त्रः कामक्रोधादित्रिपषकविरक्तिपरवशः अथवा रिपुः

कामादिः अतिवशः अकिञ्चित्करः पुत्रैः तनयादिभिः अव्याप्तस्त-द्विषयकप्रीत्यभाववान् इभाश्वपदातिना विदलितमतिः गजतुरगप-दातिसैन्येन विदलितमतिः विदलिता दोषभूयस्त्वदर्शनेन विरक्ता निर्विण्णा मतिर्बुद्धिर्यस्य स धुर्या श्रेष्ठायां पुर्यां नगर्यां गृहे चन्द्रशालादिमन्दिरे यद्वा गृहे कलत्रे "न गृह गृहमित्याहुर्गृहणीगृहमुच्यते" इत्यभियुक्तोक्तेस्तत्र रुपमप्रीतिम् निरुचि जगृहे दधार तमेवद्रढयति अनयचलनादिति अनयचलनात् नयो नीतिस्तदभावोऽनयस्तस्मिन् चलनात् प्रवृत्तितः सध्वसं सन्निहिताधःपतनं अमार्गगामिनामवश्यम्भावीध्वंस इति स्वत एव ध्वसोन्मुखम् कम् कमपि जनम् प्रपद्य न पीडयेत् न तत्प्रतिरोधं विदध्यात् दैवोपहतत्वादित्यर्थः इति गुरुगिरा महज्जनवचनेन स तीर्थङ्करः स्वयमेव ततो निववृते स तु जिनेश्वरः सिन्धुधिया गुणादिरत्नाकरतया अवन्यैः बुद्धिमद्भिर्जनैरिति शेषः शिश्रिये आश्रितः ये केचनमतिमन्तस्ते गुणसमुद्रमेनम्मत्वा तदनुयायिनो बभूवुरिति तत्त्वम ॥ ६१ ॥

रामपक्षे—रिपुरतिवशः रिपौ शत्रौ या रतिः स्थायिभावः क्रोध इत्यर्थः तस्या वशः पराधीनः क्रोधपरवश इति यावत् पुत्रैर्मेघनादादिभिः इभाश्वपदातिना गजतुरगपत्तिना च व्याप्तः परिवृतः विदलितमतिः शत्रुकृतपराभवस्मरणेन शम्बूकादिवधेनेतिभावः विचलितचित्तः धुर्यां श्रेष्ठायां पुर्यां लंकायां गृहे रुपम् रोषम् सूर्पणखावाक्यात् जगृहे दधार अनयचलनात् अनपराधशम्बूकादिवधकारकात् स ध्वंसं आसन्नमृत्युम् प्रपद्य एवभूत जनमासाद्य न पीडयेदिति न किन्तु अवश्यमेव पीडयेत् इति गुरुगिरा वृद्धजनवचनेन रिपुविरोधं न कारयेदिति सूक्त्या सावधानोऽभवदिति शेषः स रावणः वन्यैः वनीयैराक्षसादिभिः सिन्धुधिया मदोन्मत्तमतङ्गजबुद्धया शिश्रिये अन्यथा अनेनैव विनाशः स्यादिति कृत्वेति भावः ॥

कृष्णपक्षे—रिपुरतिवशः शत्रुविषयकमन्युपरतंत्रः पुत्रैः यवना दिभिः इभाश्वपदातिना गजतुरगादिसेनया च व्याप्तः परिवृतः विदलितमतिः शत्रुकृतापराधस्मरणात् क्षुब्धचित्तः धुर्यां शत्रुजनितधर्षणसहनयोग्यायां पुर्यां रुषं मानं जगृहे गृहीतः अनयचलनात् अनपराधकृतागस्काद्धेतोः कंसध्वंसं कसं कंसनामानं नृपं ध्वंसयति स कंसध्वंसस्तम् कृष्णं प्रपद्य न पीडयेदिति न किन्तु अवश्यमेव पीडयेत् यथा तथा तमासाद्य वैरं निर्यापयेदिति गुरुगिरा नृपाज्ञया जगसंधादेशेन स सिन्धुः तात्स्थ्यात्तच्छब्दम्, समुद्रान्तशः कृष्णः शिश्रिये सैन्येरिति शेषः सैन्यमावृणोत्तमिति भावः ॥ २१ ॥

खरविशरणात् कंसागस्कृन्नरं हतदूषणं,
पुनरपि तथा कुर्वाणं कस्त्यजेद्व बलवान्नृपः ।
इति विमृशताऽनेनाधायि क्रियाव्यपदेशता,
भवति यदपां सर्वासामप्यपांनिधिरेव दिक् ॥२२॥

अन्वयः—क बलवान्नृप खरविशरणात् सागस्कृन्नर हतदूषण पुनरपि तथा कुर्वाणं च परित्यजेत् इति विमृशता अनेन क्रियाव्यपदेशता अधायि सर्वासामप्यपाम् अपांनिधिरेव दिक् भवति ॥ २२ ॥

व्याख्या—खरविशरणात् खरस्य कामस्य विशरणात् विजयात् हतदूषणम् दोषरहितम् अत एव कंसागस्कृन्नरम् कंसात् अगति कुटिलं व्रजति परित्यजतीति कंसागाः कृत नरो येन स कंसागस्कृन्नरः पानपात्रत्याजितनरः तदाश्रयात् पानभाजनग्रहणमपि नरैस्त्यक्त इति भावः पुनरपि तथा कामादिविजयं कुर्वाणमाचरन्तम् एकाभूतमलौकिकक्रियानिष्णातं जनं बलवान् ज्ञानवान् नृपः भूपः अन्यो वा जनः त्यजेत् परिहरेत् न संगृह्णीयात् इति विमृशता विचारयता क्रियाव्यपदेशता क्रियातत्परता तदनुसरता अधायि अकारि तदनुसारको जनो यथा

त्यर्थः तदेवार्थान्तरेण द्रढयति सर्वासाम् अपाम् जलानाम् अपान्निधिरेव समुद्र एव दिग् गमनदिग् भवति समुद्रे गत्वा नितान्तसुखिनो गमनागमनादिशोषणबन्धनादिदोषरहिताःस्थाम इति आपस्तदुन्मुखा गच्छन्ति एवं बुद्धिमन्तः सत्पुरुषपरिपूतम्मोक्षमार्गमेव तथाभूतमनुसरन्तीति तत्त्वमर्थान्तरन्यासेन प्रकटितम् कविना ॥

रामपक्षे–खरविशरणात् खरस्य स्वभगिनीपतेर्विशरणात् हननात् सागस्कृन्नरं अपराधकारिणं मनुष्यं हतदूषणम् दूषणनिहन्तारम् पुनरपि भूयोऽपि तथा कुर्वाणं विराधयन्तं कः बलवान् नृपः प्रभुत्वसम्पन्नो नराधिपः त्यजेत् परिहरेत् मुञ्चेत् न कोऽपीत्यर्थः इति इत्थं विमृशता विचारयता अनेन रावणेन क्रियाव्यपदेशता क्रियायाः व्यापारस्य व्यपदेशता छद्मता अधायि कापट्यं अप्रयोजि तथाहि सर्वासामपां अपां पतिः निधिरेव दिग् भवति यथा जडप्रकृतिरपान्निधिर्नीचैर्गच्छति तथा मन्दबुद्धिरपि नीचवृत्ति कापट्यं आश्रयतीति भावः ॥ दृष्टान्तालंकारः ॥ २२ ॥

कृष्णपक्षे-खरविशरणात् रलयोरैक्यात् खलविशरणात् खलनिग्रहणात् बलवान् नृपः जरासंधः कंसागस्कृन्नरम् कंसे स्वजामातरि आगः अपराधम् पापम् वा करोतीति कंसागस्कृत् कंसापराधी स चासौ नरश्चेति कंसागस्कृन्नरम् नरमात्रोपादानेन तस्मिन् तुच्छत्वं सूचितम् हत दूषणम् प्राप्तदूषणम् हन्तेर्गमनार्थत्वेन प्राप्त्यर्थत्वात स दोषम् पुनरपि भूयोऽपि तथा कुर्वाणम् अपराधमाचरन्तम् न च शरणागतमितिध्वनिः कः त्यजेत् परिहरेत् उपेक्षेत इति विमृशता विचारयता अनेन जरासंधेन क्रियाव्यपदेशता युद्धोद्योगता अधायि व्यरचि अपाम् सर्वासामपि अपान्निधिरेव दिग् भवति न कोऽपि सामान्यं स्वकीयशत्रुं परिहरति एकान्तविश्रामकामुकत्वादिति भावः ॥२२॥

प्रतिहरिजरासन्धादेशाद् गृहाणि जहुर्जना,
दशमुखभिया शत्रोर्ग्रामात् परे जगृहुर्व्रतम् ।
स्वजनविरहादन्येऽवन्यां मुहुर्मुमुहुस्तथा,
मुनिगुरुगिरादाय स्वीयान् समारुरुहुर्दरम् ॥२३॥

अन्वयः—जनाः प्रतिहरिजरासंधादेशात् गृहाणि जहुः परे दशमुखभिया-शत्रोर्ग्रामात् व्रतं जगृहुः अन्ये स्वजनविरहात् अवन्याम् मुहुर्मुमुहुः ॥ २३ ॥

व्याख्या—हरति पापमिति हरिर्जिनेन्द्रः तम् इति प्रतिहरि-जिनेन्द्रम्प्रति जनाः भव्यलोकाः जरासंधादेशात् दृढप्रतिज्ञाबलतः गृहाणि वेश्मानि जहुः तत्यजुः दशमुखभिया दशसु इन्द्रियेषु मुखं प्रवृत्तिर्यस्य स कामः अथवा दशसु अवस्थापरिणामेषु मुखं प्रवृत्तिर्यस्य तत् कर्म तस्य भिया भयेन कर्मभयेन च शत्रोः तस्यैव ग्रामात् आयत्तात् व्रतम् चारित्र्यम् परे केचन जगृहुः गृह्णन्तिस्म अन्ये अवन्याम् भूमौ स्वजनविरहात् मुमुहुर्मोहमुपगताः मुनिगुरुगिरा मुनिरेव-गुरुरुपदेशकस्तस्य गिरा वचनेन स्वीयान् स्वकीयान् आदाय गृहीत्वा दरम् कन्दराम् आरुरुहुः सगं विहरन्ति स्मेति भावः ॥

कृष्णपक्षे—जनाः लोकाः प्रतिहरिजरासंधादेशात् प्रतिहरिश्चासौ जरासंधश्चेति तस्य आदेशात् आज्ञातः गृहाणि स्ववेश्मानि जहुस्तत्यजुः रणायसज्जा बभूवुरित्यर्थः दशमुखभिया दशसु मुखान्निर्गमनं यस्य तस्य बाणस्य भिया भयेन शत्रोर्ग्रामात् शत्रुग्राममभिव्याप्य व्रतम् यावन्न श-त्रुग्रामं गमिष्यामि तावन्नभोक्ष्ये न विश्रमिष्ये वेति नियमं जगृहुर्धा-रिताः स्वजनविरहात् युद्धाय गतपतिपुत्रादिविरहात् विश्लेषात् अवन्यां भूमौ मुहुर्मुमुहुर्मोहमुपगताः इतश्च ये भीरवस्ते मुनिगुरुगिरा सद्बुद्धि-वदुपदेशकवाक्येन स्वकीयान् स्त्रीबालकादीन् आदाय दरम् पर्वतक-न्दरम् आरुरुहुस्तत्र जग्मुः ॥

रामपक्षे—प्रतिहरिः प्रतिवासुदेवोऽस्तस्य जरासंधादेशात् दृढप्रतिज्ञानुरोधात् जना राक्षसलोकाः गृहाणि स्ववेश्मानि युद्धार्थमुद्युक्ताः, सन्तः स्वकीयग्रामस्थानानि जहुस्तत्यजुः परे केचन विभीषणादयः दशमुखभिया दशकण्ठभयेन रावणकृतानादरभयतः शत्रोः ग्रामात् शत्रुभूतरावणनगरात् बहिर्निःसृत्येति शेषः व्रतम् नियमम् रावणपरित्यागरूपम् जगृहुः स्वीचक्रुः स्वजनविरहात् स्वजनस्य विभीषणादेर्विरहाद्वियोगात् अन्ये विभीषणदारादयः मुहुः पुनः पुनः मुमुहुः मुह्यन्तिस्म तथा च ते विभीषणादयः मुनिगुरुगिरा मुने रामस्य तदानीम्वनवासकाले कतिचिद्व्रतधारकत्वेन तथा निर्देशः यद्वा मनुते स्वकीयत्वेन स्वीकरोतीति मुनिः स चासौ गुरश्चेति मुनिगुरुस्तस्य गिरा वचनेन अथवा गुर्वी चासौ गीश्चेति गुरुगीः मुनेर्गुरुगीरिति मुनिगुरुगीस्तया अत्यादरणीयरामवचनेन स्वीयान् स्वकीयान् परिजनान् आदाय गृहीत्वा दरम् पर्वतकन्दराम् यद्वा दरम् श्वभ्रम् रक्षणस्थानम् समारुरुहुः संगताः दरोऽस्त्रियां भवे श्वभ्र इत्यमरः॥ श्लेषालंकारः॥२३॥

प्रतिहरिवचोयोगाद् दुर्योधनादिनिमन्त्रितः,
सवितुरचिरात्तारासक्तः सुतो नवसाहसः।
किमु नयति नो सेनानाशं विभोर्दृढसंयति,
कृतमतितरां योधात्सोऽधात् पुरो रिपुवारणम्॥२४॥

अन्वय—प्रतिहरिवचोयोगात् दुर्योधनादिनिमन्त्रितः सवितुर्विभोः तारासक्तः नवसाहसः सुतः दृढसंयति सेनानाशं किमु नयति रिपुनिवारणम् अतितरांकृतम् योधात् स पुरोऽधात् ॥ २४ ॥

व्याख्या—सवितुर्नाभ्यादेर्जनकस्य तारासक्तः तारासु कनीनिकासु आसक्तः अत्यन्तलोचनप्रियः "तचारा तु कनीनिकेति हैमः"

सुतः तनयः ऋषभादिः प्रतिहरिवचोयोगात् प्रतिहरेर्ब्रह्मलोकान्तवासिदेवादेः वचोयोगात् दीक्षाग्रहणसमयस्मारकवाक्यात् दुर्योधनादिनिमन्त्रितः दुर्योधनादिः कामक्रोधादिर्निमन्त्रितो निरुद्धो येन स अत एव नवसाहसः नूतनसाहसिकः अभूदिति शेषः कामश्चिन्तयति विभोरिति विभोर्जिनेन्द्रप्रभोः सेना आभ्यन्तरसंयमादिदृढबलम् अस्माकं इति शेषः नाशं नयति नो किम् नो नयति किन्तु अवश्यमेव नेष्यतीति भावः वर्त्तमानसामीप्ये लट् अतः दृढसंयति स्थिरसंयमे जिनेन्द्रे इत्यर्थः पुरः प्रथममेव योधात् संग्रामात् पूर्वमेव सोधात् सोद्योगात् रिपुवारणम् सैन्यनिवारणम् अतितराम् कृतम् ॥

कृष्णपक्षे—प्रतिहरिवचोयोगात् जरासंधवचनप्रयोगात् दुर्योधनादिनिमन्त्रितः कृतनिमंत्रणकः कृतः कर्मधारयः सवितुः सूर्यस्य सुतः तनयः तारासक्तः तरति शत्रुपारं गच्छत्यस्मिन्निति तारो युद्धम् तत्रासक्तः संग्रामप्रियः अत एव नवसाहसः नूतनसाहसी कर्णः विभोः कृष्णस्य दृढसंयति संग्रामे सेनानाशं कृष्णसेनाक्षयं किमु नो नयति नेष्यति अवश्यमेव नेष्यतीत्यर्थः सोधात् सोद्योगात् योधात् संग्रामात् पुरः प्रथमं रिपुवारणम् शत्रुरोधम् अतितराम् कृतम् विरचितम् ॥

रामपक्षे—प्रतिहरि हरिम् कपिम् प्रति यो वचनयोगः सन्देशप्रेषणम् तस्मात् प्रतिहरिवचोयोगात् कपिद्वारा संदेशप्रेषणात् दुर्योधनादिनिमन्त्रितः दुर्योधनादौ कष्टयुद्धादौ निमन्त्रितः कृताह्वानः सवितुः सूर्यस्य सुतः सूर्यवंशीयत्वात् तनयः तारासक्तः संग्रामप्रियः नवसाहसः रामः विभोः मायासुग्रीवस्य दृढसंयति महत्संग्रामे तस्य सेनानाशं किमु नो नेष्यतीत्यादि पूर्ववद्योज्यम् ॥ २४ ॥

कमनजनकं जित्वा बाणाहवेन ससाहसं,

सहितमकरोच्चन्द्रं साक्षाद्विचोद्यततारया ।

खचरमचिराद् भानोः सूनुं निजाङ्गनया ततः,
सकलनगरे द्वारावत्याः प्रभा भवनेष्वभात् ॥२५॥

अन्वयः—स साहसं कमनजनकं बाणाहवेन जित्वा उद्यततारया सहितं साक्षाच्चन्द्रमिव भानोः सूनुं खचरं निजाङ्गनया सहितम् ततः सकलनगरे भवनेषु द्वारावत्याः प्रभाः अभात् ॥ २५ ॥

व्याख्या—उद्यततारया उद्यता प्राप्तोदया या तारा तया सहितम् संगतम् साक्षाच्चन्द्रमिव कमनजनकम् कम्यते इति कमनम् अभिलाषः तज्जनयतीति कमनजनकः संभोगेच्छोत्पादकस्तम् चन्द्रस्यापि कामोद्दीपकत्वात् तत्सहचरत्वाच्च अथवा अनजनकम् नास्तिजनको यस्य स अजनकस्तन्न भवतीति अनजनकः अनेकजनकः असंख्यातपितृकः तम् कम् कमपि कामम् ससाहसम् साहसेन सहितम् अबाणाहवेन बाणयुद्धं विना आभ्यन्तरिकसंयमबलेन जित्वा पराजित्य अथवा उद्यततारया देदीप्यमानरजतेन रौप्येन सहितम् चन्द्रम् काञ्चनञ्च जित्वा “ स्वाद्रूपं कलधौततारराजतश्वेतानिदुर्वर्णकम् इति तपनीयचामीकरचन्द्रभर्मेत्युभयत्र हैमः ” खचरम् खं सुखमानन्दश्चरति अनुभवतीति अथवा खे परमात्मनि स्वात्मानन्दानुभवे चरति विचरतीति तम् आत्मज्ञानिनम् भानोः प्रभायाः सूयते इति सूनुः तम् प्रभोत्पादकम् स्वस्वरूपमित्यर्थः निजाङ्गनया निजस्य स्वीयस्य या अङ्गना बुद्धिस्तया निजबुद्ध्या सहितम् अकरोत् स्वस्वरूपन्निजप्रवृत्त्यधीनमकरोदित्यर्थः सकलनगरे नगम् पर्वतम् रातीति नगरम् वनम् कलेन मधुराव्यक्तशब्देन सहितम् सकलम् तच्च नगरश्चेति तस्मिन् अथवा सकलनगरे यत्र यत्र प्रभुर्विहरति तस्मिन् भवने गृहे द्वारावत्याः द्वारकायाः प्रभा शोभा अभात् भातिस्म ॥

कृष्णपक्षे—कमनजनकम् कमनः कामः प्रद्युम्न इत्यर्थः जनकः पिता यस्य स कमनजनकः अनिरुद्धः तं ससाहसं बाणासुरकन्या-

धर्षणरूप साहसकारकं बाणाहवेन बाणासुरसंग्रामेन जित्वा बाण पराजित्य तं लब्ध्वा उद्यततारया चन्द्रमिव उषया नवपरिणीतया सहितं अकरोत् भानोरित्यत्र विभक्तिविपरिणामेनान्वयः भानुं भानुनामानं सत्यभामातनयं निजाङ्गनया दुर्योधनकन्यया सहितं अकरोत् देहलीदीपन्यायादुभयत्रान्वयः द्वारावत्याः द्वारकायाः सकलनगरे प्रधानाप्रधाननगरे भवनेषु सद्मसु प्रभा कान्तिः अभात् अदीप्यत ॥

रामपक्षे-समाहसं सुग्रीवरूपं विधाय ताराभिलापरूपसाहसयुक्तं कमनजनकं कामपरतन्त्र बाणाहवेन जित्वा शरसंग्रामेन पराजित्य उद्यततारया सहित साक्षाच्चन्द्रमिव खचर आकाशगामिन भानोः सूर्यस्य तनयं सुग्रीव निजाङ्गनया तारया सहितं अकरोत् व्यधात् सकलनगरे किष्किंधापुरे भवनेषु गृहेषु द्वारावत्याः द्वारकायाः प्रभा कान्ति. अभात् शोभतेस्म ॥ २५ ॥

परपरिचयादन्योऽप्यापत्कृताहवनाशनः,
शुचिपरिगतं नाथं कान्त्या गुणेन च संनिभम् ॥
तमपि भगवान् भित्वा पूर्वं पदं ह्युपलम्भयन्,
कतिपयदिनांस्तत्रैवास्थादसुस्थितमानसः ॥२६॥

अन्वय आहवनाशन अन्योऽपि परपरिचयात् आपत्कृत् शुचिपरिगत कान्त्या गुणेन च सन्निभम् नाथम् तमपि भित्वा भगवान् पूर्वं पदं ह्युपलम्भयन् असुस्थितमानस कतिपयदिनान् तत्रैवास्थात् ॥ २६ ॥

व्याख्या—परपरिचयात् परस्य श्रेष्ठजनस्य परिचयात् संगात् अन्योऽपि अज्ञोऽपि सदसद्विवेकरहितोऽपि आपत्कृताहवनाशनः आपद करोतीति आपत्कृत् स चासौ आहवश्चेति आपत्कृताहवः तन्नाशयति परित्यजतीति तथोक्त ज्ञानिजनसंसर्गान्मूढोऽपि हिंसादिक परित्यजति इति भावः शुचिपरिगत अत एव शुद्धतामुपगतं कान्त्या

गुणेन च सन्निभं सज्जनजनसदृशं नाथं नाथते याचते इति नाथस्तं याचमानं तमपि भगवान् जिनेश्वरः भित्वा अज्ञता परिहृत्य पूर्वं पदं श्रावकत्वं उपलम्भयन् अनुमोदयन् असुस्थितमानसः स्वात्मानुभवस्थितचित्तः कतिपयदिनान् कतिचिद्वासरान् तत्रैवास्थात् तत्रैवस्थितोऽभूदित्यर्थः ॥ २६ ॥

श्रीपार्श्वनाथपक्षे—परपरिचयात् परे पूर्वजन्मनि यः परिचयः संबन्धः तस्मात् अन्योऽपि साम्प्रतमन्यशरीरगतोऽपि आपत्कृत् उपसर्गप्रयोजकः अत एव आहवनाशनः आहूयन्ते आत्मा अत्र स आहवः आत्मचिन्तनं तस्य नाशनः विराधकः शुचिपरिगतं अतिनिर्मलं कान्त्या गुणेन च सन्निभं सदृशं यत्राकृतिस्तत्र गुणा वसन्तीति आकृत्या गुणेन च कृतार्थं नाथं पार्श्वनाथं आपत्कृत् उपसर्गजनको जात इति शेषः तमपि विराध्यःतमपि मेघमालिकुमारकृतोपसर्गं भित्वा निश्चलचित्तेन महित्वा पूर्वं पदं स्वकीयदेवस्थानं उपलम्भयत् न च विराधिनं प्रतिविरोधबुद्धिरभवत् अन्यत् पूर्ववद्व्याख्येयं ॥

श्रीमहावीरपक्षे—परपरिचयात् परेण अन्येन कृतो यो परिचयो यथार्थस्तवस्तस्मात् इन्द्रप्रयुक्तश्रीमहावीरतपोवर्णनं श्रुत्वा संगमदेवस्तं परीक्षितुमुपसर्गं विदधौ अन्योऽपि निरपेक्षोऽपि आपत्कृत् आहवनाशन इत्यादि पार्श्वनाथपक्षवद् व्याख्येयं ॥

रामपक्षे—कदाचित्सुन्दसहिता चन्द्रणखा पातालऌंकायां राज्यं पालयन्ती राममाहात्म्येन पूर्ववैरीविराघो युद्धं विधाय निष्कासयतां सपुत्रां सा च लंकां गत्वा रावणाय व्यजिज्ञपदित्याक्षिप्याह परपरिचयादिति । आहवनाशनः आहवे संग्रामे शत्रु नाशयति हिनस्तीति स परपरिचयात् स्वीयशत्रुपरिचयात् तत् कृतोपजापात् अन्योऽपि उदासीनोऽपि आपत्कृत् विपत्तिजनको भवतीति शेषः शुचिपरिगतं

शुद्धं कान्त्या गुणेन च सन्निभम् मद्योग्यम् नाथं खरं तमपि प्रसिद्धं तव भगिनीपतिं भित्वा विनाश्य विराधाय पूर्वं पदम् खगाधिकृतं तदीयपैतृकपदमुपलम्भयन् मां निष्काश्य तद्राज्यं तस्मै ददौ कतिपयदिनान् असुस्थितमानसः सीताविरहविषण्णचेतास्तत्रैवास्थात् अवर्तिष्ट ॥

कृष्णपक्षे—परपरिचयात् परः शत्रुः तदीयपरिचयात् शत्रुव्यवहारात् अन्योऽपि यौनसंबन्धसंबद्धोऽपि आपत्कृत् विपत्तिजनको भवतीति शेषः यथा कंसः स्वपितरं कारागारे निरुध्य राज्यमाच्छिद्य स्वयम् बुभूजे. आहवनाशनः कृष्णः भगवान् ऐश्वर्यसम्पन्नः तमपि पितृविरोधकारकं कंसं भित्वा विनाश्य शुचिपरिगतम् हृदयतः आचारतश्चशुद्धम्निर्मलं कान्त्या गुणेन च सन्निभम् ममानम् उग्रसेनम् पूर्वं पदम् पूर्वोपभुक्तराज्यसिंहासनम् उपलम्भयन् प्रापयन् असुस्थितमानसः जरासंधविग्रहात् चलचित्तः यद्वा वृन्दावनीयसहचरविश्लेषविधुरः कतिपयदिनान् कतिचिद्वासरान् तत्रैवमथुरायाम् अस्थात् आसीत् ॥२६॥

पवनजनुपा धर्माज्जन्ये नरोऽभिनवोत्सवः,

प्रणयवशतो वाहिन्यागात् सुखेन चलन् पथि ।

तदनु जगति श्रद्धापूर्णो हरेः प्रियवंशजे,

लघुरपि परां प्रीतिं भेजे तदा सुहृदां पदे ॥२७॥

अन्वयः—धर्मात् अभिनवोत्सवो नरः जन्ये प्रणयवशतः पथि सुखेन चलन् अगात् पवनजनुषा वाहिनी च आगात् तदनु हरेः प्रियवंशजे श्रद्धापूर्णः तदा जगति लघुरपि सुहृदां पदे परां प्रीतिम्भेजे ॥ २७ ॥

व्याख्या–धर्मात् पवनजनुपा पूयते अनेनेति पवनम् तच्च जनुश्चेति पवनजनुः मनुष्यशरीरम् तेन धर्मतो लब्धेन मनुष्यशरीरेण जन्ये लभ्ये वाहिनि अनादिकालतः प्रवर्त्तमाने पथि मार्गे हरेर्जिनेन्द्रस्य प्रियवंशजे कुलपरम्परागते स्याद्वादे प्रणयवशतः प्रेमवशतः धर्मविप

यंकातिशयानुरागतः सुखेन आगात् अन्वमरत् तदनु तत्पश्चात् चलन् तस्मिन् प्रवर्त्तमानो जनः श्रद्धापूर्णं भक्तिपूर्णः अभवदिति शेषः तथाहि जगति संसारे लोके धर्मे प्रवर्त्तमानः लघुरपि नीचोऽपि सुहृदां पदे महतां मित्रमण्डले परां प्रीतिम् अत्यधिकसत्क्रियां साधर्मिकतया भेजे लेभे ॥ २७ ॥

रामपक्षे—धर्मात् सुकृतेः अभिनवोत्सवः धर्मप्रभावादिनानुदिनं नूतनोत्सवशाली नरः जन्ये संग्रामे रावणेन सह रणे प्रणयवशः प्रेमवशतः अभीरुत्वात् रामगतप्रेमातिशयात् त्रैलोक्यकंटकरावणहननोत्साहाद्वा सुखेन केपाञ्चिदप्यरुन्तुदाभावेन चलन् गच्छन् पवनजनुपा पवनंजयपुत्रेण सह वाहिन्या सेनया च समम् आगात् अगमत् तदनु तत्पश्चात् हरेः सूर्यस्य प्रियवंशजे सूर्यवंशीयरामे श्रद्धापूर्णः विशेषश्रद्धालुर्जात इति शेषः तथाहि जगति लोके लघुरपि सुहृदां पदे मित्रतायां तदा मित्रत्वकाले परमतिशयितां प्रीतिम् अनुरागम् भेजे भजतिस्म ॥ २७ ॥

कृष्णपक्षे—धर्माज्जन्ये धर्मयुद्धे पवनजनुपा वायुतनयेन भीमसेनेन सह नरः मैन्यगतलोकः अभिनवोत्सवः नित्यनवीनोत्सवेनोऽपलक्षितः वाहिन्या सह सेनया सार्धम् च प्रणयवशतः कृष्णगतप्रेमतः पथि मार्गे सुखेन अनायासेन चलन् अगात् हरेः वायोः इन्द्रस्य वा प्रियवंशजे भीमे अर्जुने वा हरेः चन्द्रस्य प्रियवंशजे कृष्णे कृष्णस्य चन्द्रवंशीयत्वात् श्रद्धापूर्णः भक्तियुक्तः अभवदिति शेषः तथाहि जगति लोके सुहृदां पदे मित्रवर्गे लघुरपि कनीयानपि तदा मित्रतायां परामतिशयिताम् प्रीतिम् भेजे मित्रमार्गे नीचोच्चैर्विभागो न गण्यत इति भावः ॥ २७ ॥

अरिपरिणतिर्येषां पूर्वा नवा सहजातिगा,
बलवति पुनः कर्णेऽभ्यर्णे समीयुषि वाग्भरे ।
प्रगुणितमहामन्त्रैस्तन्त्रैर्ययुः प्रतिमाधवं,
मलिनहृदया गान्धारेया निधाय कथाश्रुताः॥२८॥

अन्वयः—येषाम् अरिपरिणतिः पूर्वा नवा सहजातिगा बलवति वाग्भरे कर्णे अभ्यर्णे समीयुषि प्रगुणितमहामंत्रैः तंत्रैः कथाश्रुता निधाय मलिनहृदया गान्धारेयाः प्रतिमाधवम् ययुः ॥ २८ ॥

व्याख्या—येषां जिनेन्द्रप्रभूणां अरिपरिणतिःशत्रुसंमुखगमनम् पूर्वा एव "दीक्षाग्रहणात् पूर्वं यथा शत्रुषु परिणमतिस्म तथेदानीमपि कामक्रोधादिशत्रौ परिणमत इति भावः" न वा नैव सहजातिगा स्वाभाविकीतो भिन्ना किन्तु स्वाभाविकी बलवति दुःप्रधर्षे कामादौ वाग्भरे शब्दग्राहके कर्णे श्रोत्रेऽभ्यर्णे सन्निधौ समेयुषि समागते सति कामस्यानङ्गत्वात् दृष्टिगोचराभावेन पिकादिमधुरशब्दद्वारा श्रावणप्रत्यक्षे सति प्रगुणितमहामंत्रैः प्रगुणिताः प्रयोजिता ये महामंत्राः आत्मसंयमास्तैः तंत्रैः स्थैर्यैः मलिनहृदयाः मोघप्रयत्नाः गांधारेयाः गंधमृच्छतीति गंधारः तेषां समूहः तेभ्यो हिता वा गंधप्रयोजकाः कामादयः कथाश्रुताः निधाय तदीयतपोमहिमवर्णनं यथा इन्द्रादिभ्यः श्रुतन्तथानुभूतमिति श्रुताः आकर्णिताः कथाः प्रभावातिशयद्योतकाः निधाय कर्णे इति शेषः माधवम्प्रति वसन्तम्प्रति ययुः वसन्तमभिसंधि गत्वा पर्युनिवृत्तुः ॥ २८ ॥

कृष्णपक्षे—येषां दुर्योधनादीनां अरिपरणतिः शत्रुभावता पूर्वा पुरातनी पूर्वत एव युधिष्ठिरादिनिमित्तीकृत्य कृष्णेऽपि शत्रुबुद्धिः चिरंतनी नवा नैव सहजातिगा स्वाभाविकी भिन्ना किन्तु सहजत्र पुनः किन्तु वाग्भरे सत्यवादिनि बलवति सामर्थ्यशालिनि कर्णे कर्णाभिधाने

नृपे अभ्यर्णे सन्निधौ समेयुषि जरासंघसहाय्याय प्राप्ते सति प्रगुणित महामंत्रैः प्रयोजितकर्तव्यावधारणजनकरहस्यविचारैः तंत्रैः इति कर्तव्यताप्रयोजकव्यापारैः कथाश्रुताः स्वपरम्परायौनसंबन्धिनः कृष्णादय इति श्रुताः कैश्चिज्जनैः कथिताः निधाय मुक्त्वा परित्यज्य मलिनहृदया कृष्णसंबन्धेन युधिष्ठिरराज्यं प्रत्यर्पणीयं भवेदिति कलुषितान्तःकरणाः गांधारेयाः धार्तराष्ट्राः प्रतिमाधवं जरासंधं ययुः संश्रिताः ॥

रामपक्षे—येषां रामादीनाम् अरिपरिणतिः पूर्वा न वा सहजातिगा तस्मिन् रामे वाग्भरे वाङ्मात्रेण कर्णेऽभ्यर्णे समीयुषि समागतेः समुद्रपारे स्थिते प्रगुणितमहामंत्रैः तंत्रैः प्रयोजितस्वपरराष्ट्रविज्ञानविचक्षणैः स्पशैः सद्भिः गांधारेयाः वार्ताहारकाः मलिनहृदयाः छद्मनापरराष्ट्रविचारधारकाः चाराः कथाश्रुताः आकर्णिताः परराष्ट्रीयाः कथानिधाय कर्णे कृत्वा प्रतिमाधवं रावणं ययुः यदा रामः समुद्रतटामन्न आसीत्तदा रावणः स्वारान् प्रेष्य सर्ववृत्तान्तमज्ञासीदिति तात्पर्यम् ॥ २८ ॥

मधुरवहलीभागस्थायी न वाहुवलीक्षितः,
प्रभुरनुपदं प्रातर्भ्रान्त्या न लक्ष्मणलक्षितः ।
अवनिधनिकस्याग्रैः क्रामन् शुचेः स्वरुचेरभूत्,
खरसुतहरः क्वाप्येवं स्यात्प्रमादपरः सुधीः ॥२९॥

अन्वयः—मधुरवहली भागस्थायी वाहुवलीक्षितः न प्रातः अनुपदं भ्रान्त्या लक्ष्मणलक्षितो अवनिधनिकस्य शुचेः स्वरुचेः उर्ध्वः क्रामन् खरसुतहरः अभूत् सुधीः क्वाप्येव प्रमादपरः स्यात् ॥ २९ ॥

व्याख्या–मधुरवहलीभागस्थायी मधुरो मनोज्ञो यो वहलीभागः नगरबाह्योद्यानभूभागः तत्र स्थायी प्रभुर्जिनेन्द्रः आदीश्वरः प्रातः प्रभाते अनुपदं भ्रान्त्या तत्क्षणगमनेन न वाहुवलीक्षितः वाहुवलिना

न दृष्टः लक्ष्मणलक्षितश्चलक्ष्मणेन राज्ञा न लक्षितः नयनगोचरी कृतः अभूत् जातः स्वरुचेः स्वतो रोचमानस्य शुचेः परिशुद्धस्य अवनिधनिकस्य पृथ्वीपतेः बाहुबलिनः उच्चैः क्रामन् अधिकं गच्छन् खरसुतहरः कामविनाशकः सुधीः तत्त्वज्ञः काप्येवं प्रमादपरः स्यात् न स्यादित्यर्थः सायं प्रभुर्बाह्योद्यानमागत इति उद्यानपालेन निवेदितः प्रातर्यावता सपरिवारो गच्छति बाहुबली तावता प्रभुर्विजहारेति राज्ञः प्रमादपरत्वं, न कदाचिदपि प्रभुः प्रमाद्यतीति भावः। अर्थान्तरन्यासः ॥ २९ ॥

अन्यजिनेन्द्रपक्षे—मधुरबहलीभागस्थायी मनोज्ञनिर्मलदेशस्थः बाहुबली संयमसामर्थ्यवान् न क्षितः स्वसंयमात् न स्खलितः प्रातः परिपूर्णः भ्रान्त्या भ्रमणेन लक्ष्मणेन स्वचिन्हेन लक्षितः न इति न किन्तु लक्षित एव खरसुतहरः पराजितकामः प्रमादपरः प्रमादात् अनवधानात् परः दूरवर्ती अप्रमादी सुधीः सुष्ठु आत्मानुभववान् काप्येवं स्यात् कश्चिदेवं भवेत् अवनिधनिकस्य अवनमेवावनिः स एव धनं यस्य तस्य दयाधनिकस्येत्यर्थः शुचेः शुद्धस्य स्वरुचेः स्वस्मिन् आत्मनि रुचिर्यस्य तस्य संम्बन्धी क्रामन् गच्छन् उच्चैरभूत् ॥ एवं कृष्णपक्षेऽप्यवसेयम् ॥ २९ ॥

रामपक्षे-मधुरबहलभागस्थायी निर्मलपरिस्कृतप्रदेशस्थः बाहुली न क्षितः न केनापि हतः अनुपदं रामस्य अनुमरणम् भ्रान्त्या भ्रमणेन लक्ष्मणलक्षितः न लक्ष्मण इति यथार्थनामा यथा लक्ष्म कदाचिदपि न व्यभिचरति तथायमपि रामस्यानुचर इति भावः अवनिधनिकस्य पृथ्वीपतेः शुचेः परिशुद्धस्य स्वरुचेः स्वतः शोभमानस्य उच्चैः क्रामन् अतिशयमनुसरन् अभूत् खरसुतहरः शम्बूकनिहन्ता सुधीः बुद्धिमान् काप्येवम् कुतोप्येवं प्रमादपरः स्यान्नैव स्यादित्यर्थः ॥२९॥

अथ विधिवशात् स्थित्याः पूर्तौ वने हत-दण्डके,
सबलहरिणा विद्यासिद्धे खरात्मनि निष्ठिते ।
भवति समरे जह्रे रक्षःप्रभुर्वसुधाङ्गजां,
स्वमनुजमिते रामे मिथ्यामतिं स्वविमानधीः॥३०॥

अन्वयः—अथहतदण्डके वने सबलहरिणा विधिवशात् स्थित्याः पूर्तौ विद्यासिद्धे खरात्मनि निष्ठिते समरे भवति स्वमनुजमिते रामे रक्षःप्रभुः स्वविमानधीः अमिथ्यामतिं वसुधाङ्गजाम् जह्रे ॥ ३० ॥

व्याख्या—अथ अथानन्तरं हतदण्डके दण्डयति बिभीषयति इति दण्डकः भयकारकः हतः निरस्तः दण्डको यत्र तस्मिन् जिनेन्द्रागमनप्रभावात् पारस्परिकविरोधोऽपि शान्त इति भावः निर्भये वनेऽरण्ये विधिवशात् विधिपूर्वकं स्थित्याः धारणायाः मुक्तेरित्यर्थः "मर्यादाधारणास्थितिरिति हैमः" पूर्तौ पूर्तिनिमित्ताय मुक्तिनिमित्तायेति तत्त्वम् सबलहरिणा हरति पापमिति हरिः सबलश्चासौ हरिश्चेति सबलहरिस्तेन विद्यासिद्धे अध्यात्मज्ञानसिद्धे सम्पन्ने सति अत एव खरात्मनि निष्ठिते कामे प्रतिहते वसुधांगजाम् वसु कृष्णतान्दधातीति वसुधा चासौ "वसुरयामे इति शब्दस्तोममहानिधिः" कृष्णा अङ्गना कबरी चेति वसुधाङ्गजा तां जह्रे हतवान् लुलुचे समरे समम् समतां राति अर्पयति सर्वत इति समरस्तस्मिन् समरे समभावे भवति प्रसरति रक्षःप्रभुः रक्षतीति रक्षाः तत्र प्रभुः रक्षणैकप्रवणः स्वविमानधीः विगतः मानोऽहंकारो यस्यां सा विमाना सा चासौ धीश्चेति विमानधीः स्वस्मिन् स्वशरीरे विमानधीर्यस्य स तथोक्तः देहाभिमानरहितः स्वमनुजमिते रामे स्वस्य मनुर्मन्त्रं विचारशक्तिः तस्माजातः स्वमनुजः स्वस्वविचारजातः तेन मिते अनुमिते रामे आत्मानन्दानुभवे अमिथ्यामतिम् निर्मलां दृढां बुद्धिम् चक्रे इति शेषः ॥

रामपक्षे—अथ अनन्तरम् हतः निहतो दण्डको यत्र तस्मिन् हतदण्डके वने विपिने सबलहरिणा बलवता हरिणा लक्ष्मणेन विधिवशात् अदृष्टवशतः स्थित्याः स्थानम् स्थितिरायुः तस्याः पूर्तौ पूर्णे सति आयुषः पूर्णे सति विद्यासिद्धे सूर्यहासखड्गसाधकविद्याधिगते सति खरात्मनि खरपुत्रे "आत्मा वैजायते पुत्र इति श्रुतेः" शम्बूके निहिते मृते सति समरे खरादिभिः सहेति शेषः संग्रामे भवति प्रवर्तमाने स्वमनुजमिते रामे स्वं स्वकीयम् अनुजम् कनिष्ठभ्रातरम् इते गते रामे रामस्याविद्यमानदशायां रक्षःप्रभुः रक्षसां पतिः रावणः स्वविमानधीः स्वस्मिन् विमाने रथे धीर्यस्य सःअमिथ्यामतिम् न मिथ्यामतिर्बुद्धिर्यस्यास्ता शुद्धमनस्कां वसुधाङ्गजाम् सीताम् जह्रे हृतवान् अथवा मिथ्यामतिम् इयंमे भार्या भविष्यतीति बुद्धिमास्थायेति जह्रे हरतिस्म ॥

कृष्णपक्षे—सबलहरिणा सबलो बलवान् हरति धैर्यमिति हरिः कामः सबलश्चासौ हरिश्चेति सबलहरिस्तेन बलवता कामेन प्रद्युम्नेन विद्यासिद्धे रुनकमालाप्रदत्तगौरीप्रज्ञप्तिविद्याद्वयलब्धे सति निधिवशात् दैवाधीनतः स्थित्या समयस्य पूर्तौ पूर्णे सति स्वकीयपोडशवर्षपर्यन्तं मातृपितृवियोगरूपशापस्य अथवा समयस्य आयुषः पूर्तौ खरात्मनि खरः दुष्टः आत्मा यस्य तस्मिन् शम्बरे निहिते मृते सति रक्षःप्रभुः रक्षःसु राक्षसेषु प्रभवति इति रक्षःप्रभुः प्रद्युम्नः समरे समः गीतवाद्ययोरेककालभवो गायकहस्तादिचालनरूपस्तालस्तं राति गृह्णातीति तस्मिन् गीतवाद्यादिमहोत्सवे भवति विद्यमाने वसुधाङ्गजाम् वसु तेजो दधातीति वसुधो दुर्योधनस्तस्याङ्गजा तनया जह्रे हृतवान् स्वविमानधीः स्वविमाने आकाशगमनादौ धीः यस्य सः रामे बलरामे अनुजम् कृष्णमिते गते स्वम् स्वयमेव अमिथ्यामतिं रामकृष्णौ प्रति पूज्यबुद्धिम् विदधे इति शेषः ॥ ३० ॥

पथि गमनतो-लङ्काधीशा जटायुरवध्यत,
समितिसमये ध्वंसं भेजे दशाननकाण्डतः ।
अनुकृतिकरो विद्याभ्रंशं जटी निकटीभव-
न्ननुशयमयाद् रत्नाद् यत्नादरक्षपिताहितः॥२१॥

अन्वय.–पथि गमनतो लंकाधीशा जटायुः अवध्यत समिति समये दशाननकाण्डतः ध्वंसं भेजे अनुकृतिकरो निकटीभवन् जटी अनुशयमयात् अयत्नाद् रत्नात् अरक्षपिताहितः विद्याध्वंसं भेजे ॥ २१ ॥

व्याख्या—काधीशा के आत्मनि अधीष्टे इति काधीट् आत्मज्ञानी तेन जिनेन्द्रेण अलम् अतिशयम् पथि गमनतः मार्गे विहारतः जटायुर्जटां संघतिं याति प्राप्नोतीति तथा संघातः अवध्यत नित्यविहारे कैश्चिन्मुनिभिः संघातः प्रेमाऽक्रियत समिति समये इर्यासमित्यादिकाले दशाननकाण्डतः कामदेवबाणतः अध्वंसं भेजे अप्रतिहतो जातः यत्नात् संयमतः अरक्षपिताहितः अरम् शीघ्रम् क्षपितः निराकृतः अहितः शत्रुयन म कामक्रोधादिजेता अनुशयमयाद्यत्नात् अयमनुगतम् अनुशयम् हस्तगतम् अयमेवानुशयमयस्तस्मात् हस्तगतसंयमरूपरत्नात् अविद्यायाः ममतायाः भ्रंशं विनाशं लब्ध्वेति शेषः अनुकृतिकरः कायोत्सर्गविधायकः जटी निकटीभवन् वृक्ष इव सुखासुखस्पर्शनिवारणाक्षमो भवतीति शेषः ॥

रामपक्षे–पथि गमनतः सीतामादाय मार्गे प्रसरतः समितिसमये संग्रामसमये लंकाधीशा रावणेन जटायुः अवध्यत सीतांप्रतिहर्त्तुं विक्रमन् पक्षी अहन्यतेति भावः कुत इत्याह दशाननकाण्डतः रावणबाणतः यत्नात् अरक्षपिताहितः लघुप्रतिहतरिपुः अनुकृतिकरः जटायुरिव-

सीतामोचनप्रवृत्तः अनुशयमयात् दीर्घद्वेषरूपात् रत्नात् रत्नभूतात् निकटीभवन् रावणसमीपं गच्छन् जटी रत्नजटीनामविद्याधरः विद्या-भ्रंशं खेचरत्वादिनिजशक्तिभ्रंशं विनाशं भेजे लेभे ॥

कृष्णपक्षे–काधीशा के शरीरे अधीष्टे इति काधीन् तेन काधीशा अत्यन्तसुन्दरेण प्रद्युम्नेन पथि गमनतः छलेन रुक्मिणीहरणसमये युद्धमार्गावतरणतः जटायुः टरयोः साम्यात् जरायुः जराकुमारे सत्य-भामातनये आयुर्जीवनम् प्रेम यस्य स कृष्णः अबध्यत निरुध्यत स-मितिसमये दशाननकाण्डतः प्रद्युम्नबाणतः ध्वंसं पराभवं भेजे लब्ध-वान् अरक्षपिताहितः क्षिप्रविनाशितारिः अनुकृतिकरः स्वरूपं विहाय विजातीयरूपवान् प्रद्युम्नः विद्याभ्रंशं मायाभ्रंशं कृत्वा जटी सन् निकटीभवन् कृष्णसमीपं गतः–सन् अनुशयमयात् पश्चात्तापरूपात् रत्नात् शत्रुमिव किमेनमयुध्य इति चिन्तया यत्नात् प्रेमात् अरक्ष दित्यर्थः ॥ ३१ ॥

शिरसि चिकुरश्रेणी वेणीलतेव गुरोर्गिरे-

स्तदनु सुभगा रेजे स्कन्धे पटीव पटीयसी ।

दिवमिव सखीं कर्तुं प्रोच्चैः स्थिताह्विनिनंसया,

जलदपटलीवागाद् रागात्फणीवात[नू]नुरुचिः ॥३२॥

अन्वय –गुरो शिरसि वेणीलतेव चिकुरश्रेणी तदनु सुभगा पटीयसी पटीव स्कन्धे रेजे दिवम् सखीकर्तुमिव उच्चैः स्थिता अहिनिनमया अनुरुचि जलदपटलीव फणीव अगात् ॥ ३२ ॥

व्याख्या–गुरोः आदीश्वरस्य भगवतः शिरसि मूर्ध्नि चिकुरश्रेणी कुन्तलश्रेणी रेजे शुशुभे तामुत्प्रेक्षते वेणीति गिरेः शिखरिणः वेणी-लतेव जलदपटलीव "वेणी केशरचना जलदपटलीति शब्दस्तोममहा-निधिः" तदनु तदधोभागे स्कन्धे स्कन्धप्रदेशे सुभगा मनोज्ञा पटी

सह कतिचित्समाः कतिवर्षाणि विहारम् क्रीडाम् अचीकरत अरीरचत्॥

रामपक्षे—सौभद्रेयो लक्ष्मणः, अन्यत्पूर्ववद्योज्यम् ॥ ३३ ॥

कृतगुरुतपा भूरीशानैः प्रतिस्थलसत्कृतो,

लघु वसुमतीं धात्रीं पात्रीचकार महासुदः ।

रजतसहितैर्माषैः स्वं चातुषत् तुषवर्जितै-

र्वनमपि घनं पुष्पासारैः ससौरभमादधे ॥३४॥

अन्वयः—कृतगुरुतपा ईशानैः भूरि प्रतिस्थलसत्कृतः महासुदः लघु वसुमतीं धात्रीं पात्रीचकार रजतसहितैर्माषैः तुषवर्जितैः स्वम् अतुषत् घनम् वनमपि पुष्पासारैः ससौरभमादधे ॥ ३४ ॥

—: व्याख्या :—

वर्द्धमानपक्षे—कृतगुरुतपाः कृतं गुरु महत्तपोऽभिग्रहरूपो नियमो येन स कृतगुरुतपाः ईशानैर्देवैर्नृपैर्वा भूरि बहुशः प्रतिस्थलसत्कृतः सर्वत्रप्राप्तसत्कारः महासुदः असुम् जीवनं ददातीति असुदः जीवरक्षकः महांश्चासौ असुदश्चेति महासुदः निरतिशयजीवरक्षापरः लघु क्षिप्रम् वसुमतीं सुसमृद्धां धात्रीं पृथ्वीं पात्रीचकार विहारस्येति शेषः तुषवर्जितैर्निर्दुष्टैः द्रव्यादिचतुर्विधशुद्धैः रजतसहितैः रज्यते निस्तुषीक्रियतेऽनेनेति रजतः शूर्पः तेन सहितैः शूर्पस्थैरित्यर्थः अथवा अत्यन्तस्वच्छैः माषैर्माषैःस्वम् स्वयम् अतुषयत् यथाभिग्रहलाभेन पूर्णव्रतत्वात्तुतोष घनं निबिडम् वनम् आलयम् यद्वा वनरमण्यम् पुष्पासारैः पुष्पवृष्टिभिः ससौरभम् सुगन्धिमत् ससौगन्धिकम् आदधे चक्रे प्रभोस्तथाविधभिक्षादानेन परितुष्टो देवस्तत्रपुष्पवृष्टिम् विदधौ ॥

अन्यतीर्थकर्तापक्षे—रजतसहितैः अतिस्वच्छैः माषैः मषति क्षुधान्निवारयती माषः "मषेः संज्ञायां घञ्" तैः क्षुन्निवारकैः तुषवर्जितैर्निर्मलैः निर्दोषैरन्यत् पूर्ववदवसेयम् ॥

रामपक्षे—कृतगुरुतपाः कृतम् विरचितम् गुरोः पितुर्वचनादिति शेषः तपश्चतुर्दशवर्षं यावद्वनवासरूपं येन स भूरीशानैः प्रतिस्थलसत्कृतः ईशानैः राजभिः भूरि बहुशः प्रतिस्थलमत्कृतः स्थाने स्थाने कृतादरः महामुदः महद्भिराजमानः रजतसहितैरतिस्वच्छैर्मायैरन्नैःस्वम् स्वयम् अतुपत् घनम् वनमपि पुष्पासारैरिवेत्यर्थः ससौरभम् ससौगन्धिकम् आदधे आचक्रे ॥

कृष्णपक्षे—कृतमाचरितम् गुरुषु पित्रादिषु तपः तदीयसेवारूपं नियमं येन स कृतगुरुतपा भूरि बहुशः ईशानैः नृपैः प्रतिस्थलसत्कृतः कृतादरः महामुदः शोभमानः वसुमतीं यशोमतीं नन्दगोपपत्नीं धात्रीं पात्रीश्चकार पिबत्यस्याः स्तन्यमिति पात्री "पातेष्ट्रन् ततो ङीप्" ताम् स्तन्यदात्रीश्चकार वनम् समुद्रजलम् पुष्पासारैः कुसुमवृष्टिभिः सौगन्धवत् आदधे चक्रे ॥ ३४ ॥

हरिपतिरतेः खेटात् सीताविशुद्धिरजायत,
रुचिरभवने-लङ्कालाभे सपुण्यजने वने ।
अधृत न हरेर्लोकः कं कं बलं विभवं गुणैः,
क्षयिकवणिजामास्यादेव स्थितिर्विदिताऽप्यतः ॥३५॥

अन्वयः—हरिपतिरतेः खेटात् लङ्कालाभे सपुण्यजने वने रुचिरभवने सीताविशुद्धिरजायत हरेर्लोकः गुणैः कं कं बलं विभवं न अधृत अतः क्षयिकवणिजामास्यादेव स्थितिर्विदिता ॥ ३५ ॥

व्याख्या—हरति पापमिति हरिः संयमध्यानं वा स एव पतिः तत्र रतिरनुरागो यस्य तस्य हरिपतिरतेः संयमैकचित्तस्य ध्यानैकमनसो वा जिनेन्द्रस्य खेटात् मुद्रातः कायोत्सर्गमुद्राधारणतः सीतायाः मोक्षलक्ष्म्याः विशुद्धिः शोधनम् अजायत अलम् अत्यर्थम् कालाभे

यसीव पटुतरेव पटी पटभेदः रेजे दिवमिव स्वर्गं कर्तुं प्रोच्चैः स्थिता स्वर्गसख्यमुपगन्तुमिव उन्नतस्थानस्थिता अंह्रिनिनंसया चरणनमनेच्छया अतनुरुचिः अतिशयकान्तिः निविडच्छविः जलदपटलीव घनसंहतिरिव वा अथवा फणीव कृष्णसर्पसंहतिरिव अयात् अयासीत् उत्प्रेक्षालङ्कारः स्फुटं प्रतिभातीति ॥

रामकृष्णपक्षसाधारणमेतद् ॥

अन्यतीर्थकृतां पक्षे—गुरोः जिनेन्द्रस्य गिरेः प्रव्रजितपर्वतस्य शिरसि उर्ध्वप्रदेशे चिकुरश्रेणीव कचपंक्तिरिव वेणीकृता कुटिलनदी रेजे भातिस्म तामेवोत्प्रेक्षते स्कन्धे स्कन्धप्रदेशे सुभगा मनोहरा पटीयसी पद्वी पटीव अन्यत् पूर्ववत् ॥ ३२ ॥

हरिचरसुरास्थाने नागः सशम्बलकम्बलः,
प्रभुमनुचरन्नाविःस्थित्वा सुखं चकृवान् भृशम् ।
स्थितमुपवने सौभद्रेयोऽप्यविक्रियायान्वयात्,
कतिचन समास्तेन स्वामी विहारमचीकरत् ॥३३॥

अन्वय.—हरिचरसुरास्थाने स शम्बलकम्बलः नागः प्रभुमनुचरन् नाविः स्थित्वा भृशं सुखं चकृवान् उपवने स्थितं अविक्रियया सौभद्रेयः अपि अन्वयात् तेन स्वामी कतिचनसमाः विहारमचीकरत् ॥ ३३ ॥

व्याख्या—स प्रसिद्धः नागः शम्बलकम्बलः शं कल्याणम् बलयति वर्धयतीति शम्बलः कम् सुखं च बलयतीति कम्बलः स्वकीयकल्याणसुखधारकः नागः श्रेष्ठः स्वात्मकल्याणविधायकत्वात् सौभद्रेयः सुभद्रायाः कल्याणगुणविशिष्टाया अपत्यम् सौभद्रेयः सुभद्रातनयः हरिचरसुरास्थाने चर्यते इति चरः हरेर्जिनेन्द्रस्य चरः चरणम् विहरणमित्यर्थः तदेव सुरास्थानम् तीर्थस्थानम् तस्मिन् तीर्थभूते उपवने बाह्योद्याने आवि मनोहरे अथवा समृद्धौ स्वकीयाभ्युदये स्थित्वा स्वाभ्युदयका-

मनयेत्यर्थः स्थितम् समागतम् प्रभुं जिनेन्द्रमनुचरणन् सेवमानः भृश-मतिशयम् सुखम् प्रीतिम् चकृवान् चकार अविक्रियया विकाररहि-त्येन निर्मायिकतयेति भावः अन्वयात् प्रभुमन्वसरत् तेन सह कति-चनसमाः कतिवर्षाणि यावत् स्वामी प्रभुः विहारम् विचरणम् अची-करत् व्यदधत् ॥ ३२ ॥

श्रीमहावीरजिनेन्द्रपक्षे—हरिचरसुरास्थाने चरत्यनेनेति चरश्च रणः हरेः विष्णोश्चरः हरिचरः सुनोतीति सुरा सुधातोरौणादिकोरक्, नदी हरिचरस्य सुरा हरिचरसुरा गंगानदी तस्या विष्णोः पादप्रवृत-त्वात् तस्याः स्थाने गंगानदीस्थाने स प्रसिद्धः शम्बलकम्बलः नागः नागकुमारः नावि स्थित्या प्रभुम् महावीरस्वामिनम् भृशमतिशयम् सुखं चकृवान् पूर्वभवसिंहजीवः साम्प्रतं सुदष्टनामा नागकुमारः पूर्ववैरम-नुसरन् भगवन्तं व्यराध्यत तस्मादुपसर्गात् शम्बलकम्बलनामा नागः प्रभुमुपाकृतेति कथासन्दर्भः उपवने स्थितम् बाह्योद्यानस्थं प्रभुम् सौभद्रेयः सुभद्रातनयो गोशालः अविक्रियया विकाररहित्येन अन्व-यात् अनुगमोऽभवत् तेन सौभद्रेयेन गोशालेन सहेति शेषः स्वामी महावीरस्वामी कतिचनसमाः कतिवर्षपर्यन्तम् विचरणम् अचीकरत् व्यदधत् ॥ ३२ ॥

कृष्णपक्षे—हरिचरसुरास्थाने चरत्यस्मिन्निति चरः हरेः कृष्णस्य चरः हरिचरः कृष्णनिवासस्थानम् तदेव सुरास्थानम् देवास्थानम् ती-र्थभूतमित्यर्थः स प्रसिद्धः तस्मिन् शम्बलकम्बलः कल्याणसुखवान् नागः श्रेष्ठः सौभद्रेयः सुभद्रातनयः अभिमन्युः प्रभुं कृष्णम् अनुगच्छन् नावि स्थित्या नौकायां स्थित्या समुद्रजलक्रीडया भृशमतिशयं सुखं प्रीतिम् चकृवान् अकृत उपवने रैवतकाद्रौ स्थितम् कृष्णम् अविक्रि-यया आनुकूल्येन अन्वयात् अन्वसरत् स्वामी कृष्णः तेन सौभद्रेयेण

सह कतिचित्समाः कतिवर्षाणि विहारम् क्रीडाम् अचीकरत अरीरचत्॥
रामपक्षे—सौभद्रेयो लक्ष्मणः, अन्यत्पूर्ववद्योज्यम् ॥ ३३ ॥

कृतगुरुतपा भूरीशानैः प्रतिस्थलसत्कृतो,
लघु वसुमतीं धात्रीं पात्रीचकार महासुदः ।
रजतसहितैर्मापैः स्वं चातुपत् तुपवर्जितै-
र्वनमपि घनं पुष्पासारैः ससौरभमादधे ॥३४॥

अन्वयः—कृतगुरुतपा ईशानैः भूरि प्रतिस्थलसत्कृतः महासुदः लघु वसुमतीं धात्रीं पात्रीचकार रजतसहितैर्मापैः तुपवर्जितैः स्वम् अतुपत् घनम् वनमपि पुष्पासारैः ससौरभमादधे ॥ ३४ ॥

—: व्याख्या :—

वर्द्धमानपक्षे-कृतगुरुतपाः कृतं गुरु महत्तपोऽभिग्रहरूपो नियमो येन स कृतगुरुतपाः ईशानैर्देवैर्नृपैर्वा भूरि बहुशः प्रतिस्थलसत्कृतः सर्वत्रप्राप्तसत्कारः महासुदः असुम् जीवनं ददातीति असुदः जीवरक्षकः महांश्चासौ असुदश्चेति महासुदः निरतिशयजीवरक्षापरः लघु क्षिप्रम् वसुमतीं सुसमृद्धां धात्रीं पृथ्वीं पात्रीचकार विहारस्येति शेषः तुपवर्जितैर्निर्दुष्टैः द्रव्यादिचतुर्विधशुद्धैः रजतसहितैः रज्यते निस्तुपीक्रियतेऽनेनेति रजतः सूर्पः तेन सहितैः सूर्पस्थैरित्यर्थः अथवा अत्यन्तस्वच्छैः मापैर्मापान्नैःस्वम् स्वयम् अतुपयत् यथाभिग्रहलाभेन पूर्णव्रतत्वात्तुतोष घनं निविडम् वनम् आलयम् यद्वा वनरमण्यम् पुष्पासारैः पुष्पवृष्टिभिः ससौरभम् सुगन्धिमत् ससौगन्धिकम् आदधे चक्रे प्रभोस्तथाविधभिक्षादानेन परितुष्टो देवस्तत्रपुष्पवृष्टिम् विदधौ ॥

अन्यतीर्थकृतांपक्षे—रजतसहितैः अतिस्वच्छैः मापैः मपति क्षुधान्निवारयती मापः "मपेः संज्ञायां घञ्" तैः क्षुन्निवारकैः तुपवर्जितैर्निर्मलैः निर्दोपैरन्यत् पूर्ववदवसेयम् ॥

रामपक्षे—कृतगुरुतपाः कृतम् विरचितम् गुरोः पितुर्वचनादिति शेषः तपश्चतुर्दशवर्षं यावद्वनवासरूपं येन स भूरीशानैः प्रतिस्थलमलङ्कृतः ईशानैः राजभिः भूरि बहुशः प्रतिस्थलमलङ्कृतः स्थाने स्थाने कृतादरः महासुदः महद्धिराजमानः रजतसहितैरतिस्वच्छैर्मार्गैरन्नैःस्वम् स्वयम् अतुषत् घनम् वनमपि पुष्पासारैरिवेत्यर्थः ससौरभम् ससौगन्धिकम् आदधे आचक्रे ॥

कृष्णपक्षे—कृतमाचरितम् गुरुषु पित्रादिषु तपः तदीयसेवारूपं नियमं येन स कृतगुरुतपा भूरि बहुशः ईशानैः नृपैः प्रतिस्थलसत्कृतः कृतादरः महासुदः शोभमानः वसुमतीं यशोमतीं नन्दगोपपत्नीं धात्रीं पात्रीश्चकार पिबत्यस्याः स्तन्यमिति पात्री "पातेष्ट्रन् ततो ङीप्" ताम् स्तन्यदात्रीश्चकार वनम् समुद्रजलम् पुष्पासारैः कुसुमवृष्टिभिः सौगन्धवत् आदधे चक्रे ॥ २४ ॥

हरिपतिरतेः खेटात् सीताविशुद्धिरजायत,
रुचिरभवने-लङ्कालाभे सपुण्यजने वने ।
अधृत न हरेर्लोकः कं कं बलं विभवं गुणैः,
क्रयिकवणिजामास्यादेव स्थितिर्विदिताऽप्यतः ॥२५॥

अन्वयः—हरिपतिरतेः खेटात् लङ्कालाभे सपुण्यजने वने रुचिरभवने सीताविशुद्धिरजायत हरेर्लोकः गुणैः कं कं बलं विभवं न अधृत अतः क्रयिकवणिजामास्यादेव स्थितिर्विदिता ॥ २५ ॥

व्याख्या—हरति पापमिति हरिः संयमध्यानं वा स एव पतिः तत्र रतिरनुरागो यस्य तस्य हरिपतिरतेः संयमैकचित्तस्य ध्यानैकमनसो वा जिनेन्द्रस्य खेटात् मुद्रातः कायोत्सर्गमुद्राधारणतः सीतायाः मोक्षलक्ष्म्याः विशुद्धिः शोधनम् अजायत अलम् अत्यर्थम् कालाभे

कस्य आत्मनः आलाभे सर्वतः प्राप्तौ सर्वत आत्मज्ञाने लब्धे अभवने अगृहे स पुण्यजने पवित्रजनसहिते वनेऽरण्ये रुचिः प्रीतिः अजायत इति शेषः हरेर्जिनेन्द्रस्य लोकः लोकते पश्यतीति लोकः दर्शनकर्त्ता गुणैः प्रभुदर्शनजन्यमहिमभिः कं कं बलम् आत्मबलं विभवं समृद्धिञ्च न अधृत नालभत अतः जिनेन्द्रस्य "सार्वविभक्तिकस्तसिल्" आस्या-देवमुखदर्शनादेव स्थितिर्मर्यादा विदिता क्रयिकवणिजाम् क्रयविक्रय-व्यापारवतां वणिजाम् आस्यादेव इवार्थकोऽत्र एव शब्दः यथा तेषां मुखादेव केषाञ्चिन्महार्घता केषाञ्चित् समर्घता विज्ञायते तथा प्रभु-मुखदर्शनादर्शनाभ्यां भवतीति भावः ॥

रामपक्षे—हरिपतिरतेः खेटात् हरीणां पतिः हरिपतिः सुग्रीवः तस्मिन् रतिः अनुरागो यस्य तस्मात् खेटात् खे आकाशे अटती तस्मा-दाकाशचारितः हनूमतः लंकालाभे लंकानाम्नि सपुण्यजने सया-तुधाने " यातुधानः पुण्यजनो नैर्ऋतो यातु रक्षसीत्यमरः " वने अशोकवाटिकाख्ये रुचिरभवने मनोहरमंदिरे सीताविशुद्धिः सीताया रामपत्न्या विशुद्धिर्मार्गणम् अजायत हरेः सुग्रीवस्य लोकः रामस्या-नुचरो वा गुणैः शौर्यादिगुणैः कं कं बलं सामर्थ्यं विभवं प्रकाशं न अधृत न धारितवान् तथाहि क्रयिकवणिजां आस्यादेव मुखादेव हनु-मन्मुखाद् स्थितिः जानकीस्थितिर्विदिता ज्ञातेति भावः ॥

कृष्णपक्षे—हरिपतिरतेः हरेः कृष्णस्य पतिः ज्येष्ठत्वेनाधिपतिः बलरामः तत्र रतिः राजविषयिका प्रीतिर्यस्य तस्मात् खेटात् आकाश-चारितो दूतात् सीतायाः मदिरायाः विशुद्धिःशोधनम् अजायत अभवत् क इत्याह कम् जलम् आलभ्यते इति कालाभे जलप्राये सपुण्यजने पवित्रजनसहिते अवने सुरक्षिते रुचिरभवने मनोहरगृहे हरेः कृष्णस्य बलस्य वा लोकः गुणैः शौर्यादिभिः कं कं गुणं विभवञ्च न अधृत न

तवान अतः कृष्णस्य स्थितिः कयिकवणिजामास्यादेव विदिता ज्ञाता॥

तिश्रुमुपगता दीव्यद्रूपा सुलक्षणलक्षिता,
सुरवलभृताम्भोधावद्रौपदीरितसद्‌गत्री ।
सुररववशाद् भिन्नाद् द्वीपान्नतेन समाहृता,
हरिपवनयोर्धर्मस्यात्रात्मजेषु--पराजये ॥ ३६ ॥

अन्वयः—श्रुतिमुपगता दीव्यद्रूपा सुलक्षणलक्षिता सुरबलभृता अम्भोधौ अद्रौ पदीरितसद्‌गवी सुररववशात् भिन्नात् द्वीपात् न तेन समाहृता हरिपवनयोर्धर्मस्य आत्मजेषु पराजये ॥ १६ ॥

व्याख्या—श्रुतिमुपगता श्रुतिम् विख्यातिमुपगता प्राप्ता दीव्यद्रूपा प्रकाशस्वरुपा स्वच्छेति यावत् सुलक्षणलक्षिता सल्लक्षणलक्ष्या सुरबलभृता सुराणान्देवानां यद्बलं तत् सुरबलं भरयतीति अन्तर्भावितण्यर्थः देवबलप्रयोजिका अद्रौपदी अद्रौ पर्वते पद्यते उत्पद्यते इति अद्रौपदी गंगा सा अम्भोधौ इव समुद्रे इव ईरितसद्‌गवी ईरिता गतिविषयीकृता या सद्‌गवी सती शोभना चासौ गौः पृथ्वी चेति तथा जिनेन्द्रविहारप्रचारपरिपूता भूमिः सुररवशात् सुष्ठु राजन्ते इति सुराः नृपास्तेषां रवः प्रार्थनाशब्दः तस्य वशात् तदनुरोधात् भिन्नात् अन्यस्मात् द्वीपात् प्रदेशात् नतेन नम्रेण समाहृता समानीता कस्मिन् इत्याह हरीति हरिः लक्ष्मीः पवनं पवित्रता तयोः लक्ष्मीशुद्धयोः धर्मस्य सुकृतेश्च आत्मजेषु प्रजावर्गेषु परं अत्युत्कृष्टं यज्जयं तस्मिन् अत्युत्कटविस्तारायेत्यर्थः निमित्ते सप्तमी ॥ अथवा हरिपवनयोर्धर्मस्य पराजये अतिशयजयसंपादनाय आत्मजेषु कामेषु विषये पराजये निराकरणाय चेत्यर्थोऽपि श्लेषमहिम्ना व्यज्यते ॥

रामपक्षे—श्रुतिं श्रवणं उपगता लंकायां वर्त्तते इति विदितसमाचारा दीव्यद्रूपा प्रद्योतमानस्वरूपा सुलक्षणलक्षिता सौभाग्यलक्षण-

वती असुरबलभृताम्भोधौ असुराणां राक्षसानाम्बलमेवाम्भोधिर्दुस्तारः सागरस्तस्मिन् अद्रौ पर्वते पदीव नदीव ईरितसद्गवी गमनविषयी भूता भूमिः यथा पर्वतनदी समुद्रगता सती पुनर्निर्गमनाऽयोग्या भवति तथेयमपि सीता राक्षससमुद्रगता पुनराप्तुचिदुर्लभैव जातेति भावः ॥ सुर इति सुरः ऐश्वर्यं तस्य रववशात् गर्वतः ऐश्वर्यगर्वतः भिन्नात् द्वीपात् नतेन कौटिल्येन "नतमाविद्धं कुटिलमिति हैमः" भिन्नात् द्वीपात् समाहृता आनीता हरिपवनयोः धर्मस्य आत्मजेषु हरिः सूर्यः पवनो वायुः तयोः आत्मजः सुग्रीवो हनुमांश्च धर्मस्य आत्मजो रामः तेषु सुग्रीवहनुमद्रामेषु विषये पराजये पराभवायेत्यर्थः ॥

कृष्णपक्षे—श्रुतिमुपगता श्रवणपथपथिकायमाना यद्वा श्रुतिम् नीतिशास्त्रमुपगताऽनुसृता दीप्यद्रूपा दीप्तिदात्री ओजोगुणान्विता सुलक्षणेन शब्दानुशासनलक्षणेन लक्षिता कृतानुसंधाना अथ च शब्दाल्पत्वेऽपि अर्थगरीयसी सुरबलभृताम्भोधा सुराणां देवांशभूतानां पाण्डवानां बलभृते प्रोत्साहने अम्भोधा मेघरूपा वेति वाक्यालंकारे द्रौपदीरितसद्गवी द्रौपदीकथितसद्वाणी सुररववशात् पाण्डववेगवशात् देवांशपाण्डवसंबन्धात् यद्वा तदनुसारतः भिन्नात् अन्यस्माद्द्वीपात् प्रदेशात् समाहृता तदानीं दुःखावस्थायामपि वीरमहितेव प्रोक्ता हरिपवनयोः धर्मस्य आत्मजेषु अर्जुनभीमयुधिष्ठिरेषु पराजये उत्कृष्टजयनिमित्ताय तेषु प्रोत्साहनमाधातुमित्यर्थः ॥ ३६ ॥

सवितृतनये रामासक्ते हरेस्तनुजे भुजे,
प्रसरति परे दौत्येऽदित्याः सुता भयभङ्गुराः ।
श्रुतिगतमहानादा-देवं जगुर्निजमग्रजं,
रणविरमणं लोभक्षोभाद्विभीषणकायतः ॥ ३७ ॥

अन्वयः—हरेर्भुजे तनुजे सवितृतनये रामासक्ते परे दौत्ये प्रसरति दित्याः सुताभयभंगुराः श्रुतिगतमहानादाः लोभक्षोभाद्विभीषणकायतः रणविरमणं देवम् निजमग्रज जगुः ॥ ३७ ॥

व्याख्या—हरेर्जिनेन्द्रस्य भुजे भुज्यते इति भुजम् कर्म तस्य भोगादेव क्षयत्वात् तस्मिन् भोग्यकर्मणि तनुजे अल्पीभूते कृशीभूते "तनुर्देहे मूर्त्तौ अल्पे विरले कृशे चेतिशब्दस्तोममहानिधिः" सवितृतनये सूयते प्रकाश्यते इति सविता भावे तृच् तम् तनोति विस्तारयतीति तस्मिन् प्रकाशविस्तारकारके विशेषत आत्मप्रकाशविस्तारके जिनेन्द्रे रामे आत्मध्याने आसक्ते निमग्ने अत एव परे अत्युत्कृष्टे मोक्षे इत्यर्थः दौत्ये दूतकर्मणि प्रसरति ध्यानमेव मोक्षाय दूतकर्मकृदितिभावः दित्याः दातुं छेत्तु योग्याः दित्याः सुताः मनसिजाः कामाः कामादयः भयभंगुराः भयभीता जाताः लोभक्षोभाद्विभीषणकायतः विभीषणकायतः भयोत्पादककायोत्सर्गविधायकशरीरात् जिनेन्द्रात् लोभक्षोभात् लोभस्य तद्विषयकजयाशारूपस्य क्षोभात् आघातात् जयाशा त्यागात् प्रत्युत निजपराजयभीतेः श्रुतिगतमहानादा भयादेव महाशब्दकारका दीर्घविराविणः रणविरमणम् जिनेन्द्रतो विग्रहनिवर्तनम् निजमग्रजमग्रेसरं देवं द्योतनात्मकं मोहराजम् जगुः निवेदयामासुः जिनेन्द्रेण सह संग्रामनिवर्त्तनाय प्रार्थनां चक्रुरित्यर्थः ॥ ३७ ॥

अर्थनिबन्धनेयं संज्ञेति देवस्याप्यकथितकर्मत्वाद्द्वितीया ।

रामपक्षे—सवितृतनये सूर्यपुत्रे सुग्रीवे रामासक्ते रामाधीने रामपक्षाश्रिते हरेर्वायोस्तनये पवनञ्जयपुत्रे हनुमति भुजे बाहौ परे महति दौत्ये दूतकर्मणि प्रसरति विलसति दित्याः सुताः दैतेयाः राक्षसाः भयभंगुराः त्रासभुग्नाः श्रुतिगतमहानादाः आकर्णितमहानादाः हनुमत इति शेषः यद्वा युद्धाय सज्जीभूतानां श्रुतिगतमहाशब्दाः विभी-

पणकायतः· विभीषणस्य कायतः चान्यतः लोभक्षोभात् लोभस्य स्वात्मनि पुत्रादौ योऽभिनिवेशस्तस्य क्षोभात् प्रसरतः अथवा लोभः ममता क्षोभः भयादस्थैर्यचित्तचाञ्चल्यं तयोर्द्वन्द्वः तस्मात् रणविरमणम् संग्रामनिवर्त्तनम् निजम् स्वीयम् अग्रजम् अग्रगण्यम् प्रभुमित्यर्थः देवं रावणम् जगुः निवेदयामासुः रामायुद्धं न विधातव्यमिति विभीषणमुखात् कथयामासुरित्यर्थः ॥ ३७ ॥

कृष्णपक्षे—युद्धाय समागतं जरासंधं हंसको मन्त्री प्राप्तकालं निवेदयति सवितृतनय इत्यादि । सवितृतनये सूर्यपुत्रे कर्णे रामे बलरामे असक्ते असमर्थे अप्रभवति रामसन्निधौ कर्णो न किञ्चित्कर इति भावः यद्वा रामेण परशुरामेण गुरुणा असक्ते युद्धसमये विद्याविस्मरणरूपदत्तशापे सति एतेन स कथंचिदपि युद्धाय न सक्त इति व्यज्यते परे महति हरेः कृष्णस्य तनुजे पुत्रे भुजे भुनक्तीति भुजस्तस्मिन् भोगशालिनि अथवा भुजे बले प्रसरति विलसति दौत्ये शोमकराजकर्तृकदूतक्रियायां अदित्याः देवक्याः सुताः कृष्णादयः भयभङ्गुराः भयं जरासन्धजन्यं त्रासं भङ्गुरयन्ति प्रतिनिवर्त्तयन्तीति तथा निर्भयाः सन्तीतिशेषः श्रुतिगतमहानादाः आकर्णितकृष्णसैन्यसिंहनादाः लोभक्षोभात् लोभात् शरीरमोहात् क्षोभात् कृष्णेन सह संग्रामो मया कथं विधेय इति मनोदौर्बल्यात् यद्वा अवश्यंभावी पराजय इति क्षोभात् विभीषणका यतः अतिकृष्णत्वेन यद्वा भयजनकत्वेन कृष्णतः संग्रामविरमणम् युद्धनिवर्त्तनम् निजम् स्वकीयम् अग्रजम् अग्रगम् देवम् राजानम् जरासंधम् जगुः व्यजिज्ञपन् कथयामासुरित्यर्थः ॥ ३७ ॥

हरिरपि परावृत्त्या वद्धस्तदेन्द्रजितात्मना

शिरसि चरणाधानाद् वाताङ्गजः प्रतिवासवम् ।

सपदि सभयं चक्रे वक्रे विधौ दिनशङ्कया
लघुरपि गिरा वैदेह्यङ्गे समुद्रदृशेक्षितः ॥ ३८ ॥

अन्वयः—इन्द्रजितात्मना तदा परावृत्त्या हरिरपि बद्ध शिरसि चरणाधानात् प्रतिवासवम् वाताङ्गजः वक्रे विधौ दिनशङ्कया सपदि सभयं चक्रे समुद्रदृशा गिरा वैदेह्यंगे लघुरपीक्षितः ॥ ३८ ॥

व्याख्या—इन्द्रजितात्मना इन्द्रं परमैश्वर्यम् जितः आत्मा यस्य स इन्द्रजितात्मा तेन जिनेन्द्रेण तदा परावृत्त्या पौनःपौन्येन हरिरपि कामोऽपि बद्धः निरुद्धः यदा यदा स प्रभवति तदा तदा प्रतिहतः कृत इति भावः शिरसि चरणाधानात् शिरसि मूर्ध्नि चरणस्य चारित्रस्य आधानात् स्वीकारात् "चरित्रं चरिताचारौ चारित्र्यचरणे ह्यपीति-हैमः" प्रतिवासवम् प्रतीन्द्रम् वाताङ्गजः आसनकम्पद्वारा देहकम्पः सपदि तदानीमेव सभयम् भयभीतम् चक्रे विदधे वक्रे विधौ दिन-शङ्कया यदीयप्रभावेनासनकंपो जातस्तस्य वक्रे विधौ सति दिनशङ्कया छेदनशङ्कया तमवश्यं छेत्स्यामीति शङ्कया वै इति वाक्यालंकारे देहाङ्गे देहिनामङ्गे लघुरपि शीघ्रमेव समुद्रदृशा अवधिज्ञानेन ईक्षितः दृष्टः कम्पनहेतुः अवधिज्ञानेन ज्ञात इत्यर्थः ॥

रामपक्षे—प्रतिवासवम् रावणंप्रति शिरसि चरणाधानात् रावणम-स्तके पादप्रक्षेपात् विजगीषुणा शत्रुनगरप्रवेशे प्रथमं दक्षिणपादन्यासो विधीयते स च शत्रुमूर्ध्नि पादन्यासो भवतीति युद्धशास्त्रवेदिनः, कृत्वा-मूर्ध्नि पदन्यासं, रावणस्य दुरात्मन इति वाल्मीकीयरामायणे" हरिरपि कपिरपि वाताङ्गजः हनूमान् इन्द्रजितात्मना मेघनादेन परावृत्त्या भूयो भूयःबद्धः संयमितः वैदेह्यंगे सीताङ्गे समुद्रदृशेक्षितः दीनदृष्ट्या दृष्टः लघुरपि तुच्छोऽपि दिनशङ्कया भयशङ्कया वक्रे विधौ सपदि सभयं लङ्कावासिनं चक्रे विदधे ॥

कृष्णपक्षे—इन्द्रजितात्मना परमैश्वर्यमधिकृता कृष्णेन हरिरपि कालीयोऽपि कंससखा नागः परावृत्त्या बद्धः संयमितः वाताङ्गजः भीमसेनः प्रतिवासवम् वसु अस्यास्तीति वासवो नृपः तम् प्रति विपक्षनृपं प्रति दुर्योधनादिकमुद्दिश्येत्यर्थः शिरसि चरणाधानात् मूर्ध्नि पदन्यासात् चक्रे विधौ वामे विधौ अदृष्टे सति वै इति वाक्यालंकारे देहाङ्ग समुद्रदृशा समुद्रविजयवात्सल्यदृशा ईक्षितः अवलोकितः लघुरपि कनीयानपि भीमः गिरा वाचा सभयं भयभीतम् दुर्योधनादिकम् चक्रे विदधे ॥ ३८ ॥

सुमनसि मनोवृत्तिर्नव्योपकारविधौ भवेत्
तदितरमनोवृत्तिर्नव्यापकारविधौ भवेत् ।
परसुरगतिं लब्ध्वा पूर्वः सुखं विलसत्यहः
परशुरगतिं लब्ध्वा पूर्वः सुखं विलसत्यहः(?) ॥३९॥

अन्वयः- नव्योपकारविधौ सुमनसि मनोवृत्तिर्भवेत् नव्यापकारविधौ तदितरमनोवृत्तिर्भवेत् पूर्वं परसुरगतिं लब्ध्वा अहः सुखं विलसति अपूर्वः परशुरगतिं लब्ध्वा अहः सुखम् विलसति ॥ ३९ ॥

व्याख्या—नव्योपकारविधौ नव एव नव्यः स्वार्थे यत् स चासौ उपकारश्चेति नव्योपकारः तस्य विधौ विधाने नूतनोपकारकरणे सुमनसि सुष्ठु मनो यस्मिन् तस्मिन् निर्मलान्तःकरणे मनोवृत्तिव्यापारो भवेत् निर्मलहृदय एव उपकारविधिः प्रवर्त्तत इति भावः नव्यापकारविधौ नूतनाऽपकारविधौ विरोधविधौ तदितरमनोवृत्तिः तदितरस्मिन् कलुषितान्तःकरणे वृत्तिरभिनिवेशो भवेत् जायेत तथाहि पूर्वः सुमनसि मनोवृत्तिः परसुरगतिं लब्ध्वा परा अत्युन्नता या सुरगतिर्देवगतिस्तां लब्ध्वा देवगतिं प्राप्य सुखम् निरुपद्रवं यथास्यात्तथा अहः दिनम् विलसति गमयति अपूर्वः परः तदितरमनोवृत्तिः कलु-

पितान्तःकरणः परशुरगतिम् परस्मात् स्रयते इति सुरः भावेऽप् तस्य गतिं मरणं लब्ध्वा आसाद्य अह इति खेदे सुखम् सुष्ठु खम्निपये-न्द्रियम् वैपयिकेन्द्रियवैधुर्य्यम् विलसति विषयसुखादिकमपि न लभते मृत्वा दुःखमापद्यत इति भावः ॥३९॥ खंविपयीन्दियमितिहैमः

साधारणाभिधेयतया सर्वपक्षसाधारणमदो व्याख्यानम् ॥

अतुलबलवान् मौनी वृत्या पराजितयाजनि
जनितजनतानन्दो मन्दोदरीरमणे रते ।
किमुत महसा दीनं हीनं मलीनविधेर्वशात्
सबलमबलं कर्ता रक्षोगणे शरणे रणे ॥ ४० ॥

अन्वय.—अतुलबलवान् मौनी जनितजनतानन्दः अमन्दः दरीरमणे रते रक्षोगणे शरणे रणे मलीनविधेर्वशात् महसा दीनं हीनम् अबलम् सबलम् कर्ता अजनि ॥ ४० ॥

व्याख्या—अतुलबलवान् निरतिशयाध्यात्मिकशक्तिशाली मौनी मौनव्रतधारकः जनितजनतानन्दः जनित उत्पादितः जनतायाः जनसमूहस्य आनन्दः सुखं येन स अमन्दः अनलसः स्वाचारपरि-पालनपटुः अपराजितया सर्वसहिष्णुतया वृत्त्या सर्वहितकारिक्रियेत्यर्थः दरीरमणे गिरिकन्दरारमणे रते अनुरक्ते रक्षोगणे शरणे राक्षसजने गृहे "शरणं गृहरक्षित्रोरित्यमरः" अरणे शब्दरहिते विषये पशुपक्ष्यादि-विषये अनुकूलेऽननुकूले वा विधिनिषेधरहिते किमुत किञ्च महसा तेजसा हीनं तेजोहीनमत एव दीनं दुर्बलम् कुत इत्याकांक्षायामाह मलीनविधेर्दुरदृष्टस्य वशात् अधीनतः अबलम् निर्बलम् सबलम् रक्षा-विधायकत्वात् बलवन्तं कर्ता अजनि अभूत् प्रभोः प्रभावात् परस्पर-विरोधपरिहारेण निर्बलोऽपि सबलो भवतीति भावः ॥ ४० ॥

रामपक्षे—मन्दोदरीरमणे मन्दोदर्या रमणे रावणे रते अनुरक्ते रक्षोगणे राक्षससमूहे शरणे गृहे समीपे रणे संग्रामे मलीनविधेर्दुरदृष्टस्य

वशात् प्रभावात् महसा हीनम् निस्तेजस्कम् अत एव दीनम् दैन्यमुपगतं सबलम् ससैन्यम् रावणम् अतुलबलवान् अपरिमितपराक्रमशाली मौनी मुनिव्रतवान् जनितजनतानन्दः विरचितलोकसमुदायसुखः रामः अबलम् दुर्बलम् कर्त्ता अजनि दुर्बलविधायकोऽभूत् कथेत्याह अपराजितया अपराङ्मुखया वृत्त्या अच्छलेनेतिभावः ॥४०॥

कृष्णपक्षे—रक्षोगणे अरणे राक्षसजनाचलम्बेऽरणे असंग्रामे मन्दोदरीरमणे मन्दम् कृशम् उदरं यस्याः सा मन्दोदरी जीवयशा जरासंघदुहिता तस्या रमणे वल्लभे कंसे रते विरते मृते सति जनितजनतानन्दः कृतलोकाह्लादः मौनी मौनव्रतवान् अतुलबलवान् विपुलपराक्रमशाली कृष्णः अपराजितया वृत्त्या कदाचिदप्यपराङ्मुखवृत्त्या मलीनविधेर्वशात् महासा हीनं दीनम् अबलम् दुर्बलम् यादवम् कंसभयादितस्ततो भ्रमन्तम् सबलम् बलसहितम् कर्त्ता अजनि सबलविधायको जात इत्यर्थः ॥ ४० ॥

अमृतमपि तन्मन्योर्दूराद्भूदमृतव्रता-
दमृतमदधात् स्वस्मिन्नेवं परात्मनि तुष्टये ।
अमृतरुचिवद्देवोऽपूर्वो यशोऽनुदिशं नय-
दमृतनिधिना यन्मर्यादा ययौ ससुतां भुवम् ॥४१॥

अन्वयः—मन्योः अमृतव्रतात् तत् अमृतमपि दूरात् अभूत् अमृतम् स्वस्मिन् परात्मनि तुष्टये अधात् अपूर्वो देवः अमृतरुचिवत् यशः अनुदिशम् नयत् स अमृतनिधिना यन्मर्यादा तां भुवम् सु ययौ ॥ ४१ ॥

व्याख्या—मन्योः मन्यते जनैरितिमन्युः मन्यतेरौणादिको युः तस्मात् जगन्मान्यात् अमृतव्रतात् अमृते मोक्षे व्रतं नियमो यस्य तस्मादमृतव्रतात् अमृतम् अयाचितं वस्तु दूरादभूत् दूरङ्गतम् अया-

चितस्याद्त्तादानत्वेन पापजनकत्वात्सर्वथा तं जहावित्यर्थः स्वस्मिन् परात्मनि तुष्टये अमृतम् जलम् अधात् धृतवान् अमृतरुचिवद् चन्द्र इव अपूर्वो देवः सर्वोत्कृष्टो देवो जिनेन्द्रः यश अनुदिशम् प्रतिदिशम् नयत् स जिनेन्द्रः अमृतनिधिना समुद्रेण यन्मर्यादा आश्रितेतिशेषः सु इति पादपुर्तौ तां मर्यादाम् सुत्रमतिशयाम् ययौ प्राप समुद्र इव गांभीर्ये आसीदिति भावः ॥ ४१ ॥

रावणपक्षे—तन्मन्योः तस्य रावणस्य मन्योः क्रोधात् अमृतव्रतात् अमृतं व्रतयतीति अमृतव्रतः अमृतभोजी देवस्तस्मात् दूरात् अभूत् पृथक् अभूत् रावणभयात्तेषाममृतं दुर्लभं ययौ स्वस्मिन् स्वशरीरे एवम् परात्मनि पुत्रादौ तुष्टये सुखेन जीवनाय अमृतम् अमरणम् अधात् कदाचिदपि न म्रिये इत्येवं निश्चयमकृत नाधिकारः कृतान्तस्य दशकंधरमन्दिरे इत्यभियुक्तोक्तेः अपूर्वः अतुलपराक्रमः देवो रावणः अमृतरुचिरिव चन्द्र इव अनुदिशं प्रतिदिशं यशः नयत् प्रापयत् स रावणः सु सुष्ठु यथास्यात्तथा अमृतनिधिना सागरेण यन्मर्यादा यस्या मर्यादा सीमा तां भुवम् तादृशीं भूमिम् लंकां ययौ तत्र तस्थौ ॥ ४१ ॥

कृष्णपक्षे—अमृतव्रतात् अमृतमयाचितं व्रतयति निवर्त्तते इति अमृतव्रतस्तस्मात् मन्योः मान्यात् कृष्णात् अमृतं जलम् दूरात् अभूत् द्वारकानिर्माणाय जले दूरङ्गतम् अमृतम् देवम् स्वस्मिन् एवम् परात्मनि तुष्टये अधात् अस्थापयत् "अष्टोत्तरशतेनोच्चैर्जिनचिन्त्यैर्विभूपितम् मेरुशृङ्गमिवोत्तुङ्गमणिरत्नहिरण्मयमितितच्चरित्रे" अमृतरुचिवत् अमृतांशुरिव अपूर्वो देवः कृष्णः यशः अनुदिशम् नयत् यन्मर्यादा यदीयनगरसीमा अमृतनिधिना सागरेण अकृतेति शेषः सु सुष्ठु तां भुवम् द्वारकां ययौ अध्युवास ॥ ४१ ॥

बलमविरलं तेनोद्योगात् तदा विरलं कृतं
विविधविषयव्यामोहस्य व्यपासनतापसात् ।
प्रकृतिशिशिरं दृष्ट्वा स्वस्योपदेशविधिं ततो
जनपदमपि प्राहुस्तीर्थं तदा कलिकुण्डिनम् ॥ ४२ ॥

अन्वयः—विविधविषयव्यामोहस्य व्यपासनतापसात् तेन उद्योगात् अविरलं बलं विरलं कृतम् स्वस्य प्रकृतिशिशिरम् उपदेशविधिं दृष्ट्वा तदा कलिकुण्डिनं जनपदमपि तीर्थं प्राहुः ॥ ४२ ॥

व्याख्या—विविधविषयव्यामोहस्य विविधविषये अनेकविषये वस्तुनि यो व्यामोहः प्रेमा अभिरुचिरित्यर्थः तस्य यद्व्यपासनम् दूरीकरणम् परित्याग इति यावत् तस्मै व्यपासनाय यस्तापसस्तपश्चरणम् तस्मात् मोहनिवारकतपोऽनुष्ठात् तेन जिनेन्द्रेण प्रभुणा तदा साधुत्वदशायां अविरलं निबिडम् बलम् सैन्यम् राज्यावस्थानुकूलं सैन्यादिकम् कामक्रोधादिविषयबलम् वा विरलम् कृशम् कृतम् तनूकृतम् स्वस्य आत्मनः प्रकृतशिशिरम् स्वभावशीतलम् उपदेशविधिं प्रवृत्तिविधिमाचारमित्यर्थः दृष्ट्वा विलोक्य तदा जिनेन्द्रसमागमदशायाम् जनपदमपि यस्मिन् प्रभुस्समेति तन्नगरमपि कलिकुण्डिनम् कलिनिवारकम् कलिदाहकं वा तीर्थम् तीर्थभूतमतिशयपावनमित्यर्थः प्राहुः प्रोचुः जना इति शेषः ॥ ४२ ॥

रामपक्षे—विविधविषये राज्यकालिकानेकस्रक्चन्दनादिविलासहस्त्यश्वादिपदार्थे यो व्यामोहो ममत्वबुद्धिस्तद्विषयकाभिनिवेशस्तस्य यद्व्यपासनं निरसनम् तदेव तपः व्रतम् तत्र साधुः तापसस्तस्मात् अनेकमनोहरवस्तुनिरसनतपोयोगात् तेन रामेण उद्योगात् उद्यमात् विरलम् विच्छिन्नम् असंचितमित्यर्थः बलम् वानरीयसैन्यम् अविरलम् निबिडं घनीभूतं संचितमितियावत् कृतं विरचितम्

स्वस्य स्वकीयस्य उपदेशविधिम् विधीयते यत्र स विधिः देशस्य समीपमुपदेशम् तयोः कर्मधारय इति विधियमानदेशम् स्वशासनशासितभूप्रदेशम् प्रकृतिशिशिरम् स्वाभाविकनिर्मलं दृष्ट्वा तदा दर्शनदशायां कलिकुण्डिनम् कलिनिवर्त्तकं जनपदमपि नगरमपि तीर्थम् तीर्थभूतम् प्राहुर्जगुः ॥ ४२ ॥

कृष्णपक्षे—विविधविषयव्यामोहस्य अचिरसमावेसितनिजनगरवस्तुजातसंपादनरूपचिन्तनस्य व्यपासनम् व्यापनमेव तपश्चित्तैकाग्र्यता तदेव तापसस्तस्मात् हेतोः तेन कृष्णेन उद्योगात् प्रयासात् व्यापारविशेषात् विरलम् छिन्नभिन्नम् बलम् यादवसैन्यम् अविरलम् सन्नद्धं दुःप्रधर्ष्यं कृतम् विधापितम् स्वस्य स्वकीयस्य उपदेशविधम् निवासभूमिम् प्रकृतिशिशिरम् स्वतो निर्मलं दृष्ट्वा कलिकुण्डिनम् पापनिवारकम् जनपदम् द्वारकापुरम् तीर्थम् पूतम् प्राहुः कथयन्तिस्म ॥ ४२ ॥

तदनु जनपे क्षित्या हत्या न–मेऽस्तु हरेररे-
स्तदपि वचसा चक्रं चक्रं विमोक्ष्यति का गतिः ।
हतनिगरणात् तेनास्तेनाऽमुनाऽनलके मते
दिवि सुमनसां वृष्टिर्भाविन्यहो शिरसो नतेः ॥४३॥

अन्वयः—जनपेक्षित्या हरेः अरेः मे हत्या न अस्तु वचसा तदपि चक्रं चक्रं विमोक्ष्यति का गतिः हतनिगरणात् अस्तेन तेन अमुना अनलकेमते शिरस उपरि नतेः दिवि सुमनसां वृष्टिर्भाविनी ॥ ४३ ॥

व्याख्या—तदनु तत्पश्चात् जनपेक्षित्या जनान् पाति रक्षतीति जनपः जनरक्षकः तस्य ईक्षितिरीक्षणम् तया जनरक्षकदृष्ट्या हरेः कामस्य अरेः विनाशकस्य जितकामस्य मे मम हत्या जीवहिंसा न अस्तु नैव भवतु वचसा तदपि वचनेनापि तद् हिंसनम् नास्तु न च कायेन न च

ज्ञाचेत्यर्थः वचसापि तद् वचनेनापि हिंसनम् कर्तुं वक्रं कुटिलम् चक्रम् विमोक्ष्यति चक्रप्रहारं करोतीति भावः ' संभावनायां लट् " अत्र विषये का गतिः क उपायः अनिवार्यमेतदित्यर्थः अत इति शेषः हतनिगरणात् हतस्य हतशब्दस्य निगरणात् निगालात् सर्वथा अव्यवहारात् अस्तेन अस्तभूतेन अदर्शनेनेत्यर्थः अमुना हतशब्दनिगरणेन तेन हेतुना अनलके मते अनल एवानलकस्तस्मिन् अग्निरूपे मते यथाऽनिच्छयापि स्पृष्टोऽग्निर्दहति तथा हतशब्दप्रयोगोऽपि रदृष्टम् जनयतीति भावः अत एव नतेर्नमस्य सर्वत्र कृतमैत्रस शिरसो मूर्ध्नं उपरीतिशेषः दिविसुमनसां देवकुसुमानां अहो इत्याश्चर्ये वृष्टिः वर्षणम् भाविनी संभाविता सर्वत्र नतान् देवा अप्यनुगृह्णन्तीतिभावः ॥ ४३ ॥

रामकृष्णपक्षे—हरेः मे हरिनाम्नो मम जनपेक्षितया जनरक्षकदृष्टया लोकपालकत्वेन अरेः शत्रोः हत्या हिंसा न अस्तु नैव स्यात् शेषं पूर्ववत् ॥ ४३ ॥

शृणु मम वचो राजन् ! मुञ्चारुचिं वसुधासुतां
कुरु गुरुकुलं नानीतात्राकुलं धनसंकुलम् ।
इति लघुगिरा क्रुद्धे युद्धे स्थिरे स-दशानने
बलमलभताऽस्योपास्यार्थे गणेण विभीषणः ॥ ४४ ॥

अन्वयः—हे राजन् ' वसुधासुताम् अरुचिं मुञ्च ना नीतौ न कुलम् धनसंकुलम् कुलम् कुरु इतिलघुगिरा स दशानने क्रुधे युद्धे स्थिरे सति अस्योपास्यार्थे गणेन विभीषण बलम् अलभत ॥ ४४ ॥

व्याख्या—हे राजन् ? देदीप्यमानप्रभो ? जिनेन्द्र ? वसुधासु वसु रश्मि धारयतीति वसुधा तीक्ष्णतेजोधारणशक्तिः तासु तीक्ष्णतेजोधारणासु ताम् प्रसिद्धामतिशयितामित्यर्थः अरुचिम् अप्रीतिम् मुञ्च त्यज अन्यथाऽतिमृदोस्ते मोहादिः पराभवं कुर्यादितिभावः अत एव धनसं-

कुलम् तपोधनव्याप्तं गुरुकुलम् चारित्र्यम् अनीतौ मोहराज्यनीतौ मोहा-दावित्यर्थः न कुरु न विदधीहि इति लघुगिरा अल्पस्मरणेनैव सदशा ननने सर्वतो भावे क्रुद्धे युद्धे मोहगजेन सह युद्धे स्थिरे निश्चले वीरायिते प्रभौ गणेन स्वीयधैर्यादिगणेन विभीषणः मोहराजं प्रतिभयानकः बलम् आभ्यन्तरिकबलम् अलभत अप्राप्नुत ॥ ४४ ॥

रामपक्षे—हे राजन् ! नृप ! भ्रातः ! राजते सदसद्ग्रहणेन शोभते इति राजा तत्संबुद्धौ अनेन उपदेशतार्हता तस्मिन् व्यज्यते मम यौनसम्बन्धिनः न तु मंत्रिण एव ते च भयादितः कदाचिन्न सदुपदिशन्ति अहन्तु न तथेति गर्वः वचः वचनम् सदुपदेशं शृणु समाकर्णय किमित्याशंक्याह मुञ्चेति अरुचिम् नास्ति रुचिः रावण-विषयकाभिलाषो यस्या मा अरुचिस्ताम् यद्वा न रोचते जनेभ्यः पर-स्त्रीत्वाद्या ताम् अप्रसन्नाम् अननुरागिणीमित्यर्थः वसुधासुताम् भूमितनयाम् जानकीम् मुञ्च त्यज तद्विषयकाभिलाषं मा कुरु तथाहि धन-संकुलम् धनेन सर्वसंपत्त्या संकुलं समृद्धम् गुरुकुलम् मर्त्यतोऽवदातं निजवंशम् अनीतौ परस्त्रीधर्षणरूपान्याये आकुलमस्तव्यस्तम् विपद्-ग्रस्तम् न कुरु न विदधीहि इति उक्तरूपम् लघुगिरा लघोः कनिष्ठ-भ्रातुः गिरा वचनेन यद्वा लघुगिरा क्षुद्रवचनेन कायरजनवचनीय-वचनेन क्रुद्धे सद्यः कोपसमाविष्टे युद्धे संग्रामविषये स्थिरे निश्चले दशानने रावणे सति यावत् प्राणं न दास्यामि मैथिलीं मीतमीतवदिति-कृतनिश्चये स विभीषणः अस्य रामस्य उपासायै सेवायै अवलम्बनाय गणेन स्वीयपरिवारेण अस्य रामस्य बलम् सैन्यम् अलभत अप्राप्नोत् रामसंगतोऽभवत् ॥ ४४ ॥

कृष्णपक्षे—कंसवधसंतप्तो जरासंधः कृष्णानयनाय सोमकं राजानं समुद्रविजयादिकं प्रति प्रेषीत स च तं प्रत्याह "शृण्विति" ।

हे राजन्! समुद्रविजय? अस्य मम वचः जरासंधसंदेशरूपम् शृणु अवधारय मुञ्च कृष्णमिति शेषः जरासंध प्रति कृष्णं प्रहिणु अथ च अरुचिं कृष्णत्यागरूपं वैमनस्यं मुञ्च त्यज वसुधासु स्वकीयराज्यभूमिषु ता कृष्णप्रीतिम् कुरु कृष्णाऽत्यागात् राज्यहरणमवश्यम्भावीतिभावः गुरुकुलम् महद्यादववंशं घनसंकुलं धनधान्यसमृद्धं अनीतौ कृष्णाऽप्रेषणरूपापराधे आकुलम् विपर्यस्तम् विपद्ग्रस्तम् न कुरु न निधेहि इति लघुगिरा नीचवाक्येन स समुद्रविजयादिः दशानने दशदिशि सर्वतः क्रुद्धे युद्धे स्थिरे गणेन सैन्येन विभीषणः भयानकः अस्य जरासंधस्याऽपास्यै निरसनाय बलं सैन्यम् अलभत अचिन्तत ॥ ४४ ॥

अवगमनतः पुत्री जीवद्यशा अवशाऽवदद्
मनसि चरितं मत्वा भूपः प्रयाणमधात् पुरः।
त्रिभुवनगुरोः स्मृत्वा दूष्यैर्विभूष्य हयद्विपं
सपदि पदिकानग्रे कृत्वा ययौ विजयाशयः ॥ ४५ ॥

अन्वय—अवगमनतः पुत्री जीवयशा अवदत् अवसा भूपः मनसि चरितं मत्वा पुरः प्रयाणम् अधात् त्रिभुवनगुरोः स्मृत्वा हयद्विपं दूष्यैर्विभूष्य विजयाशयः पदिकान् अग्रे कृत्वा ययौ ॥ ४५ ॥

व्याख्या—अवगमनतः अवगम्यतेऽनेनेति अवगमम् ज्ञानम् तस्मिन्नतो लग्नः इति अवगमनतः ज्ञानसंलग्नः पुत्री पुनात्यात्मानमिति तथोक्तः आत्मकल्याणकारकः जीवत् त्रिकालवर्त्तमानं यशः कीर्तिर्यस्य स जीवद्यशा स्थिरकीर्त्तिः अवसा नास्ति वसो गमनं यस्य स शमयोरैक्यात्, अवदत् प्रयोजनातिरिक्तवचनरहितः भूपः भुवम् भूमिस्थजीवम् पातीति भूपः जीवजातरक्षकः मनसि चित्ते चरितं व्रतकर्मचेष्टितं मत्वा बुध्वा "चरितमनुष्ठाने सचारे व्रतकर्मादौ चेष्टिते

लीलादाविति शब्दस्तोममहानिधिः" प्रयाणं विहारम् पुरः अग्रे अधात् अकृत हयद्विपम् हये मार्गे "हयो घोटके पथि चेति शब्दस्तोममहानिधिः" द्विपम् द्वाभ्यां कराभ्यां पिबतीति तम् जिनेन्द्रस्य करपात्रत्वात् हये मार्गे स्थितं द्विपम् हयद्विपम् दूष्यैर्देवदूष्यैर्देवपटैर्विभूष्य विभूषितमित्यर्थः त्रिभुवनगुरोः स्मृत्वा कर्मणोऽविवक्षया षष्ठी त्रिभुवनगुरुं स्मृत्वा विजयाशयः कामादिविजयेच्छुः पदिकान् पादचारकान् मुनीन् अग्रे कृत्वा अग्रेसरं विधाय ययौ चचाल ॥ ४५ ॥

रामपक्षे—पुत्री जनकपुत्री जीवयशा जीवत् सफलीभवत् यशः प्रयत्नो यस्याः सा प्रयत्नलभ्या इति अवगमनतः ज्ञानतः कथंभूता अवशा परवशा इति मनसि हृदये चरितं तदीयचेष्टितं मत्वा बुध्वा पुरः अग्रे प्रयाणम् अधात् अकरोत् त्रिभुवनगुरोः स्मृत्वा त्रिभुवनगुरुं स्मृत्वेत्यर्थः जिनेन्द्रं संस्मृत्य हयद्विपं हये मार्गे द्विपमिवेति गजसन्निभं अदूष्यैः शोभनैर्विभूष्य अलंकृत्य सपदि शीघ्रं पदिकान् पादचारान् अग्रे कृत्वा अग्रेसरं विधाय विजयाशयः जयाभिलाषी सन् ययौ जगाम ॥ ४५ ॥

कृष्णपक्षे—अवगमनतः यवनद्वीपादागतैः कैश्चिद्वणिग्भिर्द्वारिकापुर्यां मम पत्युर्विनाशकारी कृष्णो जीवतीति ज्ञानतः अवशा शोकपरवशा निजशत्रुजीवनश्रवणेन समधिकशोकमग्ना पुत्री मगधराजकन्यका जीवयशा तदभिधाना अवदत् कृष्णवृत्तान्तं स्वपित्रे न्यवेदयत् ततः विजयाशयः विजयाभिलाषी भूपो जरासंधः मनसि चरितं मत्वा मनसि स्वहृदये चरितं निजजामातृहननरूपं कृष्णवृत्तान्तं मत्वा विचार्य पुरः अग्रे तत्क्षणमेव प्रयाणम् यात्रामधात् अकृत त्रिभुवनगुरोः जिनेन्द्रस्य स्मृत्वा स्मरणेन दूष्यैर्वस्त्रनिर्मितगृहैः हयद्विपम् हयाश्च द्विपाश्चेति हयद्विपम् सेनाङ्गत्वादेकवद्भावः विभूष्य मण्ड-

यित्वा सपदि शीघ्रम् पदिकान् पादचारिसैन्यान् अग्रेकृत्वा पुरतो विधाय ययौ द्वारका प्रति चचाल ॥ ४५ ॥

क्वचन फलितारामे रामे विराममना रिपो-
र्विनतशिरसां राज्ञां जैनोपहारविधिं दधत् ।
चलति तु रजश्चक्रे केतुं श्रिया हरिदम्बरा-
वरणकरणैः साक्षाद्रेजे क्षमाधनदर्शने ॥ ४६ ॥

अन्वय.—क्वचन फलितारामे रामे रिपोर्विराममना विनतशिरसां राज्ञां जैनोपहारविधिं दधत् चलति तु रजः हरिदम्बरावरणकरणैः श्रिया केतुं चक्रे क्षमाधनदर्शने साक्षाद्रेजे ॥ ४६ ॥

व्याख्या—रिपोः शत्रोः विराममनाः विरामे विजये मनो यस्य स शत्रुरूपकर्मादिविजयकामुकः क्वचन कुत्रापि रामे मनोहारिणि फलितारामे फलितः संजातफलो य आरामः उपवनम् तस्मिन् फलान्वितबाह्योद्याने विनतशिरसां विशेषेण प्रभुगत भक्त्या नतानि नम्राणि शिरांसि येषांतेषां राज्ञां नृपानां जैनोपहारविधिं जैने जैनशासने य उपहारा उपढौकनानि वन्दनानि वासाद्युपयुक्तान्यनुमत्यादयस्तेषां-विधिं विधानं दधत् धारयत् स्वीकुर्वन् चलति विहरति सति विहारकाले रजः पादोत्थितरजः हरिदम्बरावरणकरणैः हरिश्च अम्बरश्च हरिदम्बरे तयोरावरणकरणैः आच्छादनकारकैः दिगाकाशावरकैः हेतुभिः श्रिया शोभासंपत्त्या केतुं चक्रे पताकां विदधौ प्रभोः सार्धं अनेकेषां साधूनां विहरणात् रजोबाहुल्येन दिगच्छादकत्वमिति भावः क्षमाधनदर्शने मुनिजनदर्शने साक्षात् सद्यः रेजे शुशुभे तुतोष ॥ ४६ ॥

रामकृष्णपक्षे—विराममना रिपोः रिपुदमनेच्छस्य कृष्णस्य च क्वचन फलितारामे रामे फलान्विते मनोरमे उपवने विनतशिरसां नतकंधराणाम् राज्ञाम् भूपानाम् सकासात् जैनोपहारविधिम् जैन-

सपर्याविधिम् दधत् विधापयत् अथवा विनतशिरसां राज्ञां जैनोपहारविधिम् जैनप्रशस्तोपहारविधिम् उपढौकनानि दधत् धारयत् क्षमाधनदर्शने साधुसमागमे साक्षात् सर्वात्मनो रेजे चलति तु सैन्येन सह प्रचलति सति रजः सैन्यपदोत्थितधूली हरिदम्बरावरणकरणैः दिगाकाशाच्छादकैः श्रिया केतु चक्रे केतुं विदधौ ॥ ४६ ॥

क्वचन रचयन् वन्यान् धन्यान् वदान्यधिया धनै-
रनुपदभुजि स्थाने वृष्टैर्हिरण्मयसाधनैः ।
जनपदगतं स्वैरं वैरं हरन् विहरन्निति
प्रभुरनुपमच्छायं कायं दधौ कलधौतरुक् ॥ ४७ ॥

अन्वयः—क्वचन अनुपदभुजि स्थाने हिरण्मयसाधनैः वृष्टैः धनैः वदान्यधिया वन्यान् धन्यान् रचयन् विहरन् जनपदगतं स्वैरं वैरं हरन् कलधौतरुक् प्रभुः अनुपमच्छायं कायं दधौ ॥ ४७ ॥

व्याख्या—क्वचन कुत्रापि अनुपदभुजिस्थाने भुज्यते इति भुजिर्भोज्यम् तस्य स्थाने भिक्षालाभस्थाने यत्र प्रभोर्भिक्षा मिलति तत्र स्थले हिरण्मयसाधनैः स्वर्णमयकृतैः काञ्चनप्रचुरैः वृष्टैः वृष्टिभूतैः देवेन्द्रकृतस्वर्णरत्नादिवृष्टिभिः धनैः अन्नप्रचुरैश्च संपद्भिः वन्यान् वने तदालये भवान् तदालयगतान् यत्र जिनेन्द्राणां भिक्षा मिलति तदालयगतानित्यर्थः "वनम् वृक्षसमुदाये जले निवासे आलये चेति शब्दस्तोममहानिधिः" अथ च वन्यान् आरण्यकान् वदान्यधिया अत्युदारमत्या धन्यान् श्रेष्ठान् भाग्यवत्तादिगुणविशिष्टान् कृतकृत्यान् रचयन् विदधत् कुर्वन्नित्यर्थः विहरन् विहारं कुर्वन् जनपदगतम् नगरस्थं यत्र जिनेन्द्रो गच्छति तन्नगरगतवैरम् विरोधं काकोलूकवत् शाश्वतिकमपि वैमनस्यम् स्वैरम् यथेच्छम् अनायासेन स्वचंक्रमणप्रभावेनेति तात्पर्यम् हरन् परिहरन् त्याजयन् प्रभुर्जिनेश्वरः कलधौतरुक्

काञ्चनवर्णं अनुपमच्छायम् अनुपमा उपमातुमयोग्या निरुपमेत्यर्थः छाया कान्तिर्यस्य तं कायं देहं शरीरं दधौ दधातिस्म साधुदशायाम-नियतविहाराहाराभ्यामपि रुक्षदेहसम्भवे तपोमहिम्ना स्वर्णवर्णदेहं प्रभोर्बभूवेति तात्पर्यम् ॥ ४७ ॥

रामकृष्णपक्षे—वदान्यधिया अत्युदारमत्या वन्यान् वनेभवान् क्वचन क्वापि धन्यान् धनसहितान् यद्वा कृतार्थान् विदधत् विरचयन् किञ्च अनुपदभुजिस्थाने पदे पदे इति अनुपदम् भुजेः भोग्यस्य स्थानम् भुजिस्थानम् अनुपदञ्च तत् भुजिस्थानञ्चेति तस्मिन् हिरण्मयसाधनै स्वर्णमयोपकरणैः सृष्टैः निसृष्टैरुपलक्षितः जनपदगतं स्वाभिमुखनगर-स्थितं वैरं विद्वेषं हरन् परिहरन् विहरन् निर्गच्छन् प्रभुः रामः कृष्णश्च कलधौतरुक् स्वर्णकान्तिः अनुपमच्छायं निरुपमकान्तिम् कायम् शरीरम् दधौ अवालम्बे ॥ ४७ ॥

विहगविरुतैर्नुन्नो भिन्नक्रमरतिविक्रमः
क्रमपरिचिते भूमीभागे सुभोगिजनागमे ।
विहतकलहा-देशे देशे कृतस्थितिमाश्रये
परिजनगणे नागस्थाने नृपो ध्रुवमुन्मनाः ॥ ४८ ॥

अन्वय —विहगविरुतैर्नुन्न भिन्नक्रमरतिविक्रम उन्मना नृप क्रमपरिचिते सुभोगिजनागमे भूमीभागे विहतकलहादेशे देशे परिजनगणे नागस्थाने आश्रये ध्रुवम् स्थितिम् अकृत ॥ ४८ ॥

व्याख्या—विहगविरुतैः विहायसा गच्छतीति विहगः पक्षी तस्य तेषां वा विरुतैः प्रातःकालिकमधुरकूजनैः नुन्नः त्यक्तनिद्रः अथ वा विहगानां बाणानां विरुतैः शब्दैः नुन्नः खिन्नः यद्वा विह-गानां कोकिलादिकामोद्दीपकपक्षिणां विरुतैः नुन्नः उद्वेजितः अभि न्नक्रमरतिविक्रमः अभिन्नः अविच्छिन्नः क्रमरतौ विहारव्यापारे

विहारविधौ विक्रम उत्साहो यस्य स सततविहारप्रेमवान् उन्मनाः उद् उच्चैः मोक्षादौ मनश्चित्तं यस्य स उच्चाभिलाषी नृपः नॄन् पातीति नृपः जीवेषु प्राधान्यात् तन्निर्देशः प्राणिमात्ररक्षकः जिनेश्वर इत्यर्थः॥ क्रमपरिचिते क्रमेण गमनेन परिचिते जातपरिचये अथवा क्रमात् क्रमशः परिचिते जातविश्रमे सुभोगिजनागमे समृद्धशालिजनशालिनि भूमीभागे भूविभागे विहतकलहादेशे सर्वथाशान्तकलहे देशे स्थाने परिजनगणे परिजनाना गणः समुदायो यत्र नागस्थाने पर्वताश्रये यद्वा वृक्षागमे वृक्षाश्रये स्थितिम् स्थानम् सन्निवेशम् अकृत व्यधात् अत्रानुप्रासालंकारः ॥ ४८ ॥

रामपक्षे—विहगविरुतैः पक्षिशब्दैः नुन्नः कृतत्वरः त्यक्तनिद्रो वा भिन्नक्रमः अन्यक्रमः रतिविक्रमः अनुरागक्रमः यस्य स सीताविरहात् विप्रलंभरूपः क्रमपरिचिते क्रमेण गमनेन परिचिते जातपरिचये सुभोगिजनागमे सुखभोगभाग्यवति अनाश्रये भूमीभागे भूप्रदेशे विहतकलहादेशे विनष्टकलहके देशे परिजनगणे परिचारकजनसहिते नागस्थाने पर्वतप्रदेशे आश्रये आश्रमे उन्मनाः सीताविरहखिन्नचेताः नृपः रामः कृतस्थितिमा कृतनिवास आसीदिति शेषः ॥

कृष्णपक्षे—जरासन्धस्य संग्रामाय कृष्णं प्रति गमनवर्णनं विहगेति। विहगविरुतैः अशुभसूचकपक्षिशब्दैः नुन्नः खिन्नः विमनस्कः " प्रतिकूलः ममीतोऽभूद्गृध्राश्वप्रमुरम्बरे इति तच्चरित्रे " भिन्नक्रमो रतिविक्रमः भिन्नक्रमो विच्छिन्नक्रमो रतिविक्रमो यस्य स प्रथमं शृङ्गाररसस्य स्थायीभाव आसीदिदानीं वीरस्य उत्साहस्थायीभावो जात इति भिन्नक्रमेति उन्मनाः शत्रुकृतापराधस्मरणेन क्षुब्धचित्तः नृपः प्रति वासुदेवो जरासंधः क्रमपरिचिते सुभोगिजनागमे शुभोगिजनानां

नृपानामागमः माहात्म्यमम्मेलनं यत्र तस्मिन् विहतकलहादेशे पारस्परिककलहरहिते परिजनगणे परिजनाश्रितभूमौ सुरक्षित इत्यर्थः ॥ नागस्थाने पर्वतसमीपे स्थितिम् अकृत व्यदधात् ॥ ४८ ॥

त्यजत मनुजा रागं द्वेषं धृतिं दृढसज्जने,
भजत सततं धर्मं यस्मादजिह्मगतारुचिः ।
प्रकुरुत गुणारोपं पापं पराकुरुताचिराद्,
मतिरतितरां न व्याधेया परव्यसनादिषु ॥४९॥

अन्वय —हेमनुजा ! राग द्वेष त्यजत दृढसज्जने धृतिं सतत धर्मं च भजत यस्माद् अजिह्मगतारुचि गुणारोप प्रकुरुत अचिरात् पाप निराकुरुत परव्यसनादिषु मतिः अतितरा न व्याधेया ॥ ४९ ॥

व्याख्या-हेमनुजाः ? मानवाः ? तेषामेवज्ञानाश्रयत्वाद्धिशिष्योक्तम् रागं अनुराग विषयाभिनिवेश द्वेषं विरोध अनिष्टसाधनताज्ञानजन्यं रागप्रतिबंधिचित्तवृत्तिभेदं त्यजत निराकुरुतदृढसज्जने सुस्थिरसज्जने जने कषायाद्यनभिनिविष्टचित्तवृत्तिशालिनि धृतिं धैर्यं भजत सेवत धारयतेति यावत् सततं निरन्तरं धर्मं सुकृत भजत संचिनुत यस्मात् धर्मसेवनात् अजिह्मगता अकौटिल्यगता ऋज्वी रुचिः बुद्धिः भवतीति शेषः गुणारोपं गुणस्य दयादाक्षिण्यादिरूपस्य आरोपः आधानं प्रकुरुत गुणसंचयं विधत्त अचिरात् सद्यः तत्क्षणमेव पापं किल्मिषं निराकुरुत पृथक् कुरुत दूरमत्यजत परव्यसनादिषु परेषु निकृष्टेषु व्यसनादिषु परस्त्रीसंग-मद्यपानस्तेयादिषु यद्वा परेषां अन्येषा व्यसनादिषु दुःखजनकव्यापारेषु मतिः बुद्धिः अतितराम् अत्यन्तमेव किञ्चिदपीत्यर्थः न व्याधेया न योजनीया यथा परबाधा भवेत्तथा किमपि नैव विधेयमितिभावः ॥ ४८ ॥ सर्वपक्षसाधारणमेतद्व्याख्यानम् ॥

भवति स महानक्रोधस्त्यागतो गतिमानये,
दशमबहुधादाने शत्रुञ्जये स्तुततीर्थराट् ।
त्वमसि वलतः पूर्णस्तूर्णं नवा-जिनमाश्रितः,
प्रभवसि कथं नागारोहे न-राजरयावृतः ? ॥५०॥

अन्वयः—अये यः अक्रोधः स महान् भवति त्यागतः गतिमान् दशमबहुधादाने शत्रुंजये स्तुततीर्थराट् त्वमसिवलतः पूर्णः तूर्णं न वा जिनमाश्रितः नागारोहे नराजरयावृतः कथ प्रभवसि ॥ ५० ॥

व्याख्या—अये इति संबोधने हे प्रभो? शक्तिमन्? अक्रोधः क्रोधरहितः जनः यः स महान् भवति महत्त्वमाप्नोतीति भावः त्यागतः सांसारिकविषयवासनापरित्यागात् गतिमान् ज्ञानवान् भवति त्यागस्य ज्ञानपुरःसरत्वात् सैव यथार्थज्ञानवान् सर्वथा यः सर्वान् परित्यजतीति भावः अथवा त्यागतः संसारत्यागतः गतिमान् प्रशस्तगमनशीलः देवत्वे मोक्षत्वे च गन्ता भवति यद्वा त्यागतः अगतिमान् पुनः पुनर्गमनागमनरहितः जन्ममरणरहितो भवति दशमबहुधादाने दशमस्य तन्नामकतपोविशेषस्य बहुधा आदाने ग्रहणे अनेकधा दशमतपोऽनुष्ठानात् शत्रुंजये आभ्यन्तरिककामादिशत्रुविजये विषये स्तुततीर्थराट् स्तुतम् प्रशंसितम् यत्तीर्थम् शास्त्रम् तत्र राजते इति तथा यथार्थ-शास्त्रज्ञानवान् यद्वा स्तुतं प्रशंसितं यत्तीर्थं विद्यादिगुणयुतपात्रं तत्र राजते यः स तथोक्तः अथवा "सत्यं तीर्थं क्षमातीर्थं तीर्थमिन्द्रियनिग्रहः सर्वभूतदयातीर्थं सर्वत्रार्जवमेव चैत्युक्तप्रकारस्य तीर्थस्य ग्रहणाद्राजते यः स अथवा दशमस्य अवस्थाविशेषस्य बहुधा आदानात् ग्रहणात् यस्मिन् सति शत्रुञ्जये विमलाद्रौ स्तुतः स्तुतिविषयीकृतः तीर्थराट् जिनेश्वरो येन स तथोक्तः वृद्धत्वेऽपि शत्रुंजये कृततीर्थकर-

स्तुतिः अथवा दशानां " दानशीलक्षमावीर्यध्यानप्रज्ञाबलानि च। उपायः प्रणधिर्ज्ञानं दशबुद्धबलानि वै" इत्युक्तलक्षणानां पूर्णः दशमः तस्य बहुधा आदानात् संग्रहात् शत्रुंजये शत्रूणां बाह्याभ्यन्तररिपूणां जये विजये स्तुततीर्थराट् स्तुतः स्तुतिविषयीकृतः यः तीर्थः पूतदेशः तत्र राजते इति तथोक्तः त्वं बलतः आत्मबलतः पूर्णः असि भवसि वाजिनम् अश्वम् आश्रितो न तथा न वा नैव जिनम् आश्रितः नागारोहेण पर्वतारोहेण पर्वताधिष्ठानेन राजरयावृतः राज्ञश्चन्द्रस्य यो रयः वेगस्तेजस्तेन आवृतः आयुक्तः युक्त इति भावः ॥ कथं न प्रभवसि किन्तु प्रभवस्येव यथा चन्द्र उदयाद्रिसमारूढः विद्योतते तथा भवानपि नागारोहेन दीप्यते इति भावः ॥ ९० ॥

रामपक्षे—अक्रोधः क्रोधरहितः यः स महान् गुरुर्भवति त्यागतः सीतात्यागतः सीतार्पणतः गतिमान् अत्यधिकसमुन्नतिपदगामी भवतीत्यर्थः दशमबहुधादाने ददातीति दः पर्वतः स इव यः शमः शान्तिः पर्वतो यथा सर्वाश्रयस्तथा शमाश्रितोऽपीति भावः स दशमः दः पर्वते दत्ते खण्डने चेति शब्दस्तोममहानिधिः तस्य बहुधा अनेकशः सर्वदेत्यर्थः आदाने ग्रहणे शत्रुञ्जय आभ्यन्तरिकानां बाह्यानां शत्रूणां जये पराजये स्तुततीर्थराट् सत्पात्रश्रेष्ठो भवति. त्वं रावणः बलतः सैन्यतः सामर्थ्यतश्च पूर्णः युक्तोऽसि जिनमाश्रितः न वा जिनाश्रयणं विना नागारोहेण राजरयावृतः राजतेजोयुक्तः कथं प्रभवसि नैव प्रभवसि अतो जिनाश्रयणमवश्यं कर्त्तव्यं तस्मिंश्च सुतरामेव युद्धनिवृत्तिः परदाराऽसंग्रहश्च भविष्यतीति भावः ॥ ९० ॥

एवं कृष्णपक्षेऽपि ज्ञेयम् ॥ ९० ॥

जलनिधिगतं सर्वं स्वं वा परं कुरु संयतं,
स्मितवति मयि प्रोच्चैः स्थाने तपोवलशालिनि ।
यदनलसता सूरे दूरे करोति न किल्बिष-
मसहनजने लीने रक्षा न-दीनवलात् क्वचित्॥५१॥

अन्वयः—प्रोच्चैः स्थाने तपोवलशालिनि मयि स्मितवति जलनिधिगतं परं सर्वं स्वं वा संयतं कुरु यदनलसता असहनजने दूरे सूरे किल्बिषं किम करोति लीने दीनवलात् रक्षा क्वचित् न भवतीति ॥ ५१ ॥

व्याख्या—प्रोच्चैः स्थाने अत्युन्नतप्रदेशे तपोवलशालिनि तपोवलयुक्ते मयि स्मितवति जातहासे अहोऽज्ञानविलसितं कथमेतेऽकार्यमपि कार्यमिव कुर्वन्तीति जातपरिहासे इति भावः स्थिते सतीति शेषः यदि ते धनजिघृक्षा महती वर्त्तते तर्हि जलनिधिगतं रत्नाकरसंस्थितं सर्वं निखिलम् परस्वत् कृष्टं स्वम् धनम् संयतं एकत्रीकृतं कुरु स्वगृहे निचितं कुरु किमित्यल्पधनिनं पीडयसीति भावः यदनलसता यदि तेऽनलसता वीररसस्य स्थायी समुत्साहो वर्त्तते तदेतिशेषः असहनजने अक्षमे जनेऽदूरे पुरोदृश्यमाने सूरे सूर्यधामनिधौ किमिति किल्बिषं अपराधं न करोति नाचरति सर्वेषां वीर्यनिषकोऽसाविति तं प्रत्येव निजसामर्थ्यं प्रदर्शयेतिभावः तथाहि लीने शरणापन्ने असामर्थ्यशालिनि रक्षामहतं दीनवलात् दैन्यादेव क्वचिन्न सामर्थ्यशालिनि जने यदि रक्षाभवेत् सैव रक्षा दीनस्य रक्षा तु सुतरामेव संभाव्यतेऽसामर्थ्यादिति तत्त्वम् ॥

रामपक्षे—जलनिधिगतं समुद्रसमीपवर्त्तमानं अत्र सामीप्ये सप्तमी यथा कूपे गार्ग्य इति सर्वं निखिलं स्वं स्वकीयसैन्यम् संयतं सुरक्षितं सर्वतोभयरहितं कुरु विधेहि तथापरं शत्रुश्च संयतं बद्धं स्वाधीनं कुरु यदि कश्चित् गुप्तनरः समागच्छेत्तं संगृहाणेति तातः तपो-

बलशालिनि बलयति वर्द्धयतीति बलम् तपः बलम् तेन शालितुं शीलमस्मिन् तस्मिन् प्रोच्चैः स्थाने अत्युन्नतप्रदेशे स्थिते मयि सितवति विकस्वरे सोत्साहेऽदूरे सन्निधौ सूरे सूर्यवंशोद्भवे सति तथाच यत् यतः सेना संयमतः किल्बिषमपराधं छलमित्यर्थः न करोति सावधाने कोऽपि साहसं न कुर्यात् एवंच असहनजने सामर्थ्यशालिनि जने लीने शरणापन्ने सत्यपि दीनबलात् दैन्यात् रक्षा तदीयाभय दानम् क्वचिदपि कुत्रापि न बहुच्छला हि राक्षसाः शरगताः सन्तो विश्वासमुत्पाद्य सतिरन्ध्रेऽवश्यमेव विराध्येरन्निति न तत्र विश्वासो विधेय इतितत्त्वम् ॥ ५१ ॥

कृष्णपक्षे—जलनिधिगतं समुद्रसमीपवर्तिनं द्वारकापुरस्थितम् सर्वं परमन्यं वा स्वं धनं संयतं सम्यक्चितं कुरु तपोबलशालिनि तप आलोचनम् "तपः माघे शिशिरे ऋतौ आलोचने स्वाश्रमविहितधर्मे चेति शब्दस्तोममहानिधिः" सम्यक् पर्यवेक्षणम् तस्य बलेन उपयोगेन शालिनि विराजमाने प्रोच्चैः स्थाने उन्नतप्रदेशे सितवति सावधाने सूरे सामर्थ्यशालिनि मयि मति यदनलसता आलस्याभावः तेन दूरे परोक्षेऽपि किल्बिषं पापमपराधं न करोति नाचरति असहनजने अक्षमिणि जनेऽलीने अस्वाधीने दीनबलात् अयं दीन इति बलात् इति कृत्वेति भावः न रक्षा न पालना विधेयेति शेषः दीने बलयतां शोभापराक्रमशालिनि पराक्रमो विधेय इति तात्पर्यम्॥५१॥

समितिरसकृत् कार्या वार्या न गोपनता-स्थिति—
दृढतरमनो वीर्यं कार्यं विचार्य सहस्रशः ।
नियतिवशतः कायोत्सर्गेऽप्ययं हतिमाप्नुयाद् ,
भजतु यद्विा मन्योः पक्षो रसातलमञ्जसा॥५२॥

अन्वयः—समितिः असकृत् कार्या गोपनता स्थितिः न वार्या सहस्रशः विचार्य दृढतरमनोवीर्यं कार्यम् कायोत्सर्गेऽपि नियतिवशतः हतिमाप्नुयात् यदि वा मन्योः पक्षः अञ्जसा रसातलं व्रजतु ॥ ५२ ॥

व्याख्या—असकृत् भूयोभूयः समितिः ईर्यासमित्यादयः विधातव्या गोपनता स्थितिः गुप्तित्रयविधिः न वार्या न हेया किन्तु कर्तव्यैव सहस्रशः अनेकधा विचार्य परिचिन्त्य दृढतरमनोवीर्यं प्रबलमात्मबलं कार्यं विधातव्यम् मनोबलं न कदाचिदपि परिहार्यमिति भावः अयम् साधुजनः नियतिवशतः दैववशतः कायोत्सर्गेऽपि कायोत्सर्ग क्रियारूपध्यानेऽपि हतिं विघ्नम् आप्नुयात् लभेत तथापि मनश्चाञ्चल्यं नाश्रयेदिति भावः मन्योः क्रोधस्य अहंकारस्य वा पक्षः सहायः अञ्जसा झटिति रसातलम् अधोलोकं व्रजतु गच्छतु सर्वथाहंकारप्रशमोऽस्तु ॥ ५२ ॥

अथवा—समितिः संग्रामः कामक्रोधादिभिः सह युद्धम् असकृत् भूयोभूयः कार्या विधेया गोपनतास्थितिः स्वसंयमरक्षणविधिः न वार्या न त्याज्या स्वव्रतरक्षणं सर्वथा विधेयमेव नियतिवशतः दैवाधीनतः कायोत्सर्गेऽपि देहपरित्यागेऽपि अयं कामादिः हतिम् क्षतिम् आप्नुयात् लभेत तथापि न त्यजेत् कायोत्सर्गो यदि भवेत्स विधेयः परन्तु कामादेर्वशो न भवेदित्यर्थः अन्यत् पूर्ववत् ॥

रामकृष्णविषये—समितिः संग्रामः असकृत् पुनः पुनः कार्या विधातव्या गोपनता पृथ्वीपालनता स्थितिर्मर्यादा न वार्या न परिहरणीया सर्वथैव भूपालना विधेया सहस्रशः अनेकधा विचार्य विविच्य दृढतरमनोवीर्यं सुदृढस्वात्मशक्ति कार्यं विधातव्यम् नियतिवशतः विधिवशतः अयम् आत्मशक्तिवान् कायोत्सर्गेऽपि हतिम् बाधामाप्नुयात् लभेत चेत् यदि तथापि मन्योरहंकारस्य पक्षः स्वाभिमानम् अञ्जसा रसातलम् अधोभुवनम् वा व्रजतु नैव गच्छतु ॥ ५२ ॥

प्रचलति मिथस्तत्तेनागोऽनुगेऽभिमुखागते,
नभसि रभसाक्रान्ते कान्तेर्भराद् बहुदीप्तितः ।
कतिपयदिनैर्धामारामः स-दाश-रथी-रसाद् ,
गिरितटमगाद् राजा व्याजादृते मगधाश्रयः ॥५३॥

अन्वयः—कान्तेर्भरात् बहुदीप्तिन रभसाक्रान्ते अभिमुखागतेऽनुगे मिथ नभसि प्रचलति तन अग धामाराम सदाशरथि रसात् कतिपयदिनै मगधाश्रय व्याजादृते गिरितटमगात् ॥ ५३ ॥

व्याख्या—मिथः परस्परम् प्रचलति प्रसरति अनुगे अनुगामिनि पश्चादागच्छति जने तथा अभिमुखागते गन्तव्यदेशात् संमुखागते लोके च तेन अनुगतेन अभिमुखागतेन च आगः आसमंतात् गम्यते इति आगः गमेः कर्मणि डः अनुगतः बहुदीप्तितः अतिप्रभातः कान्तेर्भरात् कारणाधिक्यात् नभसि आकाशे रभसा वेगेन आक्रान्ते व्याप्ते सति आकाशमण्डलव्यापकतेजःपुञ्जे सति धामारामः धाम तेजः आरमते यस्मिन् स धामारामः धामनिधिः दाश्यते इति दाशः रम्यते अनेनेति रथः इन्द्रियः दाशः हतः रथ इन्द्रियो यस्य स दाशरथी विजितेन्द्रियः अमगधाश्रयः मगं पापं दधातीति मगधः न मगधः अमगधस्तमाश्रयते इति तथोक्तः निर्मलः राजा दीप्तिमान् स जिनेन्द्रप्रभुः व्याजादृते निर्व्याजम् गिरितटम् गिरिसन्निधिम् अगात् अयासीत् ॥ ५३ ॥

रामपक्षे—कान्तेर्दीप्तिस्तेजस इत्यर्थः अतिशयात् अत एव रभसाक्रान्ते वेगवति अभिमुखागते समान्निध्यमुपागते अनुगेऽनुगामिनिजने मिथः परस्पर नभसि आकाशे आकाशवर्त्मना प्रचलति गच्छति सति तेन प्रचलता सैन्येन सहेत्यर्थः अगः गन्तुमशक्यः शत्रुभिरिति

शेषः, धामा धामवान् "गुणवचनेभ्यो मतुपो लुगिष्टः" रामः स दाशरथी दशरथापत्यः रमात् वीररसात् मगधाश्रयः मगधानां स्तुतिपाठकानामाश्रयः स्तोतव्यः व्याजादृते व्याजं विना निष्कपटमित्यर्थः गिरितटम् वेलन्धरपर्वतसमीपम् अगात् अगमत् ॥

कृष्णपक्षे—सदाशरथी दासेन सहितः सदासः शमयोः साम्यात् सदासो रथो यस्य सदाशरथी सारथी सहितरथवान् रमात् वीररसाभिव्यञ्जकस्थायीभावरूपोत्साहात् मगधाश्रयः जरासंधाभिमुखः अगात् अन्यत्पूर्ववद्योज्यम् ॥ ५३ ॥

प्रभुवचनतः सेतुर्भूपः सरूपसमुद्रभाग् ,
युधि रुधिरतोऽत्यागान्नागादिनीकृतसंगरः ।
सुकृतभरतः श्रेयोमार्गस्तदङ्गनिबन्धनाद् ,
भुवनजलधेर्मध्ये जज्ञे स्थिरान्तरभूभृता ॥ ५४ ॥

अन्वय – प्रभुवचनतः सेतुर्भूपः सरूपसमुद्रभाग् युधिरुधिरतः त्यागात् नागादिनीकृतसंगरः श्रेयोमार्गः तदङ्गनिबधनात् सुकृतभरतः भुवनजलधेः मध्ये स्थिरान्तरभूभृता जज्ञे ॥ ५४ ॥

व्याख्या—प्रभुवचनतः उच्यते इतिवचः प्रभुश्चासौ वचश्चेति प्रभुवचः प्रभुवचे प्रभुशब्दवाच्ये नतः परिणतः प्रभुवचनतः प्रभुरिति जनैः कथ्यमानः प्रभुरिति यावत् सेतुः मर्यादारूपः लोकमर्यादाधर्ममर्यादाश्रयीभूतः भूपः भुवम् भूस्थं जनमिति शेषः पाति रक्षतीति तथा सर्वरक्षाकरः सरूपसमुद्रभाग् सरूपः रूपवान् यः समुद्रः स सरूपसमुद्रः साक्षात्समुद्रः तं भजतीति तथा तच्छब्देन तन्स्थो गुणो लक्ष्यते इति साक्षात्समुद्र इव दुर्धर्षः अगाधः सर्वसद्गुणरत्नाकरश्चेति भावः युधिरुधिरतः युधेः संग्रामस्य रुधिर्निरोधस्तत्र रतः परिगतः स

यथाहिंसात्मकयुद्धनिवारकः त्यागात् संसारिकविषयवासनापरित्यागात् नागादिनीकृतसंगरः न गच्छति भोगमन्तरा इति नागं कर्म तत् आदिर्यस्य स नागादिः कर्मादिशत्रुः तस्य नीकृतः नीचैः कृतः संगरः प्रसरो येन स कर्मादिप्रसक्तिप्रतिरोधकः श्रेयोमार्गः श्रेयो मोक्षं मार्गते अन्वेषते इति तथोक्तः तदङ्गनिबंधनात् तस्य श्रेयसो मोक्षस्य अङ्गम् प्रधानकारणं संयमं चारित्र्यमित्यर्थः तत्र निबन्धनं प्रवृत्तिरभिनिवेश-स्तस्मात् मोक्षमार्गानुसरणात् सुकृतभरतः पुण्यप्रभावात् भुवनजलधेः संसारसमुद्रस्य मध्ये संसारसमुद्रे स्थिरान्तरभूभृता स्थिरान्तरः अतिनिश्चलो यो भूभृत् मैनाकगिरिः कदाचिदपि ततो न चापल्यस्तेन सममिति शेषः जज्ञे यथा स निश्चलस्तथायमपि लोकभजनीयत्वेन स्थिरः "कीर्तिर्यस्य स जीवतीत्यभियुक्तोक्तेः" सोऽद्यादिस्मरणीयत्वेनाराध्यत्वेन च स्थित इति भावः ॥

रामपक्षे—सरूपसमुद्रभाक् रूपेण समानः सरूपः तुल्यरूपः स चासौ समुद्रश्चेति सरूपसमुद्रः तम् भजति अनुसरतीति सरूपसमुद्रभाग् समानरूपसमुद्रभूपसहितः सेतुभूपः सेतुनामानृपः "यदा लंकां गच्छन् रामो वेलन्धरपर्वतसमीपं गतस्तदा समुद्रसेतुनामानौ नृपौ योद्धुमागताविति रामायणकथा" नागादिनीकृतसंगरः नगे भवः नागः कपिः स आदिर्यस्य स नागादिः तेन नीकृतः अधःकृतः संगरः संग्रामो यस्य सः वानरादिनिवारितयुद्धः अत एव युधिरुधिरतः युधेः संग्रामस्य यो रुधिर्निवर्त्तनं तत्र रतः प्रसक्तः अथवा युधि संग्रामे यो रुधिः रोधनं बन्धनमित्यर्थः तत्र रतः वानरादिभिर्जीवग्राहं गृहीतः सन् प्रभुवचनतः प्रभो रामस्य वचनतः आदेशतः त्यागात् मोचनात् श्रेयोमार्गः श्रेयः कल्याणं शुभादृष्टं वा मार्गते इति तथा सुकृतभरतः पुण्यप्रभावात् "निजकल्याणाय रामभ्रात्रे लक्ष्मणाय तिस्रः कन्या ददौ"

इति तदङ्गनिबन्धनात् तस्य रामस्य अङ्गनिबन्धनात् कन्यार्पणेन कुटुम्बसम्बन्धात् भुवनजलधेर्मध्ये स्थिरान्तरभूभृता समं जज्ञे रामसंबन्धान्निर्भयो जात इति भावः ॥

कृष्णपक्षे—प्रभुवचनतः शक्रेन्द्रवचनतः सेतुः समुद्रः मुद्रया सहितः समुद्रः रूपेण सहितः सरूपः सरूपश्च समुद्रश्चेति सरूपसमुद्रौ तौ भजतीति सरूपसमुद्रभाग् स्वीयदेवचिह्नचिह्नितविशिष्टरूपवान् जलधिः त्यागात् स्वजनसंकोचेन वासयोग्यभूमित्यागात् युधिहधिरतः परिखारूपेण द्वारकायाश्चतुर्दिक्षु स्थितत्वेन संग्रामवारणे समर्थः जलदुर्गमयः अत एव नागादिनीकृतसंगरः गजादियुद्धनिवारकः जलदुर्गादौ गजादिना प्रवेशो भवति परन्त्वत्रागाधत्वेन न संभाव्यते तत् आसीदिति शेषः सुकृतभरतः पुण्यप्रभावतः तदङ्गनिबन्धनात् समुद्रसंबन्धात् श्रेयोमार्गः कल्याणेच्छुः भुवनजलधेः अदसीयभुवनसमुद्रस्य मध्ये स्थिरान्तरभूभृता जज्ञे ॥ ५४ ॥

तदनु दनुजै रक्षोलक्षैः समं मनुजैर्भुजै-
हरिचरणतश्चित्ते दूने दशास्य-महीपतेः ।
प्रतिहरिरवात् सैन्यस्यान्तश्चलाचलतावलात्,
स्वयमभिययावुर्व्यां गर्वं वहन्निव पर्वतः ॥ ५५ ॥

अन्वयः—तदनु दनुजैः रक्षोलक्षैर्मनुजैर्भुजैः समं हरिचरणतः दशास्य महीपतेः चित्ते दूने प्रतिहरिरवात् सैन्यस्यान्तश्चलाचलतावलात् स्वयम् पर्वत इव गर्वं वहन् उर्व्याम् अभिययौ ॥ ५५ ॥

व्याख्या—तदनु तत्पश्चात् दनुजैर्दानवैः रक्षोलक्षैः राक्षसानां लक्षैरनेकराक्षसैर्मनुजैर्मनुष्यैः भुजैः भुनक्ति भुवमिति भुजो नृपास्तैः समं सार्धम् हरिचरणतः हरेर्जिनेन्द्रस्य चरणतः निर्गलविहारतः दशास्यमहीपतेः कामनृपस्य चित्ते मनसि दूने विह्वले सति विचरति

जिनेन्द्रे कामो विह्वलो जात इति भावः प्रतिहरिखात् प्रतिहरेः कामस्य रवात् भयचीत्कारात् भयजनितसाध्वसरवात् सैन्यस्य तदीयसहायकस्य वसंतादेः चलाचलताबलात् चाञ्चल्यतः इतस्ततः पलायनतः स्वयम् प्रभुर्जिनेन्द्रः उर्व्याम् भूमौ पर्वत इव गिरिरिव गर्वं कामविजयोत्कर्षम् वहन् मनसि धारयन् अभिययौ विजहार ॥ अत्र पर्वतोपमानेन प्रभौ दुर्धर्षत्वम् स्थिरत्वं च वस्तु उपमालंकारव्यंग्यम् ॥

रामपक्षे—तदनु तत्पश्चात् लंकाधिष्ठिते रामे सति भुजैः भुञ्जन्ती भुजाभोग्यवन्तः तैर्महाभाग्यवद्भिर्मनुजैर्मनुष्यैः समं सह हरिचरणतः हरेः कपेश्चरणतः पादतः इतस्ततः सर्वत्रनिर्भीकप्रचारतो वा दशास्यमहीपते रावणनृपस्य चित्ते दूने चित्ते हृदये दूने खिन्ने क्लिष्टे सति दनुजैर्दानवै रक्षोलक्षैरनेकराक्षसैः समम् सह प्रतिहरिरवात् प्रतिहरित्वाभिमानकृतादेगात् चलाचलताबलात् चलाचलस्य भावश्चलाचलता अत्यन्तचंचलता तस्या बलात् तदाश्रयणात् पर्वत इव गर्वमहंकारं वहन् धारयन् बहुगर्विष्ठः सैन्यस्यान्तः सैन्यमध्ये स्वयम् स्वयमेव रावणः उर्व्याम् रणभूमौ अभिययौ अभिजगाम स्वयमेव रामेण योद्धुं संग्रामभूमिमवततारेतिभावः ॥

कृष्णपक्षे—हरिचरणतः हरेः कृष्णस्य चरणतः आचरणतः अविवेकाचारतः कंमादिवधत इत्यर्थः दशास्यमहीपतेर्जरासंधनृपस्य चित्ते मनसि दूने खिन्ने सति प्रतिहरिखात् जरासंधाज्ञातः सैन्यस्यान्तः चलाचलताबलात् चाञ्चल्यतः स्वयम् स्वयमेव पर्वत इव गर्वं वहन् उर्व्याम् संग्रामाङ्गणभूमौ ययौ कृष्णेन योद्धुमभिससारेति भावः ॥

सुतनयवरैः सत्रा कृत्यान्निपाकविमर्शनात्,
सहपद्‌पुगो देवादेशैः सरक्मिन्नृपोद्यमैः ।

यदि भुवि चरश्चेदीशोऽगाद् न शिष्टमतः स्थित—
मिति बहुजनोऽवादीत् सादी परोऽपि हिरण्यवान् ॥५६॥

अन्वयः—अकृत्या विपाकविमर्शनात् सुतनयवरैः सरुक्मिनृपोद्यमैः सत्रा देवादेशैः सह पदपुरः हिरण्यवान् सादी परोऽपि यदि भुविचर ईशः अगात् चेत् अतः शिष्टं न स्थितमिति बहुजन अवादीत् ॥ ५६ ॥

व्याख्या—अकृत्या विपाकविमर्शनात् अकृत्याः अकर्त्तव्यतायाः यो विपाकः परिणामः तस्य विमर्शनात् विचारात् सांसारिकविषयवासनोपभोगविपाकविवेकतः सुतनयवरैः सुष्ठु तनोत्यात्मककल्याणमिति सुतनयः तेषु वरः श्रेष्ठस्तैः सरुक्मिनृपोद्यमैः रुक्मं स्वर्णमस्यास्तीति रुक्मी रुक्मिणा सहितः सरुक्मी सचासौ नृपश्चेति तस्योद्यमः उत्साहस्तैः सत्रा सह ससुवर्णनृपोत्साहैः सह देवादेशैः प्रव्रज्याग्रहणसमयस्मारकदेवादेशैः सह तत्क्षणमेव पदपुरः पद्यतेऽस्मिन्निति पदं अक्षयस्थानम् तत्र पुरति अग्रे गच्छतीति तथोक्तः ईशः जिनेन्द्रः हिरण्यवान् यत्नवान् सादी परोऽपि गजाश्वादिवाहनोऽपि यदि भुविचरः पादचारस्सन् अगात् संसारात् विरक्तोऽभवत् अतः शिष्टम् न स्थितम् इति एवं बहुजनः अवादीत् अकथयत् ॥ ५६ ॥

रामपक्षे—अकृत्या विपाकविमर्शनात् अकृत्यायाः सीताहरणरूपाकार्यकृत्याया यो विपाकः संग्रामप्रवर्त्तनं प्रत्यर्पणं वेति परिणामस्तस्य विमर्शनात् विचारात् हेतोः देवादेशैः रावणनृपशासनैः सरुक्मिनृपोद्यमैः ससुवर्णराजोत्साहैः सुतनयवरैः सुष्ठुतनयः पुत्रः सुतनयः तत्र वरः श्रेष्ठः तैः मेघनादादिभिः सत्रा सह पद्यते गम्यतेऽस्मिन्निति पदम् रणस्थानम् तत्र पुरति अग्रे गच्छतीति सहपदपुरः आज्ञासमकालमेव कृताग्रगमनः यदि भुविचरः रणभूमिगतः चेत् तदा ईशः रावणोऽपि हिरण्यवान् स्वर्णमुकुटादिभूषितः सादीपरः गजा-

श्वादिवाहनसहितः अगात् संग्रामाङ्गणं प्रत्यचालीत् अतः सतनयरावणगमनात् शिष्टम् अवशिष्टम् न स्थितम् इति बहुजनः बालवृद्धादिः अवादीत् परस्परमवोचत् ॥

कृष्णपक्षे—अकृत्यायाः कृष्णकृतस्वजामातृवधरूपाक्रियायाः विपाकस्य विमर्शनात् विवेकात् सुतनयवरैः सत्रा सह देवादिपुत्रैः सह देवादेशैः जरासंधभूपाज्ञाभिः सरुक्मिनृपोद्यमैः रुक्मिनामकभूपोत्साहैः सह पदपुरः सोद्यमः "पदं व्यवसितत्राणमित्यमरः" बहुजनः अनेकजनः सुचिरः पादचारः यदि यदा तदा चेदीशः चेदिराजः शिशुपालः हिरण्यवान् सौवर्णकटककुण्डलवान् सादीश्वरः गजाश्वादिवाहनसहितः अगात् जरासंधेन सह कृष्णयुद्धाय रणभूमिं प्रत्यगच्छत् अतः शिष्टं न स्थितमित्यवादीत् ॥ ५६ ॥

प्रभुविहरणे लोकः स्वौकः सतीव्रतया-जना-
ऽवनघनमतिर्दाने शैलग्रहे-हितचिन्तकः ।
अपि समरसीमानं प्रापत् स-वासवभूपति-
र्हृदयदयितारागात् पञ्चाननः सदशाननः ॥५७॥

अन्वय –प्रभुविहरणे लोक जनावनघनमति स्वौक दाने सतीव्रतया शैलग्रहे हितचिन्तक स वासवभूपति हृदयदयितारागात् पचानन स दशानन अपि समरसीमानम् प्रापत् ॥ ५७ ॥

व्याख्या—प्रभुविहरणे प्रभोर्जिनेन्द्रस्य विहरणे विहारे जनावनघनमतिः जनानाम् अवनम् रक्षणम् तत्र घना निबिडा निरवच्छिन्ना निरंतरेत्यर्थः मतिर्बुद्धिर्यस्य स लोको जनः स्वौको दाने प्रभोर्निवासाय स्ववासभूमिसमर्पणे सतीव्रतया सत्वरेण अहमहमिकया उपर्युपरि इतिभावः शैलग्रहे शैलानां तोरणानां जिनेन्द्रणामागमनजन्यहर्षोत्कर्षसूचकमहोत्सवानां ग्रहे ग्रहणे विधाने "तोरणोर्ध्वे तु माङ्गल्यं दा-

मवन्दनमालिका स्तम्भादेः स्यादघो दारौ शिलेतिहैमः" यद्वा शैलानां जिनेन्द्राणामधिष्ठानेन पवित्रितानां ग्रहणे तत्र गमने तद्दर्शनार्थमितिशेषः हितचिन्तकः स्वात्मानुकूलविचारपरःमवासवभूपतिः वसु अस्यास्तीति धामवः स चासौ भूपतिश्चेति स वासवभूपतिः अनेकविधधनधान्यसमृद्धनृपः हृदये स्वमनसि दयितस्य मोक्षस्य प्रभोर्वा आसमंतात् रागोऽनुरागो यः स हृदयदयितारागस्तस्मात् चित्तगतप्रभु विषयकप्रीतितः अत एव पञ्चाननः पंचसु महाव्रतेषु आननः लक्ष्यो यस्य स यद्वा पञ्चसु पंचेन्द्रियेषु आननः संयमलक्ष्यो यस्य, सदशाननः दशया कालकृतविशेषरूपया गर्भवासजन्माद्यवस्थया सहितम् सदशम् आसमन्तादन्यते जीव्यते इति आननम् जीवनम् सदशं आननं यस्य स तथोक्तः गर्भादिवासजीवनकः समरसीमानम् सम् सम्यक्तया ऋच्छति गच्छति संसारादिति समरः विरक्तो जिनेन्द्रः तस्य सीमानं समीपम् प्रापत् अगमत् ॥ ५७ ॥

रामपक्षे— प्रभुविहरणे प्रभो रामस्य विहरणे रावणं प्रति युद्धायगमने अथवा प्रभोः सीतायाः विहरणे विशेषतो हरणे जनावनघनमतिः जनसाहाय्यदृढबुद्धिः लोकः सुग्रीवादिः स्वौकः स्वस्य ओकः आश्रयं दाने अर्पणे आश्रयदाने शैलग्रहे तदधिष्ठितपर्वतस्थितौ, हितचिन्तकः समर्थः रामहितसाधकः समरसीमानम् रावणयुद्धभूमिं प्रापत् अगमत् सवासवभूपतिः सवासवानां देवानामपि भूपतिः शासकः हृदयदयितारागात् हृदये मनसि दयितायाः सीतायाः रागात् प्रेमतः हेतोः पञ्चाननः सिंह इव लुप्तोपमा सदशाननः रावणः समरसीमानं रामरणभूमिं प्रापत् अयासीत् ॥ ५८ ॥

कृष्णपक्षे-प्रभुविहरणे प्रभोर्जरासंधस्य विहरणे साक्षात् गमने सति स्वौकः शोभनगृहवान् जनावनघनमतिः जनानां संग्रामगतशत्रुपक्षी-

यलोकानां आसमन्तात् वने हिंसने मारणे घना निबिडा मति र्बुद्धिर्यस्य स दाने ददत्यस्मिन्निति दानम् तस्मिन् युद्धे शैलग्रहे व्यूहग्रहे च हितचिन्तकः हितानुबन्धी लोकमैन्यजनः सतीव्रतया सत्वरतया समरसीमानं रणभूमिं प्रापत् अगमत् वासवभूपतिः सुमसृद्धनृपतिः सदशाननः शत्रुच्छिद्रान्वेषणाय दशसु दिक्षु आननं मुखं लक्ष्यं यस्य सदशाननस्तेन सहितः मदशाननः पंचाननः सिंह इवेति लुप्तोपमा सिंह इव सजरासंधः समरसीमानं रणभूमिप्रदेशम् प्रापत् अयासीत् ॥५७॥

अत्र लुप्तोपमा विरोधाभासश्चालंकारः ॥

एवं राज्यादिवारे स्फुरति मतिमतां संनियोगे नियोगे,
स्वामिन्याशु-प्रकाशे जयिनि समभवत् सप्रभावोऽनुभावः।
सर्वे गान्धर्वदेवाः पटुतरतरसा तूरमापूरयन्तः,
स्वस्या रागं वितेनुर्धनुषि धृतगुणे सैन्धवं प्राप्य तीरम् ॥५८॥

इति श्रीसप्तसंघाने महाकाव्ये राज्याङ्के महोपाध्यायश्रीमेघविजय-
गणिविरचिते श्रीभगवद्विहारवर्णने पञ्चमः सर्गः ॥

अन्वयः—एवं राज्यादिवारे मतिमतां सन्नियोगे नियोगे स्फुरति आशुप्रकाशे जयिनि स्वामिनि सप्रभावोऽनुभावः समभवत् धृतगुणे धनुषि सैन्धवं तीरं प्राप्य आसाद्य सर्वे गान्धर्वदेवाः पटुतरतरसा तूरमापूरयन्तः स्वस्याः रागं वितेनुः ॥ ५८ ॥

व्याख्या—एवमुक्तप्रकारेण राज्यादिवारे राज्याङ्के मतिमतां बुद्धिशालिनां सन्नियोगे सत्सु नियोगे नियोजनं प्रेरणं तस्मिन् नियोगे व्यापारे स्फुरति प्रकाशमाने सति आशुप्रकाशे आशु झटिति प्रकाशो नैर्मल्यं यस्य तस्मिन् जयिनि सर्वोत्कर्षेण वियमाने स्वामिनि जिनेन्द्रे सप्रभावः प्रभावेन सहितः समहिमा अनुभावस्तेजोविशेषः समभवत् धृतगुणे धृतः गुणो दयादाक्षिण्यादिर्येन तस्मिन् धनुषि धन्यते

शब्दायते इति धनुः अन्तरोँकाराद्युच्चारकः तस्मिन् अन्तर्ध्यानमग्ने प्रभाविति शेषः गान्धर्वदेवा गंधर्वा एव गान्धर्वा सर्वे गांधर्वाश्च ते देवाश्चेति गान्धर्वदेवाः पटुतरतरमा पटुतरेण कौशलेन तरसा झटिति स्वस्था निरुपद्रवाः तूरम् तूर्यम् आपूरयन्तः वादयन्तः सैन्धवं तीरं सिन्धुतटम् प्राप्य संगत्य रागं गानं वितेनुः सर्वे प्रभुरागेण गायन्तिस्म॥

रामकृष्णपक्षे—स्वामिनि रामे कृष्णे वा धृतगुणे धृतमौर्वीके धनुषि कोदण्डे सति अन्यत् सर्वं पूर्ववदवसेयम् ॥ ५८ ॥

अत्र श्लोके स्रग्धरावृत्तम् "म्रभ्नैर्यानां त्रयेण त्रिमुनियतियुता स्रग्धरा कीर्तितेय"मिति तल्लक्षणात् ॥

इतिश्री शास्त्रविशारद–कविरत्न–भट्टारकाचार्य–श्रीविजयामृतसूरीश्वरप्रणीतायां समसंधानमहाकाव्य–सरणीटीकायां पंचमः सर्गः ॥ ५ ॥



॥ अथ षष्ठः सर्गः ॥

अथ श्रीमदनेकान्त–कवचं कान्तमुद्वहन् ।
उदियाय जयश्रीमान् कामस्यारेर्भिदे विभुः ॥१॥

अन्वय — अथ कान्त श्रीमदनेकान्तकवचमुद्वहन् जयश्रीमान् विभु अरे: कामस्य भिदे उदियाय ॥ १ ॥

व्याख्या—अथानन्तरं कान्तं मनोज्ञं श्रीमदनेकांतकवचं श्रीः शोभासम्पत्तिः वैराग्यसंपत्तिर्वा यस्मिन् तत् अनेकान्तः स्याद्वाद एव कवचः वर्म तम् उद्वहन् धारयन् उद्वहमानः जयश्रीमान् जयाय श्रीमान् नृप इवेत्यर्थः विभुः प्रभुर्जिनेन्द्रः अरेः शत्रुभूतस्य कामस्य मनसिजस्य भिदे नाशाय निरासाय उदियाय उदयमभ्युदयं प्राप उद्युक्तो बभूवेति भावः ॥ १ ॥ श्लेषः ।

रामकृष्णपक्षे—अन्तयति शत्रुमिति अन्तः अनेकेषामन्तः अनेकान्तः स चासौ कवचश्चेति अनेकान्तकवचस्तमुद्वहन् धारयन् कामस्यारेः कामप्रधानस्य अरे रावणस्य अन्यत्र कामस्य प्रद्युम्नस्य शत्रोर्जरासन्धस्येत्यर्थः अन्यत्पूर्ववत् ॥ १ ॥

क्षितिः प्रिया सर्वराज्ञां तस्याः प्रियतमा-सुताः ।
यस्याः कृते क्षतिः पुंसां सा वै देही-रणोचिता ॥ २ ॥

अन्वय — सर्वराज्ञां क्षिति प्रिया तस्या सुता प्रियतमा यस्या कृते पुंसां क्षति. सा वैदेहीरणोचिता ॥ २ ॥

व्याख्या—सर्वराज्ञाम् राजन्ते राजः सर्वेषां सर्वेषु वा राजः सर्वराजस्तेषाम् सर्वत्रविराजमानाना क्षितिः क्षिणोति कामवासनां या सा क्षितिः योषित् प्रिया प्रियत्वेनाभिमता तस्याः क्षितेर्योषितः सुता दुहिता प्रियतमा अतिशयेन प्रिया यस्याः दुहितुर्योषितो वा कृते

निमित्तम् पुंसां पुरुषाणां क्षतिः सर्वतः इहलोकतः परलोकतश्च हानिः सा क्षितिः योषित् देहिनाम् देहवतां ईरणोचिता त्यागोचिता यस्याः कृते एव सर्वतोबन्धनं भवति साऽवश्यमेवत्यागार्हेति भावः ॥

रामपक्षे --सर्वराज्ञां सर्वेषां नृपानां क्षितिः पृथ्वी प्रिया प्रेयसी राज्ञां पृथ्वीपतितत्वात् तस्याः क्षितेः प्रियतमा अतिशयस्नेहपात्रा सुता कन्यका भवतीति शेषः यस्याः कृते दुहितुर्निमित्तं पुंसां पुरुषाणां क्षतिः "स्वसुताधर्षणन्न केऽपि सहन्त इत्यर्थः" सा वैदेही विदेहराजकन्यका पृथ्वीतनया रणोचिता रणाय तन्मोचनार्थं संग्रामाय उचिता अवश्यसंग्रामयोग्येति भावः ॥

कृष्णपक्षे—सर्वराज्ञां समस्तभूपतीनां क्षितिर्हिंसा प्रिया सर्वदा विजिगीषुतया हिंसाबद्धरुचिः चित्ताः तस्याः प्रियतमाः सुताः तस्या हिंसायाः प्रियतमा अत्यन्तप्रिया सुता सम्पदः यस्याः सम्पदः कृते पुंसां क्षतिर्हानिः सा वै हिंसा देहीरणोचिता देहिनाम् ईरणोचिता त्यागयोग्या ॥ २ ॥

राजानकीकृते यस्या राजा न कीर्तिराददे ।
सा नीता जानकी ये न तस्य श्रीर्जातकी स्थिरा ॥३॥

अन्वयः—यस्याः कृते राजानकी स्थिरा कीर्तिःराजा न आददे सा जानकी येन नीता तस्य श्रीर्जातकी ॥ ३ ॥

व्याख्या—यस्याः क्षितेः कृते निमित्तम् राजा राजते इति राट् तेन राजा नृपेण राजानकी राजमंडलोद्भवा कीर्त्तिः प्रशस्तिः स्थिरा निश्चला चिरस्थायिनी न आददे न जगृहे परस्परविवदमानास्सन्तो नष्टा इत्यर्थः सा जानकी लक्ष्मीर्येन नीता तदर्थमतिप्रसक्तिः प्रदर्शिता तस्य प्रसक्तस्य श्रीः सम्पत् जातकी दुहितेव किं वंशपरम्परा कर्त्री नैवेत्यर्थः ॥ ३ ॥

रामपक्षे—यस्याः जानक्याः कृते जानकीलाभाय जानकीस्वयंवरकाले कीर्तिःधनुरारोपेण जन्या समाख्या राजसमूहसंबन्धिनी राजा नृपेन न आददे नासादितवती अत्र राजेत्यकवचनेन केनापि रामव्यतिरेकेण न गृहीतेति वस्तुव्यज्यते सा जानकी येन रावणेन आनीता अपहृता तस्य रावणस्य श्री सम्पत् स्थिरा जातकी निश्चला भविन्री किम् नैव निश्चलेत्यर्थः ॥

कृष्णपक्षे पूर्वपक्षवदवसेयम् ॥ ३ ॥

अहो ! मोहोऽवमोहानां हानाङ्गं पुरकामिनी ।
कामिनीत्या निषिद्धापि स्वबुद्धयाङ्के निधीयते ॥ ४ ॥

अन्वयः—अवमोहाना अहो मोहः पुरकामिनी हानाङ्गम् कामिनीत्या निषिद्धाऽपि स्वबुद्धया अङ्के निधीयते ॥ ४ ॥

व्याख्या—अवमोहानाम् अवमुहयंति वैचित्यमुपगच्छंतीति अवमोहाः मोहिताः तेषाम् कर्त्तव्याकर्त्तव्यविवेकशून्यानां अहो मोहः अहो अविवेकिता यतः पुरकामिनी पुरं शरीरं कामयते न तद्धर्मादिकं किमप्यन्यदिति सा योषित् यद्वा पुरकामिनी पुरस्य कामिनी साधारणस्त्रीवाग्वधूरित्यर्थः हानाङ्गम् हानस्य त्यागस्य अङ्गम् प्रधानाङ्गम् त्याज्यम् तथा च कामिनीत्या कामिनां कामुकानां या नीतिः कामशास्त्रम् तया निषिद्धापि वर्जनीयत्वेन परिगणितापि "रक्तायां वा विरक्तायां रतिस्तस्यात्र विद्यत" इति निन्दाश्रुत्यापि स्वबुद्धया स्वकीयकामपरतन्त्रविचारशून्यमत्या अङ्के क्रोडे निधीयते स्थाप्यते कामिजनैरित्यहो मोहविलसितम् ॥

सर्वसाधारणत्वेनोपदेशगर्भरचनमेतत् ॥ ४ ॥

स्थानत्रयीं स्वतो मुक्त्वा तुर्यं मण्डलमानयत् ।
उपघातात् पराघाताज्जिगाम यावनं स्थलम् ॥ ५ ॥

अन्वयः—स्वतः स्थानत्रयीं मुक्त्वा तुर्यम् मण्डलम् आनयत् उपघातात् पराघातात् यावनं स्थलम् जिगाय ॥ ५ ॥

व्याख्या—स्वतः स्वयमेव स्थानत्रयीं चतुर्थपञ्चषष्ठगुणस्थानानां त्रयी स्थानत्रयी तां मुक्त्वा परित्यज्य तुर्यं मण्डलं अप्रमत्तगुणस्थानं आनयत् आश्रयत् उपघातात् अपकारात् पराघातात् तिरस्कारात् अथवा गमनात् विचरणादिति भावः यावनं यावनसंबन्धिनं स्थलम् यवनप्रायभूमिम् जिगाय विजितवान् मौनव्रतधारणाद्यवनाऽडम्बादिम्लेच्छस्थानादिषु विहारेण तेभ्यो दर्शनन्दत्वा पावयाञ्चकार यवनानिति तत्वम् ॥ ५ ॥

रामकृष्णपक्षे—स्वतः स्वयमेव स्थानत्रयीम् शानानामुपचयापचयहीनानां त्रयीम् मुक्त्वा परित्यज्य तुर्यं मण्डलं चतुर्थोपायम् विग्रहमित्यर्थः आनयत् स्वीकारमकरोत् उपघातात् अपकारात् पराघातात् तिरस्कारात् यावनं स्थलम् तौरुष्कम् जिगाय विजिग्ये ॥५॥

एवं भावनया देवश्छेत्तुं मोहमहाद्रुहम् ।
समारुह्य गुणस्थानमारेभे क्षपकोद्यमम् ॥ ६ ॥

अन्वय.—देवः एवं भावनया मोहमहाद्रुहं छेतुम् गुणस्थानं समारुह्य क्षपकोद्यमम् आरेभे ॥ ६ ।

व्याख्या—देवः जिनेन्द्रप्रभुः एवं पूर्वोक्तप्रकारं भावनया विचारेण मोहमहाद्रुहम् द्रुह्यतीति ध्रुक् महाँश्चासौ ध्रुक् महाध्रुक् मोह एव महाध्रुक् मोहमहाध्रुक् तम् मोहरूपमहद्वैरिणं छेत्तुम् भेत्तुम् निराकर्त्तुम् गुणस्थानम् अष्टमम् अनिवृत्तिबादरगुणस्थानम् समारुह्य समवलम्ब्य क्षपकोद्यमम् कर्मक्षयजनकोद्यमम् आरेभे मोहक्षयविधौ प्रसक्तो बभूव तन्निराकरणैकमना अजनि ॥

रामकृष्णपक्षे—देवः दीप्तिमान् रामः कृष्णश्च मोहमहाद्रुहम्

मोहयति स्वपराक्रमेण अधीरयतीति मोहः शत्रुः स एव महाद्रुहः द्रोहकारकः तम् छेत्तुम् उन्मूलयितुम् भावनया निराकरिष्णुमनसा गुणस्थानम् राज्ञां संधिविग्रहादिपट्स्थानम् समारुह्य स्वीकृत्य क्षपकोद्यमम् क्षपयतीति क्षपकः निवारकस्तस्य उद्यमम् उद्योगम् आरभे प्रारब्धवान् ॥ ६ ॥

जीवा-स्थानं चापरागं मनस्याधाय तत्पदम् ।
गुणाधिरोहे प्रबलं बलं स्वं समधारयत् ॥ ७ ॥

अन्वयः—जीवास्थानम् अपरागम् च तत्पदम् मनसि आधाय गुणाधिरोहे प्रबलम् स्वम् बलम् समधारयत् ॥ ७ ॥

व्याख्या—जीवास्थानम् आसमंतात्तिष्ठत्यस्मिन्निति आस्थानम् जीवानाम् आत्मनाम् आस्थानम् जीवास्थानम् द्वादशमं स्थानम् अपरागम् अपगतो रागो यस्मात् तत् अपरागम् क्षीणमोहम् रागादिरहितम् तत्पदम् रागरहितम् पदम् क्षपणकपदम् यद्वा जीवानां वास्तविकं स्थानम् गुणाधिरोहे गुणस्थानाधिष्ठाने प्रबलम् प्रधानम् स्वम् स्वकीयम् बलम् तपोबलम् समधारयत् धृतः ॥

रामकृष्णपक्षे—जीवानाम् धनुर्गुणानाम् आस्थानम् चापरागम् चापस्य धनुषः रागम् तत्पदं गुणे पदम् आधाय विचार्य गुणाधिरोहे गुणारोपणे प्रबलम् प्रकृष्टम् स्वम् आत्मीयम् बलम् ओजः समधारयत् समाचिनोत् ॥ ७ ॥

अजिह्मगधिया लक्षं किञ्चिदादाय धीरधीः ।
विव्याध बाधकं क्रोधाद् योधं सम-र-सं-गतः ॥ ८ ॥

अन्वयः— धीरधीः समरसंगतः अजिह्मगधिया किंचिल्लक्ष्यम् आदाय क्रोधात् बाधकं योधम् विव्याध ॥ ८ ॥

व्याख्या—धीरधीः धीरा अनुद्धता स्थिरेत्यर्थः धीर्बुद्धिर्यस्य स निश्चलमतिः शमरसं शान्तिरसं गतः शान्तिरसप्रधानः अजिह्मगधिया जिह्मे कापट्ये गच्छतीति जिह्मगा न जिह्मगा अजिह्मगा अकुटिला सा चासौ धीश्चेति अजिह्मगधीः कापट्यरहितबुद्धिः तया किञ्चित् किमपि मोक्षमिति शेषः लक्ष्यम् उद्देश्यम् आदाय गृहीत्वा क्रोधात् कोपात् बाधकम् तपोविघ्नकारकम् अथवा बाधक मोक्षबाधकं युद्धतीति योधस्तम् कामादिकम् कर्म वा विव्याध निवर्त्तयामास ॥

रामकृष्णपक्षे–समरसंगतः संग्रामाङ्गणगतः धीरधीः निश्चलमतिः रामः कृष्णश्च अजिह्मगधिया कापट्यरहितबुद्ध्या किंचित् किमपि विजयादिकम लक्ष्यमुद्देश्यम् आदाय गृहीत्वा क्रोधात् कोपात् बाधकं अपकारिणम् योधम् सैन्यम् विव्याध विध्यतिस्म ॥ ८ ॥

पश्चाननक्रियावीर्याद् वारये दुर्मनं गजम् ।
कारये-दानपयसा ससौरभं धरातलम् ॥ ९ ॥ युग्मम् ।

अन्वय –पश्चाननक्रियावीर्यात् दुर्मनं गजम् वारये दानपयसा ससौरभ धरातल कारये ॥ ९ ॥

व्याख्या—पंचाननक्रियावीर्यात् पंचाननस्य सिंहस्य या क्रिया गजमर्दनादिः तत्र यद्वीर्यम् शक्तिः तस्मात् "पञ्चास्यः केसरीहरिरित्यमरः" दुर्मनम् गजम् वारये दुःखेन मनुते इति दुर्मनस्तम् दुःसाध्यम् गजम गजतीति गजः मदनस्तम मदनम् वारये निरुन्धे अथवा पञ्चाननस्य शिवस्य या क्रिया मदनदहनादिरूपा तस्या वीर्यात् पराक्रमात् दुर्मनम दुःसाध्यम् गजम् मदनम् वारये निवारये दानजलेन उत्सर्गपयसा अथवा दानपयसा हस्तिमदजलेन "मदो दानमित्यमरः" ससौरभम् सौरभेन सुगन्धिना सहितम् सामोदम् धरातलम् क्षोणीतलम् कारये विधापये "मृत्युञ्जयः पञ्चमुखोऽष्टमूर्त्तिरिति हैमः ॥

रामकृष्णपक्षे—दुर्मनम् दुःसाध्यम् गजम् शत्रुहस्तिनम् वारये संग्रामभूमौ निवारये अन्यत् पूर्ववज्ज्ञेयम् ॥ ९ ॥

सदोपदेशनोद्देशात् स्फुरति स्वानगर्जिते ।
घटा गजानामगजा समजायत साप्यजा ॥ १० ॥

अन्वयः—सदोपदेशनोद्देशात् स्वानगर्जिते स्फुरति अगजा गजानां घटा सापि अजा समजायत ॥ १० ॥

व्याख्या—सदोपदेशनोद्देशात् देशस्य समीपमुपदेशं सन्निहितप्रदेशं तत्र नुदति गच्छतीति नोदः "कर्चरिविच्" तस्य देशः स्थानं तस्मात् सर्वदा सन्निहितप्रदेशगमनस्थानात् हेतोः स्वानगर्जिते सुष्ठु-आनस्य अन्तस्थितप्राणवायोः गर्जिते नासिकोच्छ्वासे स्फुरति गमनपरिश्रमेणोच्छ्वासपवनप्रचलिते सति अगजानां पार्वतीयानां अगजा वृक्षजा वार्क्षीघटा पंक्तिः सापि अजा निम्ना प्रमोदच्छायाहेतोर्नीचैः समजायत अभवत् ॥

अन्यपक्षे—सदोपदेशनोद्देशात् सदा सर्वदा यत् उपदेशनं अनुशासनं हितकथनं तस्य उद्देशात् अनुसंधानात् स्वानगर्जिते निर्घोषस्तनिते स्फुरति स्फुरमाणे सति गजानां गजन्ति माद्यन्तीति गजाः मदोन्मत्ताः तेषां घटा संहतिरपि गजानां हस्तिनां अगजा पर्वतोद्भवा एतेन मदोन्मत्तत्वं सूच्यते घटा पंक्तिरिव स्वानगर्जिते मारमेघयुक्ते स्फुरति सति अजा छागी समजायत रामकृष्णयोः सच्छासनश्रवणान्मदोद्धतानामपि जनानां संहतिः स्वानगर्जिते यथा गजपंक्तिः छागीव भयभीता भवति तथा भीता भवत् न च दुर्विनयमकार्षीत् गजानां स्वानभीरुत्वं प्रसिद्धमेवेति भावः ॥ १० ॥

इन्द्रः कामस्य कामस्य भीलां छेत्तुं न सोद्यमः ।
कन्दर्पः कं वहेद्दर्पं रोधने मनसोऽनसः ॥ ११ ॥

अन्वयः—इन्द्रः कामस्य कामपि मीलां छेत्तु न सोद्यमः अनसः कन्दर्पः मनसः रोधने कन्दर्पं वहेत् ॥ ११ ॥

व्याख्या—इन्द्रः परमैश्वर्यसम्पन्नो देवेन्द्रः कामस्य मदनस्य कामपि मीलां तन्द्रां सर्वविजयित्वान्निर्भयत्वाच्च सुखसुप्तिकाम् "तन्द्री निद्राप्रमीलयोरिति तन्द्री प्रमीलेति चोभयत्रामरः" छेत्तं भेत्तुं निराकर्तुमित्यर्थः न सोद्यमः न मत्व्यापारः तदीयतन्द्राभङ्गे सोद्यमोऽपि कोपि नास्ति किम्पुनः समर्थ इति भावः अनसः न सः असः न असः अनसः साक्षात् कन्दर्पः मदनः तस्यानङ्गत्वेन तद्वारणं सुकरमित्याश्रित्य अनस इति पदेन स एव शरीरभृद्देवेति कवेस्तात्पर्यम् मनसः वीतरागस्य जिनेन्द्रस्येति शेषः रोधने स्वाधीने करणे कन्दर्पमहङ्कारं वहेत् धारयेत् जिनेन्द्राणां मनोऽन्यथा कर्तुम्न तस्य कोऽपि प्रभावस्तेषां मारजितत्वादिति भावः अत्र संभावनायां लिङ् ॥

रामकृष्णपक्षे—इन्द्रः परमैश्वर्यवान् "राजा पतीन्द्रस्वामिनाथार्या इति हैमः" कामस्य स्वीयाभिलाषस्य "कामोऽभिलाषस्तर्षश्चेत्यमरः" कामपि मीलां मील्यते इति मीला "भावे गुरोश्च हल इत्यकारप्रत्ययस्ततष्टाप्" तां मीलां प्रसक्तिं विषयप्रवृत्तिं छेत्तुं पृथक्कर्तुं न सोद्यमः न सावधानः कन्दर्पः कं सुखं तेन तत्र वा दृप्यतीति "कर्त्तरि अच्" ॥ सुखमग्नः अनसः स्वयं मनसो रोधने मनःप्रसक्तिनिवारणे कं दर्पमहङ्कारं वहेत् न कमपि यः विषयप्रसक्तिं न रुणद्धि स मनसो रोधने कथं प्रभवेदेति भावः ॥ ११ ॥

ग्रहीतुमार्जुनी काङ्क्षा प्रवृत्ताङ्गाधिपस्थितिम् ।
चक्रवृत्तिं पराकृत्य भीमवृत्तेर्जयोऽभवत् ॥ १२ ॥

अन्वयः—अङ्गाधिपस्थितिम् ग्रहीतुम् आर्जुनी काङ्क्षा प्रवृत्ता चक्रवृत्तिम् पराकृत्य भीमवृत्तेः जयः अभवत् ॥ १२ ॥

व्याख्या—अङ्ग इति संबोधने "संबोधनेऽङ्गभोःप्याडिति हैमः" अधिपस्थितिम् अधिपाति सर्वतो जीवान् रक्षतीति अधिपः जिनेन्द्रः प्रभुः तस्य स्थितिः स्थीयतेऽस्यामिति स्थितिः प्रवृत्तिः प्रव्रज्यारूपा मर्यादा वा तदधिष्ठितभूमिर्वा तां ग्रहीतुं प्राप्तु अधिष्ठातुम्वा आर्जुनीपरिशुद्धा "वलक्षो धवलोऽर्जुन इत्यमरः" कांक्षा वाञ्छा प्रवृत्ता कथिता जिनेन्द्राधिष्ठिताम्प्रवृत्तिमुपलब्धुं शुद्धभावना विधेया तथाहि बकवृत्तिं बकस्य पक्षिविशेषस्य या वृत्तिः स्थितिः बको जलाशये मत्स्यादिजलचरजन्तुं ग्रहीतुं ध्यानमग्न इव तिष्ठति निश्चलतया परन्तु तस्य हृदये हिंसैव गरीयसी प्रवृत्तिरिति ता वृत्तिम् छद्मप्रवृत्तिम् पराकृत्य निरास्य भीमवृत्तेः भीमस्य शिवस्य वृत्तिर्निश्चलशुद्धध्यानस्य वृत्तिरिववृत्तिर्यस्य तस्य शुद्धाचारस्य जयोऽभवत् शुद्धाचारस्यैव जिनेन्द्राधिष्ठितस्थितौ प्रवृत्तिरूपा विजयप्राप्तिर्जातेति भावः। अर्वाग्दृष्टिर्नैकृतिकः स्वार्थसाधनतत्परः॥ शठो मिथ्याविनीतश्च बकवृत्तिरुदाहृतः' इति शब्दस्तोममहानिधिः॥

रामपक्षे—अधिपस्य रावणस्य स्थितिम् स्थानम् ग्रहीतुम् प्राप्तुम् आर्जुनी अर्जुनस्येयमार्जुनी अर्जुनसम्बन्धिनी प्रचुरप्रचुरा कांक्षा वांछा विधेयत्वेन प्रवृत्ता प्रवृत्तिविषयीकृता बकवृत्तिम् शैथिल्यप्रवृत्तिम् पराकृत्य निवर्त्य भीमवृत्तेः उद्धतवृत्तेर्जयोऽभवत् शत्रुषु शिथिलस्य नैव जयः किन्तु भीमवृत्तस्यैवेति तामाश्रयेदिति भावः॥

कृष्णपक्षे—अङ्गाधिपस्य कर्णनृपतेः स्थितिम् स्थानम् अधिष्ठानं ग्रहीतुम् आसादितुम् आर्जुनी अर्जुनसम्बन्धिनी कांक्षा स्पृहा प्रवृत्ता जाता "जरासंधकृष्णसंग्रामे कर्णमन्वेष्टुम् अर्जुनस्य कांक्षाऽभवदित्यर्थः" बकस्य राक्षसविशेषस्य या वृत्तिः सत्ता तां पराकृत्य पृथक्कृत्य भीमवृत्तेः भीमस्य वृकोदरस्य वृत्तिर्व्यापारस्तस्याः भीमव्यापारस्य जयोऽभवत् विजयो जातः बकासुरनिहन्तुः भीमसेनस्य जयो जात इत्यर्थः॥ १२॥

धर्मात्मजः स्वभावेन शल्यमुच्छेत्तुमादृतः ।
पुन्नागान् मनसोद्दिश्य न-कुलस्य पराक्रमः ॥ १३ ॥

अन्वयः—धर्मात्मजः स्वभावेन शल्यम् उच्छेत्तुम् आदृतः पुन्नागान् मनसा उद्दिश्य नकुलस्य पराक्रमः ॥ १३ ॥

व्याख्या—धर्मात्मजः साक्षाद्धर्मतनूजः यद्वा धर्मप्रवर्त्तकत्वात् साक्षाद्धर्मावतारः स्वभावेन निसर्गत एव शल्यम् पापम् उच्छेत्तुम् उद्धर्तुम् आदृतः कृतादरः उद्युक्तः नकुलस्य कुलाभिमानरहितस्य जिनेन्द्रस्य पुन्नागान् पुंसु नाग इवेति पुन्नागस्तान् पुरुषश्रेष्ठान् सर्वतोऽधिकान् मनसा उद्दिश्य अभिलक्ष्य प्राप्यत्वेन स्थिरीकृत्य पराक्रमः वीरता सर्वोच्चतालाभायप्रक्रमत इत्यर्थः ॥

रामपक्षे—धर्मात्मजः पुण्यात्मजः रामः स्वभावेन प्रकृत्या शल्यम् शल्यभूतं रावणरूपशत्रुम् उच्छेत्तुमुद्धर्तुम् आदृतः कृतादरः सावधानः नकुलस्य नास्तिकुलम् गृहं यस्य तस्य "कुलं वंशे देशे गृहे इति शब्दस्तोममहानिधिः" तदानीं रामस्य वनवासितया गृहाभावः पुन्नागान् पुरुषश्रेष्ठान् रावणादीन् उद्दिश्य अभिलक्ष्य पराक्रमः वीरता स्वभावमेव महतां यन्महता विरोधः शल्योद्धारे प्रवृत्तिश्चेति तत्त्वम् ॥

कृष्णपक्षे—धर्मात्मजः युधिष्ठिरः स्वभावेन स्वत एव शल्यम् शल्यनामानम् विपक्षनृपम् उच्छेत्तुम् निराकर्त्तुम् प्रहर्तुमित्यर्थः आदृतः कृतनिश्चयः स्वयमेव तद्धनने मादराभिनिवेशवान् नकुलस्य तन्नामकचतुर्थपाण्डवस्य पुन्नागान् पुमान्नाग इव इति पुन्नागः पुरुषश्रेष्ठस्तान् मनसा उद्दिश्य हृदयेनाभिलक्ष्य पराक्रमः वीरत्वम् पुरुषश्रेष्ठेन सह योध्धुं नकुलः पराक्रामतीति भावः ॥ १३ ॥

चिदंशं वेद दुर्भेदं मुख्यं तस्य विभेदने ।
शौचधर्मं पुरस्कृत्यादधात् सन्मार्गणेपणम् ॥ १४ ॥

अन्वयः—चिदंशं दुर्भेदं वेद तस्य विभेदने मुख्यं शौचधर्मम् पुरस्कृत्य सन्मार्गैषणम् अदधात् ॥ १४ ॥

व्याख्या—चिदंशं अंशयति समाघातयतीति अंशः समाघातकः चिदः अंशः चिदंशः तम् ज्ञानावरणम् सज्ज्ञानप्रतिबंधकमित्यर्थः दुर्भेदम् दुःखेन भिद्यते इति दुर्भेदम् कष्टभेदनसाध्यम् वेद जानाति तस्य चिदंशस्य ज्ञानावरणस्य विभेदने छेदने मुख्यम् प्रधानम् शौचधर्मम् पवित्रधर्मम् निर्मलाचारम् पुरस्कृत्य अग्रे विधाय सन्मार्गैषणम् सत्पथान्वेषणम् अदधात् अकृत ॥

रामकृष्णपक्षे—चिदंशं चेतनांशं दुर्भेदम् कठिनसाध्यम रावणरूपसामर्थ्यशालि आग्रचैतन्यवदित्यर्थः एवं जरासंधरूपमित्यर्थः तस्य विभेदने शौचधर्मम् निर्मलधर्मं स्याद्वादरूपम् पुरस्कृत्य स्वीकृत्य सन्मार्गैषणम् सद्वाणशोधनम् अधात् अकृत ॥ १४ ॥

त्यक्त्वाऽनुबन्धिनो लोके मिथ्याबोधस्थमानसान् ।
क्लीबान् स्त्रीसंप्रयोगेषु लीनांस्तस्थौ स सुस्थिरः ॥१५॥

अन्वय.—लोके मिथ्याबोधस्थमानसान् अनुबन्धिनः क्लीबान् स्त्रीसंप्रयोगेषु लीनान् त्यक्त्वा सुस्थिरः तस्थौ ॥ १५ ॥

व्याख्या—स जिनेन्द्रः लोके संसारे मिथ्याबोधस्थमानसान् मिथ्याबोधे असज्ज्ञाने तिष्ठतीति मिथ्याबोधस्थः स मानसो येषां तान् असज्ज्ञाननिरतान् क्लीबान् पुरुषार्थशून्यान् अथवा सज्ज्ञानेऽपि श्रद्धाभक्तिविरहितान् स्त्रीसंप्रयोगेषु स्त्रीसंगेषु लीनान् रतान् स्त्रीपरवशान् अनुबन्धिन अनुगतान् त्यक्त्वा विसृज्य सुस्थिरः स्वसंकल्पे दृढः तस्थौ स्थितवान् ॥ १५ ॥

स्त्रीभेदं नपुंसकभेदं च क्षयं कृत्वा सुस्थिरस्तस्थौ ॥

रामकृष्णपक्षे—मिथ्याबोधस्थमानसान् मिथ्याबोधे शत्रुकृतोप-

जापेन विपर्ययज्ञानस्थितमानसान् अनुबन्धिनः केवलं मुखप्रेक्षितयाऽनुगतान् न च प्रीत्येति भावः क्लीबान् तृतीयाप्रकृतीन् स्त्रीसंप्रयोगेषु लीना स्त्रीपराधीनान् यद्वा स्त्रीसंगतान् पुरुषार्थविरहितान् त्यक्त्वा निरस्य सुस्थिरः केनाप्यकंप्यस्तस्थौ स्थितः ॥ १५ ॥

हास्यादिषट्कव्यावृत्त्या प्रकृत्यास्थानयोग्यधीः ।
सपौरुषं रुषं मानं मायां प्रक्षिप्य मार्गभाक् ॥ १६ ॥

अन्वयः—हास्यादिषट्कव्यावृत्त्या प्रकृत्यास्थानयोग्यधीः स पौरुषम् रुषम् मानम् मायाम् प्रक्षिप्य मार्गभाक् ॥ १६ ॥

व्याख्या—स जिनेन्द्रः हास्यादिषट्कव्यावृत्त्या हासो रत्यरती भीतिर्जुगुप्सा शोक एव चेति निरुक्तषट्कस्य व्यावृत्त्या परित्यागेन प्रकृत्यास्थानयोग्यधीः प्रकृतिः कर्मस्वभावः तस्या आस्थाने गुणस्थाने योग्या निरन्तरा धीर्यस्य स तत्स्थानार्हबुद्धिः पौरुषम् बाह्यशौर्यम् रुषम् क्रोधम् मानम् अहंकारम् मायाम् कापट्यम् मिथ्याबुद्धिमित्यर्थः प्रक्षिप्य क्षय कृत्वा मार्गभाक् मोक्षमार्गभाक् जात इति शेषः पूर्वश्लोके स्त्रीभेदनपुंसकभेदश्च त्यक्त्वेत्युक्तम् इदानीम्पुरुषभेदश्च तत्याजेत्युक्तम्भवतीति भावः ॥

रामकृष्णपक्षे—हास्यादिषट्कानां हासक्रोधशोकभयजुगुप्साविस्मयरूपाणां स्थायीभावानां व्यावृत्त्या निवारणेन प्रकृत्या स्वभावेन स्थाने प्रशमस्थाने योग्या निर्मला धीर्यस्य स योग्यस्थानाभिनिवेशनिर्मलचेतस्कः रामः कृष्णो वा सपौरुषम् सबलं यथास्यात्तथा रुषम् मन्युम् मानम् "स्वाभीष्टश्लेषचीक्षादिविरोधी मान उच्यते" इत्युक्तलक्षणम्, मायाम् कापट्यं च प्रक्षिप्य निराकृत्य मार्गभाक् वीरमार्गभाक् युद्धशास्त्राम्नातपथप्रवृत्तो बभूवेति शेषः ॥ १६ ॥

दृष्टोऽन्यैः क्वापि गूढात्मा सर्वाशाजयकर्मणा ।
गणाश्रितः स्वभावैक–सपृथक्त्ववितर्ककृत् ॥ १७ ॥

अन्वयः—सर्वाशाजयकर्मणा गूढात्मा क्वापि अन्यैः दृष्टः गणाश्रितः स्वभावैकसपृथक्त्ववितर्ककृत् ॥ १७ ॥

व्याख्या—सर्वाशा जयकर्मणा सर्वाश्च ता आशा मनोरथाः तासां जयकर्मणा विजयेन विजितत्वेन परित्यागेनेत्यर्थः "कांक्षा शंसा गर्ध-वांछाशीच्छेहातृण्मनोरथा इति हैमः" यद्वा सर्वाशानां समस्तदिशानां जयकर्मणा स्वविशुद्धाचारेण कैश्चिदपि विषयजालैरपराजितेनेति भावः "काष्ठाशादिक् हरित् ककुभिति हैमः" गूढात्मा गूढः गुप्त आत्मा यस्य स केनापि तत्त्वेनाग्रहीतः अलक्षितः क्वापि कुत्रापि अन्यैः कैश्चिन्महा-भाग्यशालिभिः दृष्टः तत्स्वरूपेण विज्ञातः गणाश्रितः गणैः साधुसंघै-राश्रितः कृताश्रयः स्वभावैकसपृथक्त्ववितर्ककृत् स्वभावेन स्वप्रकृत्या एकः अनाश्रित इति स्वभावैकः स चासौ सपृथक्त्ववितर्ककृच्चेति स तथोक्तः अपूर्वकरणमारुह्य सविचारपृथक्त्ववितर्कयुक्तशुक्लध्यानं प्रापेति भावः लोभस्य जयाय पृथक्त्वस्य खण्डं खण्डं विधाय सपृ-थक्त्ववितर्कनामकशुक्लध्यानविशेषकृत् बभूवेति तत्त्वम् ॥

रामकृष्णपक्षे—गूढात्मा अप्रकटितस्वसामर्थ्यः शत्रुभिः क्वापि युद्धसमये दृष्टः अवलोकितः सर्वासाजयकर्मणा सर्वदिग्विजयेन अथवा युद्धसमये सर्वदिक्षु प्रहारविधानेन जयकर्मणा गणेन सैन्येन आश्रितो-ऽधिष्ठितः स्वभावैकसपृथक्त्ववितर्ककृत् स्वभावेनैव शत्रूणां पृथ-क्त्वस्य परस्परभेदस्य वितर्ककृत् विचारकारकः आसीदिति शेषः१७

क्वचिदात्मैषणपरं द्रव्यमेकं क्वचिद्विदन् ।
गुणं विभावयन् धैर्यात् पर्याये रमतेस्म सः ॥ १८ ॥

अन्वयः—क्वचिदात्मैषणपरम् क्वचित् एकं द्रव्यं विदन् धैर्यात् गुणं विभावयन् स पर्याये रमतेस्म ॥ १८ ॥

व्याख्या—स जिनेन्द्रः क्वचित् कुत्रापि आत्मैषणपरम् आत्मनः स्वस्वरूपस्य यदेषणम् गवेषणम् तत्परम् तदधीनम् क्वचित् कापि एकम् द्रव्यम् द्रव्यपदार्थम् विदन् जानन् धैर्यात् धीरतातः गुणम् द्रव्यगुणम् विभावयन् विचारयन् पर्याये साधुधर्मे च रमतेस्म विहरतिस्म ॥ १८ ॥

रामकृष्णपक्षे—आत्मनः देहस्य "आत्मस्वरूपे यत्ने देहे मानसे बुद्धाविति शब्दस्तोममहानिधिः" एषणमन्वेषणम् सर्वतोरक्षणम् तत्परः शरीररक्षासावधानः यद्वा आत्मनः स्वस्य यदेषणः लोहमयो बाणस्तत्परः बाणप्रियः क्वचनापि एकं द्रव्यम् प्रधानभूतं तद्द्रव्यम् धनादिकम् विदन् लभमानः धैर्यात् गुणम् धनुर्मौर्वीम् विभावयन् विचारयन् पर्यालोचयन् पर्याये अवसरे 'पर्यायोऽनुक्रमे प्रकारे अवसरे निर्माणे इति शब्दस्तोममहानिधिः" रमतेस्म क्रीडतिस्म ॥ १८ ॥

अपृथक्त्वमवी(वि)चारं सवितर्कगुणान्वितम् ।
पुरस्कृत्य तिरस्कृत्य तदधःस्थायिभावनाम् ॥ १९ ॥

अन्वयः—अपृथक्त्वम् अविचारम् सवितर्कगुणान्वितम् पुरस्कृत्य तदधःस्थायिभावनाम् तिरस्कृत्य धीराः किंचक्रुर्युरित्युत्तरेणान्वयः ॥ १९ ॥

व्याख्या—अपृथक्त्वम् अविचारम् अविचारशुक्लध्यानविशेषः तम् सवितर्कगुणान्वितम् सवितर्कगुणसहितम् पुरस्कृत्य अग्रे कृत्वा तदधः स्थायिभावनाम् तन्नीचस्थबुद्धिम् तिरस्कृत्य निवार्य धीराः किन्न कुर्युरित्युत्तरेणान्वयः ॥

रामकृष्णपक्षे—अपृथक्त्वम् अभिन्नत्वम् अविचारम् विचाररा-हित्यम् सवितर्कगुणान्वितम् सवितर्कगुणेन सदनुमीतगुणेन अन्वितं

युक्तम् पुरस्कृत्य अग्रे विधाय तदधः स्थायिभावनाम् तद्भिन्नरूपविचारणाम् तिरस्कृत्य निरस्य धीराः किन्नकुर्युरित्युत्तरेण सम्बन्धः१९

यत् सूक्ष्मसंपरायस्य स्थाने बादरसंगते ।
संजाते-नवमस्थाने धीराः कुर्युर्न किं पुनः ॥ २० ॥

अन्वयः—यत् सूक्ष्मसंपरायस्य बादरसंगते स्थाने नवमस्थाने संजाते धीराः पुनः किन्न कुर्युः ॥ २० ॥

व्याख्या—यत् तत्पश्चात् बादरसंगते नवमगुणस्थाने जाते बादरसंपरायाभिधाने नवमगुणस्थानसहिते सूक्ष्मसंपरायस्य स्थाने तन्नामके दशमे गुणस्थानके संजाते प्राप्ते सति धीराः विज्ञाः किम्पुनः किं किं न कुर्युः तत्स्थानं प्राप्य काँश्कान् मोहनीयकर्मभेदान् न हन्युः सर्वानेव विजितान् विदध्युरिति भावः ॥

रामकृष्णपक्षे—अदरसंगते भयरहिते सूक्ष्मसंपरायस्य गुप्तयुद्धस्य " युद्धायत्योः संपराय इत्यमरः " स्थाने अनवमस्थाने अरक्षके स्थाने संजाते प्राप्ते सति धीराः यद्धकौशलिनः किन्न कुर्युः सर्वम् संपादयेरन् ॥ २० ॥

मुक्तेऽमुक्ते विमृश्यैव बलमायोजयञ्जयम् ।
लभेत चेतःप्रसरं प्राप्य जाप्यस्थिराशयः ॥ २१ ॥

अन्वयः—मुक्ते अमुक्ते विमृश्यैव बलम् आयोजयन् स्थिराशयः चेतःप्रसरम् प्राप्य जयम् लभेत ॥ २१ ॥

व्याख्या—मुक्ते परित्यक्ते अमुक्ते अपरित्यक्ते संगृहीते विमृश्य विचार्य अयं त्याज्योऽयं संग्राह्य इति सम्यग् विविच्य बलम् स्वशक्तिम् आयोजयन् संचिन्वन् जाप्यस्थिराशयः जापे जपनीये निजमनने स्थिराशयः चेतः प्रसरम् चित्तप्रकाशम् प्राप्य लब्ध्वा जयं विजयम् लभेत प्राप्नुयात् ॥ २१ ॥

रामकृष्णपक्षे-मुक्ते अविश्वास्येन परित्यक्ते अमुक्ते संग्राह्ये विषये विमृश्यैव पुनः पुनर्विचार्यैव बलम् सैन्यम् आयोजयन् संगृह्णन् जाप्य-स्थिराशयः जाप्ये मननीये स्थिराशयः निश्चलचित्तः सुनिश्चलविचार-वान् चेतः प्रसरम् स्वमनोबलम् प्राप्य अधिगत्य जयमौत्कर्ष्यम् लभेत आसादयेत ॥ २१ ॥

वीतरागः सद्शमा—दादित्यरुचिरुद्गतः ।
जितकाशी सुनासीर—संगमात् समदीप्यत ॥ २२ ॥

अन्वयः—वीतरागः सद्शमात् आदित्यरुचिः उद्गत जितकाशी सुना-सीरसंगमात् समदीप्यत ॥ २२ ॥

व्याख्या—वीतरागः विशेषेण इतः गतः रागः सांसारिकवि-षयवासनाभिलाषो यस्मात् स रागरहितः सदशमात् दशमगुणस्थान-मारभ्य आदित्यरुचिः दिवाकरकांतिः उद्गतः प्रोद्भूतः दिवाकर इव सर्वप्रकाशकारकः सर्वपर्यवेक्षक इति भावः अत एव जितकाशी जितेन जयेन काशते दीप्यते इति जितकाशी प्राप्तोत्कर्षः सुनासीर-संगमात् महेन्द्रसंगात् तदानीमिन्द्रः समभ्येति इति तत्संगमात् सम दीप्यत प्रदीप्तो जात इत्यर्थः ॥

रामकृष्णे यथा शृणु । विशेषेण इतः प्राप्तः रागः शत्रुविषय-काप्रीतिर्येन स वीतरागः सदशमात् सीदत्यभिन्निति सद् युद्धम् तस्य अशमात् अशान्तेः अनिवर्तनात् आदित्यरुचिः सूर्यकांतिः उद्गतः उद्भूतः सूर्य इवामहातेजा अभवत् जितकाशी जयाभिलाषी सुना-सीरसंगमात् सुष्ठु नासीरम् अग्रगमनं यस्य स सुनासीरः "नासीरम् अग्रसरे सेनामुखे चेति शब्दस्तोममहानिधिः" तस्य संगमात् संमेल-नात् समदीप्यत अरोचत ॥ २२ ॥

येन स्वयं संबोधेन स्वामिनश्च–रणाश्रयः।
कृतस्तेनाद्वैतभावोऽन्वभाव्यत स्वनन्दनात् ॥ २३ ॥

अन्वयः—येन स्वयं सम्बोधेन स्वामिनः चरणाश्रयः तेनाद्वैतभावः कृतः स्वनन्दनात् अन्वभाव्यत ॥ २३ ॥

व्याख्या—येन स्वयं सम्बोधेन येन यद्रूपेण स्वयमात्मनैव न तु कस्याप्युपदेशेन सम्बोधेन सम्यक्ज्ञानेन स्वामिनः जिनेन्द्रस्य चरणाश्रयः चरणस्य चारित्र्यस्य आश्रयः ग्रहणम् तेन तद्रूपणैव अद्वैतभावः द्विधा इतं भेदं गतं द्वीतम् तस्य भावः द्वैतम् तन्नास्ति यस्मिन् स अद्वैतः स चासौ भावश्चेति अद्वैतभावः सजातीयादिभेदशून्यकेवलस्वात्मानुभवः कृतः विहितः स्वनन्दनात् स्वम् आत्मानम् नन्दयति कृतार्थयतीति स्वनन्दनस्तस्मात् यद्वा स्वस्मिन् आत्मनि नन्दति स्वात्मानुभवेन तुष्यतीति स्वनन्दनस्तस्मात् अन्वभाव्यत अयुज्यत ॥

रामपक्षे—येन सम्बोधेन येन हनुमद्दौत्येन सीतास्थितिसंबोधेन सीता रावणगृहे तिष्ठतीति ज्ञानेन स्वामिनो रामस्य च रणाश्रयः रणस्य संग्रामाङ्गणस्य आश्रयः आश्रयणम् युद्धभूमिगमनम् तेन युद्धभूमिगमनेन अद्वैतभावः तथा सर्वतः स युयुधे यथा रणे रामाद्वैतभावः कृतः प्रतिपक्षिभिः यत्र तत्र राममेवाक्षिष्ट इति रामाद्वैतमभूदिति भावः स्वनन्दनात् स्वम् आत्मानन्नन्दयति हर्षयतीति स्वनन्दनो लक्ष्मणस्तस्मात् अन्वभाव्यत अन्वसर्पत लक्ष्मणस्तदान्वगदिति भावः ॥

यद्वा येन संबोधेन कामपरतंत्रेण स्वामिनो राक्षसराजस्य रावणस्य च रणाश्रयः रणगमनम् तेन रात्रणेन आ समंतात् द्वैतभावः रामेण सह विपक्षभावः कृतः रामेण सहयोद्धुम् प्रवृत्ते स्वनन्दनात् स्वस्यात्मनो नन्दनस्तनयः "नन्दनः पुनः उद्वहोऽङ्गात्मजः सूनुस्तनयोदारकः सुत इति हैमः" तस्मान्मेघनादात् अन्वभाव्यत अनुगतः ॥

कृष्णपक्षे—येन कृष्णेण सम्बोधेन सम्यक् ज्ञानेन स्वामिनः सतोऽपि रणाश्रयः रणस्य संग्रामस्य आश्रयः गमनम् तेन कृष्णेन आसमन्तात् द्वैतभावः भेदबुद्धिः एते मम शत्रव इति मतिः कृतः विहितः स्वनन्दनात् स्वतनयात् प्रद्युम्नादितः अन्वभाव्यत अनुगतो जात इत्यर्थः ॥ २३ ॥

यो वैपरीत्यादीशोऽपि कृतकैतवसंगरः ।
तं मनोरथतो दूरान्मेने व्यसनिनं प्रभुः ॥ २४ ॥

अन्वयः - यः वैपरीत्यात् ईशोऽपि कृतकैतवसंगरः तम् व्यसनिनम् प्रभु मनोरथतो दूरात् मेने ॥ २४ ॥

व्याख्या—यो मोहादिर्व्यसनः ईशोऽपि जिनेन्द्रेऽपि वैपरीत्यात् अयोग्यत्वात् कृतकैतवसंगरः कृतो विरचितः कैतवमगरः कपटयुद्धो येन स सर्वपूज्ये तस्मिन् छद्मयुद्धमकृतेति भावः, विहितछद्मयुद्धः तम् व्यसनिनम् व्यसनासक्तम् मोहादिकम् प्रभुर्जिनेन्द्रः मनोरथतो मनोरथादपि दूरात् पृथक् मेने बुबुधे मोहादिर्न कदाचित् प्रभोर्मनोरथ पथपथिको बभूवेति भावः ॥

रामपक्षे—यः रावणः ईशे राजनि रामे वैपरीत्यात् अनपराधादपि कृतकैतवसंगरः विरचितान्तर्धानादियुद्धः तम् रावणम् व्यसनिनं व्यसनासक्तम् प्रभुः रामः मनोरथतः मनोरथादपि सीतालाभरूपाभिलापात् दूरात् पृथक् मेने मन्यतेस्म ॥

कृष्णपक्षे—यः जरासंधः ईशोऽपि कृष्णोऽपि कृतकैतवसंगरः विहितकपटयुद्धः तम् व्यसनिम् व्यसनाधीनम् मनोरथतः अभिलाषात् कृष्णपराजयरूपात् दूरात् मेने बहुदूरम्मनुतेस्म ॥ २४ ॥

आप्तः पुरिमतालाख्यसख्योपवनधारणाम् ।
काञ्चनाद्रिक्रियामाधात् समाधानोपदेशतः ॥ २५ ॥

अन्वयः—पुरिमतालाख्यसख्योपवनधारणाम् आप्तः समाधानोपदेशतः काञ्चनाद्रिक्रियाम् आधात् ॥ २५ ॥

व्याख्या—आदीश्वरपक्षे । पुरिमतालाख्यसख्योपवनधारणां पुरिमतालाख्यस्य पुरिमतालनाम्नः अयोध्यायाः शाखानगरस्य सख्यम् मित्रम् सन्निहितमित्यर्थः यदुपवनम् उद्यानम् तत्तथोक्तम् आप्तः प्राप्तः तदुपवनस्थः समाधानोपदेशतः समाधानस्य समाधेः य उपदेशः महिमा तस्मात् अथवा शमस्य शान्तेः यदाधानम् स्वस्मिन्नाश्रयणम् तस्य य उपदेशः प्रभावस्तस्मात् काञ्चनाद्रिक्रियाम् काञ्चनाद्रेः स्वर्णपर्वतस्य सुमेरोर्या क्रिया निश्चलता तां स्थिरताम् अधात् अदीधरत् ॥ २५ ॥

जिनेन्द्रचतुष्टयपक्षे । आप्तः पुरिमतालाख्यसख्योपवनधारणाम् पुरिमताम् नगरवासिनाम् आसमन्तादलति भूषयति आत्मानं यत्र यद्वाऽऽलति खेलति यत्र सा आला खेला सा ख्यायते यत्र तत् पुरिमतालाख्यम् नागरजनमनोरमस्थानम् तस्य सख्योपवनम् सदृशमुद्यानम् तत्र धारणाम् स्थितिम् आप्तः प्राप्तः समाधानस्य उपदेशतः समाधेः शमाश्रयस्य वा उपदेशतः प्रभावतः काञ्चनाद्रिक्रियाम् सुमेरुदृढताम् अगात् आश्रयत् ॥ २५ ॥

रामकृष्णयोः पक्षेऽप्येवमेवावसेयम् ॥ पार्श्वनाथस्य वारणस्या धातकीतरुतले केवलज्ञानमुत्पन्नम् नेमिनाथस्य रैवतेऽद्रौ वेतसतरुतले शान्तिनाथस्य हस्तिनापुरे सहस्राम्रवणे नन्दिवृक्षतले ॥ ऋजुवालुकानदीतटे शालवृक्षतले महावीरस्य केवलज्ञानम् ॥ २५ ॥

संपन्ने सकलेऽध्यक्षे लोकालोकप्रकाशिनि ।
देवदुन्दुभयो नेदुर्दिवि दुर्नयवारकाः ॥ २६ ॥

अन्वयः—लोकालोकप्रकाशिनि सकलेऽध्यक्षे सम्पन्ने सति दुर्नयवारकाः देवदुंदुभयः दिवि नेदुः ॥ २६ ॥

व्याख्या—लोकालोकप्रकाशिनि लोक्यते दृश्यते सर्वैरिति लोकः सर्वप्रत्यक्षः न लोक्यते प्रत्यक्षतया न गृह्यते जनैरित्यलोकः तयोर्द्वन्द्वः लोकालोकम् प्रकाशितुशीलमस्येति लोकालोकप्रकाशी तस्मिन् करामलकवत् परोक्षापरोक्षसकलप्रकाशकारके सकलज्ञाने केवलज्ञाने सम्पन्ने प्राप्ते सति प्रभोः केवलज्ञाने समापन्ने सति दिवि देवलोके आकाशे वा दुर्नयवारकाः दुर्नीतिनिवारकाः देवदुन्दुभयः देवतूर्याणि नेदुः सस्वनुः प्रभौ केवलज्ञानोत्पन्ने सति हर्षाद्देवानाम् वाद्यानि वदन्तिस्मेति भावः ॥

रामकृष्णपक्षे—सकले समग्रे अध्यक्षे नृपस्य छत्रधारणादिव्यवहारेऽधिकृते अधिष्ठिते सति कथंभूते लोकालोकप्रकाशिनि सन्निहितासन्निहितप्रदेशोद्योतकारके सर्वत्र व्यापकशासनशासिते दुर्नयवारका दुराचारनिवारका देवदुन्दुभयः राजतूर्याणि दिवि आकाशे नेदुः शब्दस्याकाशाश्रयत्वादाकाशे सस्वनुः ॥ २६ ॥

स-कलीश्वरतां प्राप्तोऽलङ्कारवशमाश्रितः ।
स्वामी जगाद स्याद्वादपद्धत्या मधुरं वचः ॥ २७ ॥

अन्वयः—सकलीश्वरतां प्राप्तः अलंकारवशमाश्रितः स्वामी स्याद्वादपद्धत्या मधुरं वचः जगाद ॥ २७ ॥

व्याख्या—सकलीश्वरतां प्राप्तः सकलम् समस्तमस्त्यस्मिन्निति सकली सकलिनामीश्वरः सकलीश्वरस्तस्य भावस्तत्ता ताम् समग्रप्रभुताम् प्राप्तः अधिगतः समस्तविश्वप्रभुः अलंकारवशमाश्रितः अलंकाराणि भूषणानि वसन्ति अधितिष्ठन्त्यस्मिन्निति इत्यलंकारवशस्तम् अनेकशोऽलंकृतसमवसरणभूमिमाश्रितः समधिष्ठितः स्वामी जिनेन्द्रप्रभुः

स्याद्वादपद्धत्या अनेकान्तवादसरण्या मार्गेण जैनशासनानुसारेणेत्यर्थः मधुरम् सर्वसाधारणरोचकम् वचः वचनम् जगाद उपदिदेश ॥

रामकृष्णपक्षे—कलीश्वरताम् कलेर्युद्धस्य ईश्वरतां विजयतां मुख्यतां वा प्राप्तः स रामः कृष्णो वा लंकारवसमाश्रितः लंकायाः रावणराज्यधान्याः यो रवः शब्दस्तमाश्रयतीति तथा लंकाशब्दश्रोता अथवा लंका इति रवः अभिधानं यस्य तन्नगरसमाश्रितः लंकाधिष्ठितः सन् अन्यत्र अलंकारवशमाश्रितः अनेककौस्तुभादिभूषणवशगः स्वामी पृथ्वीपतिः स्याद्वादपद्धत्या अनेकान्तवादरीत्या मधुरं वचः श्लक्ष्णं वचनं जगाद उवे ॥ २७ ॥

विशालशालरचना व्यूहरक्षाविशेषिताः ।
चैत्यपादपसंपन्ना दक्षा यक्षा वितेनिरे ॥ २८ ॥

अन्वयः—दक्षा यक्षाः चैत्यपादपसम्पन्नाः व्यूहरक्षाविशेषिताः विशालशालरचनाः वितेनिरे ॥ २८ ॥

व्याख्या—दक्षाः प्रवीणाः पटवः यक्षाः देवविशेषाः चैत्यपादपसम्पन्नाः चैत्यपादपेन महावृक्षेण देवाधिष्ठानवृक्षेण वा यद्वा जिनसभास्थपादपविशेषेण अथवा चैत्येन देवस्थानेन पादपेन च सम्पन्नाः सहिताः व्यूहरक्षाविशेषिताः व्यूहस्य जनसमूहस्य या रक्षा निर्बाधस्थितिस्तया विशेषिताः शोभिताः जनानामसंकीर्णस्थितिविशेषमण्डिता इत्यर्थः विशालशालरचना विशालः प्रकाण्डो यः शालः गेहः तस्य रचना निर्माणं अथवा विशेषेण शालते शोभते यत् शालम् गृहम् तस्य रचना अथवा विशालो महान् यः शालः प्राकारः तस्य रचना यद्वा विशालः यः शालः वृक्षस्तस्य रचना विधानानि वितेनिरे विस्तारयामासुः यक्षास्तत्र देवा देवस्थितियोग्यां सभां वितेनिरे ॥

रामकृष्णपक्षेऽपि साधारणम् ॥

यद्वा दक्षाः जिनेन्द्रविषयकातिशयभक्तिमन्तः यक्षाः देवविशेषाः विशालशालरचनाः विशालानां शालानां रत्नस्वर्णरूप्यमयानां प्राकारत्रयाणां या रचनानिर्मितिः ताः चैत्यपादपसम्पन्नाः चैत्याभिधानो यः पादपः अशोकवृक्षः तेन सम्पन्ना सहिता सभा इति शेषः वितेनिरे विस्तारयामासुः ॥ २८ ॥

नीराजनक्रियाप्यर्चानुरागेण विधीयताम् ।
विधेयास्त्राद्युपास्यायेत्यूचे वाग् विजयैषिभिः ॥ २९ ॥

अन्वयः—विधेय! अस्त्राद्युपास्याय अनुरागेण नीराजनक्रियाप्यर्चा विधीयताम् इति विजयैषिभिः वाग् ऊचे ॥ २९ ॥

व्याख्या—हे विधेय! विधानकारक! अस्त्राद्युपास्याय अस्त्रादिनिराकृत्य अनुरागेण प्रेम्णा नीराजनक्रिया आरात्रिकक्रिया अर्चा पूजापि प्रभोरिति शेषः विधीयताम् क्रियताम् इति एवं प्रकारेण विजयैषिभिः विजयेच्छुभिर्देवैरिति शेषः वाग् ऊचे जगदे ॥ २९ ॥

रामकृष्णपक्षेऽप्येवमेव ।

विपक्षपक्षे विक्षिप्तैः करणैर्बहुहेतिभिः ।
प्रपन्नेऽप्यवधिमानं वर्षाः सुमनसो व्यधुः ॥ ३० ॥

अन्वयः—बहुहेतिभिः करणैर्विपक्षपक्षे विक्षिप्तैः अवधिमानम् प्रपन्ने अपि सुमनसो वर्षा व्यधु ॥ ३० ॥

व्याख्या—प्रपन्ने स्थिते विपक्षपक्षे समवसरणभूमौ विघ्नभूते तृणकण्टकशर्करादिरूपे विद्यमाने सति बहुहेतिभिः विपुलतेजस्कैः विक्षिप्तैः विक्षेपकारकैः निःसारकैः करणैः करोतीति करणो वायुः तैः वायुकुमारैः अवधिमानम् सर्वत एकयोजनम् पृथ्वीतलम् निर्मले कृते सतीति शेषः सुमनसः सुष्ठु मनो येषान्ते सुमनसः देवाः मेघकुमाराः वर्षाः सुगन्धिजलवृष्टीः व्यधुः चक्रुः यद्वा सुमनसः अधोमुख-

वृन्तस्य कुसुमस्य वर्षाः व्यधुः विदधतिस्म ॥

रामकृष्णपक्षे । वहुहेतिभिरस्त्रैः विक्षिप्तैः प्रयोजितैः करणैरनेक-शस्त्रप्रयोगैः विपक्षपक्षे शत्रुपक्षे अवधिमानम् अन्तम् विनाशमित्यर्थः प्रपन्ने गते प्राप्ते सति सुमनसः पुष्पस्य वर्षाः वृष्टीः व्यधुः अकार्षुः देवा इति शेषः ॥ ३० ॥

ये दीक्षिता वीक्षितास्ते मण्डलाग्रविशारदाः ।
नारदा अप्युपाजग्मुः स्वामिनं द्रष्टुमुत्सुकाः॥ ३१ ॥

अन्वयः—ये मण्डलाग्रविशारदाः वीक्षिताः ते दीक्षिता स्वामिनं द्रष्टु मुत्सुका नारदा अपि उपाजग्मुः ॥ ३१ ॥

व्याख्या—ये दीक्षिताः लब्धदीक्षाः वीक्षिताः विशेषेण ईक्षिताः अवलोकिताः अथवा वीक्षम् विस्मयम् इताः प्राप्ताः जातविस्मया ते स्वामिनम् प्रभुम् जिनेन्द्रम् द्रष्टुम् दर्शनाय उत्सुका उत्कण्ठिताः मण्डलाग्रविशारदाः मंडलाग्रे राजमण्डलाग्रभागे विशारदाः प्रगल्भाः यद्वा मण्डलाग्रे समवसरणमण्डले विशारदा विचक्षणाः नारदाः मुनि-विशेषाः अथवा नारम् जलम् ददातीति नारदस्ते मेघकुमाराः अथवा नरम् अज्ञानम् द्यति खण्डयतीति नरदस्स एव नारदस्ते अज्ञाननाशका मुनिविशेषाः यद्वा नरं ज्ञानं ददतीति नरदास्त एव नारदा ज्ञानदायिनः तेऽपि उपाजग्मुः आययुः ॥

रामकृष्णपक्षे—ये दीक्षिताः संग्रामदीक्षामाप्ताः रणाङ्गणगताः ते वीक्षिताः दृष्टाः मण्डलाग्रविशारदाः मण्डलस्य समूहस्य अग्रः श्रेष्ठः तस्मिन् विशारदाः श्रेष्ठाः प्रगल्भाः नारदाः स्वनामख्यातविशेषाः ॥ स्वामिनम् रामम् कृष्णञ्च द्रष्टुमवलोकयितुमुत्सुकाः उत्कंठिताः उपा जग्मुरागतवन्तः ॥ ३१ ॥

धरां के--वलिनश्चक्रुः परां विकृतिवर्जिताम् ।
पुण्यप्रवृत्तिं सत्कीर्ति-धवलां सकलां किल ॥ ३२ ॥

अन्वयः-केवलिनः पराम् विकृतिवर्जिताम् पुण्यप्रवृत्तिम् सत्कीर्तिधवलां सकलां धराम् किल चक्रुः ॥ ३२ ॥

व्याख्या--केवलिनः केवलज्ञानशालिनः जिनेन्द्राः पराम् अतिशयिताम् विकृतिवर्जिताम् विकाररहिताम् निर्विकाराम् पुण्यप्रवृत्तिं पुण्यस्य सुकृतेः प्रवृत्तिः प्रवर्तनं यत्र ताम् सत्कीर्त्तिधवलां सती शोभना चासौ कीर्त्तिः सत्कीर्त्तिस्तया धवलामवलक्षाम् अथवा सतां सज्जनानां या कीर्त्तिः तया धवलाम् प्राप्तप्रकाशाम् सकलाम् निखिलाम् धराम् पृथ्वीम् चक्रुर्विदधुः किल निश्चयेन विदधन्तिस्म। अत्र केवलिनः इत्यस्य भिन्नार्थोऽपि, यथा केवलिनः केवलज्ञानवन्तो जिनेन्द्रस्य धराम् तदधिष्ठानभूमिम् के केऽपि वलिनः वायव इत्यर्थः॥ अथवा के आत्मनि बलवन्तः आत्मज्ञानवन्तः अथवा के कामतंत्रे वलिनः कामजयिनः यद्वा के शरीरे वलिनः शारीरिकममत्वरहिताः "अनादरे सप्तमी" यद्वा के मनसि बलिनः जितेन्द्रियाः मनोजयेन सर्वेन्द्रियजयो भवति यद्वा इन्द्रियाणां मनसः प्राधान्यादिति भावः " क इति ब्रह्मणि वायौ आत्मनि कामतंत्रे देहे मनसि चेति शब्दस्तोममहानिधिः " ॥ ३२ ॥

रामकृष्णपक्षे-के केऽपि वलिनो बलवन्तो रामादयः कृष्णादयो वा परामुत्कृष्टां विकृतिवर्जितां निर्विकाराम् पुण्यप्रवृत्तिं पुण्यप्रचाराम् पवित्राचाराम् सत्कीर्तिधवलाम् सत्कीर्तिस्फीतां सकलां कृत्स्नाम् धराम् पृथ्वीम् चक्रुः विरचन्तिस्म; श्लेषः ॥ ३२ ॥

नानाविद्याधरास्तत्र त्रिविधायुधभूषिताः ।
विदधुर्मधुरां भक्तिं परपक्षविनाशनैः ॥ ३३ ॥

अन्वयः—तत्र विविधायुधभूषिताः नानाविद्याधराः परपक्षविनाशनैः मधुरां भक्तिम् विदधुः ॥ ३३ ॥

व्याख्या—तत्र जिनेन्द्रस्य समवसरणस्थाने विविधायुधभूषिता आयुध्यन्ते यैस्तान्यायुधानि विविधानि अनेकप्रकाराणि च तानि इति विविधायुधानि तैर्भूषिताः कृतमंडनाः नानाविद्याधराः अनेकदेवयोनिविशेषाः परपक्षविनाशनैः परपक्षाणां विपक्षपक्षाणां विघ्नविधायकानाम् पापानां वा विनाशनैः विघातैर्निराकरणैर्मधुराम् निर्मलाम् निश्छद्मामित्यर्थः भक्तिम् सेवाम् प्रीतिम् विदधुः चक्रुः ॥ ३३ ॥

रामकृष्णपक्षे—नानाविद्याधराः अनेकशास्त्रपरिशीलनपटिष्ठाः यद्वा नानाविद्याः शिल्पविद्या-गानविद्या-अस्त्रविद्या-शास्त्रविद्या-नीतिविद्या कलाविद्याः ताः धरन्तीति नानाविद्याधराः विविधायुधभूषिताः विविधानि अनेकप्रकाराणि यान्यायुधानि तैर्भूषिताः मण्डिताः यद्वा विविधानि यानि आयुधानि सुवर्णविशेषाणि तैर्भूषिताः शोभिताः "अलङ्कारसुवर्णे तु शृङ्गीकनकमायुधमिति हैमः" परपक्षविनाशनैः परपक्षाणां शत्रुपक्षाणां विनाशनैः निराकरणैः मधुरां मनोहरां भक्तिं प्रीतिं विदधुः कुर्वन्तिस्म ॥ ३३ ॥

समुद्रविजयं मेघनादं सानकदुन्दुभिः ।
गर्जितैस्तर्जयामास बृहद्रथमतङ्गजम् ॥ ३४ ॥

अन्वयः—सानकदुन्दुभिः समुद्रविजयम् मेघनादम् बृहद्रथमतङ्गजम् गर्जितैस्तर्जयामास ॥ ३४ ॥

व्याख्या—आनयति जिनेन्द्रदर्शनाय सोत्साहं करोतीति आनकः स चासौ दुन्दुभिः वाद्यविशेषश्चेति आनकदुन्दुभिः तेन सहितः इति सानकदुन्दुभिः आनकदुन्दुभिमहितवाद्यसमूहः मुद्रया सहितो विजयो यस्य स समुद्रविजयो मकरकेतनः काम इत्यर्थस्तम् मेघनादम्

मेघ इव नादो यस्य तम् सर्वविजयित्वात् यद्वा मेहनम् सिञ्चनम् मेघः तस्मै नदति गर्जतीति मेघनादः स्त्रीसंगमाय कृतगर्जनस्तम् बृहद्रथमतङ्गजम् रमन्ते अनेनेति रथः बृहन् महान् चासौ रथश्चेति बृहद्रथः तस्मिन् मतङ्गजः श्रेष्ठः इति तथोक्तः महद्रमणसाधकः काममूलादेव स्त्रीविलासप्रवृत्तिरिति भावः तम् यद्वा बृहन्महान् रथो यस्य स बृहद्रथः स चासौ मतङ्गजश्चेति तथा मदोन्मत्तत्वाचत्सादृश्यम् तं गर्जितैः स्त्रीयशब्दैः तर्जयामास विद्रावयामास ॥ जिनेन्द्रसमवसरणवाद्यानि विपक्षान् क्षोभयन्तिस्मेति भावः ॥

रामपक्षे—सानकदुन्दुभिः दुन्दु इति शब्देन भापयति भीषयति दिशो विद्रावयति शत्रूनिति दुन्दुभिः आनकेन सहितः दुन्दुभिः इति सानकदुन्दुभिः ओत्साहितवानरसैन्यम् समुद्रविजयम् समुद्रेण परिखाभूतेन विजयो रिपुकृतानभिभवो यस्य तम् दुस्तरसमुद्रपरिखत्वात् कैरपि पराजयितुमशक्यम् बृहद्रथमतंगजम् बृहद्रथे महद्रथे—मतंगजो यस्य तम् हस्तिरथसम् मेघनादम् तदभिधानम् रावणतनयम् गर्जितैर्निजगर्जनाभिस्तर्जयामास निर्भर्त्सयांचक्रे ॥

कृष्णपक्षे—सानकदुन्दुभिः आनकदुन्दुभिर्वसुदेवः तेन सहितः इति सानकदुन्दुभिः वसुदेवसहितयादवसैन्यम् समुद्रविजयम् समुद्रन्ति आर्द्रीभवन्ति रुधिरेण शत्रवो यस्मात् स समुद्रः यद्वा मुद्रया सहितः समुद्रः विजयते इति विजयः समुद्रश्चासौ विजयश्चेति समुद्रविजयस्तम् मेघनादम् मेघ इव घन इव नदतीति मेघनादस्तम् बृहद्रथमतंगजम् बृहद्रथस्यापत्यम् बृहद्रथः अपत्यप्रत्ययस्य लुक् स मतङ्गज इवेति जरासंधं गर्जितैः स्त्रीयवीरशब्दैः तर्जयामास क्षोभयामास ॥ बृहन्महान् रथो यस्य स बृहद्रथः स मतंगज इवेति बृहद्रथमतंगजस्तमित्यर्थो वा भासते । श्लेषः ॥ ३४ ॥

वसुदेवः साङ्गजन्मा साम्बाग्रजजयध्वनिः ।
नरो विद्याधराञ्जेतुं प्रतस्थे नेमिरक्षितः ॥ ३५ ॥

अन्वयः—साङ्गजन्मा वसुदेवः साम्बाग्रजजयध्वनिः नेमिरक्षितः नरः विद्याधरान् जेतुम् प्रतस्थे ॥ ३५ ॥

व्याख्या—वसुदेवः वसुना दीप्त्या दीव्यति प्रकाशते इति वसुदेवः कान्तिमान् अद्भुततेजस्कः अंगयतीत्यङ्कः तेन अङ्केन चिह्नेन सहितं जन्म यस्य स साङ्कजन्मा तीर्थङ्कराणां पृथक् पृथक् लाञ्छनं जन्मत एव भवतीति ज्ञेयम् सलाञ्छनः अम्बया सहितः साम्बः तस्य अग्रजः प्रथम जातः जयध्वनिः जयजयारावो यस्य साम्बाग्रजजयध्वनिः तीर्थङ्कराणां जननी जन्मनि स्वजन्मनि च देवैर्जयशब्दः क्रियते इति समुदाचारः नरः ना यद्वा रः कामानलो नास्ति यस्य स नरः कामानलरहितः जिनेन्द्रः विद्याधरान् मारणमोहनवशीकरणविद्वेषणोच्चाटनस्तम्भनादिषड्विधविद्योपजीविनो जेतुम् पराजयितुम् यद्वा अविद्याधरान् अज्ञान् सावद्यज्ञानवतो वा जेतुम्उपदेष्टुम् अनेमिरक्षितः नेमिः रथोपकरणविशेषस्तेन रक्षितो न भवतीति तथा पादचारः प्रतस्थे विजहार ॥

रामपक्षे—वसुदेवः कान्तिभृत् समानादेकस्मादङ्गजन्म शरीरधारणं यस्य स एकपितृकः सलक्ष्मण इत्यर्थः अमति वात्सल्यं यातीति अम्बः अम्बते स्नेहेन जल्पतीति वा अम्बः स्नेहकर्ता तेन सहितः अग्रजो यस्य स साम्बाग्रजः तस्मिन् जयध्वनिर्विजयशब्दो यस्य स साम्बाग्रजजयध्वनिः नरः लक्ष्मणः नेमिरक्षितः चक्रपालितः विद्याधरान् अन्तर्धानादिविद्यायुक्तान् जेतुम् प्रतस्थे चचाल।

कृष्णपक्षे—साङ्गजन्मा अंगात् जन्म यस्य स साङ्गजन्मा तनूजः तेन सहितः अक्रूरः क्रूरः ज्वलनवेग इत्यादयस्तत्सुतास्तैः सह वसुदेवः

साम्बाग्रजजयध्वनिः प्रद्युम्नसाम्बप्रभृतिः नेमिरक्षितः नेमिनाथेन कृत-रक्षाविधिः नरः विद्याधरान् जेतुम् पराजयितुम् प्रतस्थे चचाल ॥ अर्वाक् जरासंधसैन्या-दागुर्विद्याधरोत्तमाः। वैताढ्याद्रौ जरासंध-गृह्या ये संति खेचराः। तेषां जयार्थं सेनानी-र्वसुदेवोऽस्तु तेऽनुज इत्यादि नेमिनाथचरित्रे कथा सन्दर्भः ॥ ३५ ॥

ज्योतिर्वैमानिका देवा भावनाश्च वनेचराः।
नन्वीयुः के-वलोत्पत्तिमहिमानं दिदृक्षवः ॥ ३६ ॥

अन्वयः—ज्योतिर्वैमानिकादेवा भावनाः च वनेचराः केवलोत्पत्ति-महिमानम् दिदृक्षवः नन्वीयुः ॥ ३६ ॥

व्याख्या—केवलोत्पत्तिमहिमानम् केवलस्य केवलज्ञानस्य उत्पत्ति-रुद्भवः तस्याः महिमानम् अनुभावम् दिदृक्षवः द्रष्टुमिच्छवः प्रेक्षकाः ज्योतिः ज्योतिष्कदेवाः वैमानिकदेवाः भावनाः भुवनपतिदेवाः वने-चराः व्यंतरदेवा ननु इति कोमलालापे ईयुः आजग्मुः ॥

रामकृष्णपक्षे—के राजनि राक्षसराजे रावणे जरासंधे नृपे वा "कः राजनि-ब्रह्मणि-आत्मनि-देहे-मनसीत्यादिशब्दस्तोममहानिधिः" विषये वलोत्पत्तिमहिमानम् प्रभावोत्पत्तिविशेषौत्कर्ष्यम् दिदृक्षवः प्रेक्षकाः ज्योतिः ज्योतिष्कदेवाः वैमानिका देवाः भावनाः भुवनपति-देवाः वनेचराः ननु ईयुः आययुः लोकोत्तरवीरद्वयोः प्रभावदर्शनाय समापेतुः ॥ ३६ ॥

जज्ञे समवसरणं लग्नवप्रा दशाश्रयम्।
स्वान्ययोर्भूभुजोर्योगे सुरासुराङ्गसंगतेः ॥ ३७ ॥

अन्वयः—सुरासुरांगसंगतेः स्वान्ययोर्भूभुजोर्योगे लग्नवप्रा दशाश्रयम् समवसरणम् जज्ञे ॥ ३७ ॥

व्याख्या—सुरासुराङ्गसंगतेः सुराः देवाः असुराः दानवाः तयोर्द्वन्द्वः इति सुरासुरे तयोरङ्गसङ्गतिः अवयवसम्मेलनमिति सुरासुराङ्गसङ्गतिः अवयवसम्मेलनमिति सुरासुराङ्गसंगतिः देवासुरसम्मेलनं तस्मात् देवासुरसङ्गतेः सकाशात् यद्वा देवासुरसंगतिमाश्रित्येत्यर्थः ॥ "ल्यबलोपे पंचमी" स्वान्ययोर्भूभुजोर्योगे स्वे च अन्ये च इति तयोः स्वान्ययोः भूभुजोः नरराजदेवराजयोः योगे सम्बन्धे । यद्वा देवराजासुरराजयोर्योगे लग्नवध्वाः परिणयागतवध्वाः दशां वस्त्राञ्चलम् आश्रयते यस्मिन् तत् इव यथास्यात्तथा वा समवसरणम् केवलज्ञानोत्सवम् वरमुक्तिवध्वा दशाश्रयमिवेत्यर्थः जज्ञे समुत्पेदे ॥

रामकृष्णपक्षे—सुरासुराङ्गसंगतेः सुराणाम् देवानाम् दैत्यानाम् राक्षसानां वा अङ्गसङ्गतिः शरीरसम्बन्धस्तस्मात् प्रेक्षकतया देवासुरसङ्गतेः पश्चात् लग्नवध्वाः संग्रामलक्ष्म्याः विजयलक्ष्म्याः दशाम् वस्त्राञ्चलमाश्रयते उद्देश्यत्वेन अभिलक्ष्यते यत्र तत् स्वान्यभूभुजोर्योगे स्वकीयपरकीयराजसम्बन्धे उभयपक्षनृपतिसमायोगे समवसरणम् समानयुद्धम् एकतरपक्षजयपराजयशून्यम् जज्ञे बभूव ॥ ३७ ॥

सुराः सुरपदे लग्ना मग्नास्तत्र नरा नरैः ।
भूपा भूपालमासाद्य तुल्यस्थानप्रयत्नकाः ॥ ३८ ॥

अन्वयः—तत्र सुराः सुरपदे लग्नाः नराः नरैः मग्नाः भूपाः भूपालमासाद्य तुल्यस्थानप्रयत्नकाः ॥ ३७ ॥

व्याख्या—तत्र समवसरणे सुराः देवाः सुरपदे देवस्थाने लग्नाः स्थिता उपविष्टा इत्यर्थः नराः मनुष्याः नरैः मनुष्यैः महेति शेषः मग्नाः निमग्नाः संगताः भूपाः पृथ्वीपतयः भूपालम् नृपम् आसाद्य प्राप्य भूपतिश्रेणिमाश्रित्य तुल्यस्थानप्रयत्नकाः तुल्यस्थाने स्वसमानस्थाने योग्यस्थाने इति तत्वम् प्रयत्नो येषां ते यथोक्ताः असंकीर्णा आसन्निति शेषः स्वस्वयोग्यस्थाने समुपविष्टा इति भावः ॥

रामकृष्णपक्षे—तत्र समवसरणे समानयुद्धे स्वस्वसमाजे प्रेक्षकास्ते तस्थुरन्यत् पूर्ववत् ॥ ३८ ॥

पत्तीनां समितौ पत्ति–योगः सादिषु सादिनाम् ।
रथिनां रथिसंसर्गाद् मर्यादातिक्रमो न तत् ॥३९॥

अन्वयः—पत्तीनां समितौ पत्तियोगः सादिनाम् सादिषु रथिनाम् रथिसंसर्गात् तत् मर्यादातिक्रमो न ॥ ३९ ॥

व्याख्या—पत्तीनाम् सेनानाम् "एकोरथो गजोऽप्येकस्त्रयोऽश्वाः पञ्च सैनिकाः पत्तयस्ते समाख्याता युद्धशास्त्रविशारदै" रित्युक्तप्रकाराणां समितौ समुदाये पत्तियोगः उक्तप्रकाराणां योगः सम्बन्धः सादिषु अश्वगजारोहणकर्तृषु जनेषु सादिनाम् अश्वारोहिणाम् गजारोहिणाम् योगः सम्बन्धः रथिनाम् रथारोहिणाम् रथिसंसर्गात् रथिभिः सम्बन्धात् तत् मर्यादातिक्रमः श्रेणीभङ्गः न, क्रमस्खलना न जातेति भावः ॥

व्यभिचारं नयात्येत–द्व्याख्यानं रामकृष्णयोः ॥ ३९ ॥

प्रभोरादेशमासाद्य योगिसेनाग्रणीर्गणी ।
कृतहस्ततयारोपत्यागाच्चक्रे हिते–रणम् ॥ ४० ॥

अन्वयः—प्रभोः आदेशम् आसाद्य योगिसेनाग्रणीः गणीकृतहस्ततया आरोपत्यागात् हितेरणम् चक्रे ॥ ४० ॥

व्याख्या–प्रभोः जिनेन्द्रस्य आदेशम् अनुज्ञाम् आसाद्य लब्ध्वा योगोऽस्यास्तीति योगी "अस्र स्वं तपोयोगसमाधय इति हैमः" योगिनां सेना समुदायः तत्र अग्रणीः श्रेष्ठः इति योगिसेनाग्रणीः योगिसमुदायाग्रेसरः गणी–"अनूचानः प्रवचने साङ्गेऽधीती गणश्च स इति हैमः" गणधरः ऋषभादिः कृतहस्ततया सुशिक्षिततया आरोपत्यागात् आरोपस्य भ्रमस्य त्यागात् निरसनात् यथास्थितवस्तुस्वरूपतः हितेरणम् सदुपदेशम् चक्रे विदधे ॥

रामकृष्णपक्षे—प्रभोः रामस्य कृष्णस्य च आदेशमाज्ञाम् आसाद्य प्राप्य योगिसेनाग्रणीः युज्यते नियुज्यते संग्रामायेति योगिनी सा चासौ सेना चेति योगिसेना तासु अग्रणीः श्रेष्ठः अग्रेसर इत्यर्थः गणी वीरेषु गण्यते संख्यायते इति गणी संख्यावान् सेनापतिरितिभावः कृतहस्ततया सुशिक्षिततया क्षिप्रहस्ततया आरोपत्यागात् भ्रमराहित्येन अहिते शत्रौ रणम् युद्धम् चक्रे विदधे ॥ "निष्णातो निपुणो दक्षः कर्महस्तमुखाः कृतादिति हैमः" ॥ ४० ॥

कश्चित् सारसनाभिस्पृग्व्यवच्छेदविधौ पटुः ।
दीप्तिभागन्वयं मत्वा चक्रे ज्याघातवारणम् ॥४१॥

अन्वयः—कश्चित् सारसनाभिस्पृक् व्यवच्छेदविधौ पटुः दीप्तिभाक् अन्वयं मत्वा ज्याघातवारणं चक्रे ॥ ४१ ॥

व्याख्या—कश्चित् कोऽपि सारसनाभिस्पृक् सारसेनयुक्तो नाभिः सारसनाभिः काञ्चीयुक्तनाभिः तम् स्पृशतीति तथा स्त्रीकट्याभरणसहितनाभिस्पर्शकर्त्ता व्यवच्छेदविधौ तत्परित्यागविधौ पटुः कुशलः यद्वा सारसनाभिस्पृशः व्यवच्छेदविधिः परिवर्जनविधिस्तत्रपटुः दक्षः। स्त्रीसंभोगरहितो जातः अत एव दीप्तिभाग् कान्तिमान् जात इति शेषः अन्वयम् सम्बन्धं सर्वत्रजीवसम्बन्धं बुध्वा ज्याघातवारणं ज्यया मौर्व्या धनुर्गुणेन यो घातः प्राणिवधस्तस्य वारणं निषेधं हिंसानिवृत्तिं चक्रे गणधरोपदिष्टवचनं श्रुत्वा कश्चिद्योषित्संगान्निवृत्ते कश्चिद्धिंसातश्चेति तत्वम् ॥ ४१ ॥

रामकृष्णपक्षे—आरसति शब्दं करोतीति आरसः आरसेन सहितः सारसः स चासौ नाभिः रथचक्रमध्यपिण्डी चेति सारसनाभिस्तं स्पृशति स्वस्थं करोतीति सारसनाभिस्पृक् "नाभिर्नाभौ रथचक्रस्य वामपिंड्यां क्षत्रिये मृगमदे इति शब्दस्तोममहानिधिः" व्यवच्छेदविधौ

बाणमोचने शत्रुच्छेदनविधौ च पटुः दक्षः दीप्तिभाग् अतितेजस्कः अन्वयं निजपितृमातृकुलावदातत्त्वं महद्वंशप्रसूतोऽहमिति मत्वा विचार्य ज्यायाः मौर्व्या यो घातः हस्ते स्पर्शजनितः क्षतिः तस्य वारणं निवारणं हस्ते चर्मबन्धनम् चक्रे विदधे युद्धाय सन्नह्यत इति भावः ॥ ४१ ॥

न केवलं परामृश्य पुरतः पदमादधुः ।
अश्रद्धया केवलिनां परे मीमांमकाः श्रुतेः ॥ ४२ ॥

अन्वयः—केचन परामृश्य पुरतः पदम् न आदधुः किन्तु परे मीमांसकाः केवलिनाम् अश्रद्धया श्रुतेः पदमादधुः ॥ ४२ ॥

व्याख्या–केचन केवलम् प्रभोरिति शेषः केवलज्ञानं जातमिति परामृश्य विचार्य पुरतः अग्रतः समवसरणस्यप्रभुदर्शनार्थमुपदेशश्रवणार्थं वा पदम् आदधुः तत्र गमनाय प्रचक्रमिरे न किन्तु केवलिनाम् केवलज्ञानवतां प्रभूणां प्रभुमित्यर्थः "अनादरे षष्ठी" अश्रद्धया तद्विषयकालीकबुद्धया श्रुतेः श्रवणस्य केवलज्ञानमुत्पन्नमिति विश्वासराहित्येन मीमांसकाः परे केऽपि कर्मवादिनोऽपि पदम् तत्र तद्दर्शनाय चरणप्रचारमादधुः चक्रुः ॥ यद्वा केवलिनाम् केवलज्ञानवताम् अश्रद्धया अभक्त्या श्रुतेः शास्त्रस्य अमीमांसकाः शास्त्रज्ञानरहिताः परे केचन परामृश्य विचार्य अस्माकमत्राकाशो न भवेदिति विचार्य पुरतः अग्रतः स्वस्थानादग्रे केवलम् पदम् एकपदमपि न आदधुः स्वस्थानादेकक्रममपि न चेलुः ॥

यद्वा श्रुतेः शास्त्रस्य मीमांसकाः विचारकाः शास्त्रविचारदक्षाः बलिनाम् बलवताम् परे श्रेष्ठाः आत्मज्ञानवतां धुर्याः के क्रामतंत्रे देहे वा अश्रद्धया अनभिनिवेशतया बलम् स्वीयसामर्थ्यं परामृश्य विचार्य पुरतः अग्रतः देशनाश्रवणार्थं के पदं गमनम् न आदधुः न चक्रुः किन्तु सर्वे तत्र पदमादधुर्जग्मुरिति भावः ॥ ४२ ॥

रामकृष्णपक्षे—के केऽपि बलम् स्वसामर्थ्यं परामृश्य विचार्य पुरतः अग्रतः संग्रामभूमौ पदं चरणं न आदधुः न धृताः संग्रामभूमौ न गताः परे केचन के शरीरे अश्रद्धया किमिदं क्षणभङ्गुरं शरीरं रक्ष्यते इति शारीरिकममरहिताः श्रूयते इति श्रुतिः शब्दः तस्याः मीमांसकाः विचारवन्तः धिग् धिग् किमिति पलायन्ते नेयं वीरपद्धतिरिति शत्रुवचनविचारकाः वीराभिमानिन इत्यर्थः पुरतः संग्रामायाग्रतः पदं चरणं आदधुः संग्रामाय जग्मुरिति भावः ॥ ४२ ॥

धन्याः केऽपीश्वरम्मन्या यथेच्छाचारकारिणः ।
स्वका·रणे कार्यकृतः सभ्या वाल्लभ्यमैयरुः ॥ ४३ ॥

अन्वयः—केऽपि ईश्वरम्मन्या. यथेच्छाचारकारिणः स्वकाःरणे अकार्यकृतः सभ्या वाल्लभ्यम् ऐयरु' ॥ ४३ ॥

व्याख्या—ईश्वरम्मन्याः जिनेन्द्रे ईश्वरबुद्धिमन्तः यथेच्छाचारकारिणः जिनेन्द्रस्य या इच्छा आचारश्च तयोः कारिणः जिनेन्द्राज्ञानुवर्तिनः स्वकाः स्वाधीनाः न तु पुत्रकलत्रादिपरतंत्राः रणे संग्रामे कार्यं हिंसनादिकम न कुर्वन्तीति अकार्यकृतः हिंसादिव्यापारपराङ्मुखाः धन्याः कृतकृत्याः श्रेष्ठाः सभ्याः सभार्हाः योग्याः वाल्लभ्यम् प्रागल्भ्यम् ऐयरुः अलभन्त ॥

रामकृष्णपक्षे– केऽपि केचन ईश्वरम्मन्या आत्मानम् ईश्वरम्मन्यन्ते इति तथोक्ता अत एव यथेच्छाचारकारिणः स्वाभिमतकार्यकारिणः निष्प्रतिबंधा धन्याः श्रेष्ठाः स्वकाः स्वाधीनाः रणे संग्रामे कार्यकृतः संग्रामकार्यदक्षाः सभ्याः सभार्हाः वाल्लभ्यम् वल्लभताम् प्रगल्भतां ऐयरु' आप्राप्नुयुः ॥ ४३ ॥

मार्गणान्वेषणाज्जीवाजीवाश्रयदृशः परे ।
वारवाणभृतो वारवाणाद्विरतिमादधुः ॥ ४४ ॥

अन्वयः—परे मार्गणान्वेषणात् जीवाजीवाश्रयदृशः वारबाणभृतः वारबाणात् विरतिम् आदधुः ॥ ४४ ॥

व्याख्या—मार्गणान्वेषणात् मार्ग्यतेऽनेनेति मार्गणम् शास्त्रम् ज्ञानं वा "करणे ल्युः" तस्य अन्वेषणात् पर्यालोचनात् परे केऽपि जीवाजीवाश्रयदृशः जीवाश्च अजीवाश्चेति जीवाजीवम् तत् आश्रयति विचारयतीति जीवाजीवाश्रयदृक् येषां ते जीवाजीवविचारचणाः वारबाणभृतः वारबाणम् कवचम् बिभ्रति धारयंति इति वारबाणभृतः कवचधारिणः "निचोलकः स्यात् कूर्पासो वारबाणश्च कंचुक इति हैमः" अथवा व्रियते जनैरिति वारः संसारः तम् बाणयति रुणद्धीति प्रेरयति विक्षिपतीति वारबाणः संसारनिवर्त्तकस्तं बिभ्रतीति वारबाणभृतः चारित्र्यवन्तः संसारनिवर्तकाध्यवसायवन्तो वा वारबाणात् वारम् जनसमूहम् बाणयति आह्वयति स्वसान्निध्यं कारयतीति वारबाणः वेश्याजनः तस्मात् यद्वा बाणम् शरम् वृणोतीति वारबाणः राजदन्तादित्वात् परनिपातः तस्मात् हिंसार्थबाणधारणात् विरतिम् विरामम् आदधुः स्वीचक्रुः अत्र रम्यो विरोधाभासोऽलंकारः ॥

रामकृष्णपक्षे—मार्गणान्वेषणात् मार्गणस्य बाणस्य अन्वेषणात् संधानात् जीवाजीवाश्रयदृशः जीवन्मृतज्ञानवन्तः एते जीवन्ति एते मृता इति विवेकवन्तः वारबाणभृतः कवचिनः बाणवारात् बाणावसरात् बाणाघातात् विरतिम् निवृत्तिम् आदधुः कृतवन्तः कवचधारणेन बाणवेधस्य निवृत्तिः कृतेति भावः ॥ "वेलावारावसरः प्रस्तावः ॥ प्रक्रमोऽन्तरमिति हैमः" ॥ ४४ ॥

शुद्धैषणानवच्छेदाद्वैयावृत्यं वियोगिनाम् ।
स्वतन्त्राशु वितन्वानाः प्रायश्चित्तं समादधुः ॥४५॥

अन्वयः-वियोगिनाम् शुद्धैषणानवच्छेदात् वैयावृत्यं स्वतन्त्रा वितन्वानाः आशु प्रायश्चित्तं समादधुः ४५ ॥

व्याख्या-वियोगिनाम् विगतः योगः सांसारिकविषयसंबन्धो येषां ते वियोगिनस्तेषाम् निर्ग्रन्थिनां मुनीनाम् शुद्धैषणानवच्छेदात् शुद्धैषणायाः पवित्रैषणायाः निरवद्यभिक्षायाः अनवच्छेदात् नैरन्तर्यात् वैयावृत्त्यम् साधुसेवाविशेषम् स्वतन्वा स्वशरीरेण वितन्वानाः कुर्वाणाः मुनयः इति शेषः, आशु झटिति प्रायश्चित्तम् प्रायस्य पापस्य चित्तम् शोधनम् यस्मात् तम् 'प्रायो नाम तपः प्रोक्तं चित्तं निश्चय उच्यते। तपोनिश्चय संयुक्तं प्रायश्चित्तमिति स्मृत'मित्युक्तस्वरूपं वा समादधुः चक्रुः॥

रामकृष्णविषये—शुद्धैषणानवच्छेदात् शुद्धः निशातो य एषणो बाणः तस्य अनवच्छेदात् सातत्यात् अनवरतबाणप्रयोगात् वियोगिनाम् वि असहनेऽक्षमाया योगोऽभिनिवेशो येषां ते वियोगिनस्तेषामसहिष्णूना वैयावृत्त्यम् व्यावृत्तेर्भावम् वैयावृत्त्यम् निवारणम् आशु शीघ्रम् वितन्वानाः विस्तारयन्तः स्वतन्वा शरीरेण प्रायः बाहुल्येन चित्तं मनः समादधुः समादधतिस्म चित्तैकाग्र्यं चक्रुरित्यर्थः ॥४५॥

उद्यते-रावणो दीर्घे सर्वत्राभयविस्मयः।
कौशल्यानन्दनोद्योगे कौशल्यानन्दनो न कः? ॥४६॥

अन्वय—दीर्घे रावणो उद्यते सर्वत्र अभयविस्मय कौशल्यानन्दनोद्योगे कः कौशल्यानन्दनो न ॥ ४६ ॥

व्याख्या—रावयति निवारयति कर्म दुःखं यः स रावणः तस्यायं रावणि' उपदेशः तस्मिन् रावणो उपदेशे दीर्घे महति उद्यते प्रभवति सति प्रभूतजिनेन्द्रव्याख्याने प्रसरति सतीति भावः सर्वत्र सर्वतोभावेन अभयस्य निराबाधस्य परस्परविद्वेषशान्तभावस्य विस्मयः आश्चर्यः अजनीति शेषः कौशल्येन निजालौकिकनैपुण्येन आनन्दयतीति कौशल्यानन्दनः निजनिर्मलदाक्ष्येणानन्दयिता तस्य उद्योगे उपदेशविधौ कः संसारी कौशल्यानन्दनः कौशल्येन कुशलतया नन्दनः

सुखवान् न सर्वे एव कुशलवान् जात इति तत्त्वम् ॥

रामपक्षे-दीर्घे महति रावणो रावणपुत्रे मेघनादे उद्यते संग्रामाय उद्युक्ते सति सर्वत्राभयविसयः सर्वत्र सर्वेषु स्वसैन्येषु अभयस्य निर्भयस्य विसयः अजनि इति शेषः अथवा सर्वत्र सर्वेषु रामसैन्येषु आसमन्तात् भयस्य भीतेर्विसयः आभयेन विसय इति वा अजनीति शेषः कौशल्यानन्दनस्य रामस्य उद्योमः रणगमनम् तस्मिन् कः सैन्यपरिगतः कः कौशल्येन कुशलस्य भावः कौशल्यम् मांगल्यम् तेन नन्दनः आनन्दयुक्तः न सर्वे आनन्दिता अभवन्निति भावः ॥

श्रीकृष्णपक्षे जिनेन्द्रपक्षवज्ज्ञेयम् ॥ ४६ ॥

प्राप्ते मार्गे दशमुखेऽभिमुखे संयतीशिताम् ।
न कोऽपि निरतः स्थातुं पुरतो विनतात्मना ॥ ४७ ॥

अन्वयः—संयतीशिताम् प्राप्ते दशमुखे अभिमुखे मार्गे कोऽपि विनतात्मना पुरतः स्थातुम् न निरतः ॥ ४७ ॥

व्याख्या—संयतंते इति संयतिनः साधवः तेषु ईशिता ईशित्वम् इति संयतीशिताम् प्राप्ते लब्धे दशमुखे दशसु दिक्षु मुखं यस्य स दशमुखस्तस्मिन् 'यदा जिनेन्द्रो देशनां ददाति तदा सर्वदिगुपविष्टानां स्वामिमुखमेव लक्ष्यते दीपशिखावदिति' दशमुखे जिनेन्द्रे अभिमुखे संमुखे मार्गे तद्दृष्टिपातभूमौ कोऽपि कश्चिदपि विनतात्मना विशेषेण नत आत्मा यस्य तेन विनतात्मना नतकन्धरेण पुरतः अग्रतः स्थातुम् उपवेष्टुम् न निरतः न समर्थः सर्वतः सर्वे एव नता आसन्नित्यर्थः ॥

रामपक्षे—ईशिताम् प्रभुताम् प्राप्ते सर्वराक्षसेश्वरताम्मुपगते दशमुखे रावणे अभिमुखे संमुखे मार्गे तत्संमुखीने सति पुरतः अग्रतः संयति संग्रामे विनतात्मना शरपातभयात् विना नम्रतया स्थातुम् न

कोऽपि निरतः समर्थः रावणबाणभिन्नमर्माणः सर्वे एव नीचैर्मुखा अभवन्निति तात्पर्यम् ॥

कृष्णपक्षे—संयति संग्रामे ईशिताम् प्रगल्भतां प्राप्ते दशमुखे सर्वतो दत्तलक्ष्ये कृष्णे सति मार्गे रणमार्गे अभिमुखे समक्षे विनतात्मना विना नम्रतया कोऽपि पुरतः अग्रतः स्थातुं न निरतः न समर्थः अभवत् ॥ ४७ ॥

दृष्टे पुण्यजनाधीशे बृहद्रथभुवि स्वतः ।
सर्वे नरा वानरा वा चलाचलदशां दधुः ॥ ४८ ॥

अन्वयः—पुण्यजनाधीशे बृहद्रथभुवि दृष्टे स्वतः सर्वे नरा वानरा वा चलाचलदशाम् दधुः ॥ ४८ ॥

व्याख्या—रम्यतेऽनेनेति रथः " रमेः कथन् " रम्यस्थानम् बृहन्महांश्चासौ रथश्चेति बृहद्रथः तस्य भूः तस्मिन् बृहद्रथभुवि महद्रम्यभूमौ मोक्षमार्गे पुण्यजनाधीशे पुण्यजनाः पवित्रजना अधीशते यत्र तस्मिन् पवित्रजनाधिष्ठिते वर्त्तमाने जिनेन्द्रे दृष्टे नयनगोचरे सति सर्वे नराः मनुष्याः अनराः देवाश्च यक्षगन्धर्वादयश्च स्वतः अकारणात् चलाचलदशाम् तत्तेजोधर्षितत्वात् चञ्चलताम् उत्सुकताम् दधुः जगृहुः ॥ ४८ ॥

रामपक्षे । बृहन्महांश्चासौ रथश्चेति बृहद्रथः महत्स्यन्दनः तत्र भवतीति बृहद्रथभूस्तस्मिन् महद्रथस्थे पुण्यजनाधीशे पुण्यजनानाम् राक्षसानाम् अधीशे नृपे "यातुधानः पुण्यजनो नैर्ऋतो जातु रक्षसीत्यमरः" रावणे दृष्टे समरभूमिगोचरे सति सर्वे नराः मनुष्याः वानराः कपयश्च स्वतः स्वयमेव चलाचलदशाम् माध्वसा चञ्चलताम् अस्थिरताम् दधुः अनुभवन्तिस्म रावणभयात् सर्वे इतस्ततोऽभवन्नित्यर्थः ॥ ४८ ॥

कृष्णपक्षे—पुण्यजनाधीशे पुण्यजनम् अधीष्टे शास्तीति पुण्यजनाधीशस्तस्मिन् यद्वा अपुण्यजनाधीशे अपुण्यजनान् पापिष्ठान् अधीष्टे तस्मिन् कलुषितजनाधीशे बृहद्रथभुवि बृहद्रथराजपुत्रे बार्हद्रथे जरासंधे दृष्टे संग्रामाङ्गणगोचरे सति सर्वे कृष्णपक्षीयाः नराः मनुष्याः अनराः देवयक्षगन्धर्वराक्षसादयः अचलाचलदशां स्थैर्यताम् अकिञ्चित्करोऽयमस्माकमिति निर्भीकताम् दधुः धारयन्तिस्म ॥ ४८ ॥

तदा मुक्ते जरायोगे शक्तिशल्यानुभाविनि ।
सुमित्रासंभवे व्यग्रे बले व्यापद् विना जिनम् ॥४९॥

अन्वयः—तदा शक्तिशल्यानुभाविनि जरायोगे मुक्ते सुमित्रासम्भवे बले व्यग्रे जिनं विना व्यापत् ॥ ४९ ॥

व्याख्या—तदा केवलज्ञानानन्तरं शक्तिशल्यानुभाविनि शक्तिः रस्त्रविशेषः शल्यो बाणस्तयोर्द्वन्द्वः शक्तिशल्यम् तस्य अनुभावः प्रभावः पापक्षयकारत्वात्तस्मिन् तस्मिन् योगे तपोविशेषे मुक्ते परित्यक्ते सति अजरा न जीर्यति जन्मकोटिशतैरपीति जरा कर्मग्रन्थिः जिनं विना जिनेन्द्रप्रभुं विना सुमित्रासंभवे सुमित्रति स्निह्यति जनोऽस्यामिति पृथ्वी तस्या संभवे पृथ्वीजाते व्यग्रे दुःखिनि बले संघे व्यापत् प्रासरत् ॥ ४९ ॥

रामपक्षे—जीर्यते शरीरमनया इति जरा काचित् शक्तिः तस्या योगे प्रयोगे शक्तिशल्यानुभाविनि शक्तिशल्योभयप्रभावशालिनि तदा रावणयुद्धसमये मुक्ते लक्ष्मणाय विक्षिप्ते सति सुमित्रासंभवे लक्ष्मणे व्यग्रे दुःखमापन्ने बले सैन्ये जिनम् जयतीति जिनस्तम् रामम् विना व्यापत् प्रासरत् समस्तबलं व्यग्रमभवत् ॥

कृष्णपक्षे—तदा जरासंधयुद्धे शक्तिशल्यानुभाविनि शक्तिबाणप्रभावशालिनि जरायोगे जरास्त्रप्रयोगे मुक्ते सति यदस्त्रप्रभावात्सर्वे·

जरायुक्ता भवन्तीति भावः जिनं विना श्रीनेमिनाथं विना सुमित्रा-संभवे सुमित्रसमागमे व्यग्रे दुःखमापन्ने चले सैन्ये व्यापत् जरा सर्वत्र प्रासरदिति भावः ॥ ४९ ॥

कृते नागवराह्वाने वामेयार्चा समागता ।
तया विशल्यया सेना जिनोक्त्या साऽभवत् पटुः॥५०॥

अन्वयः—नागवराह्वाने कृते वामेयार्चा समागता तया विशल्यया जिनोक्त्या सा सेना पटुः अभवत् ॥ ५० ॥

व्याख्या—न गच्छतीति नागः कामः सर्वदा शरीरस्थितत्वात् स चासौ वरश्चेति नागवरः तस्य आह्वाने आकारिते सति कामपरतंत्रे सति वामाया इयम् वामेया अर्चा पूजा आराधना तदनुसरणा समागता समुपस्थिता परंतु जिनोक्त्या जिनशब्दोच्चारणेन तयैव विशल्यया विशल्यकरणया दुःखनिवारिकया सा सेना जनप्रवृत्तिः पटुः साधीयसी अभवत् अजायत जिनस्य कामजितत्वात्तन्नामोच्चारणमात्रेण कामो व्यपलायत ॥

रामपक्षसाधारणमेतत् ।

कृष्णपक्षे—नागवराह्वाने नागवरस्य धरणेन्द्रस्य आह्वाने आकरणे कृते सति वामेयस्य पार्श्वजिनेन्द्रस्य या अर्चा पूजा सा समागता समुपस्थिता जिनोक्त्या जिनस्य श्रीनेमिनाथस्य या उक्तिः सा जिनोक्तिः तया जिनेन्द्रोपदेशभूतया तया श्रीपार्श्वजिनेन्द्रपूजया विशल्यया विशल्यकरणया जराविद्राविकया सा सेना पटुः पट्वी कार्यक्षमा अभवत् अजायत ॥ ५० ॥

राजद्राजी समाजानां सा—धो—रणविनिग्रहात् ।
कुम्भकर्णे रक्तलेपात् शुशुभे या—स—भागजा ॥ ५१ ॥

अन्वयः—या रणविनिग्रहात् साधोः राजद्राजी कुंभकर्णे रक्तलेपा सा सभागजा शुशुभे ॥ ५१ ॥

व्याख्या—रणविनिग्रहात् संग्रामपरित्यागात् साधोः मुनेः समाजानां समुदायानां या राजद्राजी विरोचमानश्रेणी कुम्भ इव कर्णः यथा कुम्भो जलादिकं धारयति तथायमपि बहुशास्त्रविचारग्राहक इति भावः तस्मिन् रक्तलेपात् रक्तस्य शास्त्रानुरागस्य लेपादासञ्जनात् "रक्तम् कुंकुमे ताम्रे रुधिरे रागे इति शब्दस्तोममहानिधिः" भजनम् भागः "भावे घञ्" भक्तिरित्यर्थः तेन सहितः सभागः सैव सभागा ततो जायते इति सभागजा देवविषयकभक्तिजनिता सा शुशुभे बभौ ॥

रामपक्षे—घोरणविनिग्रहात् घोरणानां हस्त्यश्वादियानानाम् विनिग्रहात् विनाशनात् हननादित्यर्थः कुम्भकर्णे रावणानुजे रक्तलेपात् रक्तस्य रक्तचन्दनस्य रुधिरस्य वा लेपात् अभ्यञ्जनात् "रक्तसंकोचपिशुनं धीरं लोहितचन्दनमित्यमरः" भा प्रभा तया सहिताः सभाः सभाः सदीप्ताः गजाः हस्तिनो यत्र सा सभागजा दीप्तिमद्गजमती मदोन्मत्तगजबहुलेति यावत् समाजानाम् रणगतानां सैनिकानाम् राजद्राजी शोभमाना श्रेणी रोचिष्णुसैन्यपंक्तिः सा शुशुभे दिदीपे ॥

कृष्णपक्षे—घोरणविनिग्रहात् हस्त्यश्वादिवाहननाशात् अत एव कुम्भकर्णे कुम्भ इव कर्णौ यस्य स कुम्भकर्णस्तस्मिन् रक्तलेपात् हस्त्यश्वादिशरीरशोणितलेपात् सभागजा समानभागे जायते तिष्ठतीति सभागजा एकदेशस्थिता समाजानां रणगतसेनानाम् राजद्राजी विरोचमानसंहतिः शुशुभे रेजे ॥ ५१ ॥

हरयोऽहरयोगेन निद्रामुद्राविमुद्रिताः ।
पुरश्चेरुः सपर्याणाः कुर्वाणा दर्शनोत्सवम् ॥ ५२ ॥

अन्वयः—अहः अयोगेन निद्रामुद्राविमुद्रिताः हरयः सपर्याणां दर्शनोत्सवम् कुर्वाणाः पुरश्चेरुः ॥ ५२ ॥

व्याख्या—हरति पापमिति हरिस्ते हरयो जिनेन्द्राः अहः प्रातः अयोगेन योगराहित्येन जिनेन्द्राणां निद्रामुद्राविमुद्रिताः निर्द्रायाः स्वापस्य या मुद्रा नेत्रसंकोचादिस्तां विमुद्रितास्त्यक्ताः सपर्याणाः परित एति इति पर्याणस्तेन सहिताः सपर्याणाः परितो गमनशीलाः दर्शनोत्सवम् नेत्रोत्सवं कुर्वाणाः दर्शनानन्ददायकाः पुरः अग्रे चेरुः चेलुः ॥ ५२ ॥

रामपक्षे—अहः प्रातः अयोगेन अनायासेन स्वत एवेत्यर्थः निद्रामुद्राविमुद्रिताः निद्रोत्थिता हरयः कपयः सपर्याणाः पर्यायेण अश्वसज्जनेन सहिताः यथाऽश्वादिरारोहणार्थं कम्बलादिपृष्ठास्तरणेन सज्जिता भवन्ति तथा सपर्याणाः पृष्ठास्तरणसंयुक्ताः अत एव दर्शनोत्सवं नयनानन्दं कुर्वाणा विदधानाः पुरः अग्रे चेरुः विचेरुः ॥

कृष्णपक्षे—हरयोऽश्वा अन्यत् पूर्ववद्व्याख्येयम् ॥ ५२ ॥

दशा–स्याभिमुखे रामानुजे या–जनि संमतिः ।
जयश्रीर्निश्रिता देवे नृदेवेऽद्भुतया–तया ॥ ५३ ॥

अन्वयः—दशास्याभिमुखे रामानुजे या सम्मितिः अजनि अद्भुतया तया देवे नृदेवे जयश्रीर्निश्रिता ॥ ५३ ॥

व्याख्या—दशास्याभिमुखे दशसु इन्द्रियेष्विति शेषः आस्यं प्रवृत्तिर्यस्य स दशास्यः कामः तस्य आभिमुख्ये समक्षे कर्थभूते रामानुजे रामाम् कामिनीम् अनुजाति अनुसरतीति रामानुजस्तस्मिन् यद्वा रामे रमन्तेऽस्मिन्निति रामो ध्यानम् तम् तस्मिन् वा अनुजाति अधितिष्ठतीति रामानुजः श्रीजिनेन्द्रः तस्मिन् या सम्मितिः संग्रामोऽजनि कामे जिनेन्द्रे च सम्मितिरभूत नृदेवे मनुष्यदेवे देवे जिनेन्द्रे विषये अद्भुततया निरतिशयप्रभावतया जयश्रीः कामविजयलक्ष्मीः निश्चिता अवश्यंभाविनी ॥ ५३ ॥

रामपक्षे—दशास्याभिमुखे दशास्यस्य रावणस्य अभिमुखे सन्निधौ रावणेन सहेत्यर्थः रामानुजे लक्ष्मणे या सम्मितिः संग्रामोऽजनि उदपादि अद्भुततया विलक्षणतया देवे द्योतनात्मके नृदेवे लक्ष्मणे जयश्रीर्विजयलक्ष्मीः निश्चिता नियमिता अवश्यं भवित्री ॥

कृष्णपक्षे—दशास्याभिमुखे जरासंघसंमुखे रामानुजे रामादनु जायते इति रामानुजः बलरामानुजे कृष्णे सम्मितिः अजनि अजनिष्ट अद्भुततया अलौकिकचमत्कारतया नृदेवे देवे कृष्णे जयश्रीर्विजय-लक्ष्मीर्निश्चिता क्लृप्ता ॥ ५३ ॥

नागाहत–विवाहेन तत्क्षणे सदृशः श्रियः ।
नागाहत–विवाहेन तत्क्षणे सदृशः श्रियः ॥ ५४ ॥

अन्वयः—विवाहेन सदृशः तत्क्षणे श्रियः न अगाहत विवाहेन तत्क्षणे ना सदृशः श्रियः अगाहत ॥ ५४ ॥

व्याख्या—विशुद्धतां निर्मलतां वाहयति लभते ''प्रेरणांशत्या-गात्'' इति विवाहस्तेन विवाहेन उपलक्षितः उपलक्षणे तृतीया निर्म-लतयोपलक्षितः पश्यत्यनेनेति दृशः ज्ञानम् तेन सहितः सदृशः विशे-षज्ञानवान् तत्क्षणे प्रव्रज्यासमये श्रियः राज्यलक्ष्मीः न अगाहत नालभत वि-श्रेष्ठताम् वाहयति निर्वाहयतीति विवाहस्तेनोपलक्षितः श्रेष्ठताम्रुपगतः जिनेन्द्रप्रभुः तत्क्षणे केवलज्ञानोत्पत्तिक्षणे ना पुरुषः कर्मनिरसनादेव विशिष्टपुरुषः सदृशः सदृशीः स्वस्वरूपयोग्याः श्रियः केवलज्ञानलक्ष्मीः अगाहत अलभत ॥

रामपक्षे—सदृशः दृशेन सहितः सदृशः ''दृशेः कञ्'' सनयनः तस्य विंशतिनयनत्वेन तथा निर्देशः रावणः विवाहेन राक्षसादि-विवाहेन विधिना श्रियः सीताः 'पूज्यत्वाद्बहुवचनम्' न अगाहत न अलभत सदृशः ज्ञानवान् ना मनुष्यो लक्ष्मणः विः पक्षी गरुडः

वाहो वाहनं यस्य तेन विवाहेन गरुत्मद्वाहनेन कारणेन तत्क्षणे रावणयुद्धसमये श्रियः विजयलक्ष्मीः यद्वा श्रियः रावणसम्पदः अगाहत अप्राप्नुत ॥ ५४ ॥

अथवा अगति कुटिलं गच्छतीति अग् "कर्त्तरि क्विप्" न अग् नाग् तेन नागा अकुटिलगामिना अहतविवाहेन अपराहतगरुत्मद्वाहनेन उपलक्षितः श्रियः विजयलक्ष्म्याः सदृशः योग्यः सदृशः ज्ञानवान् ना नरः विवाहेन श्रियः रावणराजलक्ष्मीः अगाहत आसादयत् ॥

कृष्णपक्षे—नागयोः पन्नोत्तरचंपकयोः यत् आहतम् आहननम् तत् नागाहतम् विः पक्षी गरुडः स एव वाहनम् इति विवाहनम् नागाहतश्च विवाहश्च इति नागाहतविवाहः तेन नागाहतविवाहेन उपलक्षितः तत्क्षणे तत्समये श्रियः लक्ष्म्याः सदृशः योग्यः ना पुरुषः तत्क्षणे शिशुपालविवाहोत्सवे सदृशः शोभनयनाः श्रियः रुक्मिणीः विवाहेन राक्षसविवाहेन अगाहत अप्राप्नोत् ॥ श्लोकार्धयमकं प्रकृते ॥

प्राहरद्विजयः कर्णे-जपमाश्रित्य शाम्भवम् ।
अस्तस्तत्तेजसा द्रोण-भीष्माहितपराभवः ॥ ५५ ॥

अन्वयः—विजयः शाम्भवमाश्रित्य कर्णेजपम् प्राहरत् तत्तेजसा द्रोण-भीष्माहितपराभवः न्यस्तः ॥ ५५ ॥

व्याख्या—विजयते कषायादीनिति विजयः शाम्भवम् शं कल्याणम् जनानामिति शेषः भवत्यनेनेति शंभवस्तस्य भावस्तम् आश्रित्य अभिलक्ष्य कर्णेजपम् सूचकम् प्राहरत् निरस्यत् यदि कर्णेजपानां स्थिर्भवेत्तदा कदाचिदपि लोककल्याणं न संभाव्यते इति विचार्य तं निरास्यदिति भावः " कर्णेजपः सूचकः स्यात्पिशुनो दुर्जनः खल इत्यमरः " तत्तेजसा तस्य जिनेन्द्रस्य तेजसा प्रभावेन द्रोणभीष्माहितपराभवः द्रुणति हिंसयति कौटिल्ययतीति द्रोणः भीषयतीति

भीष्मः तयोर्द्वन्द्वः ताभ्यामाहितः स्थापितः जनितः यः पराभवः दुःखम् स अस्तः निरस्तः जिनेन्द्रतेजसा केषामपि कुतश्चिदपि भयो न जात इति तत्त्वम् ॥ ५५ ॥

रामपक्षे—विजयते इति विजयो रामः शांभवम् शंभुसंबन्धिनं विजयावहं वा कर्णेजपम् कर्णे किमपि कथयतीवेति कर्णपर्यन्तमाकृष्टम् धनुः आश्रित्य मौर्वीकर्णपर्यन्तमाकृष्य प्राहरत् तत्तेजसाऽऽकर्णाकृष्टबाणस्य तेजसाऽनुभावेन द्रोणभीष्माहितपराक्रमः हिंषकभीषकजनितदुःखम् अस्तः निराकृतः ॥

कृष्णपक्षे—विजयः अर्जुनः कर्णेजपम् सूचकमाश्रित्याभिलक्ष्य शांभवम् शंभुदत्तम् गाण्डीवं धनुः प्राहरत् प्रहृतवान् तत्तेजसा तन्महिम्ना द्रोणभीष्माहितपराक्रमः द्रोणश्च भीष्मश्चेति द्वन्द्वस्तयोराहितः स्थापितः पराभवः विपत्तिः अस्तः निर्विष्टः द्रोणादिषु कर्णानन्तरं पराभवो जातः अथवा शांभवं शम्भुदेवताकं जपं भजनमाश्रित्य कर्णे कर्णनामनि राज्ञि प्राहरत् अथवा संप्रति कर्णार्जुनीययुद्धे द्रोणभीष्माहितपराभवः युद्धव्यसनः अस्तः निराकृतः ॥ ५५ ॥

नरः सवासवं चक्रं प्राप्य तन्द्रेदमादधे ।
सालङ्कारसमासन्नं जज्ञे जयजयारवः ॥ ५६ ॥

अन्वयः—नरः सवासवं सालङ्कारसमासन्नं चक्रं प्राप्य तन्द्रेदम् आदधे जयजयारवः जज्ञे ॥ ५६ ॥

व्याख्या—नृणाति विशुद्धधर्मं प्रचारयतीति नरः जिनेन्द्रः वासवेन महेन्द्रेण सहितं सवासवम् सेन्द्रम् सालङ्कारसमासन्नम् अलंकारेण सहितः सालंकारः सालंकारेण समासन्नः समागतः इति सालंकारसमासन्नः सभूषणसन्निहितस्तम् चक्रम् संघम् इन्द्रमण्डित-

जनसहितं समुदायं प्राप्य लब्ध्वा तत्सभामासाद्य भेदम् पापपुण्यविवेचनम् जीवाजीवविवेचनम् वा यद्वा अविद्याभेदम् आदधे स्वकीयसदुपदेशेन विवेचयामास तत इति शेषः जयजयारवः जयजयध्वनिः जज्ञे सर्वे जना उपदेशामृतमास्वाद्य जयशब्द चक्रुरित्यर्थः ॥

रामकृष्णपक्षे—स नरः लक्ष्मणः कृष्णो वा वासवम् चक्र वसुरसिन्नस्तीति वासवम् समृद्धम् राजमण्डलम् सालंकारसमासन्नम् आभूषणमहितसमागतम् शौर्यादिगुणभूषणसमन्वितम् चक्रं राजमण्डलम् प्राप्य लब्ध्वा समासाद्य तद्भेदं तदीयच्छेदम् आदधे समृद्धशूर-राजमण्डलस्य छेदनम् छिन्नभिन्नमाचक्रे तेनेति शेषः जयजयारवः जयजयस्वनः जज्ञे जयजयशब्द चक्रे ॥ ५६ ॥

सुमित्राङ्गजसंगत्या सदशाननभासुरः ।
अलिमुक्तेर्दानकार्य–सारोऽभाल्लक्ष्मणाधिपः ॥ ५७ ॥

अन्वय —सुमित्राङ्गजसंगत्या दशाननभासुर. लक्ष्मणाधिप अलिमुक्तेः दानकार्यसार अभात् ॥ ५९ ॥

व्याख्या—सुष्ठु मेद्यति स्निह्यति अनुबध्नातीति सुमित्रम् केवलज्ञानम् तदेवाङ्गजम् स्वतनूद्भवत्वात् इति सुमित्राङ्गजम् तस्य संगत्या सम्बन्धेन केवलज्ञानयोगेन दशाननभासुरः दशसु दिक्षु आननं मुखमुपदेशकाले यस्य स दशाननः तेन भासुरः दीप्यमानः लक्ष्मणाधिपः लक्ष्म चिह्नमेव लक्ष्मणं 'स्वार्थेऽण्' तत् अधिपाति रक्षति स्वसङ्गेन धारयतीति लक्ष्मणाधिपः अलिमुक्तेः अलेः सुरायाः मुक्तेस्त्यागात् सर्वथा वर्जनात् दानकार्यसारः दानकार्यमुपदेशनमेव सारो यस्य स अभात् अशोभिष्ट ॥ ५७ ॥ अलिर्भ्रमरेऽप्यश्चिके काके कोकिले सुरायाश्चेति शब्दस्तोममहानिधिः ॥

रामपक्षे–स लक्ष्मणाधिपः लक्ष्मणश्चासौ अधिपश्चेति लक्ष्मणाधिपः लक्ष्मणाभिन्नो नृपः दशाननभासुरः दशाननस्य भा दीप्तिः

दशाननभा ताम् अस्यति विक्षिपति तिरस्करोतीति दशाननभासुरः "अस्यते चास्यतीत्यादि नौणादिक उर प्रत्ययः" दशाननशोभानिराकरिष्णुः सुमित्राङ्गजसंगत्या सुमित्राया अङ्गजः तनयः सुमित्रांगजः तस्य संगत्या यः सुमित्राङ्गजः स कदाचिदपि दुर्मित्रं न सहत इत्यन्वर्थतया अलिमुक्तेर्बाणमोचनात् पतत्रित्वेन साम्यादलिशब्दस्य बाणार्थतेति भावः दानकार्यसारः दानं च्छेदनमेव कार्यसारं यस्य स अभात् अशोभत ॥ यद्वा ।

स रावणः सुमित्राङ्गजसंगत्या अङ्गाज्जायते अङ्गजः सुमित्रं च सोऽङ्गजश्चेति सुमित्राङ्गजः कामस्तस्य संगत्या संगमेन कामपराधीनतया दशाननभासुरः दशाननेन शोभमानः लक्ष्मणाधिपः लक्ष्मणानां लक्ष्मीवतामधिपः अलिमुक्तेर्बाणमोचनाद्दानकार्यसारः छेदनपटुः अभात् अशोभत ॥

कृष्णपक्षे—सुष्ठु मेद्यति स्निह्यतीति सुमित्रं तच्चासावङ्गजश्चेति सुमित्राङ्गजः प्रद्युम्नः यद्वा सुमित्रः अर्जुनस्तस्याङ्गजोऽभिमन्युः तस्य संगत्या सम्मेलनेन दशाननभासुरः दशदिक्षु शोभमानः लक्ष्मणाधिपः लक्ष्मणायाः स्वपत्न्या अधिपः कृष्णस्य अलिमुक्तेः बाणमोचनात् दानकार्यसारः छेदनकार्यतत्परः अभात् अराजत ॥ ५७ ॥

नरक्षितिं परपरिग्रहाद् विदन् स चारिणा ।
त्रिभिदे हरिणा दर्पं धरन्मन्दोदरीवरः ॥ ५८ ॥

अन्वयः—परपरिग्रहात् नरक्षितिम् विदन् दर्पं धरन् मन्दोदरीवरः चारिणा हरिणा त्रिभिदे ॥ ५८ ॥

व्याख्या—परपरिग्रहात् परेषामन्येषाम् परिग्रहः कलत्रम् तस्मात् अन्यस्त्रीसंसर्गात् नरक्षितिम् त्रियते इति नरः नयः तस्य क्षितिम् नाशम् विदन् जानन् दर्पम् अहंकारं धरन् बिभ्रत् मन्दोदरीवरः मन्दं कृशमुदरं यस्याः सा मन्दोदरी इति तस्याः वरः पतिः

कामं इत्यर्थः अथवा मन्दोदरीम् वनिताम् धर्मपारतन्त्र्यात् वृणोति स्वात्मेन स्वीकरोतीति मन्दोदरीवरः यद्वा मन्दोदरीभिः कामिनीभिः व्रियते इति मन्दोदरीवरः स कामः चारिणा विहरणशीलेन हरिणा जिनेन्द्रेण विभिदे चिच्छिदे निराचक्रे ॥

रामपक्षे—स मन्दोदरीवरः रावणः परपरिग्रहात् अन्यदीयभार्यातः नरस्य नीतेः क्षितिम् नाशं विदन् मन्यमानः यद्वा नरस्य नरजीवनस्य क्षितिं क्षयम् विदन् दर्पम् अहंकारम् मानम् धरन् बिभ्रत् चारिणा वनवासिना हरिणा लक्ष्मणेन विभिदे जघ्ने ॥

कृष्णपक्षे—परस्य शत्रोः परिग्रहात् स्वीकारात् नरक्षितिम् जनविनाशम् विदन् जानन् दर्पमहंकारं धरन् धारयन् मन्दोदरीवरः मन्दोदरी काचिज्जरा नाम्नी स्त्री तया व्रियते संयुज्यते यः स मन्दोदरीवरः जरया संधितो जरासंधः चारिणा रणाङ्गणचारिणा हरिणा कृष्णेन विभिदे विदारितः ॥ ५९ ॥

कुमारीवेदसाहस्रान् सराज्यान् यत्कृते दधत् ।
इक्ष्वाकुवंशवृषभः शं-के-वलश्रिया श्रितः ॥ ५९ ॥

अन्वयः—कुमारी सराज्यान् वेदसाहस्रान् यत्कृतेऽदधत् इक्ष्वाकुवंशवृषभः शं केवलश्रियाश्रितः अभवदिति ॥ ५९ ॥

व्याख्या—कुमारी कुमारितुम् आत्ममनने क्रीडितुं शीलमस्य स आत्मानुभवशीलः राजते इति राजः तस्य भावः राज्यम् राज्येन सहिताः सराज्यास्तान् सदीप्तान् वेदसाहस्रान् विदन्त्यनया इति वेदः ज्ञानम् तेषां साहस्रान् वेदसाहस्रान् अत्र सहस्रशब्दोऽनन्तार्थ इति अनन्तज्ञानानि यत् कृते यन्निमित्तम् दधत् धारयन् इक्ष्वाकुवंशवृषभः इक्ष्वाकुवंशश्रेष्ठः सर्ववर्णनीयतीर्थङ्कराणामिक्ष्वाकुवंशप्रभवत्वं पूर्वं प्रदर्शितमेवेति भावः जिनेन्द्रः शम् सम्यक् केवलश्रिया केवलज्ञानलक्ष्म्या आश्रितः अवलम्बितः अभवदिति शेषः ॥

नेमिपक्षे—कुमारीवेदसाहस्रान् कुमारीणाम् कन्यकानाम् वेद-साहस्रान् चतुःसहस्रान् सराज्यान् स्वराज्यसमृद्धिमहितान् यत्कृते यन्निमित्तम् दधत् नृपः धारयति यदि नेमिर्मत्सुतां परिणेष्यति तदा स्वराज्यमपि तस्मै दास्यामीति मतिमान् राजाऽभवत् स इक्ष्वाकुवंशवृषभः इक्ष्वाकुवंशश्रेष्ठः नेमिः अचलश्रियाश्रितः अचला चासौ श्रीः अचलश्रीः तया न श्रितः इति अश्रितः अनाश्रितोऽभवदिति शेषः। इत्यहं शंके मन्ये नेमिना कन्याग्रहणमकृतमित्यर्थः ॥

रामपक्षे-कुमारीणां कन्यकानां वेदसाहस्रान् त्रिसाहस्रान् "इति वेदास्त्रयस्त्रयीत्यमरः" सराज्यान् राज्यार्धसहितान् यत् यस्याः सीतायाः कृते निमित्तम् दधत् प्रत्यर्पणाय मनसि धारयन् इक्ष्वाकुवंशवृषभः इक्ष्वाकुवंशश्रेष्ठः केवलश्रिया कान्तिमात्रेण शं रावणहननजन्यकल्याणं मङ्गलम् आश्रितः प्राप्तः यावता रावणो मनसि कन्यानां सहस्रत्रयं राज्यञ्च दातुमिच्छति तावता लक्ष्मणेन हत इति भावः ॥

"दशास्यस्त्वां वदत्येवं बन्धुवर्गं विमुञ्च मे।
जानकीमनुमन्यस्व राज्यार्धञ्च गृहाण मे ॥
त्रीणिकन्यासहस्राणि तुभ्यं दास्यामि तेन च।
संतुष्य नो चेत्त मर्वत्र-हेतत्र च जीवित" मितिवचरित्रे ॥

श्रीकृष्णपक्षे–कुमारीणाम् कन्यकानाम् वेदसाहस्रान् षोडशसाहस्रान् विदन्त्यनेनेति वेदः शास्त्रम् तच " षडङ्गीवेदाश्चत्वारो मीमांसाऽन्वीक्षिकी तथा। धर्मशास्त्रम्पुराणं च विद्या एताश्चतुर्दश " इति चतुर्दशधा अनङ्गविद्या गानविद्या वेति षोडशविद्या सराज्यान् राजन्ते इति राजानो मणयः तेषां भावः राज्यम् तेन सहितान् अनेकमणिमहितान् यत्कृते यस्य कृष्णस्य कृते कृष्णनिमित्तम् दधत् धारयन् बलाश्रितः बलदेवाश्रितः इक्ष्वाकुवंशवृषभः यदुवंशस्यापि इक्ष्वाकुवंश-

मूलकत्वात् इक्ष्वाकुकुलश्रेष्ठः कृष्णः अवलश्रिया अवला एव श्रीस्तया आश्रितः अवलम्बित इत्यहं शंके मन्ये ॥

भूपाः षोडश साहस्रा वासुदेवाय भक्तितः ।
रत्नानि ढौकयामासुर्द्वे द्वे च वरकन्यके ॥
ताभ्यः षोडश साहस्राः कन्याः कृष्ण उपायत ।
अष्टौ सहस्राणि बलोऽन्ये कुमाराश्च तावती इति कृष्णचरित्रे ॥५९॥

चक्रे प्रभाविनि दशाननराजराजि,
भाति स्मयागजदशाननराजराजिः ॥
चक्रे प्रभाविनि दशाननराजराजि-
भातिस्मयागजदशा न नराजराजि ॥ ६० ॥

अन्वयः—दशाननराजराजि प्रभाविनि चक्रे स्मयागजदशाननराजराजिः भाति प्रभाविनि दशाननराजराजि चक्रे नर अजराजि यागजदशा न भातिस्म ॥६०॥

व्याख्या—आसमन्वादन्यते प्रकाश्यते इति आननः प्रकाशः दशसु दिक्षु आननः प्रकाशो यस्य स दशाननः राजते उद्योतते इति राजा तत्र राजते शोभते इति राजराट् दशाननश्चासौ राजराट् चेति दशाननराजराट् तस्मिन्, प्रभाविनि प्रभावशालिनि चक्रे भरतस्य राज्ञः चक्रास्त्रे प्रकटिते सतीति शेषः स्मयागजदशाननराजराजिः स्मयः चित्रोत्कर्ष एव अगः पर्वतः तस्माज्जायते इति स्मयागजः तेन दशसु दिक्षु अनिति प्रकाशते इति स्मयागजदशाननः राजसु राजते इति राजराजिः स्मयागजदशाननश्चासौ राजराजिश्चेति स्मयागजदशाननराजराजिः चित्तोद्रेकगिरिप्रभूतप्रकाशमाननृपमण्डलीश्रेष्ठः भरतः श्रीशान्तिनाथः श्रीनेमिनाथश्च भाति द्योतते प्रभाविनि प्रभावशालिनि दशाननराजराजि प्रकाशमाननृपश्रेष्ठनृपे चक्रे मण्डले समूहे हेनर अजराजि अजेषु छागेषु राजते इति अजराट् तस्मिन् यागजदशा यागे बलिप्र-

योजकविधौ जायते इति यागजा सा चासौ दशा चेति यागजदशा इव न भातिस्म न शोभतेस्म यथा वध्यपशो तात्कालिकीदशा न शोभते तथा प्रभावशालिनि नृपमण्डलेऽपि यागजदशायुद्धरूपयजन-दशा न भातिस्मेति भावः ॥ ६० ॥ अत्र श्लोके वसन्ततिलकं वृत्तम् "ज्ञेयम् वसन्ततिलकं तभजा जगौग" इति तल्लक्षणात् ॥

रामपक्षे—प्रभाविनि प्रभवितु शीलं यस्य स प्रभावी तस्मिन् प्रभावशालिनि दशाननराजराजि दशाननराजः राजा यस्य स दशानन-राजराट् तस्मिन् तथोक्ते चक्रे मण्डले या गजदशाननराजराजिः गजः मत्तः विवेकशून्य इत्यर्थः यः दशाननः स चासौ राजा चेति गज-दशाननराजः तस्य राजिः तदीयपक्षीयश्रेणी भातिस शोभतेस्म हे-नर प्रभाविनि प्रभावशालिनि दशाननराजराजि भाति चक्रे दशानन-राजस्य या राजिः तत्पक्षीयश्रेणी तत्र चक्रे भाति देदीप्यमाने सति तदीयपक्षे चक्रे प्रभवति सति स्मयागजदशा न गच्छतीत्यगः स्मयोऽहंकार एवागः स्मयागः तस्माज्जायते इति स्मयागजा सा चासौ दशा चेति स्मयागजदशा अहंकारगिरिसंभूता दशा आजराजि आजस्य संग्रामस्य राजि आंगणे रणभूमौ न भातिस न राजवेश्म देहलीदी पन्यायेन भातीत्यस्योभयत्रान्वयः ॥

कृष्णपक्षे-जरासंधरूपविपक्षराजदशाधादिरूपेण व्याख्यातसेया । प्रकृते व्यपेतभेदाख्यः समुद्गयमकालंकारः 'अर्धाभ्यासः—समुद्गःस्या' दिति सरस्वतीकण्ठाभरणोक्तेः ॥ ६० ॥

योगारक्षमादिसहसा-दशकन्धरं-तं,
तीव्रारिभावमधिगम्य निशम्य कामम् ।
वोधो विभेद सरयाञ्जरया ससन्यं,
श्रीलक्ष्मणेत्य निहितः स तु वासुदेवः ॥ ६१ ॥

अन्वयः—क्षमादिसहसा योगात् स तु वासुदेवः श्रीलक्ष्मणोपनिहितः बोधः कामं तीव्रारिभावम् अधिगम्य दशकन्धरं तं निशम्य ससन्ध रयात् जरया विभेद ॥ ६१ ॥

व्याख्या–क्षमादिसहसा योगात् क्षमा दयादाक्षिण्यादिरेव सहः बलम् तेन योगात् संबन्धात् वासुदेवः वसु एव वासु तेन दीव्यति प्रकाशते इति वासुदेवः तेजोविशेषेण देदीप्यमानः श्रीलक्ष्मणा तत्तत् स्वस्वविशेषचिह्नेन वृषभादिना एत्य प्राप्य निहितः युक्तः बोधः बुध्यति जानातीतितथा ज्ञानवान् कामम् मदनम् तीव्रारिभावमुत्कटरिपुभावम् शत्रुतामधिगम्य प्राप्य स्थितमिति शेषः दशा मृतिरेवदशकः तन्धरतीति दशकंधरः तम् अनङ्गवाङ्गतम् ससन्धम् सप्रतिज्ञम् रयात् स प्रभुर्जिनेन्द्रः जरया विभेद निर्वतयामास' युवावस्थायामेव शरीरपाताज्जरायोगो नैव प्रापेति भावः ॥

रामकृष्णपक्षे—क्षमादिसहो बलं यस्य स क्षमादिसहा तेन क्षमादिसहसा उपलक्षितः क्षमादिबलवान् बोधः ज्ञानवान् श्रीलक्ष्मणा श्रीरेवलक्ष्म चिह्नम् तेन श्रीलक्ष्मणा एत्य निहितः श्रीलक्ष्मोपलक्षितः स तु वासुदेवः श्रीरामलक्ष्मणः कृष्णबलदेवश्च तीव्रारिभावम् अतिशयविपक्षभूतम् अधिगम्य बुध्वा तं दशकंधरं कामम् यथेष्टम् निशम्य दृष्ट्वा जरया ससन्धम् जरयायुक्तं संधम् जरासंधम् प्रतिवासुदेवम् रयात् शीघ्रम् विभेद चिच्छेद निहतवान् ॥ ६१ ॥

विश्वाङ्गजापहरणोद्भवसंपरायात्,
पट्खण्डभूमिभरतेशकलाधिकारे ।
देवो निवृत्य भुवनाद्भुतराज्यलक्ष्मीः,
कक्षीचकार विविधोत्सवकेवलेन ॥ ६२ ॥

अन्वय —विश्वाङ्गजापहरणोद्भवसंपरायात् पट्खण्डभूमिभरतेशकलाधिकारे देवः भुवनाद्भुतराज्यलक्ष्मीः निवृत्य विविधोत्सवकेवलेन कक्षीचकार ॥ ६२ ॥

व्याख्या—विश्वाङ्गजापहरणोद्भवसंपरायात् विश्वः समस्तः सरणं कीर्त्तनमित्याद्यष्टरूपो यः अंगजः कामः तस्य अपहरणे निराकरणे निरसन इत्यर्थः यद्वा तस्य अपहरणाय निराकरणाय उद्भवो जातः यः संपरायः संग्रामः "युद्धायत्योः संपराय इत्यमरः" तस्मात् अष्टविधकामवासनानिराकरणोद्भूतरणात् भुवनाद्भुतराज्यलक्ष्मीः त्रिभुवनविलक्षणराज्यसंपदः षट्खंडभूमिभरतेशकलाधिकारे षट्खंडा या भूमिः पृथ्वी तामिभमर्त्ति धारयति स्वामित्वेन अधिकरोतीति षट्खंडभूमिभरतः स चासौ ईशश्चेति षट्खंडभूमिभरतेशः तस्य या कला योगक्षेमरूपा तस्या अधिकारे प्रभुत्वे शासने निवृत्य स्थापयित्वा देवः जिनेन्द्रः विविधोत्सवकेवलेन विविधोत्सवेन अनेकविधदेवकृतसमवसरणादिमंगलेन केवलेन केवलज्ञानेन कक्षीचकार क्रोडीचकार केवलज्ञानवान् सम्पन्नः ॥

अन्यजिनेन्द्रपक्षे—षट्खण्डभूमिभरतेशकलाधिकारे षट्खण्डः यः भूमिभरतः भरतखण्डभूमिस्तत्र ईष्टे प्रभवतीति षट्खंडभूमिभरतेशः तस्य या कला तदधिकारे भुवनाद्भुतराज्यलक्ष्मीः निवृत्य निराकृत्येत्यर्थः षट्खण्डभूमिभरतेशयोग्यतायामपि तत्र जग्राहेति तत्वम् ॥

रामपक्षे—देवः देवनशीलः षट्खण्डभूमिभरतेशकलाधिकारे षट्खण्डभूमिम् बिभर्त्तीति " भृ अतच् " षट्खण्डभूमिभरतः स चासौ ईशश्चेति षट्खण्डभूमिभरतेशः कलायाः कृत्स्नायाः अधिकारः कलाधिकारः षट्खण्डभूमिभरतेशस्य कलाधिकारस्तस्मिन् भुवनाद्भुतराज्यलक्ष्मीः त्रैलोक्यविलक्षणराज्यसंपदः रावणाधिकारस्य राज्यलक्ष्मीः विश्वाङ्गजापहरणोद्भवसंपरायात् विश्वांगजायाः जानक्याः अपहरणेन उद्भवः उत्पन्नः यः संपरायः संग्रामस्तस्मात् कारणात् निवृत्य आच्छिद्य रावणाधिकारे या राज्यलक्ष्मीस्तां निवृत्य तत

आकृष्य विविधोत्सवकेवलेन अनेकोत्सवप्रधानेन कक्षीचकार क्रोडी-चकार ॥ ६२ ॥

कृष्णपक्षे—विश्वायाः कंसमातुः अंगजः कंसः तस्य अपहरणात् नाशनात् उद्भवति यः संपरायः संग्रामस्तस्मात् षट्खण्डभूमिभरते-शकलाधिकारे जरासंधनृपाधिकारे शासने या भुवनाद्भुतराज्यलक्ष्मीः निवृत्य निराकृत्य देवः कृष्णः विविधोत्सवकेवलेन अनेकविधमंग-लप्रधानेन कक्षीचकार स्वायत्तीचकार जरासंधराज्यलक्ष्मीः पराकृत्य स्वाधीनामकरोदित्यर्थः ॥ ६२ ॥

ज्ञानं केवलमार्षभं हरमिते मुख्ये तपस्येऽभव-
त्सत्पौषे नवमे सिते हिमरुचा हीनेऽर्यमासेविते ।
प्राक्कल्याणकवासरेऽन्तिमविभौ दिक्संमिते माधवे,
राज्ये सा नियतिर्जिने निगदिता रामेऽभिरामे त्विषा ६३

इतिश्री सप्तसंधाने महाकाव्ये महोपाध्यायश्रीमेघविजयगणिविरचिते भगवत्केवलज्ञानसाम्राज्यवर्णनोनाम षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

अन्वयः—हरमिते मुख्ये तपस्ये आर्षभं केवलं ज्ञानम् अभवत् सत्-पौषे नवमे सिते हिमरुचा अहीनेऽर्यमासेविते प्राक्कल्याणकवासरे अन्तिमविभौ दिक्संमिते माधवे जिने राज्ये सा नियतिर्निगदिता त्विषा अभिरामे रामे च निगदिता ॥ ६३ ॥

व्याख्या—हरमिते हरेण परिमिते एकादश्याम् मुख्ये प्रधाने तपस्ये फाल्गुने "स्यात्तपस्यः फाल्गुनिकः इत्यमरः" आर्षभम् ऋषभ स्येदम् आर्षभम् ऋषभनाथसंबन्धि केवलं ज्ञानम् केवलज्ञानम् अभवत्, सत्पौषे शोभनपौषमासे नवमे नवमीतिथौ सिते शुक्लपक्षे "अवदातः सितो गौरोऽवलक्षो धवलोऽर्जुन इत्यमरः" पौषशुक्लनवम्याम् शान्तेः

केवलं ज्ञानमभवत्, हिमरुचा चन्द्रेण अहीने युक्ते अर्यम्णा आसेविते इति अर्यमासेविते सूर्यचन्द्रोभयसम्मिते तिथाविति शेषः अमावास्यातिथौ आश्विनकृष्णामावास्यायाम् नेमेः केवलज्ञानम् अभवत्, प्राक्कल्याणकवासरे प्राथमिककल्याणकदिने च्यवनकल्याणदिने चैत्रकृष्णचतुर्थ्याम् पार्श्वनाथस्य केवलज्ञानमभवत्, अन्तिमविभौ चरमतीर्थकरे श्रीवर्धमाने जिने दिक्समितं दशम्याम् तिथौ माधवे वैशाखे राज्ये केवलज्ञानरूपे साम्राज्ये सा नियतिः स्थितिः निगदिता कथिता, त्विषा कान्त्याऽभिरामे मनोहरे रामे बलरामे रामलक्ष्मणे च राज्ये सा नियतिः स्थितिर्निगदिता निरूपिता ॥ अत्र पद्ये शार्दूलविक्रीडितं छन्दः 'सूर्याश्वैर्मसजस्ततः स गुरवः शार्दूलविक्रीडितम्' इति लक्षणात् ॥ ६३ ॥

इति शास्त्रविशारद, कविरत्न, भट्टारकाचार्य–श्रीविजयामृतसूरीश्वरप्रणीतायां सप्तसंधानमहाकाव्य–सरणी–टीकायां षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥



॥ अथ सप्तमः सर्गः ॥



समवसरणे सत्रा तत्रागमद् रमणैर्भुवः,
सकलभरतस्वामी भावी नवोदितचक्रभृत् ।
धरणिवलयादश्वक्षुण्णार्जुनोत्थरजोऽणुभि-
र्गणिपरिणतैश्चित्रं कुर्वन्निवाम्बरमम्बरैः ॥ १ ॥

अन्वयः—तत्र समवसरणे भुवः रमणैः सत्रा सकलभरतस्वामी भावी नवोदितचक्रभृत् धरणिवलयात् अश्वक्षुण्णार्जुनोत्थरजोऽणुभिर्गणिपरिणतैः अम्बरै-रिव अम्बरं चित्रीकुर्वन् अगमत् ॥ १ ॥

व्याख्या—तत्र जिनेन्द्रस्य समवसरणस्थाने भुवः पृथिव्याः रमणैः भूपतिभिः सत्रा सह सकलभरतस्वामी सकलानाम् अखिलानां भरतानाम् भरतखण्डानाम् स्वामी अधिपतिः भावी नवोदितचक्रभृत् नवः नूतनः यश्चक्रश्चक्रास्त्रः स नवोदितचक्रः तम्बिभर्त्तीति नवोदितचक्रभृत् नूतनप्रकटितचक्रधारकः भावी भविष्यत् इतो गत्वा चक्रं धारयिष्यतीत्येवंभूतः धरणिवलयात् भूमण्डलात् अश्वक्षुण्णार्जुनोत्थ-रजोऽणुभिः अश्वैः वाजिभिः क्षुण्णाः सम्पिष्टाः अर्जुनाः शुक्लाः धवला इत्यर्थः उत्थाः उच्छ्रिता उद्गता ये रजसां धूलीनाम् अणवः क्षुद्रांशाः तैः तथोक्तैः तुरङ्गमकुट्टितश्वेतोच्छ्रितधूलिकणैः गणिः गण्यते दिव्य-पदप्राप्तया इति गणिः तत्र परिणतैः आकाशपरिणतैः आकाशस्थैः अम्बरैरिववसनैरिव अम्बरम् आकाशम् चित्रम् अद्भुतम् नानावर्णवत् कुर्वन् विदधत् आगमत् आयासीत् ॥

अन्यजिनेन्द्रपक्षेऽपि समानमेतत् ॥ १ ॥

रामपक्षे—तत्र समवसरणे लंकापरिसरकुसुमायुधोद्यानसमागताप्रमेयबलनामर्षिसमुत्पन्नकेवलज्ञानोत्सवचिकीर्षुर्महेन्द्राधिष्ठितस्थाने भुवः पृथिव्याः रमणैः पृथ्वीपतिभिः सत्रा समम् सकलभरतस्वामी भावी नवोदितचक्रभृत् रामः आगमत् अन्यत पूर्ववद्योज्यम् ॥

कृष्णपक्षे—समवसरणे युद्धसमाप्ते निवृत्तयुद्धे सति तत्र कृष्णसन्निधिभूमौ भुवः रमणैः सह जरासन्धपक्षीयनृपैः समम् सकलभरतस्वामी नवोदीतचक्रभृत् कृष्णः अगमत् अन्यद्विशेषणं यथापूर्वमनुसन्धेयम् ॥ १ ॥

अत्र सर्गे हरिणीवृत्तन्तल्लक्षणं यथा 'रसयुगहयैर्न्सौम्रौस्लौ गो यदा हरिणी तदा' ॥ १ ॥

तपनतनयस्तस्याप्यग्रेसहः सह सेनया,
करटिघटनाटोपारोपादियाय जयाश्रयः ।
असहनजनक्षोभं तन्वन् सधन्वभटैः श्रिया,
हरितनुजवद् गन्धर्वाणां स्मरध्वजगर्जितैः ॥ २ ॥

अन्वयः—तपनतनयः सह सेनयाऽपि अग्रेसहः करटिघटनाटोपारोपात् जयाश्रयः गन्धर्वाणाम् स्मरध्वजगर्जितैः सधन्वभटैः श्रिया हरितनुजवत् असहनजनक्षोभं तन्वन् इयाय ॥ २ ॥

व्याख्या–तपनतनयः तप्यते लोकोत्तरैश्वर्यमश्नुते इति तपनः अथवा तपति कामादीनिति तपनः यद्वा तापयति कर्मादिकषायानिति तपनः तनोति धर्ममिति तनयः तपनश्चासौ तनयश्चेति तपनतनयः परमैश्वर्य्यसम्पन्नधर्मप्रवर्त्तकः सह सेनया अग्रेसहः एति स्वामित्वं यया सा इना शासनपद्धतिः तया सहिता इति सेना तया अग्रेसहः शासनपद्धतिमनुसृत्याग्रेसरः करटिघटनाटोपारोपात् करोति शब्दमिति करटः करट एव करटी "स्वार्थे इन्" तस्य या घटना आयोजना

तस्या आटोप आडम्बरः तस्य आरोपात् अध्यवसायात् शाब्दिकायोजनाडम्बराध्यवसायतः जयाश्रयः कर्मादिकषायजयाश्रयः गन्धर्वाणां स्वाधिष्ठायकदेवयोनिविशेषाणाम् स्मरध्वजगर्जितैः वाद्यशब्दविशेषैः सधन्वभटैः धनुषा सह वर्त्तते यः स सधन्वा स चासौ भटश्चेति सधन्वभटैः सकोदण्डयोधैरिव श्रिया कान्त्या हरेः सूर्यस्य तनुजवत् सूर्यतनुजं यत्तेजस्तद्वत् यद्वा हरेश्चन्द्रस्य तनुजवत् चन्द्रकान्तिवत् असहनजनक्षोभम् तेजः सहनासमर्थजनचाञ्चल्यम् तन्वन् विस्तारयन् जिनेन्द्रः प्रभुः इयाय परिवव्राज ॥

रामपक्षे—तस्यापि ततोऽपि सेनया सह स्वसैन्ययुक्तः अग्रेसहः अग्रगामी जयाश्रयः जयम् संग्रामविजयम् आश्रयतीति जयाश्रयः करटिघटनाटोपात् करटिनो गजस्य या घटना योजना तस्या आटोपो गर्वः तस्य आरोपात् अध्यवसायात् गजसन्निभवानरसैन्यसमुदायात् सधन्वभटैः सकोदण्डसैन्यैः स्मरध्वजगर्जितैः स्मरध्वजानाम् वाद्यानाम् "वाद्यं वादित्रमातोद्यं तूर्य तूरं स्मरध्वजः इति हैमः" गर्जितैः कोलाहलैः हरितनुजवत् इन्द्रपुत्रवत् वालीव तपनतनयः सूर्यपुत्रः सुग्रीवः असहनजनस्य शत्रुजनस्य क्षोभम् वैकल्यम् तन्वन् प्रथयन् गन्धर्वाणां च क्षोभम् रावणमहायार्थमागतानां देवयोनिविशेषाणां च क्षोभम् चाञ्चल्यम् तन्वन् विस्तारयन् इयाय संग्रामाभिमुखम् प्रससार ॥ २ ॥

कृष्णपक्षे—तापयति शत्रूनिति तपनः तनोति स्वकीयत्वैभवमिति तनयस्तयोः कर्मधारयः शत्रुतापकारकैश्वर्यवान् अथवा तप्यते लोकोत्तरशरीरशोभामश्नुते इति तपनो वसुदेवस्तस्य तनयः पुत्रः कृष्णः सेनया यादवसेनयाग्रेसहः अग्रगः करटिनां गजानां घटना सैन्यसंमेलना तस्या आटोपस्याडम्बरस्य आरोपादध्यवसायात् विजयाश्रयः विजयाभिलाषुकः स्मरध्वजगर्जितैः वाद्यशब्दैः सधन्वभटैः

कोदण्डकाण्डकलितसैन्यैः गन्धर्वाणां असहनजनक्षोभं शत्रुजनवैमनस्यं तन्वन् श्रिया कान्त्या हरितनुजवत् सूर्य इव इयाय चचाल यद्वा तनतनयः सूर्यपुत्रः कर्णः जयाश्रयः जयम्विजयम् अर्जुनम् आश्रयति युद्धाय सम्मुखीनं करोतीति तथा हरितनुजवत् वालीव इयाय संग्रामाङ्गणं ययौ अन्यद्विशेषणं पूर्ववद्योज्यमित्यर्थः ॥ २ ॥

अनुदिशमपि ध्यायन्नन्तर्दशाननसंगमं,
दिनमुदयिनं भानुं कर्णे निधाय विचारयन् ।
करिशिरसि च न्यस्तं हस्तं तथेन्द्रजिता समं,
नयनविपयीकुर्वन् गुर्वीं पुरः सुरवाहिनीम् ॥ ३ ॥

अन्वयः—अनुदिशम् प्रतिदिशम् दशाननसंगमम् ध्यायन् दिनमुदयिनम् भानुं कर्णे निधाय विचारयन् तथा इन्द्रजिता समम् करिशिरसि च न्यस्तं हस्तम् पुरः गुर्वीम् सुरवाहिनीं नयनविपयीकुर्वन् अगमदिति पूर्वेणान्वयः ॥ ३ ॥

व्याख्या—अनुदिशम् प्रतिदिशम् दशाननसंगमम् ध्यायन् दश इन्द्रियाणि आनयति तोषयतीति दशाननम् ज्ञानम् वस्तुतत्वम् अन्तर्मनसि ध्यायन् विचारयन् उपयुञ्जन् कथंभूतम् दशाननसंगमम् दिनम् द्यति पापम् कर्म वा इति दिनम् उदयिनम् प्राप्तोदयम् भानुम् प्रत्यक्षाप्रत्यक्षविपयप्रकाशकम् कर्णे निधाय शब्दं श्रुत्वा विचारयन् तत्तद्वस्तुसत्ताविचारपरः यद्वा करो राजप्राप्यां शोऽस्यास्तीति करी नृपः "बलिहस्तांशवः करा इत्यमरः" तस्य करिणो नृपस्य शिरसि न्यस्तम् मूर्ध्नि स्थापितम् धर्ममित्यर्थः नृपस्य धर्ममूलत्वात् कर्णे निधाय विचारयन् तत्वनिर्णय कुर्वन् तथा इन्द्राजिता समम् इन्द्रम् परमैश्वर्यसम्पन्नमपि जयतीति इन्द्रजित् साधुः, निस्पृहस्य तृणञ्जगदिति तेन समम् अथवा इन्द्रजिदसुरस्तेन असमम् असुरसंगतिरहितम् पुरः अग्रे गुर्वीम् गरीयसीम् सुरवाहिनीम् देवसंहतिम् नयनविपयीकुर्वन् नेत्रगोचरं कुर्वन् अगमदिति पूर्वश्लोकेनान्वयः ॥

श्रीरामपक्षे—अनुदिशम् प्रतिदिशम् अन्तर्हृदये दशाननसंगमम्, रावणसन्निधानम् ध्यायन् विचारयन् उदयिनम् अचिरराज्यप्राप्त्या प्राप्तोदयम् भानुम् सूर्यतनयम् "अपत्यप्रत्ययस्य लुक्" अथवा भातीति भानुस्तम् सुग्रीवम् कर्णे निधाय कर्णसमीपं नीत्वा "सामीप्ये सप्तमी" विचारयन् किमपि चिन्तयन् रामः करिशिरसि हस्तिमस्तके न्यस्तं स्थापितं हस्तम् इन्द्रजिता मेघनादेन समम् सार्धम् गुर्वीम् गरीयसीम् सुरवाहिनीम् सुरति ऐश्वर्यदीप्तिम् प्राप्नोतीति सुरः राक्षसः तस्य वाहिनीम् सेनाम् नयनविषयीकुर्वन् अवलोकयन् अगमदिति पूर्वश्लोकेनान्वयः ॥

कृष्णपक्षे—अनुदिशम् प्रतिदिशम् दशाननस्य कामस्य प्रद्युम्नस्येत्यर्थः संगतिम् संगम् ध्यायन् विचारयन् उदयिनम् प्राप्तोदयम् भानुं तदभिधानम् कञ्चिन्नृपम् कर्णे निधाय कर्णसमीपन्नीत्वा विचारयन् रहो मंत्रयन् कार्यजातमिति शेषः करिशिरसि न्यस्तं स्थापितम् हस्तम् इन्द्रजिता ऐश्वर्येण महेन्द्रमपि पराभवता नृपेण समम् सार्धम् पुरः अग्रे गुर्वीम् महीयसीम् सुरवाहिनीम् दैत्यसैन्यम् राजसैन्यम्वा नयनविषयीकुर्वन् पश्यन् अगमत् ययाय ॥ ३ ॥

मारीचः समयः स सुन्दरविधिः श्रीमेघनादोऽप्यगा—
च्चन्द्रोऽर्कः प्रथितः प्रहस्तकथितः कामाक्षनामा-शुको(कः)
गम्भीरो मकरध्वजः कमलभूः कान्त्या (पिना?)शारणो,
वीभत्सः प्रबलायुधैः क्षितिभृतोऽन्येऽपीयुरुत्साहसाः॥४॥

अन्वय—मारीचः समयः सुन्दरविधिः सः श्रीमेघनादः चंद्रः अर्कः प्रथितः प्रहस्तकथितः कामाक्षनामा शुकः गंभीरः कान्त्या कमलभूः मकरध्वजः शारणो नाः वीभत्सः प्रबलायुधैः अगात् अन्येऽपि उत्साहसाः क्षितिभृतः ईयुः ॥४॥

व्याख्या—मारीचः ताडकेयः समयः समयनामा स प्रसिद्धः सुन्दरविधिः तदाख्यः यद्वा सुन्दरो विधिः अनुष्ठानं आभिचारिकं यस्य स श्रीमेघनादः रावणज्येष्ठतनयः चन्द्रः चन्द्रज्वलननामा रावणिः अर्कः अर्कप्रभः प्रथितः प्रसिद्धः प्रसस्त इति नाम्नाख्यातः रावणमातामहः प्रधानमंत्री कामाक्षनामा कामाक्षेत्यभिधेयः रावणतनुजः शुकः राज्ञः प्रणिधिः गंभीरः मकरध्वजः यः कान्त्या कमनीयतया कमलभूः चतुराननसन्निभः शारणः रावणचरः बीभत्सः प्रबलायुधैः महदस्त्रशस्त्रैः सह रामरावणयुद्धे अगात् योद्धुमगमत् अन्येऽपि क्षितिभृतः रावणसहायकनृपाः उत्साहसाः युद्धोत्साहस्थायिभावभावितान्तःकरणाः ईयुः समाजग्मुः इति रामपक्षे ।

तीर्थङ्करपक्षे—यथायथं विशेषणविशिष्टाः मुनीन्द्रा नरेन्द्रा देवेन्द्राश्च समीयुः इति अवसेयम् ॥ ४ ॥ शार्दूलविक्रीडितम् छन्दः ।

जातातपस्य वलिता ललिता दिनस्य,
श्रीर्नातिशीतमधुरा मधुराङ्गभाजाम् ।
आपानमप्युपवने पवनेरितेषु,
यूनां द्रुमेषु चरणाद् रमणान्मयूनाम् ॥ ५ ॥

अन्वयः—जातातपस्य दिनस्य वलिताललिताश्रीः मधुरांगभाजाम् नातिशीतमधुरा जाता पवनेरितेषु द्रुमेषु मयूनां चरणात् यूनां रमणात् आपानमपि मधुरं जातम् ॥ ५ ॥

व्याख्या—अत्र सर्गे "नानावृत्तमयः क्वापि सर्गः कश्चन दृश्यते" इति साहित्यदर्पणधृतमहाकाव्यलक्षणान्नानावृत्तयः किञ्च प्रातर्मध्याह्नमृगयाशैलर्तुवनसागराः वर्णनीया इत्यपि तत्रत्यवचनाद्दतुवर्णनं सर्वसाधारणतया कविः प्रस्तौति जातेति—जातातपस्य जाततापस्य अह्नः वलिता ओजस्विता ललिता मनोहरा अथ च आतपस्य

रौद्रस्य बलिता बलस्य भावः बलिता सामर्थ्यम् जाता अपगता निवृ चेत्यर्थः सर्वसहिष्णुत्वात् दिनश्रीः दिनशोभा मधुरांगभाजाम् सुकुमारशरीराणाम् नातिशीतमधुरा अधिकशीताभावात् मधुरा मनोज्ञा अथ च अङ्गभाजां शरीरिणाम् मधुरा सेवनयोग्या उपवने उद्याने पवनेरितेषु पवनवीजितेषु द्रुमेषु पादपेषु चरणाद्विचरणात् मयूनाम् मृगानाम् यूनां—तरुणानाम् रमणाद्विहारात् आपानमपि पानगोष्ठी अपि मधुरमिति शेषः मयुःस्यात्किन्नरे मृगे इति शब्दस्तोममहानिधिः ॥ ५ ॥

यमकालंकारः ॥

अत्र सर्गे इत आरभ्य एकविंशतिश्लोकपर्यन्तं वसन्ततिलकं वृत्तम् तल्लक्षणञ्चेयं वसन्ततिलकं तभजा जगौग इति ॥

सा फाल्गुनस्य यशसां जगति प्रशस्तिः,
प्रादुर्बभूव महसा जितसौरभासः ।
मन्ये तदर्कतनुजन्मविभाविनोद—
स्तत्याज मौढ्यमचिरान्न तथा प्रसह्य ॥ ६ ॥

अन्वयः—महसा जितसौरभासः फाल्गुनस्य जगति यशसां प्रशस्तिः प्रादुर्बभूव तत् अर्कतनुजन्मविभाविनोदः अचिरान्मौढ्यम् तत्याज तथा प्रसह्य न इत्यहम्मन्ये ॥ ६ ॥

व्याख्या—महसा जितसौरभासः महसा तेजसा जिता लब्धा सौरस्य सूर्यसम्बन्धिनः भा कान्तिर्येन तस्य जितसौरभासः प्राप्तसूर्यकान्तेः यद्वा महसा स्वकीयतेजसा जिता पराभूता सौरभा सूर्यप्रभा येन स जितसौरभाः तस्य जितसौरभासः अथवा महसाजितसौरभासः अप्राप्तसूर्यरुचेः फाल्गुनस्य तपसस्य यशसां कीर्त्तीनां प्रशस्तिः प्रशंसा प्रादुर्बभूव समुत्पेदे तत् अर्कतनुजन्मविभाविनोदः अर्कस्य दिवाकरस्य तनुजन्मविभा शरीरजातप्रकाशः अचिरात् तत्क्षणमेव प्रसह्य हठात्

मौढ्यम् मूढताम् महनशीलताम् न तत्याज न मुमोच फाल्गुने सूर्य प्रभायाः सह्यतात्तैक्ष्ण्यं सर्वथा न भेजे इति भावः इत्यहं मन्ये जाने ॥ ६ ॥ उत्प्रेक्षालंकारः ॥

अथ च महसा निजतेजसा । जितः पराजितः सौरस्य सूर्यापत्यस्य कर्णस्य भास्तेजो येन सः जितसौरभाः तस्य जितसौरभासः फाल्गुनस्य अर्जुनस्य " अर्जुनः फाल्गुनः पार्थः सव्यसाची धनञ्जय इति हैमः" जगति भुवने यशसां प्रशस्तिः विख्यातिः प्रादुर्बभूव उदियाय तत् अर्कतनुजन्मविभाविनोदः अर्कतनुजन्मनः कर्णस्य विभायाः प्रभायाः विनोदः विक्षेपः प्रसह्यबलात् अचिरात् तत् क्षणमेव मौढ्यम् मुग्धताम् न तत्याज निचिक्षेप किन्तु तत्याज एव इत्यहम्मन्येऽनुमिनोमि ॥ उत्प्रेक्षा ॥ ६ ॥

सिद्धोपदेशवचसा कृतकर्णभेद,
श्वेताश्ववाहनवलं स्वनृपानुमत्या ।
शुद्धैषणादिविधिना सुरवृष्टिरुच्चै-
र्मुक्तानुयुक्तकरणैर्जनयाम्बभूवे ॥ ७ ॥

अन्वयः—सिद्धोपदेशवचसा कृतकर्णभेदम् स्वनृपानुमत्या श्वेताश्ववाहनवलम् शुद्धैषणादिविधिना मुक्तानुयुक्तकरणैः उच्चैः सुरवृष्टिः जनयाम्बभूवे ॥७॥

व्याख्या—सिद्धोपदेशवचसा उपदिशति वसन्तागममनुमापयतीति उपदेशः कोकिलः तेषां वचः उपदेशवचः सिद्धः स्वभावसिद्धश्च तत उपदेशवचश्चेति सिद्धोपदेशवचः तेन स्वाभाविककोकिलवचनेन कृतकर्णभेदः कृतः विरचितः कर्णस्य कर्णिकारपुष्पस्य भेदो विकासो येन तत् श्वेताश्ववाहनवलम् श्वेताश्ववाहनस्य बलम् सूर्यबलम् तेजः " ऋतुकर्त्ता प्रभाकर इति पुराणम् " स्वनृपानुमत्या सूर्याज्ञया

शुद्धैपणादिविधिना शुद्धः उत्तेजितः य एपणः बाणः स आदिर्यस्य विधेः तेन मदनहेतुकतीक्ष्णबाणादिविधानेन उच्चैः अतिशयम् सुरवृष्टिः सुष्ठु राजन्ते शोभन्ते इति सुराः पुष्पाणि तेषाम्वृष्टिर्वर्षणं सृष्टिः मुक्तानुयुक्तकरणैः मुक्ता विकसिता अनुयुक्ता विकाशोन्मुखाः तेषां करणैर्विधानैः जनयाम्बभूवे विरचयामासे वसन्ते कामस्य बाणाय पुष्पाणि सज्जयन्ते ॥

अन्यपक्षे—सिद्धोपदेशवचसा सिद्धानां केषांचित् त्रिकालज्ञानवताम् यत् उपदेशवचः तेन कृतकर्णभेदम् कृतः विहितः कर्णस्य भूपतेर्भेदः छेदो येन तत् श्वेताश्ववाहनबलम् श्वेताश्ववाहनस्य अर्जुनस्य बलम् सैन्यम् स्वनृपानुमत्या अर्जुनाज्ञया शुद्धैपणादिविधिना शुद्धस्तीक्ष्णीकृतः य एपणः बाणः स आदिर्यस्य स नितान्तोत्तेजितबाणादिः तस्य विधिना विधानेन मुक्तानुयुक्तकरणैः मुक्ताः शत्रौ प्रक्षिप्ताः अनुयुक्ताः मोचनाय तूणिरान्निष्कासिताः तेषां करणैर्विधानैः सुरवृष्टिः सुन्वन्ति विपक्षान् पीडयन्तीति सुराः बाणाः तेषाम् वृष्टिर्वर्षणम् उच्चैः अतिशयम् जनयांबभूवे उत्पादयामासे ॥ ७ ॥

एपणो लोहमये बाणे इति शब्दस्तो० श्लेषः ॥

सीतापहारविधिरेप तवोपहार-
व्याहारनिर्भयविहारविनाशनाय ।
तेनाधुनापि मधुनाशनतां जहीही-
त्याहेव रावणमिह स्वधियालिजन्यम् ॥ ८ ॥

अन्वयः—एष सीतापहारविधिः तवोपहारव्याहारनिर्भयविहारविनाशनाय तेन अधुनापि मधुनाशनताम् जहीहि इति अलिजन्यम् स्वधिया [illegible] रावणम् आह इव ॥ ८ ॥

व्याख्या—सीतापहारविधिः सीतायाः मदिरायाः "सीता लांगलपद्धतौ जनकदुहितरि लक्ष्म्यां मदिरायामुमायां चेति शब्दस्तोममहानिधिः" अपहारविधिः परित्यागविधिः तत्र उपहारव्याहार-निर्भयविहारविनाशनाय स्वच्छन्दन इतस्ततोगमनागमननिर्भयविहार-निवारणाय तेन अधुनापि इदानीमपि मधुनाशनताम् मद्यप्रधानभो-जनशीलताम् जहीहि परित्यज इति रावणम् रावयति लोकमिति रावण-स्तम् मद्यजनितविभ्रान्तवचनम् इह समन्तमभयं स्वधिया स्वमत्या अलिजन्यम् भ्रमरवादः भ्रमराणाम्परस्परशब्दः आहेव उवाचेव :"जन्यं-स्याज्जनवादेऽपीत्यमरः" अत्र क्रियागतोत्प्रेक्षालंकारः ॥

अन्यत्र एष सीतापहारविधिः सीतायाः जानक्या अपहारविधिः अपहरणव्यापारः तत्र सर्वैश्वर्यसम्पन्नस्यापि रावणस्य उपहारव्याहार-निर्भयविहारविनाशनाय उपहाराणाम् उपढौकनानाम् व्याहाराणाम्भि-र्भयवचनानाम् निर्भयविहाराणाम् क्रीडाविशेषाणाम् विनाशनाय निधूर्त्यै तेन तद्धेतुना अधुनापि इदानीमपि मधुनाशनताम् मधुप्रधान भोजनताम् मद्यपानमित्यर्थः यद्वा मधुना तदभिधानेन राक्षसेन सह संगताम् संबन्धताम् अथवा मधुना कुम्भनसीभर्त्रा सह असनता-मुपवेसनताम् तेन संगतिम् जहीहि परित्यज इत्थमेवम् अलिजन्यम् भ्रमरवादः अथवा अलेः काकस्य जन्यम् युद्धम् स्वधिया स्वबुद्ध्या इह समये आह इव कथयतीवेत्यर्थः ॥ ८ ॥ श्लेषः ।

व्यर्था सपक्षरुचिरम्बुजसंधिबन्धे,
राज्ञो न दर्शनमिहास्तगतिश्च मित्त्रे ।
किं किं करोति न मधु-व्यसनं च दैवा–
दस्माद् विचार्य कुरु सज्जन ! तन्निवृत्तिम् ॥ ९ ॥

अन्वयः – अम्बुजसंधिबन्धे सपक्षरुचिः व्यर्था इह राज्ञो न दर्शनम् मित्रे अस्तगतिश्च दैवात् मधु-व्यसनम् किम् किम् न करोति अस्मात् विचार्य हे सज्जन! तन्निवृत्तिम् कुरु ॥ ९ ॥

व्याख्या—राज्ञः चन्द्रस्य भूपस्य च मधुव्यसनम् वसन्तसंगमम् मद्यपानव्यसनं किं किम् करोति सर्वमपि करोति तथाहि इह मधुप्रवृत्तौ सपक्षे पक्षसहिते पतत्रिणि कोकिले रुचिः प्रीतिः कोकिले दृढा प्रीतिर्भवतीति भावः अथ च सपक्षे तुल्यरूपे सूर्ये रुचिः विशेषकान्तिः, यद्वा सपक्षे बाणे मृगयार्थं बाणसंधाने रुचिः, अम्बुजसन्धिबन्धे अम्बुजस्य मासिजस्य सन्धिबन्धे संकोचे मुकुलतायाम् सपक्षरुचिः समानोदरप्रीतिः व्यर्था समानोदरप्रेम नैव भवति दर्शनमपि न भवति तत्र गगनस्य धूलिधूसरत्वान्न चन्द्रदर्शनं भवतीत्यर्थः मित्रे सति अस्तगमनम् सूर्योदयेऽस्तमितिः दैवात् भवति अस्मात् उक्ताद्धेतोः हे सज्जन! सत्पुरुष! विचार्य प्रभावशालिनि राज्ञि यद्येवविधा प्रवृत्तिस्तदाऽस्मदादीनां का कथेति निरूप्य तन्निवृत्तिम् मधुनिवृत्तिम् मद्यव्यसननिरोधं कुरु विधेहि ॥ अत्र प्रस्तुतस्य राज्ञश्चन्द्रमसोऽप्रस्तुतेन केनचिद्राज्ञा सह समानधर्माभिनिवेशात् दीपकालंकारः ॥ ९ ॥

दीप्त्या मधोः प्रतिहरेश्चलचक्ररूप–
व्यूहे धरासु-तनयोद्धरणप्रसिद्धेः ।
चक्रं सुदर्शनमजायत माधवस्य,
तज्ज्योतिषामुदयतः परिपन्थिभित्त्यै ॥ १० ॥

अन्वयः—प्रतिहरेः मधोः दीप्त्या चलचक्ररूपे व्यूहे धरासुतनयोद्धरणप्रसिद्धेः तज्ज्योतिषामुदयतः परिपन्थिभित्त्यै माधवस्य सुदर्शनं चक्रं अजायत ॥ १० ॥

व्याख्या—प्रतिहरेः हरेर्माधवात् वैशाखात् प्रति पूर्वम् मधोश्चैत्रस्य दीप्त्या प्रभावेन धरासु भूमिषु चलचक्ररूपव्यूहे चलति सात-

रैथेनेति चलो वायुः सदागतित्वात् तस्य चक्ररूपे घूर्णनरूपे व्यूहे समूहे चक्रवाते वात्यायामित्यर्थः तनयोद्धरणप्रसिद्धेः तन्यते विस्तार्यते इति तनयो रजः धूली तस्योद्धरणं निराकरणम् तत्र प्रसिद्धिः ख्यातिर्यस्य तस्मात् तदनन्तरम् परिपन्थिभिदे परिपन्थिनाम् व्याघातकानां शीतानाम् भिदे विनाशनाय माधवस्य वैशाखस्य तज्ज्योतिषामुदयतः तत् कान्तीनाम् प्रादुर्भावतः सुदर्शनम् सुन्दरावलोकनम् चक्रम् समूहम् कान्तिसमूहम् अजायत उद्भवत ॥ श्लेषः ।

अन्यत्र प्रतिहरेः प्रतिवासुदेवस्य जरासंधस्य चलचक्ररूपव्यूहे चक्रव्यूहरूपयुद्धसंस्थानविशेषे मघोः मघस्य दीप्त्या आतिशय्येन धरासुतनयस्य जरासंधस्य उद्धरणम् उच्छेदनम् तस्य प्रसिद्धेः ख्यातेः ज्योतिषाम् तेजसाम् उदयतः प्रादुर्भावात् परिपन्थिभिदे शत्रुभेदनाय माधवस्य कृष्णस्य सुदर्शनम् सुदर्शननामकं चक्रम् चक्रास्त्रम् अजायत अभवत् उपपद्यत इति यावत् ॥ १० ॥

दुर्योधनान्तकरणं धरणं क्षमाया,
भीतस्य तस्य ननु पश्यत एव पुंसः ।
इष्टा तपोवनकथा जिनसेवना वा,
नावाधिरुह्य यदिवाम्बुधिमज्जना वा ॥ ११ ॥

अन्वयः—दुर्योधनान्तकरणम् क्षमायाः धरणम् भीतस्य तस्य पुंसः पश्यत एव तपोवनकथा वा जिनसेवना नावाधिरुह्य अम्बुधिमज्जना वा इष्टा ॥ ११ ॥

व्याख्या—दुर्योधनान्तकरणम् दुःखेन युध्यते मद्यते इति दुर्योधनः शीतम् हिममित्यर्थः तस्य अन्तकरणम् विनाशकारकम् क्षमायाः पृथिव्या आश्रयणम् ग्रीष्मबाहुल्यात् भूमिगृह्याश्रयणम् कस्येत्याकांक्षायामाह भीतस्येति भीतस्य ग्रीष्मतापपरिखिन्नस्य, नन्विति

संबोधने पश्यत एव शीतलस्थानमन्विष्यत एव पुंसो, जनस्य तपोवनकथा तपोवनस्य विपिनस्य कथा इष्टा गता "इष्यतेः क्तः" केपि तपोवनचर्चां न कुर्वन्ति दावाग्निबाहुल्यात् वा अजिनसेवना मृगचर्मसेवना वा इष्टा गता तस्य ग्रीष्मजनकत्वात् "त्वक्छविश्छादनी-कृत्तिश्चर्माजिनमसृग्धरेति हैमः" अथ च नावा नौकायामुपविश्य अम्बुधिमज्जना समुद्रजलश्लेषणा जलाशयजलावगाहना इष्टा अभिलषिता तापबाहुल्याज्जनानां जलावगाहनाभिलाषो जात इति भावः ॥

अन्यार्थे भीतस्य संसाराद्विरक्तस्य पुंसः पश्यत एव लोकसमक्षमेव दुर्योधनान्तकरणम् दुर्योधनस्य कामस्य दुर्योधनस्य धार्त्तराष्ट्रस्य अन्तकरणम् विनाशनम् क्षमायाः क्षान्तेः धरणम् अथ च दुर्योधनान्तकरणेन क्षमायाः पृथिव्याः धरणम् आश्रयणम् इष्टम् तस्य तपोवनकथा तपोवनगमनम् वा अथवा जिनसेवना–जिनेन्द्रभक्तिः इष्टा–आशंसिता, वा अथवा नावाधिरुह्य नौकाधिष्ठितः अम्बुधिमज्जना समुद्रपातो वा इष्टा अभिलषिता कर्त्तव्यत्वेन निर्धारितेत्यर्थः ॥११॥

दुःशासनस्य पुरशासनजन्मनैव,
संप्रापितोऽध्वनियमो विघटोत्कटत्वात् ।
अन्येऽभिमन्युजयिनो गुरुगौरवार्हा–
स्ते कौरवा अपि कृता हतचौरवाचः ॥ १२ ॥

अन्वयः—पुरशासनजन्मनैव विघटोत्कटत्वात् दुःशासनस्य अध्वनियमः संप्रापितः अन्ये अभिमन्युजयिनः गुरुगौरवार्हाः ते कौरवाः अपि हतचौरवाचः कृताः ॥ १२ ॥

व्याख्या—पुरशासनजन्मनैव पुरम् कुसुमदलवृत्तिम् शास्ति विघटयतीति पुरशासनो वसन्तः "पुरम् देहे गेहे कुसुमदलवृत्तौ चर्मणि प्रधानग्रामे इति शब्दस्तोममहानिधिः, तस्य जन्म उदयस्तेन

दुःशासनस्य दुःखेन शास्यते सह्यते इति दुःशासनम् हिमम्, तस्य विघटोत्कटत्वात् विघटे विनाशे उत्कटत्वात् उच्छृङ्खलत्वात् अध्वनः मार्गस्य नियमः गमनप्रतिबन्धः संप्रापितः समाप्तः मधुमाधवे गमनस्य प्रशस्ततरत्वात् गमननिरोधो निवारितः अन्ये अभिमन्युजयिनः अभिमन्यन्ते प्रशंस्यन्ते जनैरिति अभिमन्यवः जात्यादिकुसुमविशेषाः ते च ते जयिनश्चेति अभिमन्युजयिनः प्रशस्यतराः जातीयकुसुमानि गुरु महान् यो गौरवः गरीयस्त्वम् तदर्हा तद्योग्याः कौ पृथिव्याम् रवाः प्रसिद्धाः ते हतचौरवाचः कृताः हताः निवृत्ताः चौरवाचः एकान्तस्मरणानि येषान्ते कृता तेषान्नामापि कैरपि न गृह्यत इति भावः न स्याज्जातीयवसन्ते इति साहित्यदर्पणस्मरणात् ॥ १२ ॥

अन्यार्थे पुरशासनजन्मनैव पुरम् शरीरम् शास्ति कार्ये प्रवर्त्तयतीति पुरशासनो वायुः तस्माज्जन्म यस्य तेन भीमसेनेन यद्वा पुरं तन्नामकमसुरविशेषं शास्ति हिनस्तीति पुरशासनः पुरन्दरः ततो जन्मयस्य तेन अर्जुनेन विघटोत्कटत्वात् वि-विपरीतम् विरुद्धं वा घटयत्याचरतीति विघटः विरुद्धाचारः द्रौपदी चीराद्याकर्षकत्वादित्यर्थः तेन उत्कटः उग्रः उल्बणः विघटोत्कटस्तस्यभावस्तत्त्वम् तस्मात् विरुद्धोल्बणाचारत्वात् दुःशासनस्य तदभिधानकौरवस्य अध्वनियमः अध्वनो मार्गस्य नियमः अन्तः, अतः परङ्गन्तव्यन्न वर्त्तते इति निश्चयः महाप्रस्थानमित्यर्थः संप्रापितः उपलम्भितः तथा अन्ये ततो भिन्नाः अभिमन्युजयिनः अभिमन्युपराजयकारकाः गुरुगौरवार्हाः गुरवो द्रोणाचार्यप्रभृतयः गौरवार्हाः स्ववंशोद्भवत्वेन गुरुत्वमाप्ता भीष्मादयः ते च ते गुरुगौरवार्हा ते प्रसिद्धाः कौरवाश्च हतचौरवाचः हताः विनष्टाः चौराः चोरिताः वाचः येषां ते कृता विनष्टमुष्टवचनाः कृताः तेऽपि मृता अप्रशंसार्हाश्च जाता इति भावः ॥ १२ ॥ श्लेषः ।

तत्रार्कभूः समुदितो भटकोटियोद्धा,
रोद्धाऽपहस्तयति हस्तिशतं स्वतन्त्रः ।
बाणप्रकर्षपिहिताम्बरदिग्विधानः,
स्वर्गेशनन्दनजयेन कृताभिमानः ॥ १३ ॥

अन्वयः—तत्र अर्कभूः समुदितः भटकोटियोद्धा रोद्धा स्वतन्त्रः हस्तिशतम् अपहस्तयति बाणप्रकर्षपिहिताम्बरदिग्विधानः स्वर्गेशनन्दनजयेन कृताभिमानः॥१३॥

व्याख्या—तत्र ऋतुप्रसंगे अर्कभूः अर्कात् सूर्याद्भवतीत्यर्कभूः राधेयः वैशाखः "वैशाखे माधवो राध इत्यमरः" यद्वा अर्कभूः अर्कस्य पुष्पविशेषस्य भूरुत्पत्तिस्थानमिति "आकडा" इतिख्यातस्येत्यर्थः तत्र तस्य प्रभूतत्वात् "अर्काह्वसुकास्फोटगणरूपविकीरणाः इत्यमरः" वैशाखमासः समुदितः ऋतुप्रसंगेन प्राप्तः भटकोटियोद्धा भटन्ति हिमं धारयन्तीति भटा हिमधारका तेषां कोटिः भटकोटिः तं योधयतीति भटकोटियोद्धा हिमनाशकः "वैशाखे नरवानरावित्यभियुक्तोक्तेः" रोद्धा अत एव हिमरोद्धा निवर्त्तकः स्वतंत्रः स्वाधीनः हस्तिशतम् हस्तो हस्तनक्षत्रमस्मिन्नस्तीति, हस्ती हस्तः अश्विन्यादित्रयोदशनक्षत्रम् "हस्तः देहावयवभेदे, हस्तिशुण्डे, अश्विन्यादि त्रयोदशनक्षत्रे, इति शब्दस्तोममहानिधिः" तद्वान् अश्विन्याम्मेषेरविर्यदा भवति तत एव नक्षत्रप्रवृत्तिरिति नक्षत्रप्रवर्त्तकत्वेनेति भावः तेषां शतम् अपहस्तयति प्रवर्त्तयति बाणानाम् वनवह्नीनाम् "बाणः शरे वह्नौ गवांस्तने दैत्यभेदे इति शब्दस्तोममहानिधिः" प्रकर्षेण प्राबल्येन पिहित आच्छादितः अन्धकारीकृतः दिग्विधानः दिग्विभागो येन स बाणप्रकर्षपिहिताम्बरदिग्विधानः, स्वर्गेशनन्दनजयेन कृताभिमानः स्वर्गेश इन्द्रः तन्नन्दयतीति स्वर्गेशनन्दनो वायुः तस्य जयः उत्कर्षप्राप्तिस्तेन कृताभिमानः कृतगौरवः, वैशाखे वायोः प्राबल्येन वैशाखस्य गर्विष्ठतेति भावः ॥

अन्यत्र अर्कभूः अर्कात् सूर्यात् भवतीत्यर्कभूः कर्णः समुदितः प्राप्तोदयः भटकोटियोद्धा भटानाम् योद्धॄणाम् "भटा योधाश्चयोद्धारः इत्यमरः" कोटिः भटकोटिस्तंयोधयतीति तथा, रोद्धा विपक्षाणां रोधनकर्त्ता स्वतन्त्रः स्वाधीनः हस्तिशतम् गजशतम् अपहस्तयति गलहस्तिकान्ददाति, बाणानाम् शराणाम् प्रकर्षणमाकर्षणम् तेन पिहितम् आच्छादितम् दिग्विधानम् दिग्विभागो येन स बाणप्रकर्षपिहिता स्वरदिग्विधानः स्वर्गेशः इन्द्रः तस्य नन्दनोऽर्जुनः, तस्य जयेन विजयेन कृताभिमानः कृतगर्व इति स्वर्गेशनन्दनजयेन कृताभिमानः अभूदिति शेषः ॥ १३ ॥

अथ च । अर्कभूः अर्कः इन्द्रः "अर्कः सूर्ये इन्द्रे ताम्रे स्फटिके विष्णौ पण्डिते चेति शब्दस्तोममहानिधिः" तस्मात् भवतीति अर्कभूः अर्जुनः अन्यद्विशेषणम् पूर्ववद्योज्यम् स्वर्गेशनन्दनजयेन कृताभिमानः स्वर्गस्य ईशः स्वर्गेशः इन्द्रः तस्य नन्दनः इति स्वर्गेशनन्दनः, जयति शत्रूनिति जयः स्वर्गेशनन्दनश्चासौ जयश्चेति स्वर्गेशनन्दनजयः तेन कृताभिमानः कृताहंकारः अहं महेन्द्रपुत्रः जयी चेति कृतगर्व इत्यभिप्रायः ॥ १३ ॥ श्लेषः ।

तत्रोद्बभूव सुरभिः सुरभित्प्रसङ्गी,
पद्मप्रबोधविधिना भुवनानुरागी ।
चक्रे निशाचरबलक्षयतो वियोगं,
भिन्दन् शिलीमुखबहुप्रसरोपयोगात् ॥ १४ ॥

अन्वयः—तत्र सुरभित्प्रसंगी पद्मप्रबोधविधिना भुवनानुरागी सुरभिः उद्बभूव, शिलीमुखबहुप्रसरोपयोगात् भिन्दन् निशाचरबलक्षयतः वियोगम् चक्रे ॥

१ चैत्रे पार्श्वज्ञानाद्वसंतवर्णनम् ।

व्याख्या—तत्र ऋतुप्रसंगे सुरभृत्प्रसंगी सुरैर्देवैर्भ्रियते धार्यते इति सुरभृत् कुसुमम् तस्य प्रसङ्गः सम्बन्धो यत्र स सुरभृत्प्रसङ्गी पुष्पसमृद्धिसमृद्धः, सुरभिः वसन्तः "वसन्ते पुष्पसमयः सुरभिर्ग्रीष्म उष्मक इत्यमरः" उद्भूत उपाययौ कथभूतः पद्मप्रबोधविधिना पद्मस्य कमलस्य यः प्रबोधविधिः विकाशविधिः, तेन भुवनानुरागी भुवनस्य कृत्स्नस्य जनस्य अनुरागः प्रेम यस्मिन् स भुवनानुरागी, सकलजनानुरागभाजनः शिलीमुखबहुप्रसरोपयोगात् शिलीमुखानाम् भ्रमराणाम् 'मयूखस्त्विट्करज्वालास्वलिबाणौ शिलीमुखावित्यमरः" बहुभ्रमरस्य बहुसंगस्य यः प्रसरः संबन्धः तस्य उपयोगात् आयोजनात् निशाचरबलक्षयतः निशाचरस्य चन्द्रस्य बलक्षयतः दौर्बल्यात् वियोगम् कमलभ्रमरवियोगम् भिन्दन् छिन्दन् निशाचराणाम् घूकपक्षिणाम् बलक्षयतः बलविनाशात वियोगम् वीनाम् कोकिलविहगानाम् योगम् सम्बन्धम् चक्रे विदधे, पेचकानां वायसारातित्वात् काकपिकयोः साम्यात् घूकबलक्षयात् कोकिलसम्बन्ध इति भावः "निशाचरविलक्षयतो वियोगम्" इति पाठांतरे, निशाचराणाम् सर्पाणाम् "निशाचरः राक्षसे पिशाचे शृगाले पेचके सर्पे चक्रवाके चौरे इति शब्दस्तोममहानिधिः" विलक्षयतः विलानाम् विवराणाम् क्षयतः वसन्ते पतितपर्णैस्तद्बिलाच्छादनेन बिलक्षयः सुतराम् वियोगः विवरवियोगो भवतीति भावः यद्वा वियोगः वीनां पक्षिणां योगः सम्बन्धः त्वहिः पक्षिणोऽहीनुल्लुण्ठयन्तीति प्रसिद्धिः ॥

अन्यत्र सुरमैश्वर्यम्बिभर्त्तीति सुरभृत् राजा तत्र प्रसङ्गः प्रचारो यस्य सुरभृत्प्रसंगी राजजनप्रबोधकः पद्मो रामे आत्मज्ञाने आत्मानन्दे "आनन्दो नन्दनः पद्मो राम इत्यभिधानचिन्तामणिः" यो बोधः ज्ञानम् ईश्वरविषयकबोधः तस्य विधिर्विधानम् तेन भुवनानुरागी

भुवनस्य जगतः अनुरागः गुरुत्वप्रेम यस्मिन् स यद्वा भुवनस्य अनुरागो वात्सल्यं यस्य स अथवा पद्मप्रबोधविधिना आत्मज्ञानेन अभुवनानुरागी संसारविरक्तः "सुरभिर्विद्वान् सुरभिः स्वर्णे सुन्दरे चम्पके चैत्रेमासि पण्डिते धीरे इति शब्दस्तोममहानिधिः" उद्भूत विकास विदिशुते इति यावत् निशाचरबलक्षयतः निशा तमः तत्र चरतीति निशाचरः अज्ञानम् तस्य बलक्षयतः अज्ञानपमरविनाशात् वियोगम् विःज्ञानमिति शब्द० म० तस्य योगः सम्बन्धः अज्ञाननाशाद्विज्ञानयोगः तं चक्रे विदधौ शिलीमुखबहुप्रसरोपयोगात् शिलीमुखानाम् जडानाम् शिलीमुखो जडीभूत इति शब्द० म० बहुप्रसरस्य अधिकसंबन्धस्य उपयोगात् लाभात् वियोगम् परिभवम् भिन्दन् अपसारयन् वियोगम् शुद्धयोगम् चक्रे विदधे ॥ १४ ॥

यत्रार्कसूतिरभवद् बहुलातपश्री–
रामाभियोगकलया विलयात् शुकादेः ।
आमोदमोदकरसादवशाशनेन,
चित्रातिशायिनि विधौ परशासनेन ॥ १५ ॥

अन्वयः—बहुलातपश्रीः रामाभियोगकलया शुकादेः विलयात् आमोदमोदकरसादवशाशनेन चित्रातिशायिनि विधौ परशासनेन अर्कसूतिः यत्र अभवत् ॥

व्याख्या—यत्रतौ बहुलातपश्रीः बहुलस्य अतिशयस्य आतपस्य तापस्य श्रीः शोभा यस्मिन् स शुकादेः शुकस्य पत्रस्य विलयात् पातात् यद्वा शुकस्य कीरस्य पक्षिविशेषस्य विः आकाशे लयो लीनता तस्मात् अथवा शुकादेः शोकादेः विलयात् विनाशात् रामाभियोग कलया रामस्य मृगस्य योऽभियोगः सम्बन्धः तस्य कलया कलनेन "गन्धर्वः शरभो रामः सृमरो गवयः शश इत्यमरः" यद्वा रामाया रमण्याः अभियोगकलया सङ्गमाकलनेन आमोदमोदकरसादवशास-

नेन प्रचुरसुगन्धेन तत्र पुष्पातिशयात् यो मोदः हर्षः तं करोतीति आमोदमोदकरः तेन सादस्य विषादस्य "विषादोऽवसादः सादो विषण्णतेति हैमः" यत् अवशासनम् उल्लङ्घनम् तेन चित्रातिशायिनि विधौ चित्रया चित्रानक्षत्रेण अतिशयते इति चित्रातिशायिनि चित्रानक्षत्रयोगिनि विधौ चन्द्रे यद्वा चित्रं यथास्यात्तथा अतिशायिनि अधिकचमत्कारशालिनि विधौ चन्द्रे सति परमुत्कृष्टम् यत् शासनम् तेन उपलक्षितः अभवत् अजायत अत्र सर्वत्र उपलक्षणे तृतीयाऽवसेया ॥१५॥

अन्यत्र । अर्कद्युति' सूर्यवंशोद्भवो रामः कर्णनृपतिः सुग्रीवो वा वहुलातपश्रीः वहुलोघनीभूतो य आतपस्तस्य श्रीरिवश्रीर्यस्येति निदर्शनालंकारः, शुक्रादेः शोकादेः विलयात् अपगमात् रामाभियोगकलया रामायाः सीतायाः कर्णपक्षे रामस्य परशुरामस्य सुग्रीवपक्षे रामायास्ताराया अभियोगकलया संबंधसंकलनेन आमोद मोदकरसादवशासनेन आमोदेन हर्षेण यो मोदकरः सुखकरस्तस्मात् सादस्य विषादस्य अवशासनेन उल्लंघनेन चित्रातिशायिनि विधौ चित्रो विलक्षणो य अतिशयते स चित्रातिशायि तस्मिन् विधौ अदृष्टे सानुकूले दैवे परशासनेन परस्य शत्रोः शासनेन अवसादनेन उपलक्षितः अभवत् अराजत ॥ १५ ॥

राधानुनायकतयाऽप्यमुनाऽनुविद्धा-
श्वेताश्वनोदनकृता न कृता विरुद्धा ।
तद्वासवस्य कमलाद्यनुरागमस्मिन् ,
दध्रे वलात् स्ववलहस्तविनाशनेन ॥ १६ ॥

अन्वय.—राधानुनायकतयाऽपि अनुविद्धाश्वेताश्वनोदनकृता अमुना विरुद्धा न कृता बलात् स्वबलहस्तविनाशनेन तत् वासवस्य कमलाद्यनुरागम् अस्मिन् दध्रे ॥ १६ ॥

व्याख्या—राधस्य वैशाखस्य अनुनायकतयापि अनुराधकतयापि प्रसाधकत्वेऽपि अनुविद्धः अश्वेताश्वनोदनकृता अश्वेताश्वो वायुः अनुविद्धश्चासौ अश्वेताश्वश्चेति अनुविद्धाश्वेताश्वः अनुगताश्वेताश्व इत्यर्थः तस्य नोदनकृता प्रेरकतया अमुना वसन्तेन विरुद्धा न कृता "यः राधायाः द्रौपद्याः आराधकः स यदि अनुविद्धाश्वेताश्वस्याऽर्जुनस्य नोदनकृत् भवेत् तदा सुतरामेव विराधको जात इति सम्बन्धमुरीकृत्याह विरुद्धा न कृतेति भावः" तत् वासवस्य कमलाद्यनुरागम् सरोजादिप्रेम तदेव अस्मिन् वसन्ते जातम् "अन्यथा पुत्रविराधकः तथा न संभवेदित्यर्थः" बलात् बलतः स्वबलानाम् स्वसैन्यानाम् हस्तविनाशनेन "हस्तवारणम् मारणोद्यतस्य निवारणमिति शब्द० म०" मारणोद्यतनिवारणेन दधे वसन्तो यद्यपि फाल्गुनस्य विनाशकस्तथापि कमलविनाशकत्वेन स्वबलहस्तविनाशनेन च वासवः अस्मिन् वसन्ते दधे इति तत्त्वम् ॥ १६ ॥

अन्यच्च। राधानुनायकतयापि राधस्य माधवस्य कृष्णस्य अनुनायकतयापि अनुराधकत्वेऽपि "वैशाखे माधवो राध इत्यमरः अनुविद्धाश्वेताश्वनोदनकृता अनुविद्ध आहतो य अश्वेताश्वः यर्णस्तस्य नोदनकृतापि निराकरणकृतापि यद्वा अश्वस्य नोदनं प्रेरणं करोतीति अश्वनोदनकृत् अश्वेतः कृष्णश्चासौ अश्वनोदकृच्चेति अश्वेताश्वनोदनकृत् अनुविद्धः योजितः अश्वेताश्वनोदनकृत येन तेन विरुद्धा न कृता "यः आराध्यः स आराधको न भवतीति विरोधः उक्तार्थे सति विरोधपरिहारः" तत् वासवस्य वसुसर्वसमृद्धिरस्यास्तीति वासवः कृष्ण' तस्य कमलाद्यनुरागम् स कमलहस्त इति कमलापतिश्चेति कमलादेरिव अस्मिन् अर्जुनेऽनुराग इति अन्यत् पूर्ववत् ॥ १६ ॥

तेनाङ्गभूपशमने सुमवः सुतत्वात्, वैशाखनाम तदमुष्य न फाल्गु-

नोऽयम् इति पाठान्तरम् ॥ तेन अंगभूपशमने कर्णनृपदमने सति अथ च अङ्गभूः कामः तस्य शमने शान्तौ सुमनसां देवानामिन्द्राणाम् सुतत्वात् पुत्रत्वात् सुमनसां पुष्पाणां सुतत्वादुत्पादकत्वात् अथ च सुमनसा सुष्ठुचित्तानाम् सुतत्वाज्ञनकत्वात् अमुष्य अस्य वैशाख इति नाम अथवा वैशाखः रणसंस्थाविशेषः सोऽस्यास्तीति वैशाख इति नाम अयम् उक्तकार्यकारी फाल्गुनः न फाल्गुनमासः न अथ च फल्गु असारम् तदेव फाल्गुनः "प्रज्ञादिस्वादण्" असारो न "असारन्तु फल्गु इति हैमः" ॥ १६ ॥

धारां पुपोष विपरीततया न राधां,
राजाङ्गजाभ्युदयितां दयिताङ्गरागात् ॥
उक्तिः प्रिया पवनशालिवनप्रियाणां,
कामं जनेषु विनयाज्जनयाम्बभूव ॥ १७ ॥

अन्वय —दयिताङ्गरागात् राजाङ्गजाभ्युदयिताम् धाराम् पुपोष राधां न पवनशालिवनप्रियाणां उक्तिः प्रिया विनयात् जनेषु कामम् जनयाम्बभूव ॥१७॥

व्याख्या—दयिताङ्गरागात् दयितः प्रेयान् योऽङ्गरागः अंगं रज्यतेऽनेनेति अङ्गरागः अङ्गलेपनम् तस्मात् राजाङ्गजाभ्युदयिताम् राज्ञः चन्द्रस्य अङ्गजम् शैत्यम् तस्याभ्युदयिताम् समृद्धिम् धाराम् जलधाराम् शैत्यातिशयकारिणीम् जलधाराञ्च पुपोष सिषेवे यद्वा दयितायाः प्रेयस्याः अङ्गरागात् अङ्गस्पर्शसुखात् चन्द्रजशैत्यवतीम् धारां श्रेणीम् पुपोष भेजे विपरीततया वैपरीत्येन पुरुषायितत्वेन राधाम् रिरमाम् न पुपोष नानुभवतिस्म ग्रीष्मबाहुल्यात् अथ च विपरीततया धारापदगताक्षरवैपरीत्योच्चारणेन राधाम् गजमदप्रसृतिम् हस्तिमदस्रावम् न पुपोष न ररक्ष तत्र गजमदप्रवृत्तेः प्रसिद्धत्वात् पवनशालिवनप्रियाणाम् पवनान्दोलितारण्यपिकानाम् "वनप्रियः परभृतः कोकिलः

पिक इत्यपीत्यमरः" उक्तिः पञ्चमालापः प्रिया मनोज्ञा जनानामिति शेषः सा उक्तिः जनेषु लोकेषु विनयात् अनुरागमुत्पाद्य कामम् मदनम् जनयांबभूव उत्पादयामास कामोत्पादिका जातेति भावः ॥

अन्यत्र । राजाङ्गजाभ्युदयिताम् राज्ञः राज्यस्य अङ्गः राजाङ्गः राजाङ्गाज्जायते इति राजाङ्गजः "स्वाम्यमात्यसुहृत् कोशो राष्ट्रं दुर्ग बलानि च राज्याङ्गानि प्रकृतय इति हैमः" तेन अभ्युदयी राजाङ्गजाभ्युदयी तस्य भावस्तत्ता ताम् राजाङ्गजत्वेन भाग्यशालिनीम् दयिताङ्गरागात् दयित ईप्सितोऽङ्गरागो यस्य तस्मात् धाराम् रथांगविशेषम् सैन्याग्रिमस्कन्ध वा अश्वगतिविशेषम्वा "धोरितं वल्गितं प्लुतोत्तेजितोत्तेरितानि च, गतयः पञ्चधाराख्यास्तुरंगानां क्रमादिमा इति हैमः" पुपोष ररक्ष विपरीततया धाराशब्दवैपरीत्येन राधाम् राम् काञ्चनं दधातीति राधा ताम् यद्वा रां विभ्रमं विलासं धारयतीति राधा ताम् विलासिताम् अथवा दानम् धीयते अनेनेति राधा संप्रदानता ताम् अथवा राधा वृषभानुनन्दिनी तां न पुपोष न ररक्ष राधा वृन्दावनस्थितस्यैव कृष्णप्रिया द्वारकास्थितस्य तु काचन अन्या एवेति भावः प्रियापवनशालिवनप्रियाणाम् प्रियाणां प्रेयसीनां यत् पवनम् कूर्दनम् तेन शालते शोभते यत् वनम् समुद्रजलम् तत् प्रियम् मनोज्ञं येषां तेषा प्रियासहितजलविहारकर्तॄणाम् उक्तिः मनोहरवचनम् विनयात् माधुर्यात् जनेषु लोकेषु कामम् मदनम् अभिलाषम्वा जनयाबभूव उत्पादयामास ॥ १७ ॥

ग्रीष्मर्तुराड् भुवि ददाह न शाखिनोऽन्यान्,
स्वैः पत्रवाहनिवहैः परपत्रवाहान् ।
व्याशोषयन्नवजडाशयपङ्कभागान्,
मुक्त्वैवमेव सहकारमुखं स भीष्मः ॥ १८ ॥

अन्वय.—भीष्मः ग्रीष्मर्तुराट् स्वैः पत्रवाहनिवहैः परपत्रवाहान् अन्यान् शाखिनः सहकारमुखं त्यक्त्वैव न ददाह किन्तु ददाहैव एवम् नवजडाशयपंकभागान् व्याशोषयत् ॥ १८ ॥

व्याख्या—स भीष्मः तापजनकः ग्रीष्मर्तुराट् ऋतुषु राजते इति ऋतुराट् ग्रीष्मश्चासौ ऋतुराट् चेति ग्रीष्मर्तुराट् स्वैः स्वकीयैः पत्रवाहनिवहैः पत्रम् दलम् वाहयन्ति इतस्ततश्चालयन्तीति पत्रवाहा वायवः तैः दावाग्निसंसर्गेण वह्निप्रायैः परपत्रवाहान् परमुत्कृष्टम् पत्रम् पर्णम्वहन्ति धारयन्तीति परपत्रवाहाः तान् अन्यान् भिन्नान् शाखिनः वृक्षान् सहकारमुखम् सहकारप्रधानम् चूतप्रमुखम् मुक्त्वैव परित्यज्यैव न ददाह किन्तु ददाहैव एवम् इत्थम् नवजडाशयपंकभागान् डलयोः साम्यात् नवानां नूतनानां जलाशयानां अल्पसरसां पङ्कभागान् कर्दमांशान् व्याशोषयत् शुष्कतामनयत् ॥ वक्रोक्त्यलंकारः ॥

अन्यस्त्रार्थे । ग्रीष्मर्तुराट् ग्रीष्मर्तुरिव राजते इति ग्रीष्मर्तुराट् स भीष्मः भीष्मपितामहः अथवा ग्रीष्मर्तौ राजते विशेषेण तापयति जनानिति ग्रीष्मर्तुराट् सूर्यः भीष्मः प्रचण्डः अन्यान् निरपेक्षानुदासीनानित्यर्थः परान्मुग्नान्वा परपत्रवाहान् परेषां पत्रम् सन्देशपत्रम् वहन्ति प्रापयन्तीति तान् परप्रेष्यान् शाखिनः शाखा देहावयवविशेषः येषां सन्ति ते शाखिनः तान् स्वपत्रवाहनिवहैः स्वकीयबाणैर्न ददाह न भस्मसकार सहकारमुखम् सहायकनृपप्रमुखम् त्यक्त्वा परित्यज्य नवजडाशयपङ्कभागान् नवानाम् नवीनानाम् जडाशयानाम् कुटिलहृदयानाम् पङ्कभागान् पापान् मालिन्यभागान् "अस्त्रीपङ्कं पुमान् पाप्मा पापं किल्विषकल्मषमित्यमरः" व्याशोषयत् शुष्कतामनयत् ॥१८॥

शौचं प्रभातसमयं शमयन्तमन्त-

र्दाहं घनाघनघटाप्रकटाम्बुवृष्ट्या ।

व्यालोक्य चारुकुटजातिशयेन केन,
साकेतकेश्वरदृशोदयतीति नोचे ॥ १९ ॥

अन्वयः— घनाघनघटाप्रकटाम्बुवृष्ट्या अन्तर्दाहं शमयन्तम् शौचं प्रभात-समयं व्यालोक्य कुटजातिशयेन केन साकेतकेश्वरदृशा उदयतीति नोचे ॥१९॥

व्याख्या—घनाघनप्रकटाम्बुवृष्ट्या घनाघनस्य मेघस्य "वार्मुको-ऽब्दो घनाघन इत्यमरः" या घटा आडम्बरम् तया प्रकटाम्बुवृष्ट्या प्रकटा प्रवृत्ता या अम्बुवृष्टिः जलवर्षणम् तया अन्तर्दाहं ग्रीष्मसमया जनिततापं शमयन्तं निराकुर्वन्तं शौचं शुचिभवम् आषाढमासीयं प्रभातसमयं प्रातःकालम् व्यालोक्य दृष्ट्वा चारुकुटजातिशयेन चारु-र्मनोज्ञः यः कुटजः गिरिमल्लिकावृक्षः तस्य अतिशयेन आधिक्येन "कुटजो गिरिमल्लिकेति हैमः" साकेतकेश्वरदृशा आ समन्तात् केतकः केतकीपुष्पम् तदेव ईश्वरः प्रधानत्वात् तेन सहिता तदवलोकनसहि-ता दृक् यस्य तेन केन केनापि उदयतीति न उचे न जगदे अथवा केतनमेव केतकः ध्वजा आसमंतात् केतकः आकेतकः इन्द्रध्वजम् तेन सहिता दृक् यस्य तेन आकाशे इन्द्रध्वजबाहुल्येन तत्सहितत्वने-त्रस्येति तेन दृशेत्यर्थः ॥

अन्यत्र-घनाघनः हन्त्यज्ञानमिति घनाघनः अज्ञाननिरासकः तस्य घटा परम्परा तया प्रकटा आविर्भूता या अम्बुवृष्टिः अमृतवृष्टिः "पयः कीलालममृतं जीवनं भुवनम्वनमित्यमरः" तया अज्ञाननि-रासकरूपोपदेशामृतवृष्ट्या शौचम् शोकादुत्पन्नम् अन्तर्दाहम् मान-सिकसंतापम् शमयन्तम् निराकुर्वन्तम् अत एव प्रभातसमयम् प्रभां तनोति प्रकाशमाविर्भावयतीति प्रभातः स चासौ समयश्चेति प्रभा-तसमयम् "सामान्ये नपुंसकमिति नपुंसकतया निर्देशः" व्यालोक्य श्रुत्वा धातूनामनेकार्थत्वात् चारुकुटजातिशयेन कुटात् कौटिल्याज्ञा-

यते इति कुटजः तस्य अतिशयः महानिद्रा "शयः हस्ते सर्पे निद्रायां शय्यायां पणे चेति शब्दस्तोममहानिधिः" तेन साकेतकेश्वरदशा अयोध्याधीश्वरेण तीर्थंकरप्रभुणा इन उदयतीति केन जनेन नोचे न उद्यतेस्म ॥ १९ ॥

अम्भोधरेणजनिता-वनिता-विशल्या,
द्रोणाह्वयेन गिरिणा हरिणाभिनीता ।
कौशल्यहारिमनसा हरिमप्यशल्यं,
स्नानाम्भसैव विदधे स्वमुनाहतैव ॥ २० ॥

अन्वय.—द्रोणाह्वयेन अम्भोधरेण गिरिणा वनिताविशल्यया जनिता कौशल्यहारिमनसा हरिणा अमुनाहतैव अशल्यम् हरिम् स्नानाम्भसैव विदधे ॥२०॥

व्याख्या-गिरिणा पतनशीलेन द्रोणाह्वयेन द्रोणनाम्ना अम्भोधरेण मेघेन वनिता महिला विशल्या विगतम् शल्यम् दुःखं यस्याः सा विशल्या निःशोका जनिता कृता वर्षायां गमनागमनाभावात् सर्वा अप्रोषितभर्तृका जाता इति विशोकत्वं तासामिति भावः कौशल्यहारिमनसा कुशलस्य भावः कौशल्यम् मांगलिकम् तेन हारि मनोहारि मनो यस्य तेन लोकमांगल्यपराधीनचित्तेन हरिणा सूर्येण अमुना अभिनीता मुक्ता वृष्टिरिति शेषः स्नानांभसैव सेकजलेनैव हरिम् भेकम् अशल्यम् तापरहितम् विदधे चक्रे वर्षासमये दर्दुराणाम् हर्षप्रकर्षो भवतीति तत्वम् । २० ॥ आदित्याजायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजा इति मनुः ॥

अन्यत्र गिरिणा सदुपदेशकेन द्रुणाति छिनत्ति पापमिति द्रोणः स आह्वोऽभिधानं यस्य तेन द्रोणाह्वयेन पापनाशकेन अम्भोधरेण समुद्रविजयनाम्ना नृपेण अवनिता अवनेः पृथिव्याः भावः अवनिता विशल्या निष्पापा जनिता कृता अथवा अवनं रक्षणमेवावनिः तस्य

भावस्तत्ता सा अवनिता रक्षणा विशल्या निष्कलंका जनिता विहिता यद्वा अम्भोधरेण समुद्रविजयेन विशल्या अकुलषा अवनिता अयोपिद्भूता पुरुषार्थविशिष्टा पुंप्रसूतिः जनिता उत्पादिता कौशल्यहारिमनसा नैपुण्यवशंवदचित्तेन प्रभुगुणदर्शनात्तदधीनमनसा अमुना हरिणा इन्द्रेण अभिनीता प्रेरिता आदृता कृतादरा शासनदेवतेति शेषः कृता विहिता हरति पापमिति हरिः तम् नेमिनाथप्रभुम् स्नानाम्भसैव स्नात्रजलेनैव विशल्यम् गार्भक्लेदरहितम् विदधे चक्रे ॥ २० ॥

द्रोणो धनञ्जयमहाहवलब्धकीर्त्ति-
धन्वादधद् बहुगुणं भुवि गर्जिवर्जः ।
तन्वन् शरप्रसरमेव तदाजगाम,
सौरप्रभावसमयं सहसाऽनुभाव्य ॥ २१ ॥

अन्वय.—धनञ्जयमहाहवलब्धकीर्त्तिः बहुगुणम् धनुः आदधत् गर्जिवर्जः शरप्रसरमेव तन्वन् सौरप्रभावसमयं सहसानुभाव्य द्रोणस्तदा भुवि आजगाम॥२१॥

व्याख्या—धनञ्जयमहाहवलब्धकीर्त्तिः धनञ्जयेन वनाग्निना यो महाहवः दावाग्निशान्तये रचितमहायुद्धः तेन लब्धकीर्त्तिः प्राप्तयशाः "वह्निर्वीतिहोत्रो धनञ्जय इत्यमरः" बहुगुणमनेकवर्णम् धनुः इन्द्रधनुर्दधत् धारयन् "शरासनपोधनुः स्त्रीस्यादितित्रिकाण्डशेषात्" गर्जिवर्जः ध्वानरहितः वार्षुकत्वेन मन्दगर्जः शरप्रसरम् जलवृष्टिम् तन्वन् विस्तारयन् "शरम् जले इति शब्दस्तोममहानिधिः" सौरस्य सूर्यसंबन्धिनः प्रभावसमयं तेजःप्रसरम् अनुभाव्य विचार्य " आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नन्ततः प्रजेति स्मृतिः" तदा तस्मिन् समये सहसा झटिति द्रोणः वार्षुको मेघः भुवि भूसमीपमाजगाम आययौ ॥

अन्यच्च । धनञ्जयमहाहवलब्धकीर्त्तिः धनञ्जयस्यार्जुनस्य महाहवेन विपुलरणेन लब्धा प्राप्ता कीर्त्तिर्येन स, शिष्याणा विजयेनोपाध्या-

यस्यैवकीर्त्तिर्भवतीति भावः बहुगुणम् अनेकमौर्वीकं धनुः आदधत् धारयन् गर्जिवर्जः संग्रामगर्जनारहितः वृद्धत्वात् शरप्रसरमेव बाणप्रचारम् तन्वन् विस्तारयन् "कम्बलमार्गणशरा इत्यमरः" सौरस्य कर्णस्य प्रभावसमयं सेनापतित्वं सहसा अनुभाव्य विचार्य अथवा सौरस्य कर्णस्य प्रभा दीप्तिः तस्या अवसमवसानम् विभाव्य विचार्य अयं द्रोणः द्रोणाचार्यः भुवि संग्रामाङ्गणे आजगाम समाययौ । २१॥ श्लेषः ।

न दानवानां न महावहानां नदा नवानां न महावहानाम्।
नदानवानां नमहावहानां न दानवानां न महावहानाम्२२

अन्वयः—नवानां महावहानां नदाः दानवानां नन महावहानाञ्च महावहानां दानवानाञ्च दानवाना न महावहानाञ्च ॥ २२ ॥

व्याख्या—नवानां नूतनानाम् महावहानाम् वहतीति वहा महती चासौ वहा महावहा तासाम् नवीननदीनाम् नदाः शब्दाः दानवानाम् दैत्यानां न न नैवं अथ च महावहानाम् महती चासौ वहा सेना महावहा तासां सैन्यसमुदायानां च न, एवं च वहन्ति धारयन्तीति वहाः पर्वताः महान्तश्च ते वहाश्चेति महावहाः विपुलगिरयः तेषां दानवानां दानच्छेदनं वाति करोतीति दानवः वज्रः तेषां न न नैव वज्राणामपि तादृशाः शब्दा न दानवानाम् दानम्मदजलं वान्ति प्राप्नुवन्तीति दानवाः गजास्तेषाञ्च हस्तिनामपि न महावहानां समुद्राणां च न, यथा प्रावृषि नवीननदीनां शब्दास्तथा न केषामपीति भावः ॥ २२ ॥ अत्र पद्ये 'स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ ग' इति लक्षणादिन्द्रवज्रावृत्तम्, यमकालंकारः ।

कलाकलापैः सकलाकलापैः कलाकलापैः सकलाकलापैः ।
व्यतीत्यमाना दिवसा रसायव्यतीत्य मानादिवसा रसाय॥

अन्वयः—सा मानाद्दिवसा कलाकलापैः सकलाकलापैः कलाकलापैः कलापैः सकला दिवसा व्यतीत्यमाना रसाय व्यतीत्य रसाय(अस्ति) ॥ २३ ॥

व्याख्या—सा प्रावृट् वर्षेति यावत् काचिन्नायिका वा माना-दिवसा-प्रणयमानाद्यधीना-कलाकलापैः कला चतुःषष्टिप्रकारा गीत-वाद्यादिरूपा तस्याः कलापः समूहः तैः कलाकलापैः, सकलाकलापैः कलया सहिता सकला कलापाः पिच्छाः येषां ते सकलाकलापाः मयूराः तैः, कलाकलापैः कला मधुरध्वनिरूपा तया सहितः कलापः काञ्चीदाम तैः उपलक्षिताभिः मधुरध्वनियुक्त-काञ्चीदामभिरुपलक्षि-ताभिः, कलापैः स्वसखीसंघैः सकला समस्ता दिवसा व्यतीत्यमाना यापयन्ती रसाय जलाय शृंगाराय च व्यतीत्य निराकृत्य मानादीनिति-शेषः रसाय शृंगाराय अस्तीति शेषः॥२३॥इन्द्रवज्रावृत्तम् यमकालंकारः।

स्वस्थामवारिदनृपः प्रतिमुच्य नाम्ना-
ऽस्वस्थामसंगमविमर्शनतोऽग्रतोऽपि ।
अश्वस्य एव समभूद्र भयभूमयोगे,
स्वस्थः स्मरन्निव रसं परसङ्गरस्य ॥ २४ ॥

अन्वयः—वारिदनृपः नाम्ना स्वस्थाम प्रतिमुच्य अग्रतोऽपि अस्वस्थाम-संगमविमर्शनतः अश्वस्य एव भयभूमयोगे परसंगरस्य रसं स्मरन्निव स्वस्थः समभूत् ॥ २४ ॥

व्याख्या—वारिदनृपः वारि ददातीति वारिदः स चासौ नृपः जलदनृपतिः नाम्ना नामतः स्वस्थाम स्वबलम् प्रतिमुच्य मुक्त्वा परि-त्यज्य अग्रतः अग्रे अस्वस्थामसंगमविमर्शनतः अस्वस्थानाम्मर्त्यानां य अमसंगमः रोगसंक्रान्तिः तस्य विमर्शनतः विवेकतः मर्त्यजनरोग-संक्रमानुभवतः यद्वा अश्वानां यत् स्थाम बलं तस्य संगमस्य विमर्शनतः विचारतः भयभूमयोगे भयाधिक्ययोगे सति अश्वस्य एव वाजिस्य

एव परसंगरस्य अन्ययुद्धस्य रसं परिणामम् सरञ्जिव स्वस्थः स्वर्गस्थः समभूत् ॥ २४ ॥ उत्प्रेक्षा वसन्ततिलकं छन्दः ।

यो वा-रिवाहनिवहेषु कृपाणपाणि-
विद्युन्मिषाद् यदभिधापरिवृत्तिमैक्ष्य ।
धारावलेन कुरुतेस्म तदङ्गभङ्गं,
धन्वागुणं पुरत एव निदर्श्य लोके ॥ २५ ॥

अन्वयः—यः वारिवाहनिवहेषु कृपाणपाणिः विद्युन्मिषात् अभिधापरिवृत्तिमैक्ष्य लोके पुरत एव धन्वागुणं निदर्श्य धारावलेन अङ्गभङ्गं कुरुतेस्म २५

व्याख्या—यः वारिवाहनिवहेषु वारि जलं वहन्तीति वारिवाहा मेघास्तेषान्निवहेषु समूहेषु अथ च वारिम् गजबन्धनीम्वहन्तीति वारिवाहा गजास्तेषां निवहेषु संघेषु अथवा यो वा अरिवाहनिवहेषु शत्रुसैन्यसमूहेषु कृपाणपाणिः खड्गहस्तः विद्युन्मिषाद्विद्युच्छलात् अभिधापरिवृत्तिम् संज्ञापरिवर्तनं ऐक्ष्य विधाय लोके जगति पुरतः अग्रतः धन्वागुणम् कोदण्डगुणम् धनुर्ज्याम् निदर्श्य प्रदर्श्य धारावलेन खड्गधारावलेन अश्वगैतिविशेषेण वा अथ च धारावलेन वर्षजलधारावलेन तदङ्गभंगं तदङ्गविच्छेदम् कुरुतेस्म विदधतिस्म ॥ २५ ॥

द्रौणिः स्फुटं विघटयन् शिखरेषु वाहा-
वार्यं स्ववीर्यमधिगम्य स साम्यमाधात् ।
निस्तन्द्रसान्द्रपरवासविनाशनाय,
स्वं नाम नामपरिणाममवेक्ष्य संधेः ॥ २६ ॥

अन्वयः—स द्रौणिः स्फुटम् विघटयन् शिखरेषु वाहा वार्यं स्ववीर्यम् अधिगम्य साम्यम् अधात् मन्ये. निस्तन्द्रसान्द्रपरवासविनाशनाय नाम स्वम् नामपरिणामम् अवेक्ष्य साम्यमाधात् ॥ २६ ॥

व्याख्या—स द्रौणिः तन्नामा कश्चिन्मेघः शिखरेषु पर्वतोच्चप्रदेशेषु वाहाया नद्या अवार्यमरोधकम् तथा वर्षति यथा प्रस्थरोऽपि तद्वेगस्य निरुणद्धि स्ववीर्यं स्वसामर्थ्यम् अधिगम्य अधिगत्य मन्धेः संमिलितस्य विघटयन् विश्लेषयन् कर्मणः शेषत्वविवक्षया षष्ठी निस्तन्द्रसान्द्रपरवासविनाशनाय निस्तन्द्रं निष्प्रत्यूहं सान्द्रं निविडं सघनमित्यर्थः यत् परवासम् परगृहम् कलत्रम्वा तस्य विनाशनाय विनाशनयोग्यम् नाम इति संभावनायाम् स्वम् स्वकीयम् नाम्नः परिणामम् यौगिकार्थं द्रुणति हिनस्ति कौटिल्यं करोतीति द्रोणस्स एव द्रौणिरिति स्वाभिधेयवाच्यार्थम् अवेक्ष्य विचार्य साम्यम् समताम् अधात् व्यदधत् ॥ २६ ॥

अन्यत्र द्रौणिः द्रोणाचार्यतनयोऽश्वत्थामा शिखरेषु उन्नतेष्वपि वाहानामश्वानाम् वार्यन्निरोधकम् यद्वा वाहस्य भुजस्य वार्यन्निरोधकम् बाहुवीर्यरोधकम् स्ववीर्यम् स्वसामर्थ्यम् अधिगम्य ज्ञात्वा निस्तन्द्रसान्द्रपरवासविनाशनाय निस्तन्द्रं निरुद्विग्नं सांद्रम् दृढम् यत् परवासं परसेनासन्निवेशम् तस्य विनाशनाय विनाशयितुं स्वनामपरिणामम् स्वकीययौगिकार्थमवेक्ष्य दृष्ट्वा सन्धेः विघटयन् संधिविश्लेषकुर्वन् साम्यम् आधात् आचरत् ॥ २६ ॥

वर्षाधिकामितफलाविगमेन शल्यं,
भित्त्वाऽभजद् त्रिभुवने भुवने जयश्रीः ।
नित्यानुकूलपवनाङ्गजसंप्रयोगं,
धर्मात्मजः सविजयस्तत एव राजा ॥ २७ ॥

अन्वयः—वर्षाधिकामितफलाविगमेन शल्यम् भित्त्वा त्रिभुवने भुवने जयश्रीः अभजत् नित्यानुकूलपवनाङ्गजसंप्रयोगं सविजयः धर्मात्मजस्तत एव राजा ॥ २७ ॥

व्याख्या—वर्षा प्रावृट् अधिकामितफलाधिगमेन अधिकामितम् अभिलषितम् यत् फलम् उद्देश्यम् तस्य अधिगमेन प्राप्त्या शल्यं दुःखम् अवृष्टिजनितदुःखम् खेदमित्यर्थः भित्वा विनाश्य विभुवने समस्ते भुवने जगति जयश्रीः सर्वोत्कर्षता अभजत् प्राप्नोत् तथा च नित्यानुकूलपवनांगजसंप्रयोगम् नित्यमहर्निशम् अनुकूलः अनुगतः यः पवनः वायुः तस्य अङ्गजसंप्रयोगम् वेगानुकौल्यम् अधिगम्येति शेषः तत एव वर्षात एव सविजयः विजयसहितः धर्मात्मजः जीवः राजते इति राजा विराजमानः भवतीति शेषः जलवृष्टित एव सर्वे राजन्ते इति भावः ॥

अन्यत्र । वर्षे भारतवर्षे अधिकामितस्य अभिलषितस्य फलस्य अधिगमेन लाभेन शल्यम् शल्यनामानम् नृपम् भित्वा विनाश्य विभुवने समस्ते भुवने जगति जयश्रीः विजयलक्ष्मीः अभजत् आप्नोत् नित्यम् अहर्निशम् अनुकूलः अनुगतः यः पवनागजः भीमसेनः तस्य संप्रयोगम् युद्धोद्योगम् अधिगम्येति शेषः सविजयः अर्जुनसहितः धर्मात्मजः युधिष्ठिरः तत एव तस्मादेव शल्यविजयात् भीमपराक्रमाच्च राजा सार्वभौमः भीमसेनेन दुर्योधनविनाशाद्युधिष्ठिरः राजपदभागिति भावः ॥ २७ ॥ श्लेषः ।

नभसि रभसा वेणीश्रेणी रसोद्गममाश्रयद्,

भुवि घनरवाश्चक्रुः प्रीतिं समं यदि वा दिवा ।

प्लवगशिविरे हर्षोत्कर्षो न रक्षसि वक्षसि,

सभयमनसा नालङ्कायास्तदा निरगुर्गृहात् ॥ २८ ॥

अन्वय—नभसि वेणीश्रेणी रभसा रसोद्गमम् आश्रयत् भुवि यदि वा घनरवा दिवा समं प्रीतिम् चक्रुः प्लवगशिविरे हर्षोत्कर्षो न रक्षसि वक्षसि सभयमनसा तदा लङ्कायाः गृहात् नानिरगुः ॥ २८ ॥

व्याख्या—नभसि श्रावणे वेणीश्रेणी वेण्या जलधारायाः श्रेणी पंक्तिः रसोदग्रम् रसस्य जलस्य उदग्रम् औन्नत्यम् रभसा राभस्येन आश्रयत् अध्यगच्छत् घनरवाः घना निबिडा ये रवाः शब्दाः यद्वा घनानाम् ये रवाः शब्दाः मेघशब्दाः दिवा समम् नभसा समम् यदि वा अथवा दिवा दिवसे भुवि क्षितौ प्रीतिम् अनुरागम् चक्रुः दधुः प्लवगशिविरे हर्षोत्कर्षः प्लवगानां भेकानां मयूराणां वानराणां वा शिविरे संघे हर्षोत्कर्षः प्रमोदप्रचुरः रक्षसि रात्रौ वक्षसि हृदयेन अत एव सभयमनसा भययुक्तचित्तेन तदा तस्मिन् समये कायाःकम् जलमेव का तस्याः ततः गृहात् गेहात् अलम् ना निरगुर्नैव निरगच्छन्।

अत्र प्लवगशिविरे कपेयसेनासन्निवेशे हर्षोत्कर्षो जातो रक्षसि वक्षसि राक्षसीयसेनामनसि अत एव सभयमनसा भयभीतचित्तेन लंकाया गृहात् न निरगुर्न निष्क्रान्ता इत्यर्थान्तरोऽपि स्फुरतीति ॥२८॥

श्लेषः। हरिणीवृत्तम्।

रजनिबहुधान्योच्चै रक्षाविधौ धृतकम्बलः,
सपदि दुधुवे वारांभाराद् गवा गलकम्बलः।
ऋषिरिव परक्षेत्रं सेवे कृपीवलपुङ्गव—
श्चपलसबलं भीत्या जज्ञे बलं च पलाशजम् ॥२९॥

अन्वय.—सपदि वारांभारात् गवा गलकम्बलः दुधुवे रजनिबहुधान्योच्चै. रक्षाविधौ धृतकम्बलः कृषीवलपुङ्गवः ऋषिरिव परक्षेत्रं सेवे पलाशजं बलम् भीत्या चपलसबलम् जज्ञे ॥ २९ ॥

व्याख्या—सपदि लघु वारां वारीणां भारात् जलबाहुल्यात् "आपस्त्रीभूम्नि वार्वारिसलिलमिति अमरः" गवा गलकम्बलः सास्ना दुधुवे धूयतेस्म रजनिबहुधान्योच्चैरक्षाविधौ धृतकम्बलः रजनि रजन्यां रात्रौ बहु अति धान्यानां सस्यानां रक्षाविधौ पालनविधौ धृतकम्बलः

अवलम्बितकम्बलः कृषीबलः कर्षकः ऋषिरिव मुनिरिव परक्षेत्रम् परं च तत्क्षेत्रञ्चेति सिद्धस्थानम् यद्वा परङ्केवलम् क्षेत्रम् शस्यक्षेत्रम् भीत्या-पशवः शस्यभक्षणेन क्षेत्रं विकलं मा कुर्युरिति भयेन सेवे सेवितवान् पलाशजम् बलम् पलम् मांसम् तृणम् अश्नातीति पलाशः अग्निः तस्माज्जायते इति तत् बलम् चपलसबलम् चपलानां वृष्टिजनितशीतार्त्तानां सबलम् सावधानम् जज्ञे उत्पेदे ॥ २९ ॥

उपमालंकारः ॥

प्राप्त्याश्विनेयसुभगक्रियया जनाग्रे,
गर्जन्महासुरघटा गतिरञ्जना सा ।
यस्या नु बृंहितरवप्रियमादधाति,
तस्याः सतः प्रतिपदं शिवसंपदेति ॥ ३० ॥

अन्वयः—प्राप्त्या आश्विनेयसुभगक्रियया गर्जन्महासुरघटा गतिः सा अञ्जना यस्यानुबृंहितरवः प्रियमादधाति तस्याः सतः प्रतिपदम् शिवसंपद् एति ॥ ३० ॥

व्याख्या—जनाग्रे लोकाग्रे आश्विनेययोः अश्विनीकुमारयोः स्ववैद्ययोः अथवा आश्विने भवः आश्विनेयः शरदृतुः तस्य शुभगक्रियया सौभाग्येन प्राप्त्या लाभेन गर्जन्महासुरघटा महांश्चासौ सुरश्चेति महासुरः महासुराणां घटा महासुरघटा गर्जन्ती चासौ महासुरघटा इति गर्जन्महासुरघटा यत्र सा तथोक्ता अञ्जना गजमहिषी गतिः प्राप्त्या "शरदृतौ तासां सौभाग्यं जायते इति समयः" यस्या अञ्जनायाः नु इति वितर्के बृंहितरवः गर्जितशब्दः प्रियम् अनुकूलम् आदधाति अनुकूलतां जनयति तस्या. प्रतिपदम् प्रतिक्रमम् सतः सज्जनस्य सौभाग्यवतः शिवसंपदम् कल्याणमेति प्राप्नोति ॥ ३० ॥

इतः श्लोकत्रयपर्यन्तम्वसन्ततिलकं वृत्तम् ज्ञेयं वसन्ततिलकं तभजा जगौग इति तल्लक्षणात् ॥

पद्मोदयः सरसि निर्मलता प्रयुक्ता-
संपत्रकम्पनगतिर्मधुराध्वराजाम् ।
नैपुण्यपुण्यचरिताद् दुरितान्निवृत्तिः,
किं किं शरन्न तनुते स्म सुखं जनेऽस्मिन् ? ॥३१॥

अन्वयः—सरसि पद्मोदयः निर्मलता प्रयुक्ता अध्वराजाम् संपत्रकम्पनगतिर्मधुरा नैपुण्यपुण्यचरितात् दुरितान्निवृत्तिः अस्मिन् जने शरद् किं किं सुखं न तनुतेस्म ॥ ३१ ॥

व्याख्या—सरसि सरोवरे पद्मोदयः पद्मानां कमलानामुदयः उद्भवः तथा सरसि निर्मलता निष्पंकता स्वच्छतेत्यर्थः प्रयुक्ता योजिता अध्वराजाम् अध्वनि मार्गे राजन्ते शोभन्ते इति अध्वराजस्तेषाम् मार्गवृक्षाणां सम्पत्रकम्पनगतिः संपत्राणां सम्यक् यथास्यात्तथा दलानां कम्पनगतिश्चांचल्यं मधुरा मनोहारिणी यद्वा अध्वनि मार्गे राजन्ते स्वचंक्रमणेन शोभन्ते इति अध्वराजः पथिकास्तेषां सम्पत्राणां सम्यक् वाहनानां कम्पनगतिः सविलासगमनं मधुरा मनोज्ञा निराबाधा "सर्वं स्याद्वाहनं यानं युग्यं पत्रं च धोरणमित्यमरः" नैपुण्यपुण्यचरितात् नैपुण्येन कौशल्येन पुण्यचरितात् पवित्राचरणतः दुरितात् दुष्कृतात् निवृत्तिर्निरोधः, यथारुचिवारिदवर्षणजनितस्वास्थ्येन सर्वे जनाः शरदि धर्मकर्मणि विशेषेण रता भवन्तीति भावः । इति अस्मिन् जने लोके शरद् शरदृतुः किं किं सुखम् किं किं सौख्यम् न तनुतेस्म न विदधातिस्म सर्वं सौख्यं जनयति स्मेति भावः ॥ ३१ ॥

पक्षः पुरः सुरसमागमरागदक्षः,
साक्षाद्दशाननरुचिज्वलनेन मोदः ।
सीतान्तरप्रणयिता नृपतिप्रयोगः,
संजात एव नृपलक्ष्मणसन्नियोगः ॥ ३२ ॥

अन्वयः—पक्षः पुरः सुरसमागमरागदक्षः साक्षाद्दशाननरुचिज्वलनेन मोदः सीतांतरप्रणयिता नृपतिप्रयोगः नृपलक्ष्मणसन्नियोगः संजात एव ॥ ३२ ॥

व्याख्या—पक्षः कृष्णशुक्लरूपः पक्षः बलम् सैन्यम्वा पक्षः खगः पक्षी वा पक्षः राजकुञ्जरो वा पुरः सुरसमागमरागदक्षः पुरः अग्रे सुष्ठु रातीति सुरः मार्गमासः "तत्र धान्यसंचयप्राचुर्यात्" तस्य समागमः संयोगः तस्य रागः अनुरागः तत्र दक्षः पटुः अथवा पुरः अग्रे सुरा एषामस्तीति सुराः "अर्शादित्वादच्" सुराणां मद्यपायिनाम् समागमस्य यो रागः प्रेमा तत्र दक्षः समुत्सुकः अन्यत्र सुष्ठु रसो यस्य स सुरसः शोभनजलम् तत् माति यत्र स सुरसमः तत्र आगमनम् आगतिः तत्र दक्षः पटुः हंसादीनाम्मानसादागमनं तत्र प्रसिद्धम् कुञ्जर-पक्षे सुराणां नृपानां विजयोत्सुकानां समागमे यो रागोऽभिनिवेश-स्तत्र दक्षः साक्षाद्दशाननरुचिः दशसु दिक्षु आननं प्रकाशो यस्य स दशाननः सूर्यः तत्र रुचिः प्रीतिर्यत्र स च ज्वलनो वह्निः ताभ्यां मोदः प्रमोदः सीतान्तरस्य अन्यशोभा सम्पत्तेः मदिरान्तरस्य वा प्रणयिता प्रीतिः नृपतिप्रयोगः सूर्यस्य राश्यन्तरगमनम् भूपतिगमनं वा उत्तर-दिशिगमनं वा खगानाम् नृपलक्ष्मणसन्नियोगः नृपश्चासौ लक्ष्मणश्चेति नृपलक्ष्मणः सारसः तस्य सन्नियोगः इतस्ततो गमनम् संजात एव प्रवृत्ते

अन्यत्र—पक्षः सहायः पार्श्वो वा "पार्श्वे गृहे विरोधे बले सहाये सख्यौ पक्ष इति शब्द० म०" पुरः अग्रे सुरसमागमरागदक्षः सुरा-णान्देवानां समागमेन सान्निध्येन यो रागः अनुरागः प्रेम तत्र दक्षः पटुः साक्षात् सद्यः दशाननरुचिज्वलनेन मोदः दशाननस्य रावणस्य या रुचिः कांतिस्तस्या ज्वलनेन दाहेन रावणविनाशनेन मोदः हर्षः यद्वा साक्षात् प्रत्यहं दशसु दिक्षु आननं मुखं यस्य स दशाननस्तेन रुचिर्दीप्तिर्यस्य स दशाननरुचिः स चासौ ज्वलनश्चेति दशाननरु-चिज्वलनः सर्वतः प्रज्वलद्वह्निस्तेन सीताशुद्ध्यर्थज्वलनेन मोदः हर्षः

सीतान्तरप्रणयिता सीतायां जानक्यां आन्तरप्रणयिता आभ्यन्तरिकप्रेम अथवा सीतान्तरे अग्निशुद्धसीतायां प्रणयिता प्रेमवृद्धिः नृपतियोगः नृपतेः रावणस्थाने विभीषणस्य प्रयोगः स्थापनम् नृपलक्ष्मणसन्नियोगः नृपश्चासौ लक्ष्मणश्चेति तस्य सन्नियोगः विधानम् संजात एव समुत्पन्न इत्यर्थः ॥ ३२ ॥

मार्गप्रवृत्तिरुचिता निचितात्मलक्ष्मी-
निर्माणनर्मणि जनो रमते मतेन ।
निश्छद्मपद्मनयनानयनानि गेहे,
स्नेहेन मित्त्रवसनाद्यशनासनानि ॥ ३३ ॥

अन्वयः—मार्गप्रवृत्तिरुचिता आत्मलक्ष्मीर्निचिता जनः मतेन निर्माणनर्मणि रमते गेहे निश्छद्मपद्मनयनानयनानि स्नेहेन मित्त्रवसनाद्यशनासनानि ॥३३॥

व्याख्या—मार्गप्रवृत्तिरुचिता मार्गस्य मार्गशीर्षमासस्य प्रवृत्तिः प्रवर्त्तनम् उचिता प्राप्तकाला अथवा मार्गस्य अध्वनः प्रवृत्तिः प्रवर्त्तनम् उचिता शोभना निराबाधा आत्मलक्ष्मीः आत्मनः स्वस्य लक्ष्मीः संपत् निचिता संपादिता जनः लोकः निर्माणस्य कामस्य नर्मणि केलौ कामकेलौ मतेन स्वेच्छातः रमते विहरति गेहे सद्मनि निश्छद्मपद्मनयनानयनानि निच्छद्मम् निष्कपटम् यत् पद्मं न कमलम् तद्वत्नयनं नेत्रम् यासाम् ताः निच्छेद्मपद्मनयनाः निस्तन्द्रकमललोचनाः तासाम् आनयनम् आगमनम् इति निश्छद्मपद्मनयनानयनानि स्नेहेन प्रेम्णा गेहे गृहे मित्त्रवसनाद्यशनासनानि मित्त्रस्य सुहृदः वसनमाच्छादनम् तदादिर्यस्मिन् तत् मित्त्रवसनादि अशनम् भोजनम् आसनमुपवेसनम् तानि तथोक्तानि अथ च मित्त्रस्य सूर्यस्य वसनादि प्रवेशनादि अशनम् भोग्यम् सूर्यातपसेवनम् आसनम् पूजनम् तानि तथोक्तानि भवन्तीति सर्वत्रान्वयः ॥ ३३ ॥ यमकम् ।

उष्णभोजनरसः परकान्तासंगमेन बहुधा लयभावः ।
कृष्णवर्त्मरुचिरप्यतिजाड्यात्सैष तैषनववेषविशेषः ॥

अन्वयः—उष्णभोजनरसः परकांतासंगमेन बहुधा लयभावः अतिजाड्यात् कृष्णवर्त्मरुचिरपि सैष तैषनववेषविशेषः ॥ ३४ ॥

व्याख्या—उष्णभोजनरसः उष्णभोजने तप्तभोजने रसः अनुरागः तप्तभोजनशीलता परकांतासंगमेन बहुधा लयभावः परमुत्कृष्टम् अनन्यसाधारणमित्यर्थः कांतस्य मनोहरस्य साधोरित्यर्थः संगमम् संगतिः तेन अत्युत्कृष्टजनसंगमेन बहुधा अनेकशः लयभावः तदेकमानसत्वम् अथवा परस्य केवलज्ञानस्य यः कांतासंगमः मनोहरसंगतिः तेन बहुधा अनेकधा लयभावः अज्ञानादीनां कर्मणां विनाशः अथवा परस्य सर्वोत्कृष्टस्य मोक्षस्य कान्तासंगमेन सुन्दरसंबन्धेन बहुधा लयभावः संसारनिवृत्तिः यद्वा परा अनुपमा या कान्ता मुक्तिरूपाङ्गना तस्याः संगमेन प्राप्त्या बहुधा लयभावः अत्यन्तोपरतिः अथच परकांतायाः परस्त्रिया असंगमेन संगपरिहारेण बहुधा लयभावः अनेकधाकर्मनिवृत्तिः अतिजाड्यात् अतिशीतात् कृष्णवर्त्मरुचिः वह्निसेवनप्रीतिः यद्वा कृष्णवर्त्मरुचिः दुष्टकर्मणि प्रवृत्तिः अतिजाड्यात् अत्यज्ञानात् सैष अयम् तैषनववेषविशेषः तैषस्य पौषस्य नवः नूतनः वेषविशेषः स्वरूपविशेषः तैषमाहात्म्यविलसितमेतत् शांतेः प्रभोर्ज्ञानकल्याणकप्रसंगेन हेमन्तवर्णनमिदम् । अत्र स्वागतावृत्तम् " स्वागता रनभगैर्गुरुणा चेतिलक्षणात् " ॥ ३४ ॥

स-सीतासंतापस्तपसि जपसिद्धेः कपिपते-
विशल्या कौशल्यास्त्समितिरुचिता भारतभुवि ।
नृचक्षोर्विक्षोभाद्धिमकरविधो कान्तिरुदधौ,
निलीनाशालीना विलसदमलीनादततपाः ॥३५॥

अन्वयः—तपसि जपसिद्धेः कपिपतेः स सीतासंतापः कौशल्यात् भारतभुवि विशल्या समितिः उचिता हिमकरविधौ कान्तिरुदधौ नृचक्षोर्विक्षोभात् निलीना शालीना विलसदमलीनादृततपाः ॥ ३५ ॥

व्याख्या—आसमंताच्चापयति क्लेशयति इति आसंतापः सीतेन हिमेन सहितः ससीतः स चासौ आसंतापश्चेति ससीतासंतापः तपसि मासे शीतजनितसंतापस्तापि दुःखजनकत्वात् तापः कविना वर्णितः हिमकरविधौ हिमकरस्य विधिरिव विधिरिति तस्मिन् शीतकारके जपसिद्धेः जपेन मौनेन सिद्धिर्निष्पत्तिर्यस्य तस्य कपिपतेर्वानरपतेः तेषां शीताधिक्यात् कौशल्यात् नैपुण्यात् विशल्या दुःखनिवारिका समितिः सभा भारतभुवि साग्निभुवि प्रज्वलिताग्निप्रदेशे उचिता योग्या नृचक्षोः विक्षोभात् मनुष्यनेत्रप्रसरवैकल्यात् कांतिर्दीप्तिः उदधौ समुद्रे नेत्रपिधानकारकहिमावरणतः उदधिप्रायस्सर्वमवभासते निलीना शालीना शालीना निर्लज्जता निलीना नष्टा सर्वेषामापादवस्त्रधारकत्वान्निर्लज्जता गता विलसदमलीनादृततया विलसन्तः प्राप्तविलासाः ते च अमलीनाः अकलुषिताश्चेति विलसदमलीनाः ते च आदृततपाश्चेति विलसदमलीनादृततपा भवन्तीति शेषः ॥ ३५ ॥

शिखरिणीवृत्तम् रसै रुद्रैश्छिन्ना यमनसभलागः शिखरिणीति लक्षणात्

अन्यपक्षे—कपिपतेः सुग्रीवस्य अथच कम्पते संग्रामाय प्रचलतीति कपिः सेनापतिस्तस्य नायकस्य रामादेः तपसि तपश्चर्यायां व्रतनियमे जपसिद्धेः मानसिकतपोव्यापारसिद्धेः प्रागिति शेषः स प्रसिद्धः सीतासंतापः सीताहरणजन्यदुःखं जातमिति शेषः कौशल्या राममाता विशल्या दुःखशोकरहिता जातेति शेषः नारदवचनादिति भावः आत् अस्मात् भारतभुवि लंकानगरे समितिः नरवानरराक्षसानां परिषत् उचिता संमता विगतः क्षोभो यस्मात् स विक्षोभस्तस्मात् नृचक्षोर्नरनेत्रस्य रामनयनस्य क्षोभराहित्यात् हिमकरविधौ चन्द्रे समुद्रे

च कान्तिः प्रसन्नता जगदाकान्दकारिणो रावणस्योच्छेदात् शालीना औद्धत्यम् राक्षसानामिति शेषः निलीना निरस्ता विलमन्तः विलसमानाश्च अमलीनाः निष्कल्मषाः निरस्तापकारबुद्धयश्च आदततपाः गृहीतव्रता तेषां द्वन्द्व इति विलमदमलीनादततपाः अभवन्निति शेषः तदानीम्मेघनादादिना दीक्षाग्रहणत्वादिति भावः ॥ ३५ ॥

कैवल्यशालिभगवत्कपिले नयार्चा
श्रेष्ठा प्रतिष्ठितिमनीयत सौम्यदृष्टिः ।
इत्यादिदेश जिनराट् स तदादि देश-
देवादयः सहृदया हृदये दधुर्गाम् ॥ ३६ ॥

अन्वयः—कैवल्यशालिभगवत्कपिले (येन) श्रेष्ठा नयार्चा प्रतिष्ठितिमनीयत स सौम्यदृष्टिः इति जिनराट् आदिदेश तदादि देशदेवादयः सहृदयाः गाम् हृदये दधुः ॥ ३६ ॥

व्याख्या—कैवल्यशालिभगवत्कपिले=केवलस्य भावः कैवल्यं तत्र शालन्ते=शोभन्ते इति कैवल्यशालिनः ते च ते भगवन्तश्चेति कैवल्यशालिभगवन्तः । कम्पते जनो यतः इति कपिः=कामः तं काति छिनत्ति इति कपिलः=स्मरघ्न इत्यर्थः । कैवल्यशालिभगवन्तश्च ते कपिलाश्च कैवल्यशालिभगवत्कपिलाः तत्र कैवल्यशालिभगवत्कपिले । येन श्रेष्ठा=मद्भावभाविता=मत्सम्पत्सम्पादिता नयार्चा=नयेन=विधिना या अर्चा=सपर्या सा नयार्चा "पूजा नमस्यापचितिः सपर्यार्चार्हणा समाः" इत्यमरः प्रतिष्ठितिम्=सुस्थितिम् अनीयत=नीता । स सौम्यदृष्टिः=सौम्या=ऋजु दृष्टिः=दर्शनं यस्य स सौम्यदृष्टिः=सम्यग्दृष्टिरित्यर्थः । इति=एवंप्रकारेण जिनराट्—जिनेषु=सामान्यकेवलिषु राजते=शोभते इति जिनराट्=तीर्थंकरः आदिदेश उपदिष्टवान् । तदादि=तत आरभ्य देशदेवादयः—दिशन्ति अभिलषितमिति देशाः ते च ते देवा देशदेवास्ते आदौ येषान्ते देशदेवादयः=सुरासुरप्रभृतयः । सहृदया=समानं हृदयं येषान्ते सहृदयाः=मनीषिणः गाम्=पूर्वप्रथितां परमात्मवाचं हृदये=अन्तःकरणे दधुः=दधति स्म । यमकालङ्कारः ॥ ३६ ॥

भूमीभुजः समनुजा दनुजानुजात्या
कान्त्या लसत्सुमनसो मनसोऽनुरागात् ।
तत्रैत्य चैत्यनमनान्न मनाक् प्रमत्ता-
स्तस्थुर्गणेशपदद्दर्शनदत्तचित्ताः ॥ ३७ ॥

अन्वय – समनुजा भूमीभुज नु दनुजा जात्या कान्त्या लसत्सुमनसो मनसोऽनुरागात् तत्रैत्य चैत्यनमनात् मनाक न प्रमत्ता गणेशपदद्दर्शनदत्तचित्ता तस्थु ॥ ३७ ॥

व्याख्या–समनुजाः सलोकाः भूमीभुजः राजानः नु इति वितर्के दनुजाः दानवाश्च जात्या श्रेष्ठभूताः कान्त्या दीप्त्या लसत्सुमनसः लसन्तः शोभमानाः सुष्ठु मनो येषान्ते लसत्सुमनसः शोभमानहृदयाः देवाश्च मनसः स्वान्तस्य अनुरागात् प्रेमतः तत्र तस्मिन् स्थाने एत्य समागत्य चैत्यनमनात् नमस्कारात् मनाक् ईषदपि न प्रमत्ताः न सालसाः सर्वदैव सावधाना इत्यर्थः गणेशपदद्दर्शनदत्तचित्ताः गणेशानाम् गणधराणाम् पदद्दर्शने चरणदर्शने दत्तचित्ताः संलग्नमनसः तस्थुः स्थिताः "चैत्यविहारो जिनसद्मनीति हैमः" अत्रश्लोके वसंततिलकं वृत्तम् "ज्ञेयं वसन्ततिलकं तभजा जगौग." इति तल्लक्षणात् ॥ ३७ ॥ सुपर्वाणः सुमनसस्त्रिदिवेशा दिवौकस इत्यमरः ॥

स-श्रेणिकस्यनृपतेः सुदृशोऽनुषङ्गं,
मेघाभयादिचरणप्रतिपत्तिरङ्गम् ।
अद्वैतसौधरसभृच्चरितोपदेशं,
चक्रे प्रभुः ससहकारफलोपहारम् ॥ ३८ ॥

अन्वय —स प्रभु सुदृश श्रेणिकस्य नृपत अनुषङ्गम् मेघाभयादिचरणप्रतिपत्तिरङ्गम् अद्वैतसौधरसभृच्चरितोपदेश ससहकारफलोपहारम् चक्रे ॥३८॥

व्याख्या—स महावीरप्रभुः सुदृशः सु शोभना दृक् नेत्रं यस्य तस्य सम्यक्दर्शनस्य यद्वा सुदृक् ज्ञानं यस्य तस्य सुज्ञानिनः श्रेणिकस्य श्रेणिकनाम्नः नृपतेर्भूभुजः अनुषङ्गम् अनुगतम् मेघाभयादिचरणप्रतिपत्तिरंगम् मेघः मेघकुमारः अभयः अभयकुमारः तौ आदिर्यस्मिन् स मेघाभयादिः तेषां मेघाभयादीनां चरणप्रतिपत्तिः चारित्र्यग्रहणम् तस्या रंगः अनुरागः यस्मिन् तम् तथोक्तम् मेघाभयादिभव्यजनचारित्र्यग्रहणप्रयोजकम् अद्वैतसौधरसभृच्चरितोपदेशम् अद्वैतः अभिन्नः अनुपम इत्यर्थः सुधायां भवः सौधः स चासौ रसश्चेति सौधरसः अद्वैतश्चासौ सौधरसश्चेति अद्वैतसौधरसः सुधास्वादसहोदरः तम् बिभर्तीति अद्वैतसौधरसभृत् स चासौ चरितोपदेशश्चेति तम् सहकारफलेन सहितम् समहकारफलम् तस्य उपहारः ढौकनम् यत्र तमिव आम्रफलोपहारकल्पम् चक्रे विदधे प्रभुस्सदेशनान्ददाविति भावः ॥

अन्यपक्षे—स जिनेन्द्रः श्रेणिकस्य प्राप्तश्रेणिकस्य संख्यावतः अनुषंगम् अनुगतम् मेघानां पापिनां भयादिचरणम् भयप्रापणादिकम् तस्य प्रतिपत्तिरङ्गम् प्राप्तिजनकमन्यत् पूर्ववत् यद्वा श्रेणिकस्य श्रेणीभूतस्य पंक्त्याकारेणोपविष्टस्य नृपतेः अनुपङ्गमुद्दिष्टम् मेहतिसिञ्चतीति मेघः वागमृतसेकः अभयः कुतश्चनभयाभावः इत्यनयोर्द्वन्द्वः स आदिर्यत्र तम् वागमृतवर्षणाभयप्रदानादिप्रवृत्तिप्रयोजकम् अन्यत् पूर्ववत् ॥

रामकृष्णपक्षे—सुदृशः शोभनज्ञानवतः नृपतेर्भूपस्य स श्रेणिकस्य समंडलस्य मेघाभयादिचरणप्रतिपत्तिरङ्गम् मेघात् मेघनादात् रक्षमः यः अभयादिः निरुपद्रवता तस्य चरणप्रतिपत्तिरंगम् निर्बाधप्रचारम् कृष्णपक्षे मेघेन मेघवड्डक्कावादनेन ये केचन दीक्षां ग्रहीष्यन्ति तेषां परिवाराणां यथावत्पालनं कारिष्यामीतिरूपं,अभयादिना गृहपरिवारचिन्तानिरासेन चरणस्य चारित्र्यस्य प्रतिपत्तिरङ्गम् ग्रहणप्रचारम् अन्यत् पूर्ववत् ॥ ३८ ॥

स-श्रेणिकक्षितिपसन्मतिशासनेन,
दुर्गन्धिकाधिगमनेन सुगन्धिवाक्यात् ।
मैत्र्यार्द्रभावियवनाङ्गजसन्निवोध-
स्तस्माद् बभूव भविनां मदनान्निरोधः ॥ ३९ ॥

अन्वय.—तस्मात् सुगन्धिवाक्यात् श्रेणिकक्षितिपसन्मतिशासनेन दुर्गन्धिकाधिगमनेन मैत्र्या स आर्द्रभावियवनाङ्गजसन्निवोधः भविनां मदनान्निरोधःबभूव॥

व्याख्या—तस्मात् सुगंधिवाक्यात् शोभनसंबन्धयुक्तात् वाक्यात् उपदेशादित्यर्थः श्रेणिकक्षितिपसन्मतिशासनेन श्रेणिकश्चासौ क्षितिपश्चेति श्रेणिकक्षितिपः तस्य सन्मतिशासनेन सद्बुद्धिसदुपदेशेन नियोगेन दुर्गन्धिकाधिगमनेन दुर्गन्धिकाभिधानमहिषीचारित्रग्रहणेन मैत्र्या सौहार्देन स प्रसिद्धःअभयकुमारसौहार्देन आर्द्रभावि आर्द्रदेशोत्पन्नः यः यवनाङ्गजः यवनतनयः तस्य सन्निवोधः सज्ज्ञानम् भविनां भाग्यवतां मदनात् कामात् अभिलाषात् निरोधः निवृत्तिश्च बभूव जह्ने सदुपदेशादेव दुर्गन्धिकाधिगमनं यवनकुमारबोधश्च बभूवेति भावः ॥

अन्यपक्षे—तस्मात्पूर्वोक्तादुपदेशात् सुगंधिवाक्यात् शोभनो लोकविलक्षणो गन्धः संबंधो यत्र स सुगंधिः "समासान्त इत्" स चासौ वाक्यश्चेति तस्मात् सदुपदेशवचनात् स श्रेणिकक्षितिपसन्मतिशासनेन समण्डलराजबुद्धिपरिवर्तनेन दुर्गन्धिकाधिगमनेन दुः दुष्टः गंधः संबन्धो यस्याः सा दुर्गन्धा सैवदुर्गन्धिका तस्या अधिगमनेन सदसद्विवेकेन मैत्र्यार्द्रभावि मैत्र्यात् सर्वजनापकाररहित्येन सर्वप्रियत्वेन आर्द्रम् दयाक्लिन्नं भावोऽभिप्रायो येषान्ते मैत्र्यार्द्रभाविनः यवनः वेगवान् यः अङ्गजः क्रोधादिः मैत्र्यार्द्रभाविनश्च यवनाङ्गाश्च तेषां सन्निवोधः सज्ज्ञानं भविनां कल्याणवतां मदनात् कामात् सन्निरोधः कामुकता निवृत्तिश्च बभूव॥ ३९ ॥

सानन्दधीऋषभवृत्तशमप्रवृत्तिं,
नोसज्जमालिवदनं तदनन्तकायम् ।
सानन्दशङ्खचुलनीप्रियदीर्घवृत्त्या,
गोशालिभद्रचरितस्फुरितं जगाद ॥ ४० ॥

अन्वयः—सानन्दधीऋषभवृत्तशमप्रवृत्तिम् जमालिवदनम् तदनन्तकायम् नो सत् सानन्दशंखचुलनीप्रियदीर्घवृत्त्या गोशालिभद्रचरितस्फुरितं जगाद ॥४०॥

व्याख्या—आनन्दः आनन्दनामा श्रावकः तस्य धीः बुद्धिः तस्याम् ऋषभा श्रेष्ठा वृत्ता दृढा " वृत्तं वृत्तौ दृढे मृते " इति हैमः या शमप्रवृत्तिः शांतिभावसंचारस्तेन सहिता इति सानन्दधीऋषभवृत्तशमप्रवृत्तिः ताम् जगाद अथ च जमालिवदनम् जमालेः प्रथमनिह्नवस्य वदनं, उद्यत इति वद्धातोः भावे अनट् कथनं नो सत् न परमार्थसाधनयोग्यम् यतः अनन्तकायम् अनन्तानन्तशरीरसम्पादकम् सानन्दशंखचुलनीप्रियदीर्घवृत्त्या सानन्दः सप्रमोदः यः शंखः स च चुलनीप्रियश्च तयोर्द्वन्द्वः तस्य दीर्घवृत्त्या चिरवृत्त्या गोशालिभद्रचरितस्फुरितम् गोशालिभद्रस्य यच्चरितं चरित्रम् तेन स्फुरितम् विलसितम् जगाद उपदिदेश ॥

अन्यतीर्थकरचतुष्टयपक्षे—आनन्देन सहिता धीर्येषां ते सानन्दधियः ते च ते ऋषभाः श्रेष्ठाश्चेति सानन्दधीऋषभाः "अविवक्षया न संधिः" तेषां वृत्ते व्यवहारे शमं प्रवर्त्तयति योजयतीति शमप्रवृत्तिम् असज्जम् परस्परबाधसहितम् आलिवचनम् आलम् अनर्थोऽत्रास्तीति आलि तच्चवदनञ्चेति आलिवचनम् नो नैव भवति तद् अनन्तकायम् अनन्तशरीरजनकत्वादेव न तथाभूतञ्च सानन्दशंखचुलनीप्रियदीर्घवृत्त्या आनन्दयति श्रावकजनमनो ह्लादयतीति आनन्दः शं सुखं जनयतीति शंखः श्रेयस्करः चोलयति समुच्छाययतीति चुलनी यद्वा

चुलं समुच्छ्रायं नयतीति, उत्पादयतीति चुलनी एतेषान्द्वन्द्वः इति आनन्दशंखचुलन्यः तैः सहितः प्रिय इति सानन्दशंखचुलनीप्रियः तेषां दीर्घवृत्त्या चिरानुवृत्त्या अनन्तकालस्थित्या अनन्तकालपर्यन्तमानन्दकल्याणसमुच्छ्रायजनकम् इत्यर्थः गोशालिभद्रचरितस्फुरितम् गवा वाण्या शालते शोभते इति गोशालि भद्राणां पुण्यशालिनाम् चरितेन आख्यानेन स्फुरितम् विलसितम् जगाद उवाच ॥

रामकृष्णपक्षे—सानन्दधी ऋषभवृत्तशमप्रवृत्तिम् सानन्दधियः ये ऋषभाः श्रेष्ठाः तेषां वृत्ते व्यवहारे शमप्रवृत्तिम् शान्तिसंपादकम् अनन्तकायम् अनन्ता अनेकशः कायाः संघा यत्र तम् आलिवदनम् रोचकवचनम् असज्जम् अस्फीतम् नो नैव किन्तु स्फीतम् विशदम् आनन्दयतीति आनन्दः लक्ष्मणः बलदेवश्च अथवा आसमन्तान्नन्दयतीति आनन्दः नन्दकनामातयोः खड्गः "कौमोदकी गदा खड्गो नन्दकः कौस्तुभोमणिरित्यमरः" शंखः पांचजन्यनामा चुलनी चुलमैश्वर्यन्नयतीति चुलनी कौमोदकीगदा तेषां प्रिया मनोज्ञा दीर्घवृत्तिः अत्यन्तसंबन्धः तया गोशालिभद्रचरितस्फुरितम् यथास्यात्तथा जगाद कथयामास ॥ ४० ॥

सद्भावभावितमना भविता कुमार-
स्तच्चिह्लणात्तनुजभूपतिसाधनानि ।
वैशालिकोक्तिरणमंशुकरोपतापे,
शुद्धाम्बुदेवमुनिभिर्ह्यमृतं न पीतम् ॥ ४१ ॥

अन्वयः—कुमारः सद्भावभावितमना भविता तत् चिह्लणात्तनुजभूपतिसाधनानि वैशालिकोक्तिरणं अंशुकरः अपतापे देवमुनिभिः शुद्धाम्बु न पीतम् अमृतं हि (पीतम्) ॥ ४१ ॥

व्याख्या—महावीरपक्षे—वैशालिकस्य वर्धमानस्वामिनो या उक्तिः उपदेशना तस्या रणं श्रवणं तदेव अंशुकरः प्रभाकरः अज्ञान

तिमिरनिराकरणनिपुण इत्यर्थः तत एव अपतापे अपगतः निराकृतः-तापः सांसारिकत्रिविधतापो येन तस्मिन् सति देवमुनिभिः आत्मतत्त्वप्रकाशभासमानमुनिभिः यद्वा देवमान्यमुनिभिः किंवा देवाश्च मुनयश्च तैर्देवमुनिभिः शुद्धाम्बु निरवद्यजलं प्राकृतमित्यर्थः न पीतं तदानीं तापविरहात् प्राकृतनिरवद्यजलाभिलाषिणो न जाता इत्यर्थः किन्तु अमृतं तदीयोपदेशवचनामृतं पीनं श्रुतमित्यर्थः किञ्च तस्मादेव कुमारः अभयकुमारः सद्भावभावितमना सद्भावेन चारित्रजिघृक्षया-भावितं वासितं मनोऽन्तःकरणं यस्य स सद्भावभावितमना भविता भविष्यति तदेव कुमारसंयमग्रहणमेव चिल्लणातनुजभूपतिसाधनानि चिल्लणायाः तनुजस्य तनयस्य कोणिकस्येति यावत् भूपतिसाधनानि नृपत्वप्रयोजकानि भविष्यन्तीति शेषः ॥

अन्यतीर्थकरपक्षे—वैशालिकोक्तिरणं विशालायां अयोध्यायां भवः वैशालिकः यद्वा विशेषेण शालते शोभते महापुरुषजन्मपावितत्वात् विशाला तत्र भवः वैशालिकः तस्य उक्तिः तस्याः रणं श्रवणं उपदेशनम् तदेव अंशुकरः उद्योतकारकः अज्ञाननिरसनः अत एव अपतापे तापरहिते सति देवमुनिभिः पूर्ववर्णितप्रकारसेवावसेयम् तच्चिल्लणेति तत्–तदुपदेशश्रवणमेव चित्ज्ञानं रणति प्राप्नोति इति चिल्लणः "रलयोरैक्यात्" तस्य ज्ञानवतः अतनुजभुवः अयोनिजायाः मुक्तेः पतिसाधनानि स्वामित्वकारणानि कैवल्यप्रापकाणीत्यर्थः तथा च कुमारः कौ भुवि मार इव अप्रतिहतप्रभावः भव्यजीव इत्यर्थः सद्भावभावितमना भविता "भूते श्वस्तनी" आदिनाथरामपक्षे कुमारो भरतः ॥

कृष्णपक्षे—कुमारः प्रद्युम्नः शाम्बश्च देवमुनिः नारद इति ॥४१॥

एवं देवनृदेवसेवितपदश्रीमद्विभोः केवले,

सिद्धे राज्यविधिर्नयो दयमयः प्रासीसरन्निर्भयः ।

ध्वस्तं दुर्जनकल्किदुष्कृतमिह प्रादुष्कृतं सत्कृतं,
संलग्ने सकले कलेरपि वले सोऽयं प्रभावो विभोः ४२

॥ इतिश्री सप्तसंधाने महाकाव्ये महोपाध्यायश्रीमेघविजयगणिकृते भगवत्केवलज्ञानसाम्राज्यविहारनामा सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

अन्वयः—एवं देवनृदेवसेवितपदश्रीमद्विभोः केवले सिद्धे नयो दयमयः राज्यविधिः निर्भयः प्रासीसरत् इह दुर्जनकल्किदुष्कृतं ध्वस्तम् सत्कृतम् प्रादुष्कृतम् कलेः सकले अपि वले संलग्ने सति सोऽयं विभोः प्रभावः ॥ ४२ ॥

व्याख्या—एवं पूर्वोक्तप्रकारेण देवनृदेवसेवितपदश्रीमद्विभोः देवा अमराः नृदेवाः नराधिपाश्चतैः सेवित आराधितः पदश्चरणो यस्य स देवनृदेवसेवितपदः स चासौ श्रीमद्विभुश्चेति तस्य तयोक्तस्य देवादेवसेवितचरणस्य जिनेन्द्रस्य केवले केवलज्ञाने सिद्धे प्राप्ते सति इह भूमौ दुर्जनकल्किदुष्कृतम् कल्कम् पापमस्यास्तीति कल्की दुर्जनश्चासौ कल्की चेति दुर्जनकल्की तस्य दुष्कृतम् पापम् ध्वस्तम् निरस्तम् कलेः कलहस्य सकले अपि समस्ते अपि वले सामर्थ्ये संलग्ने समागते सत्यपि "युद्धं तु संख्यं कलिरिति हैमः" सत्कृतम् शोभनकृत्यम् सुकृतमित्यर्थः प्रादुष्कृतम् प्रादुर्भूतम् नयो दयमयः नयस्य नीतेः उदयः प्रादुर्भावस्तन्मयः तत्प्रचुरः "प्राचुर्ये मयट्" राज्यविधिः शासनविधिः निर्भयः विगतभीः प्रासीसरत् प्रावर्तत सोऽयं विभोः जिनेश्वरस्य प्रभावः ॥ शार्दूलविक्रीडितं छन्दः । अन्यपक्षेऽपि साधारणम् ॥ ४२ ॥

इति शास्त्रविशारदकविरत्नभट्टारकाचार्यश्रीविजयामृतसूरीश्वरप्रणीतायां सप्तसंधानमहाकाव्यसरणीटीकायां सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

॥ अथ अष्टमः सर्गः ॥

अथ जगत्त्रयभावनिवेदिना भविभयङ्करभावविभेदिना।
दिवि पुरस्सरचक्रमहाध्वजानुगमनैगमनैपुणतो जगे ॥१॥

अन्वयः—अथ जगत्त्रयभावनिवेदिना भविभयङ्करभावविभेदिना दिवि पुरस्सरचक्रमहाध्वजानुगमनैगमनैपुणतो जगे ॥ १ ॥

व्याख्या—अथ अथानन्तरम् जगत्त्रयभावनिवेदिना जगतां त्रयम् जगत्त्रयम् जगत्त्रयाणां भावः अभिप्रायः जगत्त्रयभावः तन्निवेदितुं ज्ञातुं शीलमस्येति जगत्त्रयभावनिवेदी तेन तथोक्तेन भविभयङ्करभावविभेदिना भविनाम् भाग्यवताम् यो भयङ्करभावः दुःखजनकदुरदृष्टः तं विभेत्तुं पृथक्कर्तुं शीलमस्येति भविभयङ्करभावविभेदी तेन तथोक्तेन दिवि पुरस्सरचक्रमहाध्वजानुगमनैगमनैपुणतो दिवि आकाशे पुरस्सरः अग्रेसरः यः चक्रः देवप्रभावावनताखविशेषः महाध्वजश्चेति तयोर्द्वन्द्वः पुरस्सरौ च तौ चक्रमहाध्वजाविति पुरस्सरचक्रमहाध्वजौ तयोः अनुगमनेऽनुसरणे यो नैगमः नितिः विवेकास्तस्मिन् यो नैपुणः दाक्ष्यम् स पुरःसरचक्रमहाध्वजानुगमनैगमनैपुणः तस्मात् नैपुणतः दाक्ष्यात् जगे जग्मे यद्वा सार्वविभक्तिकस्तसिल् इत्यनुगमनैगमनैपुणेनेति तथोक्तः तृतीयान्तविशेषणम्। अत्र सर्गे भरतचक्रवर्त्तिनो दिग्विजयवर्णनम्। द्रुतविलम्बितश्चवृत्तम् द्रुतविलम्बितमाह नभौ भरौ इति तल्लक्षणात् ॥

अन्यपक्षे—अथ अथानन्तरम् जगत्त्रयस्य त्रिजगतो यो भावः पदार्थः जीवाजीवादिरूपः तन्निवेदयति बोधयतीति तच्छीलः तेन भविभयंकरभावविभेदिना भविनां सद्भाग्यवतां यो भयंकरभावः दुर्गतिजनकाचारः तं विभेदयति निराकरोतीति तच्छीलस्तेन सद्भा-

ग्यशालिदुर्गतिनिवारकेण जिनेन्द्रेण दिवि आकाशे पुरःसरः अग्रेसरः यश्चक्रमहा॰ वजस्तस्यानुगमनेऽनुसरणे ये नैगमास्तेषां नैपुण्येन कौशल्यतः सततसंगमतो जगे जिज्ञाहे अन्यपक्षे भरतवज्ज्ञेयम् ॥ १ ॥

हयरयक्षुरभिन्नमहीतलाद् दिवि समुद्गमनेन रजोव्रजः ।
किमिव वक्ति स शक्तिमहोदयं स्वरपितारपितामहसंसदि॥

अन्वय —रजोव्रज हयरयक्षुरभिन्नमहीतलात् दिवि समुद्गमनेन स्वरपितारपितामहसंसदि शक्तिमहोदयम् स किम् वक्तीव ॥ २ ॥

व्याख्या—रजोव्रजः धूलीसमूहः हयरयक्षुरभिन्नमहीतलात् हयानां अश्वाना यो रयः वेगो द्रुतगतिरित्यर्थः स हयरयः क्षुरेण शफेन भिन्नः क्षुण्णः कुट्टित उत्खात इति यावत् इति क्षुरभिन्नः हयरयेण क्षुरभिन्नः यो महीतलम् भूतलम् स हयरयक्षुरभिन्नमहीतलम् तस्मात् दिवि समुद्गमनेन दिवि आकाशे समुद्गमनेन संलग्नेन हेतुना स्वरपि स्वर्गेऽपि तारपितामहसमदि तारा अत्युन्नता या पितामहस्य ब्रह्मणः संसद् सभा तत्र स रजोव्रजः शक्तिमहोदयम् शक्तेः चक्रास्त्रस्य महोदयमाविर्भावम् अथ च शक्तेः भरतचक्रवर्तिनः प्रभुत्वस्य महोदयम् प्रभूताधिपत्यम् किम् किमु वक्तीव कथयतीव ब्रह्मसमदि तत्सामर्थ्यं सूचयतीति क्रियोत्प्रेक्षातिशयोक्तिमूला सर्वसाधारणमेवत् ॥ २ ॥

पुरत एव दिगम्बरसंवराद् विहितसन्निहितारुणमण्डलः ।
किमु विभोरवदत् स सुसौरभाढ्यदशां यदसान्ध्यरजोभरः

अन्वय —पुरत एव दिगम्बरसंवरात् विहितसन्निहितारुणमण्डल असान्ध्यरजोभर, स विभो सुसौरभाढ्यदशां किमु अवदत् ॥ ३ ॥

व्याख्या-पुरतः प्रथमतः दिगम्बरसंवरात् दिग्शून्यमेव अम्बरं वसनं यस्य तद्दिगम्बरं नभः तस्य संवरादाच्छादकत्वात् आवारकत्वादित्यर्थः विहितसन्निहितारुणमण्डल॰ विहितः कृतः सन्निहितः

अभ्यर्णः अरुणस्य सूर्यसारथेर्मण्डलो येन स अरुणमण्डलसमीपस्थः स असाध्यरजोभरः सांध्यरजोभिन्नरजः सैन्यपदोत्थधूलीसमूहः सुसौर-भाद्वयदशा सुष्ठु सौरभस्य अद्वयदशाम् अद्वितीयकान्तिम् यद्वा सुष्ठु सौरभा सूर्यसम्बन्धिकान्तिः तस्या द्वयदशां द्वितीयावस्थां अन्यसौर-कान्तिम् विभोश्चक्षणः अवदत् किमु अकथयत् किमुत्प्रेक्षेयमिति भावः ॥ ३ ॥

हरिपरिस्फुरितां दिशमाविशत्,
स्थितिमुदीर्य विभुर्भरतं प्रति ।
शुभरते भरतेऽविरते रतेः,
प्रथमतोऽथ मतोऽवनिचक्रिणाम् ॥ ४ ॥

अन्वय —अथ विभुः हरिपरिस्फुरितां दिशम् आविशत् भरतं प्रति स्थितिमुदीर्य शुभरते रते अविरते महते अवनिचक्रिणां प्रथमतः मतः ॥ ४ ॥

व्याख्या—अथ विभुर्व्यापकः देवताधिष्ठातृत्वात् चक्रात्मम् हरिपरिस्फुरिताम् दिशम् ऐन्द्रीदिशा पूर्वामित्यर्थः आविशत् आयात् योजनमात्रं गत्वा भरतं प्रति भरतराजानं प्रति स्थितिमेव स्थानमुदीर्य यत्र चक्रस्थितस्तत्रैव सर्वसैनिकानां स्थितिर्जातेति भावः शुभरते शुभे कर्मणि कल्याणजनकाचारे रते व्यापृते रतेः रागात् अविरते रागा-शक्ते भरते भरतचक्रवर्तिनि विषये अवनिचक्रिणाम् पृथ्वीवलचक्र-वर्तिनाम् प्रथमतः मतः प्रथमोऽयञ्जातः सर्वचक्रवर्तिनामाद्योऽयमिति भावः ॥ ४ ॥

अभिनमय्य पुरः सुरमागधं तदनु तद्वरदाम मुदः पदम् ।
वरुणदिक्प्रभयासभयाऽमुना परिगताऽरिगतासुहृता कृता ॥

अन्वय —पुरः सुरमागधम् अभिनमय्य तदनु मुदः पदं तद्वरदाम अभिनमय्य अमुना प्रभया सभया वरुणदिक् परिगता अरिगता सुहृता कृता ॥५॥

व्याख्या—पुरः पूर्वम् सुरमागधं सुरत्वाभिमानिनम्मगधतीर्थेशम् अभिनमय्य अभिनामयित्वा तन्नम्रीभूतं विधायेत्यर्थः तदनु तत्पश्चात् मुदः पदम् हर्षकारकम् अथ च मुदः प्रमदस्य प्रकर्षगर्वस्य पदम् स्थानम् अत्यंतगर्विष्ठम् तत् प्रसिद्धम् वरदाम वरदामाधिपतिम् अभिनमय्य नामयित्वा स्वाधीनं विधाय प्रभया कांत्या प्रतापेन सभया भययुक्ता वरुणदिक् प्रतीचीदिक् परिगता गमनविषयीकृता तत्रेति शेषः अरिगता शत्रुभूता विपक्षायिता सुहृदा कृता ये शत्रवस्तेऽपि मित्राण्यासन्निति भावः ॥

अन्यपक्षे सुष्ठु राजते इति सुरः स चासौ मागधः मगधानामीशीता इति सुरमागधः जरासंधस्तम् अभिनमय्य पराजित्य तदनु तत्पश्चात् वद्धरदाम तेन जरासंधेन बरन्दाम बन्धनं यस्य तत् वद्धरदाम जरासंधनियमितराजसमुदायम् मुदः पदम् सहर्षम् विधायेति शेषः अन्यत् पूर्ववत् ॥ ५ ॥

रामपक्षे पुरः अग्रे प्रथमं सुरमागधं सुरैर्देवैः सहस्रयक्षैश्च मगध्यति परिवेष्टयते इति सुरमगधः स एव सुरमागधस्तं सहस्रयक्षाधिष्ठितं वज्रावर्तार्णवावर्त्तनामकन्धनुः अभिनमय्य नमयित्वा तदनु धनुर्नमनानन्तरं मुदः पदम् हर्षकारकं तद्वरदाम सीतावरणस्रजम् अभिनमय्य स्वकण्ठार्पितं विधाप्य वरुणदिक् प्रभया सभया अरिगता शत्रुभूता अमुना रामेण सुहृदा मित्रभूता ॥ ५ ॥

सवरणं वरणं सरितस्तटे,
हरिरधाद् धरणेः स्वबलस्थितो ।
सवलयः खलु सिन्धुमनीतरत्,
स्वमहसा महसारमहानृपैः ॥ ६ ॥

अन्वयः—धरणेः हरिः स्वबलस्थितौ सरितस्तटे सवरणं वरणं अधात स खलु सबलयः स्वमहसा महसारमहानृपैः सिन्धुमतीतरत् ॥ ६ ॥

व्याख्या–धरणेः पृथिव्याः हरिः इन्द्रः धरणीन्द्रः स्वबलस्थितौ स्वबलस्य सैन्यस्य स्थितौ स्वसैन्यनिवेशाय सरितस्तटे सरतः अपरोदधेस्तटे रोधसि सवरणं वरणं वरणेन प्राकारेण सहितम् तदानीं सेनारक्षकरूपप्राकारसहितम् वरणं स्थितिं उपनिवेशम् अधात् कृतवान् सेनासन्निवेशं कृतवानित्यर्थः सबलयः सपरिकरः स्वमहसा निजतेजसा महसारमहानृपैः महेन उत्सवेन सारः श्रेष्ठः यो महानृपः तैः यद्वा महस्तेजोवत् यः सारो बलम् स महसारः स चासौ महानृपश्चेति महसारमहानृपः तैः तेजोवद्भिर्नृपैः सहेति शेषः सिन्धुम् सिन्धुनामानं नदीविशेषम् अतीतरत् तरतिस्म ॥ ६ ॥

शिवमगुः किल कोटिमुनीश्वरा,
यदिह तां स शिलां सहसा दधे ।
प्रतिकृतीः प्रणनाम ततोऽर्हतां,
व्रजनतो जनतोपकरीर्नृपः ॥ ७ ॥

अन्वयः—यदिह शिलाकोटिमुनीश्वराः शिवमगुः तां शिलां स सहसा दधे ततः व्रजनतः नृपः जनतोपकरीः अर्हतां प्रतिकृतीः प्रणनाम ॥ ७ ॥

व्याख्या—यद् यस्मात् इह कोटिशिलातीर्थे कोटि मुनीश्वराः कोटिसंख्यकमुनिप्रवराः शिवम् मोक्षम् अगुः किल गताः किल ताम् शिलाम् स भरतचक्रवर्त्ती सहसा झटिति आदधे धृतवान् ततः तदनन्तरम् व्रजनतः गमनतः नृपः भरतमहीपतिः जनतोपकरीः जनानां लोकानां तोषकरीःतुष्टिकरीः कल्याणसंपादिकाः अर्हतां जिनानाम् प्रतिकृतीः प्रतिमाः प्रणनाम प्रणतिस्म ॥ ७ ॥

उपतमिस्रचलद्बहुसेनया,
व्यपनयन्ननयाद्विनयादरात् ।
अवितथाः पथि पूर्वकथा बुधात्,
समश्रृणोन्मसृणोऽवनिजे निजे ॥ ८ ॥

अन्वयः—उपतमिस्रचलन् बहुसेनया विनयादरात् अनयात् व्यपनयन् पथि बुधात् अवितथाः पूर्वकथाः निजे अवनिजे मसृणः समश्रृणोत् ॥ ८ ॥

व्याख्या—बहुसेनया अनेकविधसैन्येन सह उपतमिस्रचलत् तमिस्रानामकगुहां प्रति चलत् उपतमिस्रं चलतीति उपतमिस्रचलत् वेनयादरात् विनयस्य शिक्षाया अनुनयस्य सौजन्यस्य वा आदरात् सन्मानात् अनयात् अनीतेः लोकमिति शेषः व्यपनयन् विनयादरेण अनीतितः लोकान् पृथक्कुर्वन् इति भावः निजे स्वकीये अवनिजे लोके मसृणः ऋजुः अकर्कश इत्यर्थः स्वकीयजनानुकूल इति भावः पथि मार्गे बुधात् पण्डितात् अवितथाः सत्याः पूर्वकथाः प्राचीनेतिहासाः पूर्वपाम्वा चरित्राणि समश्रृणोत् आकर्णितवान् ॥ ८ ॥

जगति यः सविता भविताऽर्चिषा,
स नु गुहां सवहां नवपद्यया ।
ध्रुवमतीत्य गिरेस्तदुदग्दिशो,
वशमधाच्छमधीरणया-जनम् ॥ ९ ॥

अन्वयः—यः जगति अर्चिषा सविता भविता स नु नवपद्यया सवहां गिरेः गुहां ध्रुवमतीत्य शमधीरणया तदुदग्दिशः जनम् वशमधात् ॥ ९ ॥

व्याख्या—यः भरतचक्रवर्ती अर्चिषा तेजसा प्रतापेनेत्यर्थः जगति भुवने सविता सूर्यः भविता भविष्यति स नु इति वितर्के नवपद्यया नूतसेतुरुपपद्धत्या सवहां वहया उनमग्नानिमग्नाभिधाननदी-द्वयया सहिता इति सवहा ताम् गिरेः वैताढ्यपर्वतस्य गुहां तमिस्रा-

नाम्नीं गुफां ध्रुवमतीत्य समुल्लंघ्य तदुदग्दिशः तदुत्तरदिशायाः जनम् तदुदग्दिशस्थितम्लेच्छादिलोकम् शमधीरणया शमा शान्ता या धीर्बुद्धिस्तस्या ईरणया प्रेरणया शांतिबुद्धिप्रयोगेन वशम् स्वाधीनम् आत्मसात् अधात् अकृत ॥ ९ ॥

परदलत्रितयं दलयन् बलं,
प्रचलयन् कलयन् सततो धनम् ।
ऋषभकूटनिजाह्वयलेखने,
महिमभूहिमभूभृतमभ्यगात् ॥ १० ॥

अन्वयः—स परदलत्रितयं दलयन् बलम् प्रचलयन् ततः धनम् कलयन् ऋषभकूटनिजाह्वयलेखने महिमभूहिमभूभृतम् अभ्यगात् ॥ १० ॥

व्याख्या—स चक्रवर्त्ती परदलत्रितयं परेषां शत्रूणां आपात, नागकुमार, हिमाद्रिकुमाराणां दलत्रितयं सैन्यत्रयम् दलयन् पराजयमानः बलं स्वकीयसैन्यम् प्रचलयन् गमयन् ततः पराजितनृपात् धनम् संपत् कलयन् संचिन्वन् ऋषभकूटनिजाह्वयलेखने ऋषभकूटनामपर्वते यस्मिन्निजाह्वयलेखनम् स्वाभिधानाङ्कनम् तस्मिन् "निमित्ते सप्तमी" महिमभूहिमभूभृतम् महिम्नः महत्तायाः भूःस्थानम् इति महिमभूः स चासौ हिमभूभृच्चेति महिमभूहिमभूभृत् हिमालयपर्वतस्तं अभ्ययात् अभ्ययासीत् ॥ १० ॥

पुनरुपेत्य धरं खचरेशिनां,
परदरीमपि खण्डनिपातिनीम् ।
समतिगत्य निधीन्नव सन्निधौ,
न स मदी समदीधरदीश्वरः ॥ ११ ॥

अन्वयः—पुनः खचरेशिनाम् धरम् उपेत्य खंडनिपातिनीम् परदरीमपि समतिगत्य न समदी ईश्वरः सन्निधौ नवनिधीन् समदीधरत् ॥ ११ ॥

व्याख्या—पुनः पुनरपि खचरेशिनाम् विद्याधराणाम् नमिविनमिप्रभृतीनाम् धरम् पर्वतम् उपेत्य आगत्य तत्रत्यान् विजित्य खंडनिपातिनीम् खण्डप्रपातानाम्नीम् परदरीम् महतीं गुफाम् समतिगत्य समतीत्य स राजा मदी अहङ्कारवान् न ईश्वरः, ऐश्वर्यसम्पन्नः सन्निधौ समीपे नवनिधीन् नवप्रकारान् निधीन् ऐश्वर्यविशेषान् समदीधरत् धृतवान् " महापद्मश्च पद्मश्च शंखो मकरकच्छपौ । मुकुन्दकुन्दनीलाश्च खर्वश्च निधयो नवेत्यमरः " ॥ ११ ॥

सुरधुनीतटगानधुनीत स,
क्षतपरातपराज्यपरिग्रहः ।
स्वपुरमाप्य समास्त पुनः पुना,
रसमयान् समयाननयन्महैः ॥ १२ ॥

अन्वयः—स सुरधुनीतटगान् अधुनीत क्षतपरातपराज्यपरिग्रहः स्वपुरमाप्य पुनः पुनः महैः रसमयान् समयान् अनयत् समास्त ॥ १२ ॥

व्याख्या—स भरतचक्रवर्ती सुरधुनीतटगान् गंगातटस्थान् अधुनीत अकंपयत पराजितवान् क्षतपरातपराज्यपरिग्रहः क्षतात् दुःखात् परे भिन्नाः रहिता इत्यर्थः इति क्षतपराः तपतीति तपः सूर्यः आतपात् सूर्यप्रकाशपर्यन्तं मर्यादायामव्ययीभावः क्षतपराः आतपं राज्यपरिग्रहो यस्य सक्षतपरातपराज्यपरिग्रहः स्वपुरं स्वनगरम् आप्य प्राप्य समागत्येत्यर्थः पुनः पुनः भूयोभूयः महैः उत्सवैः "मह उद्धव उत्सव इत्यमरः " रसमयान् सरसान् समयान् कालान् अनयन् व्यतीतयन् समास्त आतिष्ठते ॥

अन्यपक्षेऽपि स सुरधुनीतटगान् सुरान् देवान् धुनाति स्वसामर्थ्येन कम्पयतीति सुरधुनी राक्षससेना तस्यास्तटं समीपं कक्षं वा तत्र गच्छतीति तान् राक्षससेनापक्षपातिनः अधुनीत व्यकंपयत यद्वा

सुरधुनी गंगा तां वटति स्वसंगमेन सौभाग्योन्नतिङ्करोतीति सुरधुनीतटः समुद्रः तत्र गच्छतीति तान् समुद्रतटगान् राक्षसान् पापिष्ठान् अधुनीत इत्यर्थोपि परिस्फुरति अन्यत् समानम् ॥ १२ ॥

विहितवान् हितवार्षिकदानतो,
व्रतदशां तदशान्तमहोत्सवैः ।
घनतपा नतपादकजः सुरै-
र्मदनतोदनतो वनभावनः ॥ १३ ॥

अन्वयः—घनतपाः सुरैः नतपादकजः मदनतोदनतो वनभावनः हितवार्षिकदानतः तदशान्तमहोत्सवैः व्रतदशां विहितवान् ॥ १३ ॥

व्याख्या—घनतपाः घनो महान् तपः प्रभावो यस्य स महत्पराक्रमः नतपादकजः सुरैर्देवैर्विद्याधरादिभिः नतः प्रणतः पादकजं चरणकमलं यस्य स अथवा सुष्ठु रातीति सुराः नृपाः तैः नतपादकजः नमस्कृतचरणकमलः मदनतोदनतो वनभावनः मदयतीति मदनं मधु सुरेति यावत् तस्य तोदनतः निराकरणतः अथवा मदनस्य कामस्य तोदनतः स्वसौन्दर्यात् पराजयतः यद्वा मदनस्याहंकारस्य तोदनतस्त्यागतः अहंकारपरित्यागात् अवनभावनः अवने रक्षणे भावना विचारणा यस्य स प्रजारक्षणसावधानः यद्वा वने तपोवने भावना बुद्धिर्यस्य स हितवार्षिकदानतः हितं हितार्थं यद्वार्षिकदानं तस्मात् तदशांतमनोरथैः तस्याः सुन्दर्याः अशान्तमहोत्सवैः अहर्निशमुद्धवैः व्रतदशां सुन्दरी व्रतग्रहणदशां विहितवान् कृतवान् ॥ १३ ॥

अन्यपक्षे—हितवार्षिकदानतः हितमिष्टसाधनभूतं परिणाममंगलजनकं यद्वार्षिकदानं संवत्सरव्यापकदानम् रामपक्षे चतुर्दशवर्षं यावत् वनवासस्येति शेषः दानं पालनम् ततः "दानं गजमदे पालने छेदने इति शब्दस्तोममहानिधिः" व्रतदशां दीक्षाग्रहणदशां वनवासनियमं

वा विहितवान् कृतवान् कैः अशांतमहोत्सवैः अन्यदुक्तप्रायम् ॥१३॥

विभविनां भविनां सहिते हिते,
वितरणात्तरणात्तरसा भवात् ।
श्रितसमेतसमेतगिरौ कृता-
व्यसनभासनभाक् प्रभुराययौ ॥ १४ ॥

अन्वयः—विभविनां भविनां सहिते हिते श्रितसमेतसमेतगिरौ तरसा भवात् वितरणात् हिते वितरणात् कृताव्यसनभासनभाक् प्रभुः आययौ ॥१४॥

व्याख्या—विभविनां विभवशालिनां धनिनामित्यर्थः सहिते संयुक्ते श्रितसमेतसमेतगिरौ श्रितः आश्रितः शमेन शांत्या इतः युक्तः शमेतः श्रितः शमेतो यत्र सश्रितशमेतः स चासौ समेतगिरिश्चेति श्रितशमेतसमेतगिरिस्तत्र हिते कल्याणजनके तरसा झटिति भवात् संसारात् वितरणात् निवारकात् संसारविरक्तिकरणात् कृताव्यसनभासनभाक् कृतः समाश्रितः यो व्यसनः संसारानभिनिवेशः तस्य भासनं तेजः तस्माद्भासनं तेजो भजते इति तथोक्तः प्रभुः जिनेश्वर आययौ आजगाम ॥ १४ ॥

रामकृष्णपक्षे—वितरणात् वितः निवृत्तः यो रणः संग्रामः तस्मात् "धातेरितङ ओणादिकः" तरसा झटिति भवात् समुद्रजलात् तरणात् पारीणत्वात् विभविनां धनिनां भविनां कल्याणवतां सहिते युक्ते हिते हितकारके श्रितसमेतसमेतगिरौ शमेन शांत्या इतः युक्तः शमेतः शांतियुक्तः श्रितैः आश्रितैः गिरिवासिभिः समेतः सहितः इति श्रितसमेतः स चासौ शमेतः श्रितसमेतशमेतः स चासौ गिरिश्चेति श्रितसमेतसमेतगिरिस्तस्मिन् चित्रकूटेषु वेलाद्रौ रैवतके वा कृतः आश्रितः योऽव्यसनः क्वापि अनभिनिवेशः तेन भासने भजते इति तथा प्रभुः रामः कृष्णो वा आययौ समागतवान् ॥ १४ ॥

हततमास्ततमास्तवनैः स्तुतः,
क्वचन भाविनयाद् विनयात् क्वचित् ।
शुभविभा भविभाग्यबलात् पदौ,
भुवनपावनपावनधीर्दधे ॥ १५ ॥

अन्वयः—ततमास्तवनैः स्तुतः हततमाः भुवनपावनपावनधीः शुभविभाः क्वचन भाविनयात् क्वचिद्विनयात् भविभाग्यबलात् पदौ दधे ॥ १५ ॥

व्याख्या—ततमा विस्तृता ये स्तवनास्ते ततमास्तवनास्तैः अतिविस्तृतस्तुतिभिः स्तुतः कृतस्तवनः हततमा हतं विनष्टं तमः किल्बिषं यस्य स विनिवृत्ततमाः शुभविभाः शुभा शोभना विभा प्रकाशो यस्य स भुवनपावनपावनधीः भुवनस्य जगतः पावने पवित्रतायां पावना पूता निर्मला धीर्यस्य संसारपूतकरणपवित्रज्ञानवान् क्वचन कुत्रापि भाविनयात् भाविनां भाग्यवतां जनानां नयात् अनुनयात् यद्वा भावी भविष्यन् यो नयः शुभावहो विधिः तस्मात् "नयः शुभावहो विधिरित्यमरः" क्वचित् कुत्रापि विनयात् श्रद्धालुजनविनयतः प्रार्थनातः भविभाग्यबलात् भविनां शुभानुष्ठायिनां भाग्यबलात् शुभादृष्टवशात् पदौ पादौ दधे धृतवान् निहितवान् यत्रायं गच्छति तत्रत्यजनानां शुभादृष्टमेव प्रभवतीति भावः ॥ १५ ॥

भृशमये समये किल केवलं,
स कलयन् वलयन्नगमाश्रयत् ।
अधिकृताधिकृतानशनने वै,
शिवरमां वरमाङ्गलिकीं दधौ ॥ १६ ॥

अन्वयः—भृशमये समये स किल केवलं कलयन् नग कलयन् आश्रयत् अधिकृताधिकृतानशनेन वै शिवरमां वरमांगलिकीन्दधौ ॥ १६ ॥

व्याख्या—भृशमये समये अयते गच्छतीति अयः तस्मिन् भृशमतिशयम् समये काले अये गते सति "दीक्षाकालात् पूर्वलक्षं क्षपयित्वा तवा प्रभु"रिति तच्चरिते किल इति निश्चये स प्रभुरादीश्वरः केवलम् केवलज्ञानम् कलयन् आश्रयन् नगम् अष्टापदगिरिम्चलयन् अष्टापदपर्वतं प्रतिगच्छन् नगम् पर्वतम् आश्रयत् प्रापत् अधिकृताधिकृतानशनेन अधिकृतम् अधिकारप्राप्तम् यत् अधिकृतानशनम् स्वीकृतानशनम् अधिकारप्राप्तत्वेन स्वीकृतानशनः त्यक्तचतुर्विधाहारः तेन शिवम् मोक्ष एव रमा लक्ष्मीस्तां शिवरमां मोक्षलक्ष्मीं वरमाङ्गलिकीं वरा श्रेष्ठा या मांगलिकी मङ्गलसाधिका ताम् निरतिशयमङ्गलप्रयोजिकाम् दधौ धारयामास मोक्षं प्रापेति भावः ॥

श्रीशांतिनाथपार्श्वनाथपक्षे—नगमित्यस्य समेतगिरम् समेतशिखरमिति प्रसिद्धम् ॥

श्रीनेमिनाथपक्षे—नगमिति गिरिनारपर्वतम् अधुनापि गिर इति नाम्ना प्रसिद्धोऽयमगः ॥

श्रीमहावीरपक्षे—न गच्छतीति नगः नगरम् पावापुरमित्यर्थः ॥

रामपक्षे—भृशमये समये भृशमतिशयं समये काले अये गते सति स रामः केवलं केवलज्ञानम् कोटिशिलायाम् कलयन् आश्रयन् चलयन् ततोऽपि विहरन् नगम् शत्रुञ्जयगिरिम् आश्रयत् प्रापत् अधिकृताधिकृतानशनेन अधिकारप्राप्तत्वेन स्वीकृतचतुर्विधाहारपरित्यागेन वरमांगलिकीम् अतिशयकल्याणजननीं शिवरमां मोक्षलक्ष्मीन्दधौ धारयामास प्राप ॥ १६ ॥

कृष्णपक्षे—स कृष्णः केवलम् के जले समुद्राम्बुनि चलयति रमते इति केवलम् कलयन् भृशमतिशयं समये अये व्यतीते सति चलयन् परिभ्रमन् नगम् अचलतरम् आश्रयत् प्रापत् अधिकृताधिकृतानशनेन

अत्यंताधिकृतायोऽनशनो जलानशनः जलतृषाजनितशुष्ककण्ठता तेन वरमांगलिकीम् मंगं गमनम् लाति गृह्णातीति मंगलः मंगलाय परलोकगमनाय हिता मांगलिकी वरा मांगलिकी वरमांगलिकी ताम् शिवरमां शेतेऽस्मिञ्जगत् इति शिवः मरणं सैव रमा रमते जीवो यस्यां सा रमा इति शिवरमां मरणक्रीडान्दधौ धारयमास ॥ १६ ॥

उपरतापरतापरतापना-
दविरताद्विरतापि यदुग्रता ।
शुचिरसौ चिरसौख्यमधारय-
दसमधीः शमधीरजितात्मना ॥ १७ ॥

अन्वयः—अविरताद् उपरतापरतापरतापनात् यदुग्रतापि विरता असौ शुचि. असमधीः शमधीरजितात्मना चिरसौख्यम् अधारयत् ॥ १७ ॥

व्याख्या—अविरताव् संततात् उपरतापरतापरतापनात् उपरतम् निरस्तम् पृथक्कृतमित्यर्थः अपरस्य भावः अपरता भिन्नता तस्याः अपरतायाः भिन्नतायाः पृथक्त्वस्येत्यर्थः परम् उत्कृष्टम् अतिशयम् तापनम् सन्तापनम् उपरतं निरस्तम् यत् परतापरतापनम् तस्मात् तथोक्तात् यदुग्रतापि यस्य यदीयस्य उग्रतापि तीक्ष्णता कर्कशतेत्यर्थः विरता निर्गता उग्रतापि त्यक्तेति भावः शुचिः पवित्रोऽसौ असमधीः असमे अयोग्येऽपि धीर्बुद्धिर्यस्य स असमधीः असमेपि समानबुद्धिः शमधीरजितात्मना शमधीरेण शमज्ञानेन जितः स्वायत्तीकृतः आत्मा येन स शमधीरजितात्मा तेन तथोक्तेन चिरसौख्यं अतिसौख्यम् अधारयत् आश्रयत् ॥ १७ ॥

असिततात्कृतिविश्वतपोदिवा-
परततत्परमानववासरे ।

प्रवरसंवरसंवृतविक्रिये-

ऽजनि शिवे निशि वेश्म परात्मनः ॥ १८ ॥

अन्वयः—असिततार्कृतिविश्वतपोदिवा परततरपरमानववासरे प्रवरसम्वर-संवृतविक्रियेऽनिशि शिवे परात्मनः वेश्म अजनि ॥ १८ ॥

व्याख्या—असितताकृति सितस्य शुक्लस्य भावः सितता शुक्लता न सितता असितता आकृतिः स्वरूपं यस्य स असितताकृतिः कृष्णः विश्वान् तापयतीति विश्वतपः "तपेः कसुन्" कामः तस्य तपः विश्व-तपस्तप इत्यत्रैकतपश्शब्दस्य लोपाऽविवक्षातः इति विश्वतप इत्यस्यैव माघकृष्णत्रयोदशीत्यर्थः कथमपि समायातः तस्य दिवा दिनेऽपरः पूर्वभागः पूर्वाह्न इति यावत् तत्परो यो मानवः स फाल्गुननामधेया-ऽर्जुनः तस्य वासरः रविः श्वेतवाहनत्वात् श्वेताश्वः सूर्य इति सादृश्येन सूर्यः तस्मिन् माघकृष्णे त्रयोदशीरवौ प्रवरसम्वरसम्वृतविक्रिये प्रवरः श्रेष्ठः यः सम्वरः वैराग्यः स प्रवरसंवरः तेन संवृता निरुद्धा विक्रिया विकारो यस्मिन् तस्मिन् तथोक्ते शिवे मोक्षेऽनिशि दिवसे परात्मनः परमात्मनः ऋषभस्वामिनः वेश्म प्रवेशनम् अजनि मोक्षगमनमभूत् इति भावः ॥ १८ ॥

शान्तिनाथपक्षे असितताकृतिः कृष्णो यो विश्वस्य द्वादश्यास्तपो ज्येष्ठः तस्मिन् अर्थात् ज्येष्ठकृष्णद्वादश्यामन्यत् सुगमम् ॥

घनमहानमहा रजताचलं,

ध्रुवमितोऽक्रियया रजताचलम् ।

भरतराड् रतरागविमोचनाद्,

मुदमधादमधावपि तद्दिशा ॥ १९ ॥

अन्वयः—घनमहान् अमहा रजताचलम् ध्रुवम् इतः अक्रियया रजता-चलम् रतरागविमोचनात् भरतराट् अमघावपि तद्दिशामुदम् अधात् ॥ १९ ॥

व्याख्या–घनमहान् घनः अतिशयः-महान् घनमहान् अथवा घन इव मेघ इव महान् घनमहान् अमहा अमम् रोगं हतवान् इति अमहा रोगनाशकः ध्रुवम् निश्चितम् रजताचलम् हैमाद्रिम् इतः गतः दिग्विजयक्रमेण हैमाचलं गतः अक्रिययारजताचलम् अक्रियया अव्यापारेणैव रजताचलम् स्वर्णपर्वतम् इतः प्राप्तः ये गत्यर्थकास्ते प्राप्त्यर्थका इति भावः रतरागविमोचनात् रते स्त्रीपुंसगे यो रागोऽनुरागस्तस्य विमोचनात् त्यागात् अमघावपि अवसन्तेपि वसन्तऋतुं विनापि तद्दिशा तदिव वसन्त इव मुदम् हर्षम् अधात् धारयतिस्म ॥

अन्यपक्षे–घनमहान् अतिशयमहत्तरः अमहा रोगविनाशकारकः रजताचलम् स्वर्णपर्वतम् इतः प्राप्तः "रजत रूप्ये, गजदन्ते, रुधिरे, हरि, शैले, स्वर्णे धवले इति शब्दस्तोममहानिधिः" क्रियया व्यापारेण धैर्येणेत्यर्थः रजताचलमिव रजतगिरिरिव भरतराट् भरति लोकान् पोषयतीति भरतः तेषु राजते इति भरतराट् भरणकर्तृषु श्रेष्ठः रतरागविमोचनात् रते रमणे मोहने यो रागोऽनुरागस्तस्य विमोचनात् त्यागात् अमघावपि अवसन्तेऽपि मुदम् हर्षम् अधात् अयात् ॥ १९ ॥

तदनु तन्नगरं नगरञ्जनं,
व्यधित साधितसाभ्रककुङ्कुमैः ।
द्रुतमपातमपापमतो न तत्,
ऋभुवनैर्भुवनैस्तुलितश्रिभिः ॥ २० ॥

अन्वयः—तदनु साधितसाभ्रकङ्कुमैः तन्नगरं नगरंजनं व्यधित अपातम् अपापम् अतः तुलितश्रिभिः ऋभुवनैः भुवनैद्रुतम् तत् ॥ २० ॥

व्याख्या—तदनु तत्पश्चात् तत् नगरं स्वकीयं पुरम् साधितसाभ्रकङ्कुमैः अभ्रकेन सहितः साभ्रकः स चासौ कुंकुमश्चेति साभ्र-

कर्कुकुमः साधितः शोधितश्चासौ माभ्रककुंकुमश्चेति तैः साधितसाभ्रककुंकुमैः शुद्धाभ्रककुंकुमैः नगरंजनम् नग इव पर्वत इव रञ्जनं शोभितम् तत् नगरमिति शेषः अपातम् पातरहितम् अपापम् पापशून्यम् निष्कल्मषम् तुलितश्रिभिः तुलिता साम्यीकृता श्रीर्यतः तैः समानसंपद्भिः ऋभुभवनैः स्वर्गैः भुवनैरन्यान्यभुवनैर्द्रुतम् नानुसृतम् व्यथित व्यरचयत कैरपि भुवनैर्न तुलितमित्यर्थः ॥ २० ॥

स्थलमभूद् भुवि योगिवियोगि तत्,
वहुशुचाहुशुचावचिराज्ज्वलत् ।
नद्वनन्द्वनन्दनतोऽभवद्,
न हरिणा हरिणातिशये कृते ॥ २१ ॥

अन्वयः—भुवि तत् स्थलम् योगिवियोगि अभूत वहुशुचा हु इति वितर्के शुचौ अचिराज्ज्वलत् हरिणा हरिणातिशयेकृते नन्दवनम् दवनन्दनतो न अभवत् ॥ २१ ॥

व्याख्या—भुवि पृथिव्यां तत् स्थलम् यत्र वर्णनीयनायकाः शरीरं त्यक्तवन्तः तत्स्थानम् अचिरात् योगिवियोगि योगिनां चरित्रनायकानां वियोगि रहितमभूत् जातम् तत्स्थलम् बहुशुचा अत्यधिकशोकेन हु इति वितर्के शुचौ आषाढे वर्षासमयेऽपीत्यर्थः ज्वलत् उत्तप्तमभवत् हरिणा हरिणातिशये कृते हरिणा मेघेन हरिणा राज्ञा च अतिशये उत्कृष्टे कृते रचितेऽपीत्यर्थः भरतादितदुत्तरराज्याधिकारिणा मेघेन च शोकशान्तिरचितेऽपि दवनन्दनतः दवस्य अन्तर्दाहस्य नन्दनतः आश्लेषतः विशेषार्थकस्यापि सामान्यार्थकत्वम्प्रकरणादिति कविसमयोऽत एव दवशब्दस्य वनाग्निवाचकत्वेऽपि प्रकृते संतापकत्वमात्रार्थकत्वमिति भावः नन्दवनम् नन्दस्य हृदस्य वनम् न अभवत् संतापशामकं न जातमित्यर्थः ॥ २१ ॥

प्रथमतीर्थंकृता परिपालिता,
तदनु बाहुबलीशजयश्रिता ।
भरतचक्रभृता ह्यभिनन्दिता,
युगलिता गलितात्र यतो दिनात् ॥ २२ ॥

अन्वय.—प्रथमतीर्थंकृता परिपालिता तदनुबाहुबलीशजयश्रिता हि भरतचक्रभृता अभिनन्दिता अत्र यतो दिनात् ततो दिनात् युगलिता गलिता॥२२॥

व्याख्या—यतो दिनात् यद्दिनमारभ्य इयम्भूमिरिति शेषः प्रथमतीर्थंकृता ऋषभप्रभुणा परिपालिता परिरक्षिता तदनु तत्पश्चात् बाहुबलीशजयश्रिता बाहुबली चासौ ईशश्चेति बाहुबलीशः तस्य जयम्विजयमाश्रयतीति बाहुबलीशजयश्रिता बाहुबलीनृपविजयविश्रुता भरतचक्रभृता भरतचक्रवर्त्तिना अभिनन्दिता कृताभिनन्दना तद्दिनादारभ्य "यत्तदोर्नित्यसाकांक्षत्वात्" अत्र भूमौ युगलेर्भावः युगलिता युगलिधर्मत्वम् गलिता निवृत्ता निरस्तेत्यर्थः ॥

अन्यत्र—प्रथमतीर्थकृता प्रथमम् तीर्थकृता तीर्थङ्करेण परिपालिता परि सर्वतः पालिता रक्षिता "पार्श्वनाथवीरस्वामिपक्षे रलयोः साम्यात्" परिपारिता सर्वतोभावेन पारिता कर्मसमापिता परिधातोः कर्मसमाप्त्यर्थकत्वात् यद्वा प्रथमं तीर्थंकृतं आसमंतात् परिपालयतीति तथा प्रथमतीर्थंकरलालनपोषणवर्धनसंपादिकेत्यर्थः तदनु बाहुबलीचासौ ईशश्चेति तथा भुजबलशालीनृपः तस्योत्कर्षेण श्रिता आश्रिता भरति लोकमिति भरतः अथवा भरति धर्मादिकमिति भरतः तेषां चक्रः समूहस्तं बिभर्तीति भरतचक्रभृत् तेन अभिनन्दिता स्वनिवासेन मण्डिता यतः दिनात् तस्माद्दिनादारभ्येति शेषः अत्र भूमौ नगरे वा युगलिता युगं युग्मं लाति गृह्णातीति युगलः तस्य भावो युगलिता पापपुण्यौ "सुखदुःखौ" वियोगसंयोगौ वा गलिता निरस्ता जिनेन्द्र-

प्रभावात् तत्र पुण्यस्य धर्मस्य सुखसंयोगस्यैव स्थितिर्न तत्सहचरस्य पापादेरित्यर्थः ॥

रामकृष्णपक्षे—प्रथमतीर्थकृता प्रथमम् आदौ तीर्थकृता तीर्थं हितशामनं करोतीति तीर्थकृत् तेन रामेण कृष्णेन वा परिपालिता सम्यगवेक्षिता तदनु तत्पश्चात् बाहुबलीशजयश्रिता भुजबलशालिनृपोत्कर्षश्रिता भरतचक्रभृता भरणपोषणकारकेन अभिनन्दिता या नगरी यतो दिनादारभ्य ततोदिनादत्रनगरे युगलिता प्रतिद्वन्दिता गलिता सर्वेषां राजानधीनत्वात् परस्परमस्पर्द्धन्त इति भावः ॥२२॥

तृषितभूषितभूरिवियोगिना-
मृतमृतेन मृतेन (?) पदात्स्वयम् ।
तदनु तन्नगरे नगरैवते-
त्युभयतो भयतोयधिविप्लवः ॥ २३ ॥

अन्वयः—हे मृतेन तृषितभूषितभूरिवियोगिनाम् ऋतम् ऋते स्वयंपदात् तदनु तन्नगरे नगरैवत इति उभयतः भयतोयधिविप्लवः ॥ २३ ॥

व्याख्या—हे मृतेन ! मृतः परलोकंगतः इनः राजा यस्य स मृतेनस्तत्र संबुद्धौ हे मृतेन मृताधिप ! तदनु तदनन्तरम् तन्नगरे तस्मिन्पुरे नगरैवता रै अस्यास्तीति रैवान् नग इव रैवान् नगरैवान् तेन प्रच्छन्नगुप्तधनवता तृषितभूषितभूरिवियोगिना तृषितः संजाततृषः भूषितः अलंकृतः अथवा भुवि भूमौ उषितः स्थितः तृषितश्चासौ भूषितश्चेति तृषितभूषितः स चासौ भूरिवियोगी चेति तृषितभूषितभूरिवियोगी तेन अमृतमृतेन अमृताय मोक्षाय मृतेः मृत्युत्वंगतः इनो यस्य स अमृतमृतेनस्तत्संबुद्धौ हे अमृतमृतेन उभयतः इहलोकतः परलोकतश्च यद्वा उभयतः भूरिवियोगिजनत्वेन किमपि कर्तुमलसेन नगरैवता गुप्तधनेन कस्मैचिदपि किमप्यप्रयच्छतेति उभयथा भयात्

साध्वसात् तोयधेश्च तुद्यते तूयते वा तोयः व्यथा हिंसा वा तद्धीयते यस्मिन् स तोयधिः तस्माच्च विप्लवः पराभवः जात इति शेषः ॥२३॥ यमकालंकारः ।

कृष्णपक्षे—भयतोयधिविप्लवः भयः भयजनकः तोयधिविप्लवः समुद्रकर्तृक उपद्रवः सर्वतो जलमग्नता जातेति शेषः कृष्णप्रयाणानन्तरं द्वारकायाः समुद्रमग्नतेति पौराणिका इति भावः ॥ २३ ॥

सकमलाकमलाशयभूरभू-
न्नरमणी रमणीललनैः श्रिया ।
असुरभिः सुरभिप्रसवेऽपि सा,
नरचिता रचिताद्दवधूमतः ॥ २४ ॥

अन्वयः—नरचिता स कमला कमलाशयभूः रचिताद्दवधूमतः सुरभिप्रसवेऽपि असुरभिः रमणीललनैः श्रिया रमणी न अभूत् ॥ २४ ॥

व्याख्या—नरचिता नरैर्नागरिकजनैश्चिता व्याप्ता परिपूर्णा अपि स कमला कमलेन पंकजेन सहिता यद्वा कमलया लक्ष्म्या शोभा संपत्त्या वा सहिता सकमला सश्रीका कमलाशयभूः आसमंताच्छेते यस्मिन् स आशयः "आङ्पूर्वकाच्छतेराधारेऽप्" कमलायाः लक्ष्म्याः आशयः कमलाशयः सा चासौ भूश्चेति कमलाशयभूः अथवा कमलस्य सरोजस्य आशयः कमलाशयः स चासौ भूश्चेति कमलाशयभूः रचिताद् जनितात् दवधूमतः वनाग्निधूमात् सुरभिप्रसवेऽपि सुरभेर्वसंतस्य प्रसवे उत्पत्तावपि सुरभिमाप्राप्येऽपि असुरभिः अमनोहरा यद्वा सद्गन्धरहिता "वसन्ते पुष्पसमयः सुरभिर्ग्रीष्म उष्मक इत्यमरः" तथा च रमणीललनैः श्रियाः रमण्याः रामायाः ललनः प्रेयान् इति रमणीललनः तैः श्रिया शोभया संपत्त्या वा रमणी मनोह्लादिनी न अभूत् न अजनिष्ट ॥ २४ ॥ यमकः विशेषोक्तिश्चालंकारौ ॥

स विषयो विषयोजनभक्ष्यवत्,
सुमनसां मनसां भयकारणम् ।
भुवि दितो विदितोऽपि तदाभया-
शवरसंवरसंकलितोऽभवत् ॥ २५ ॥

अन्वयः—स विषयः विषयोजनभक्ष्यवत् सुमनसां मनसां भयकारणम् भुवि दितो विदितोऽपि तदा अभयाशवरसंवरसंकलितः अभवत् ॥ २५ ॥

व्याख्या—स विषयः सांसारिकविषयाभिलापः देशश्च विषयोजनभक्ष्यवत् विषेण गरलेन योजनं संयोजनम् यस्य तत् विषयोजनम् तच्च भक्ष्यश्चेति विषयोजनभक्ष्यम् तदिवेति विषयोजनभक्ष्यवत् विषमिश्रितान्नवत् सुमनसां सहृदयानां मनसां चित्तानां भयकारणम् भयहेतुः भुवि जगति विदितोऽपि प्रसिद्धोऽपि अनेकजनसेवितोऽपि दितः खण्डितः सन् तदा तस्मिन् समये अभयाशवरसंवरसंकलितः अभये मोक्षे आशा अभिलाषा यस्य स अभयाशः तस्य यो वरः श्रेष्ठः संवरः सन्निरोधः संयम इत्यर्थः तेन संकलितः संयुक्तः इति अभयाशवरसंवरसंकलितः मुमुक्षुजनप्रबलवैराग्यविहितनिरोधः अभवत् सर्वथा मुमुक्षुजनपरित्यक्तोऽजायत इति भावः ॥ २५ ॥

पुनरपि प्रबलाकृतिकौशला,
भगवतामुदयेन नु भाविनी ।
नवनवेभ्यनिवासविलासिनी,
वसुमती सुमतीशजयश्रिया ॥ २६ ॥

अन्वयः—भगवतामुदयेन पुनरपि प्रबलाकृतिकौशला नवनवेभ्यनिवासविलासिनी सुमतीशजयश्रिया वसुमती भाविनी ॥ २६ ॥

व्याख्या—भगवतां जिनेन्द्राणां उदयेन आविर्भावेन पुनरपि भूयोऽपि प्रबलाकृतिकौशला प्रबला महती या आकृतिः स्वरूपम् सा प्रबलाकृतिः तत्र कौशला चतुरा सा प्रबलाकृतिकौशला सुन्दराकृतिपटीयसी नवनवेभ्यनिवासविलासिनी नवनवः नूत्नः य इभ्यः धनी यद्वा इभं हस्तिनमर्हतीति इभ्यः नृपः नवनवश्चासौ इभ्यश्चेति नवनवेभ्यस्तेषां निवासःस्थितिरिति नवनवेभ्यनिवासस्तेन विलासिनी शोभमाना अतिनूतननृपनिवासमनोहरा सुमतीशजयश्रिया सुष्ठु मतिर्यस्य स सुमतिः स चासौ ईशश्चेति सुमतीशः तस्य जयश्रिया विजयलक्ष्म्या वसुमती पृथ्वी "सर्वसहा वसुमती वसुधोर्वी वसुन्धरेत्यमरः" भाविनी भवित्री पुनरपि जिनेन्द्रोदये पृथ्वी सर्वगुणविशिष्टा भविष्यतीति भावः ॥ २६ ॥ अनुप्रासः ।

अन्यत्र भगवतां भाग्यशालिनामुदयेन समभ्युदयेनेति पूर्वप्रायमन्यत् ॥ २६ ॥

ध्रुवरमं वरमङ्गलसंगमं,
विभवसंभवसंङ्गतुरङ्गमम् ।
पुरमदो रमदोर्बलनायकं,
सुरसभारसभासि भविष्यति ॥ २७ ॥

अन्वयः—अदः पुरम् ध्रुवरमं वरमंगलसंगमम् विभवसंभवसंङ्गतुरङ्गमम् रमदोर्बलनायकम् सुरसभारसभासि भविष्यति ॥ २७ ॥

व्याख्या—अदः पुरम् इदं नगरम् ध्रुवरमम् ध्रुवं निश्चितं सततं वा रमणं यत्र तद् अथवा ध्रुवन्नियतं रमा लक्ष्मीः शोभा संपत्तिर्वा यत्र तद् ध्रुवरमम् नित्योत्सवं नियतलक्ष्मीकं वा वरमंगलसंगमम् वरमंगलानां निरतिशयोत्सवानाम् संगमम् संबंधो यत्र तत्तथोक्तम्

वैभवसंभवसंज्ञतुरङ्गमम् विभवस्य सर्वसंपत्तेः संभव उत्पत्तिरिति विभवसंभवः सम्यक् जानातीति संज्ञः "आतश्चोपसर्गे इति जानातेः कः" बुद्धिमान् तुरं शीघ्रं गच्छतीति तुरंगमः अश्वः विभवसंभवश्च संज्ञश्च तुरंगमश्चेत्येषां द्वन्द्वः इति विभवसंभवसंज्ञतुरंगमानि यत्र तत् अथवा विभवसंभवसंज्ञौ तदभिधानौ तुरंगमौ जात्यश्वौ यत्र तत् 'रमदोर्बलनायकम् रमम् शोभमानं दोर्बलम् बाहुबलं यस्य स रमदोर्बलः रमदोर्बलो नायको यत्र तत् यद्वा रमं दोर्बलम् यस्य स रमदोर्बलः रमदोर्बलो नायको यत्र तत्' सुरसभारसभासि सुराणां देवानां सभा परिषत् इति सुरसभा तस्याः रसः अनुरागः सुरसभारसः तेन भासितुं प्रकाशितुं शीलमस्येति तत् सुरसभारसभासि अथवा सुष्ठु राति ददातीति सुरः तस्य सभा तया भासि विकस्वरम् अथ च सुरः पंडितः तस्य सभा तया भासि भासनशीलम् भविष्यति जनिष्यति ॥ २७ ॥ यमकः ।

राज्यादिस्थितिरद्भुता विजयतेऽद्यापि प्रभोस्तेजसा,
नाम्ना सिद्धिरपि प्रसिद्धिसहिता सर्वेहितार्थे हिता ।
वृद्धिः साभ्युदया सतां समुदयानन्दाय संजायते,
श्रीसार्वप्रभुसार्वभौममहितो भूयात् स भूयः श्रिये॥२८॥

इति श्रीसप्तसंधाने महाकाव्ये महोपाध्यायश्रीमेघविजयगणिकृते
दिग्विजयवर्णनो नामाष्टमः सर्गः संपूर्णः ॥ श्रीः ॥

अन्वयः—अद्यापि प्रभोस्तेजसा राज्यादिस्थितिः अद्भुता नाम्ना सिद्धिरपि प्रसिद्धिसहिता सर्वेहितार्थे हिताः सतां समुदयानन्दाय साभ्युदया वृद्धिः संजायते श्रीसार्वप्रभुसार्वभौममहितः स भूयःश्रिये भूयात् ॥ २८ ॥

व्याख्या—प्रभोर्जिनेन्द्रस्य तेजसा प्रभावेण अद्यापि अधुनापि राज्यादिस्थितिः राज्यादिमर्यादा अद्भुता सर्वातिशायिनी विलक्षणे-

त्यर्थः विजयते सर्वोत्कर्षेण वर्त्तते नाम्ना अभिधेयेन प्रसिद्धिसहिता प्रख्यातियुता सिद्धिरपि अणिमाद्यष्टसिद्धिरपि सर्वेहितार्थे सर्वेषामीहितः सर्वेहितः स चासौ अर्थश्चेति सर्वेहितार्थः तत्र हिता अनुकूला साभ्युदया श्रेयस्करी बुद्धिर्मतिः सतां सज्जनानां भव्यानामित्यर्थः समुदयानन्दाय अभ्युदयसुखाय संजायते सम्पद्यते श्रीसार्वप्रभुः अर्हत्प्रभुः सर्वेभ्यो हितः सार्वः स चासौ प्रभुश्चेति सार्वप्रभुः सर्वपुरुषाभ्यां णढञाविति णः ५ पं. त्रु. सर्वजनीनः सार्वभौममहितः सार्वभौमेन चक्रवर्त्तिना नृपेणेति शेषः महितः पूजितः इति सार्वभौममहितः सार्वप्रभुश्चासौ सार्वभौममहितश्चेति श्रीसार्वप्रभुसार्वभौममहितः स जिनेन्द्रः भूयः पुनः पुनः श्रियै निरतिशयानन्दाय भूयात् स्तात् अत्र श्लोके शार्दूलविक्रीडितम् ॥ २८ ॥

इति शास्त्रविशारद–कविरत्न-भट्टारकाचार्यश्रीविजयामृतसूरीश्वरप्रणीतायां सप्तसंधानमहाकाव्यीय "सरणी" टीकायां अष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥



॥ अथ नवमः सर्गः ॥

अथार्ककीर्त्तेः प्रससार कीर्त्तिर्देवस्य वश्यं भुवनं विधातुम्।
मूर्त्तेव कल्याणवती सुनन्दा सुमङ्गलाङ्गोन्नयनेऽनुपक्ता १

अन्वयः—अथ अर्ककीर्तेर्देवस्य भुवन वश्यं विधातुं मूर्तेव कल्याणवती सुनन्दा सुमंगलांगोन्नयनेऽनुपक्ता कीर्त्तिः प्रससार ॥ १ ॥

व्याख्या—अथ अथानन्तरम् अर्ककीर्तेः अर्कः सूर्यः इन्द्रो वा स्फटिकमणिर्वा विष्णुर्वा स इव कीर्तिः प्रतिष्ठा यस्य तस्य "प्रकाशकत्वात् सर्वशक्तिमत्वात् निर्मलत्वात् सत्यगुणमात्राश्रयत्वाचोपमानत्वं सर्वेषाम्" देवस्य दीप्तिमतः भुवनम् लोकम् जगत् "विष्टपं भुवनं जगदित्यमरः" वश्यं स्वानुकूलं स्वाधीनं विधातुं मूर्तेव कल्याणवती मूर्त्ता सत्स्वरूपा कल्याणवती कल्याणयुक्ता सुनन्दा सुष्ठु नन्दयतीति सुनन्दा आनन्ददायिका सुमंगलांगोन्नयनेऽनुपक्ता सुमंगलस्य कल्याणस्य भद्रस्येत्यर्थः अङ्गोन्नयने अङ्गोत्थाने अनुपक्ता अनुरक्ता कीर्तिः समज्ञा प्रतिष्ठेति यावत् प्रससार पप्राथ ॥ १ ॥ अत्र सर्गे उपजातिवृत्तिः ॥

आदीश्वरपक्षे—सुनन्दा सुमंगलाभिधाने पत्नीद्वये कीर्तेरुन्नयने विस्तारणे अनुपक्ता व्यापृतेति भावः ॥ १ ॥

यशोमती नाम परेव सिन्धुर्व्यावर्णनीया शतलब्धवर्णैः।
नैर्मल्यवृत्तेः पयसां प्रवृत्तेस्तदुग्रजात्याः स महानुभावः॥२॥

अन्वयः—यशोमती नाम परासिन्धुरेव शतलब्धवर्णैर्व्यावर्णनीया नैर्मल्यवृत्तेः पयसां प्रवृत्तेः तदुग्रजात्याः स महानुभावः ॥ २ ॥

व्याख्या—यशोमतीनाम परेव सिन्धुः यशोमती नाम्नी परा काचित् अन्या जलप्रवाहरूपतो भिन्नासिन्धुर्नदी एव उभयोर्विशेषणं

यथा व्यावर्णनीया शतलब्धवर्णैः शतानि शतसंख्यका अथवा शतशब्दस्यानेकसंख्यावाचकत्वात् अनेकसंख्यका ये लब्धवर्णाः पण्डितास्तैरनेककविभिर्व्यावर्णनीया विख्यापनीया कीर्त्तनीयेत्यर्थः अन्यत्र शतानि लब्धानि वर्णानि रूपाणि यैस्तैः शतलब्धवर्णैः अनेकवर्णैः पक्षिभिः व्यावर्णनीया कीर्त्तनीया "लब्धवर्णो विचक्षण इत्यमरः" नैर्मल्यवृत्तेः नैर्मल्यस्थितौ नैर्मल्यविधौ निर्मलतायामित्यर्थः तदुग्रजात्याः अत्युच्चकोटिभूतायाः अन्यत्र उच्चैर्गिरिसंभूतायाः पयसां प्रवृत्तेः जलधाराया इवेति शेषः "यथा उग्रजातिः अत्युग्ररूपा जलधारा निसर्गनिर्मला भवति तथेयमिति भावः" स महानुभावः यस्यैतादृशी कीर्त्तिः स इति शेषः महानुभावः महाशयः ॥

यशोमती महावीरस्वामिनो धर्मपत्नी सापि यथोक्तविशेषणविशेषिता इति ॥ २ ॥

प्रभावती यन्महसाऽभ्रतारा,
सायंप्रकाशाद् बहुवन्दिपाठैः ।
कीर्त्तेर्विभोस्तच्छ्रवणाय मन्ये-
ऽष्टौ स्वश्रुतीस्तेन विधिर्विधत्ते ॥ ३ ॥

अन्वयः—प्रभावती यन्महसा अभ्रतारा बहुवन्दिपाठैः सायंप्रकाशात् विभोः कीर्त्तेः तच्छ्रवणाय विधिस्तेन अष्टौ स्वश्रुतीर्विधत्ते इत्यहम्मन्ये ॥ ३ ॥

व्याख्या—प्रभावती विद्योतमाना यत् यस्मात् या कीर्त्तिर्विभोर्जिनेन्द्रस्य काव्यनायकानां वास्तीति शेषः सा कीर्त्तिः सायं प्रकाशात् रात्रौ प्रकाशबाहुल्यात् महसा तेजसा प्रकाशविशेषेण अभ्रतारा गगनस्य तारका इवेत्यर्थः विभोः प्रभोः कीर्त्तेर्यशसः बहुवन्दिपाठैः अनेकस्तुतिपाठकैर्मागधजनैस्तद्द्वारा तत् श्रवणाय श्रोतुं विधिर्ब्रह्मा अष्टौ अष्टसंख्यकाः स्वश्रुतीः श्रवणेन्द्रियाणि विधत्ते विरचतीत्यहम्मन्ये

जानामि अष्टदिग्भ्यस्तदीयकीर्तिश्रवणायैव विधिःस्वकर्णमष्टधाऽधादित्यहम्मन्ये जानामीति क्रियागतोत्प्रेक्षोपमा ॥

अन्यत्र प्रभावती पार्श्वनाथप्रभोः पत्नी यत्महसा स्वसौभाग्येन अभ्रतारा विभोः पार्श्वप्रभोः कीर्तिस्तच्छ्रवणाय विधिः स्वश्रुतीः अष्टौ विधत्ते इति ॥ ३ ॥

प्रभोः प्रवृत्तिं बहुधा यशोदा-
मनोविनोदात् सुमनःसमूहाः ।
गायन्ति नाके तरवः सुराणां,
तान् वर्धयन्ते कुसुमैर्भदम्भात् ॥ ४ ॥

अन्वयः—यशोदा सुमनः समूहा मनोविनोदात् प्रभोः प्रवृत्तिं बहुधा-नाके गायन्ति सुराणां तरवः तान् भदम्भात् कुसुमैर्वर्धयन्ते ॥ ४ ॥

व्याख्या—यशोदाः यशो ददतीति यशोदाः यशोदातारः सुमनःसमूहाः सुमनसान्देवानां समूहाः वृन्दाः वृन्दारकवृन्दाः मनोविनोदात् हृदयोल्लासात् प्रभोर्जिनेन्द्रस्य रामस्य कृष्णस्य च प्रवृत्तिं पुण्यचरितं कीर्तिमित्यर्थः बहुधा अनेकशः नाके स्वर्गे गायंति वर्णयंति तान् प्रभुकीर्तिगायकान् देवान् सुराणां देवानां तरवः कल्पवृक्षाः भदम्भात् ताराच्छलात् कुसुमैः प्रसूनैः वर्धयन्ते वर्धापयन्ति नीराजयन्तीति भावः ॥ ४ ॥ गम्योत्प्रेक्षा ।

क्वचिद् विशल्या विहिता त्रिलोकी,
गन्धर्वमुख्यैःश्रवसं विधाय ।
कीर्त्या विभोर्भावनीया नयानां,
मुधा विधानेन सुधाशनानाम् ॥ ५ ॥

अन्वयः—विभोः कीर्त्या नयाना भावनया सुधाशनानां मुधाविधानेन गन्धर्वमुख्यैःश्रवसं विधाय त्रिलोकी क्वचिद्विशल्या विहिता ॥ ५ ॥

व्याख्या—विभोर्जिनेन्द्रप्रभोः कीर्त्या यशसा सहेति शेषः नयानाम् प्रभुप्रचारितसन्नीतीनां विभावनया विचारेण सुधाशनानाम् सुधाया अमृतस्य अशनम्भक्षणन्तेषाममृतभोजनानां मुधाविधानेन मिथ्याविधानेन निरर्थकत्वेन "यदा प्रभुगुणाः कर्णनस्वादुमास्वाद्यते तदा सुधाशनं अनेकप्रयत्नप्रलब्धसुधाभोजनम्व्यर्थन्नीरसत्वादिति भावः" गन्धर्वमुच्चैःश्रवसं विधाय गन्धर्वं गानम् प्रभुकीर्त्तिगानम् उच्चैःश्रवसं उच्चैः श्रवणं विधाय कृत्वा प्रभुकीर्त्तिगानमाकण्ठं श्रुत्वा त्रिलोकी त्रयाणां लोकानां समाहारस्त्रिलोकी त्रिजगत् क्वचित् यत्र कीर्त्तिश्रवणम्भवति तत्रैव विशल्या दुःखरहिता विहिता कृता कीर्त्तिश्रवणेन सर्वेषां त्रिविधदुःखमुन्मूलितं भवतीति भावः ॥

अन्यत्र । विशल्या लक्ष्मणपत्नी त्रिलोकी गंधर्वमुच्चैःश्रवसं विधाय त्रिलोक्यां तदीयकीर्त्तिमतिशयं श्रुत्वा विहिता पत्नीत्वेन स्वीकृता लक्ष्मणेन विवाहितेति तात्पर्यम् ॥ ५ ॥

मनोरमा वा रतिमालिका वा,
रम्भापि सा रूपवती प्रिया स्यात् ।
न सुत्यजा स्याद् वनमालिकापि,
कीर्त्तिर्विभोर्यत्र सुरैर्निपेया ॥ ६ ॥

अन्वयः—सुरैर्यत्र प्रभोः कीर्त्तिर्निपेया तत्र मनोरमा वा इति मालिका वा रूपवती सारंभा वनमालिकापि न सुत्यजा स्यात् किन्तु सुत्यजैव ॥ ६ ॥

व्याख्या—यत्र विभोर्जिनेन्द्रस्य कीर्त्तिः सुरैर्देवैर्निपेया पीता प्रभुकीर्त्तिः सादरेण श्रुता तत्र मनोरमा इति मालिका वा रूपवती सा प्रसिद्धा रम्भापि प्रिया मनोज्ञा स्यात् किन्नैव सा प्रेयसीभवितुमर्हति कीर्त्तौ समधिकमाधुरीत्वात्. वनमालिकापि न सुत्यजा स्यात्

अवश्यमेव सुत्यजा भवेत् कीर्तेर्मधुरिमा एताभ्योऽप्यधिकेति भावः ॥ ६ ॥ अतिशयोक्तिरलंकृतिः ।

यया स-आमोदवती विधेया,
गानेन कीर्त्तेः सरसा रसज्ञा ।,
आस्येन सा स्याज्जितपद्मरूपा,
सैवोदिता चाभयवत्यपि ज्ञैः ॥ ७ ॥

अन्वय—यया स-आमोदवती विधेया कीर्त्तेर्गानेन रसज्ञा सरसा आस्येन सा जितपद्मरूपा स्यात् सैव ज्ञैः अभयवती अपि उक्ता ॥ ७ ॥

व्याख्या—यया कीर्त्या स-आमोदवती आमोदवत्या सहिता स-आमोदवती आमोदकारिणी कीर्तेः जिनेन्द्रकीर्त्तेः गानेन कीर्त्तनेन रसज्ञा जिह्वा सरसा रसवतीविधेया कर्त्तव्या आस्येन मुखेन सा कीर्तिः जितपद्मरूपा जितम् पराजितम् पद्मरूप कमलसौन्दर्य यया सा जित-पद्मरूपा सैव सा एव कीर्तिरेव ज्ञैः पण्डितैः अभयवती निर्भयकारिका उदिता कथिता सा कीर्तिरेव सर्वाभयकारिणीत्यर्थः ॥ ७ ॥

यशस्सुवर्णं विहसत्सकर्णं,
सदोपकर्णं विदधाति नृणाम् ।
सा सत्यभामा च गिरा सुसीमा,
सा लक्ष्मणा रुक्मिनृपस्वसा या ॥ ८ ॥

अन्वय—नृणां सा सत्यभामा च गिरा सुसीमा सा लक्ष्मणा या च रुक्मिनृपस्वसा विहसत् सकर्णं यशः सुवर्णं सदोपकर्णं विदधाति ॥ ८ ॥

व्याख्या—नृणाम्मनुष्याणां मध्ये सा प्रसिद्धा सत्यभामा कृष्णपत्नी गिरा वाण्या वाचकशब्देन सुसीमा तदभिधाना सा लक्ष्मणा या च रुक्मिनृपस्वसा रुक्मिराजभगिनी रुक्मिणीति यावत् एताः

कृष्णपत्न्यः विहसत् सकर्ण कर्णेन सहितः सकर्णस्तं विहसत् यशस्विनम् कर्णनृपमपि विहसत् निन्दत् यशःसुवर्णं कीर्तिसुवर्णं सदा सर्वदा उपकर्णं कर्णसमीपं विदधाति शृणोति कृष्णपत्न्य अपि एताः प्रभोर्यशः सदैवाकर्णयन्तीति भावः ॥ ८ ॥

गौरीव कान्त्या परिपूरणेन,
पद्मेव निश्छद्मतया जयाय ।
गान्धारिका जाम्बवती च साम्ब-
प्रद्युम्नलीलालयमाश्रयन्ती ॥ ९ ॥

अन्वय.—कांत्या परिपूरणेन गौरीव निश्छद्मतया जयाय पद्मेव साम्बप्रद्युम्नलीलालयमाश्रयती गांधारिका जाम्बवती च ॥ ९ ॥

व्याख्या—सा कीर्त्तिः जिनेश्वरकीर्त्तिरितिभावः कांत्या दीप्त्या परिपूरणेन कान्तिसमूहेन गौरीव कृष्णपत्नी वीतभयतनयेव अथ च गौरी पार्वतीव निश्छद्मतया निष्कपटतया जयाय त्रैलोक्यविजयाय पद्मेव पद्मा कृष्णपत्नी हिरण्यनामकन्या सेव अथ च पद्मा लक्ष्मीः सेव साम्बप्रद्युम्नलीलालयमाश्रयन्ती साम्बश्च प्रद्युम्नश्चेति साम्बप्रद्युम्नौ तयोर्लीला साम्बप्रद्युम्नलीला तस्या लयं संश्लेषं सम्बन्धम् आश्रयन्ती संस्पृशन्ती गांधारिका कृष्णपत्नी नग्नजित्तनया जाम्बवती कृष्णमहिषी जाम्बवतः दुहिता वा अथ च साम्बप्रद्युम्नलीलालयमाश्रयन्ती अम्ब्यते स्निह्यतीत्यम्बा प्रकृष्टं द्युम्नं बलं यस्य स प्रद्युम्नः तयोः स्नेहबलयोः लीलालयं लीलासंबन्धम् आश्रयन्ती गांधारी जाम्बवती इत्युभे शासनदेवते इव सा कीर्तिर्विराजते इति शेषः ॥ उपमालंकारः ।

पटीयसी कीर्त्तिरियं नटीव,
लोके नरीनर्ति त्रिभोर्विभाते ।

यद्वन्दिवृन्दैरुपगीयतेऽसौ,
निपानतोऽस्या विधुरेतिकामी ॥ १० ॥

अन्वयः—प्रभो पटीयसी इयं कीर्तिः लोके नटीव नरीनर्त्ति विभाते असौ वन्दिवृन्दैर्यद् उपगीयते अस्या निपानतः इति कामी विधुरा ॥ १० ॥

व्याख्या—प्रभोर्जिनेन्द्रस्य पटीयसी पटुतरा इयं कीर्तिः लोके जगति नटीव नरीनर्ति भृशं नृत्यति विभाते प्रातःकाले वन्दिवृन्दैः मागधैः यद् असौ कीर्तिरुपगीयते वर्ण्यते अस्याः कीर्त्तेः निपानतः श्रवणतः कामी कमनीयः विधुः चन्द्रः इति समासः यत् कीर्तिनिपानेन चन्द्रस्तुपमा समासैव भवतीति भावः अथवा इति प्रकाशः तं कामयते इति इतिकामी विधुरा विषण्णा कीर्त्तेः सकाशादन्यप्रकाशाभावादिति भावः 'इति हेतुप्रकरणप्रकाशादिसमाप्ति'ष्वित्यमरः॥१०॥

विदेहशोभाकरणेन सीता,
प्रभावती या च भुवः शिवस्य ।
लीना कवेर्बोधभरस्मराङ्गे,
रतिप्रभाश्रीहृदि कुन्ददामा ॥ ११ ॥

अन्वय.—विदेहशोभाकरणेन सीता भुवः शिवस्य या च प्रभावती कवेः लीना बोधभरस्मरा अंगे रतिप्रभा श्रीहृदि कुन्ददामा ॥ ११ ॥

व्याख्या—विदेहस्य विदेहदेशस्य मिथिलादेशस्य अथवा विदेहस्य देहाभिमानरहितस्य जनकनृपस्य शोभाकरणे मण्डनकरणे सौन्दर्यसंपादने कांतिविस्तारे इति यावत् सीताजनकनन्दिनीव यद्वा विशेषेण देहशोभाकरणे देहसौन्दर्यसंपादने सीता लक्ष्मीरिव अथ च विदेहस्य शिवस्य देहशोभाकरणे अर्धाङ्गसंपादने सीता उमा इव यद्वा विदेहस्य देहममतारहितस्य साधोः सीता गंगेव निर्मलेति भावः भुवः शिवस्य प्रभावती भुवः पृथिव्याः शिवस्य देवस्य सर्वस्येत्यर्थः प्रभा-

वती प्रभा प्रकाशिका शक्तिः कवेः कवित्वशक्तिमतः लीना आश्लिष्टा बोधभरसमरा बोधभरेण ज्ञानभरेण स्मरा स्मृतिरिव अंगे शरीरे रतिप्रभा रतेः कामपत्न्याः प्रभा इव सौन्दर्यसम्पत्तिरिव श्रीहृदि श्रियः लक्ष्म्याः हृदि हृदये कुन्ददामा कुन्दपुष्पस्रगिव कुन्दकुसुममालेव सा कीर्तिर्विरराजेति शेषः ॥ ११ ॥

सीता–प्रभावती–रतिप्रभा–श्रीदामा–इति चतस्रो रामपत्न्यः विराजन्त इति शेषः ॥ ११ ॥

तदा समुद्भूतमया (?) दनीति-
भावः पुरे व्यासि तमः प्रसन्नम् ।
कौलीनवांस्तद्धरणेन सीता-
मापन्नसत्त्वां स वने मुमोच ॥ १२ ॥

अन्वयः—तदा समुद्भूतमयात् अनीतिः भावः तमः प्रसन्नम् पुरे व्यासि कौलीनवान् स तद्धरणेन आपन्नसत्त्वां सीतां वने मुमोच ॥ १२ ॥

व्याख्या—तदा रामराज्यकाले समुद्भूतमयात् उत्पन्नमयात् अनीतिभावः अन्यायभावः जात इति शेषः सीतां विद्विपत्नीभिः सपत्नीभिस्तथा प्रपञ्चितं यथा राममनसि किमप्यनीतिभावः जात इति तत्त्वम् तद्धरणेन तस्याः सीतायाः धरणेन रावणगृहादानीयस्वीकारेण तमः प्रसन्नम् सीतारावणाङ्कगताऽऽसीदिति कथं निष्कलमपेति सीतामाश्रित्य जनापवादरूपं तमः मालिन्यं प्रसन्नम् बहुलीभूतं पुरे नगरे अयोध्यायां व्यासि व्याप्तम् कौलीनवात् कुलाभिमानी स रामः आपन्नसत्त्वाम् सगर्भाम् सीताम् जनकराजदुहितरम् वने निर्जनारण्ये मुमोच तत्याज जनापवादमीत्या सगर्भामपि सीतां वने त्यक्तवानित्यर्थः ॥ १२ ॥

अन्यपक्षे—तदा समुद्भूतमयादनीतिभावः तस्याः मदिरायाः समुद्भूतमयात् उत्पत्तेः पुरे देहे "पुरे देहे च गेहे शब्दस्तोममहानिधिः" अनीतिभावः अन्यायभावः अकीर्त्तिः व्याप्तिर्जातेति शेषः अनीतिभावो व्याप्तः प्रसन्नम् प्रभूतं तमः अज्ञानम् व्याप्तिः 'सर्वतो व्याप्तम् तद्धरणाद् तस्या आसेवनात् कौलीनवान् कुलीनस्य भावः कौलीनः कुलीनता सोऽस्यास्तीति कौलीनवान् कुलाभिमानी अथवा कौलीनः परीवादः निन्देत्यर्थः तद्वान् स आपन्नसत्वाम् आपन्नः अभिप्रेतः दर्यन्तरादिर्यस्यां सा आपन्नसत्त्वा ताम् सीताम् मदिराम् वने निर्जने मुमोच तत्याज परिजहौ 'सीता लांगलपद्धतौ जनकदुहितरि लक्ष्म्यां उमायां मदिरायां चेति' शब्दस्तोममहानिधिः ॥१२॥

श्रीसूर्यवंश्यक्षितिपाश्रयेण,
प्रभूतसून्वोरभवत्प्रसिद्धिः ।
अनङ्गशब्दाल्लवणोऽग्रजन्मा,
परः परर्द्ध्या मदनाङ्कुशाख्यः ॥ १३ ॥

अन्वयः—श्रीसूर्यवंशक्षितिपाश्रयेण प्रभूतसून्वोः अनङ्गशब्दाल्लवणोऽग्रजन्मा परः परर्द्ध्या मदनांकुशाख्यः प्रसिद्धिरभवत् ॥ १३ ॥

व्याख्या—श्रीसूर्यवंशक्षितिपाश्रयेण श्रीसूर्यवंशस्य यः क्षितिपः राजा तदाश्रयेण तदधिकारेण तदनुसारेणेत्यर्थः प्रभूतसून्वोः प्रभूतयोरुत्पन्नयोः सीताकुक्षिसंभूतयोः सून्वोः पुत्रयोर्मध्ये इति शेषः अग्रजन्मा प्रथमप्रसूतः अनंगशब्दात् परः लवणशब्दस्तथा अनङ्गलवणः इत्यभिधानो ज्येष्ठः परः कनिष्ठः परर्द्ध्या महद्धर्या मदनांकुशाख्यः मदनांकुशनामा प्रसिद्धिः प्रख्यातः अभवत् अनङ्गलवणमदनांकुशनामानौ प्रसिद्धौ अभवतामित्यर्थः ॥ १३ ॥

पक्षान्तरे—श्रीसूर्यवंशक्षितिपाश्रयेण पञ्चानामपि चरित्रनाय

कानां तीर्थकराणां स्वतः परम्परया वा सूर्यवंशप्रभवत्वात् कृष्णस्य च तथात्वात् श्रीसूर्यवंशक्षितिपाश्रयेण प्रभूतसून्वोः सून्वश्च सून्वश्च पुत्रश्च पुत्र्यश्चेत्यनयोरेकशेष इति सून्वौ प्रभूतौ च तौ सून्वौ चेति प्रभूतसून्वौ तयोः प्रभूतसून्वोः प्रसिद्धिः प्रख्यातिरभवत् अजायत अग्रजन्मा पुत्रः अनङ्गशब्दाल्लवणः अनङ्गं कामं लुनाति स्वसौन्दर्येणाधः करोतीति अनंगलवणः परः द्वीतियः कन्यारूपः सन्तानः मदनांकुशाख्यः मदनं काममङ्कुशयति उत्तेजयतीति मदनांकुशा आख्याऽभिधानं यस्य स मदनांकुशाख्यः संतानशब्दस्य पुंस्त्वात्पुन्निर्देशः मदनांकुशनाम्नी कन्या प्रसिद्धा जातेति भावः श्रीनेमिनाथपक्षे सून्वोरित्यस्यानुजयोरित्यर्थः ॥ १३ ॥

विभावसोरभ्युदये सुरायः,
प्रपञ्चतः कोऽपि महर्षियोगात् ।
चक्रे स तद्भूमिसुतात्मशुद्धिं,
सापि प्रपेदे व्रततीव्रभावम् ॥ १४ ॥

अन्वयः—कोऽपि सुरायः प्रपञ्चतः महर्षियोगात् विभावसोः अभ्युदये स तद्भूमिसुतात्मशुद्धिं चक्रे सापि व्रततीव्रभावम्प्रपेदे ॥ १४ ॥

व्याख्या—विभावसोः अग्नेः अभ्युदये प्रज्वलिते अग्निकुण्डे इत्यर्थः कोऽपि कश्चिदपि सुरायः सुरान् देवान् अयते नियोजयतीति सुरायः सुरेन्द्रः महर्षियोगात् महर्षेः—तदानीमयोध्याबहिरुद्याने स्थितस्य जयभूषणमुनेः केवलज्ञानमुत्पन्नमिति सुनासीरादयः सुरास्तत्र समाजग्मुः देवाश्च सीताशुद्धिं महेन्द्रं व्यजिज्ञपन् महेन्द्रोऽपि प्रत्यनीकपतिन्तत्र नियुज्य स्वयं मुनेः केवलज्ञानमहोत्सवं विदधे इति प्रपंचतः निधानतः स रामः तत् प्रसिद्धम् भूमिसुतात्मशुद्धिं भूमिसुताया जानक्या आत्मशुद्धिं आत्मपूतां दिव्यरूपामित्यर्थः चक्रे विदधे सापि

आत्मविशुद्धा सीतापि व्रततीव्रभावम् व्रतस्य चारित्र्यग्रहणस्य तीव्रभावम् चारित्र्यग्रहणनिश्चयनियमम् प्रपेदे स्वीचकार यद्वा व्रततीव्रभावम् व्रतरूपकाठिन्ये यथावन्नियमपालनसंकल्पं प्रपेदे सीता विशुद्धा सती जयभूषणकेवलिनः पादे प्रव्रज्यामग्रहीदिति तत्त्वम् ॥ १४ ॥

सुरानुभावाद् भुवि सत्रनिष्ठे,
जिनाग्रजाते हरिविप्रयोगात् ।
हिरण्यरेतःपुरसन्नियोगे,
देवस्तुरियादिभुवं दिदेव ॥ १५ ॥

अन्वयः—सुरानुभावात् भुवि सत्रनिष्ठे जिनाग्रजाते हरिविप्रयोगात् हिरण्यरेतःपुरसन्नियोगे देवः तुरियादिभुवं दिदेव ॥ १५ ॥

व्याख्या—सुरानुभावात् सुरायाः मदिराया अनुभावात् प्रभावात् अथवा सुरस्य अग्निकुमारस्य अनुभावात् प्रभावतः भुवि पृथिव्यां जिनाग्रजाते जिनस्य नेमिनाथस्य अग्रजाते अग्रगे कृष्णे सत्रनिष्ठे वनस्थे अग्निकुमारेण दह्यमानां द्वारकां विलोक्य वनवासिनि कृष्णे सति हरिविप्रयोगात् हरेर्नेमिनाथस्य विप्रयोगात् विशेषेण प्रयोगात् प्रवर्धमानात् यद्वा हरति पापमिति हरिर्जिनेन्द्रो नेमिनाथः तस्य विप्रयोगात् विश्लेषात् हिरण्यरेतः पुरसन्नियोगे पुरे सन्नियोगः संयोगः पुरसन्नियोगः हिरण्यरेतसः अग्नेः पुरसन्नियोगः हिरण्यरेतःपुरसन्नियोगे अग्निभावभूते नगरे "हिरण्यरेता हुतभुग् दहनो हव्यवाहन इत्यमरः" देवः कृष्णः तुरीयादिभुवं तुरीयस्य चतुर्थस्य आदिस्तृतीयः स चासौ भूश्चेति तुरीयादिभुवं तृतीयभुवं तृतीयनरकं दिदेव जगाम ॥ १५ ॥

'सत्रं स्थाने यज्ञभेदे सदादाने अरण्ये' इति शब्दस्तोममहानिधिः ॥

तदाग्रजन्मा बहुशोचनेन,
मोहात्समुल्लासितिलोचनेन ।

पदे पदे चानकमोचनेन,

प्रवृत्तिमाधत्त विरोचनेन ॥ १६ ॥

अन्वयः—तदा अग्रजन्मा बहुशोचनेन मोहात् समुल्लासिविलोचनेन पदे पदे च आनकमोचनेन विरोचनेन प्रवृत्तिम् आधत्त ॥ १६ ॥

व्याख्या—तदा कृष्णदेहपरित्यागे सति अग्रजन्मा अग्रे प्रथमं जन्म यस्य स अग्रजन्मा जन्मतः श्रेष्ठः बलदेवः बहुशोचनेन अत्यंतमनुना मोहात् कृष्णप्रेमतः समुल्लासी विकस्वरे विलोचने यस्य स मोहात् समुल्लासिविलोचनस्तेन भ्रातृस्नेहवशान्निर्निमेषचक्षुषा पदे पदे च स्थाने स्थाने आनकस्य उत्साहस्य धैर्यस्येति यावत् मोचनेन परित्यागेन विरोचनेन विगतं नष्टं रोचनं कुत्रापि रुचिर्मनोनिर्वृतिर्यस्य तेन विगतसुखेन प्रवृत्तिम् प्रवर्त्तनं विहरणम् आधत्त प्रत्यपत्त कृष्णं स्कन्धे निधायेतस्ततः परिबभ्रामेत्यर्थः ॥ १६ ॥

बभ्राम नभ्राडिव वृष्टिधारा,

नन्दन् स वर्षार्धमुदूढबन्धुः ।

वृथा कथाभिर्ननु बोधनेन,

पटुर्बभूवामरबोधनेन ॥ १७ ॥

अन्वयः—उदूढबंधुः स नभ्राडिव वृष्टिधारा नन्दन् वर्षार्धम् बभ्राम वृथाकथाभिर्ननु बोधनेन अमरबोधनेन पटुर्बभूव ॥ १७ ॥

व्याख्या—उदूढबंधुः उदूढः स्कन्धेन धृतः बंधुः कृष्णो येन स उदूढबंधु स्कंधधृतकृष्णः नभ्राडिव मेघ इव वृष्टिधारा वर्षधारा नन्दन् अभिनन्दन् वर्षासमये वृष्टिधाराः सहन् यद्वा वृष्टिधारा नयनाश्रुधारा नन्दन् प्रस्रवन् स बलदेवः वर्षार्धम् षण्मासपर्यन्तं बभ्राम विचचार वृथाकथाभिः 'कोऽपि देवः सिद्धार्थस्तदीयभ्राता मृतो देवः सन् अश्ममयं मरस्थं योजयन् बलेन विहसितः प्रत्याह यः संग्रामे

कदाचिदपि न मृतः स इदानीम्मृतो यदि जीवेत्तदा रथोऽयं सज्जो भवेत् अथ च ग्राव्णि कमलमारोपयन् तथैव विहसिनः यदि मृतो जीवेत्तदाऽश्मनि कमलमपि रोहेदित्यादि कथाभिः अमरबोधनेन सिद्धार्थजीवभूतदेवबोधनेन पटुज्ञानवान् अयम्मे भ्राता मृतः किमेनं वहामीति जातप्रत्ययः बभूव जातः ॥ १७ ॥

आत्तव्रतस्तप्ततपाः स रामः,
क्षमाश्रमान्निर्वृतिरूपधाम ।
लब्ध्वाऽमृतस्याशनमाससाद,
द्राक् पञ्चमीं तां च दिवं व्यतीत्य ॥ १८ ॥

अन्वय —आत्तव्रत तप्ततपा स राम क्षमाश्रमात् निर्वृतिरूपधाम लब्ध्वा द्राक् पञ्चमीम् ताम् च दिव व्यतीत्य अमृतस्याशनम् आससाद ॥ १८ ॥

व्याख्या—आत्तव्रतः आत्तम् प्राप्तम् स्वीकृतमिति यावत् व्रतं चारित्र्यं येन स आत्तव्रतः गृहीतचारित्र्यः तप्ततपाः तप्तमनुष्ठितं तपः योगः समाधिर्वा येन स तप्ततपाः समनुष्ठितयोगः स रामः बलदेवः क्षमाश्रमात् चारित्र्यग्रहणात् साधुवेषात् निर्वृतिरूपधाम अत्यन्तसुखमयसदनम् यद्वा क्षमा क्षान्तिः तद्रूपाश्रमात् चतुर्थाश्रमादित्यर्थः प्रव्रज्याग्रहणतः द्राक् झटिति ताम् प्रसिद्धाम् पञ्चमीन्दिवम् पञ्चमस्वर्गस्थानम् व्यतीत्य उपभुज्य तत्र भोग्यसमयं यावत् भुक्त्वा अमृतस्य अशनं यत्र तत् अमृतभोजनम् देवत्वम् आससाद देवो बभूव ॥१८॥

अथ क्षपारक्षिगणे गणेशा, विद्यातपःसत्यगवीनिवेशाः ।
संप्राप्तनिःश्रेयसभूप्रदेशाः, परम्पराम्नायविदां सदेशाः ॥

अन्वय.—अथ क्षपारक्षिगणे गणेशा, विद्यातप सत्यगवीनिवेशाः संप्राप्तनिःश्रेयसभूप्रदेशा, परम्पराम्नायविदां सदेशा. ॥ १९ ॥

व्याख्या—अथ अथानन्तरम् भगवन्निर्वाणानन्तरम् क्षमारक्षिगणे क्षमां तितिक्षां "बाह्ये चाध्यात्मिके चैव दुःखे चोत्पातिके क्वचिद् न कुप्यति न वा हंति मा क्षमा परिकीर्त्तिता ॥ आक्रुष्टोऽभिहतो वापि वा कौशेश्च च हंति वा । अदुष्टैर्वाङ्मनःकायैस्तितिक्षोः सा क्षमा स्मृतेति स्मृतिः" तां रक्षितुं पालयितुं शीलमस्येति क्षमारक्षी स चासौ गणश्चेति क्षमारक्षिगणः तत्र यद्वा क्षमारक्षिणां गणः संघस्तत्र गणेशाः प्रधानभूताः विद्यातपःसत्यगवीनिवेशाः सत्या चासौ गीर्वाणी चेति सत्यगवी विद्या च तपश्च सत्यगवी चेति द्वन्द्वः तेषु निवेशः अभिनिवेश आग्रहो येषां ते विद्यातपःसत्यगवीनिवेशाः ज्ञानाध्ययनव्रतप्रवृत्तयः संप्राप्तनिःश्रेयसभूप्रदेशाः संप्राप्ता अधिगता निःश्रेयसस्य मोक्षस्य भूप्रदेशाः भूसान्निध्यं यैस्ते अधिगतकल्याणभूमिसन्निकर्षाः परंपराम्नायविदां सदेशाः परंपरा अविच्छिन्नो य आम्नायः संप्रदायः गुरुक्रमो वा स परम्पराम्नायः तं विन्दन्ति जानन्तीति परम्पराम्नायविदः निरवच्छिन्नसंप्रदायज्ञानिनस्तेषां सदेशाः सन्निभाः सदृशा इत्यर्थः गणधरा राजानश्च अभवन्निति शेषः ॥ १९ ॥

गणाग्रणीः श्रीऋषभादिसेन—
स्त्विपा जितग्लौर्वृषभादिसेनः ।
श्रीनाभिसेनान्वयिपुण्डरीकः,
प्रभाविभासी यतिपुण्डरीकः ॥ २० ॥

अन्वयः—गणाग्रणीः स ऋषभादिसेनः त्विषा जितग्लौः वृषभादिसेनः श्रीनाभिसेनान्वयपुण्डरीकः विभाविलासी यतिपुण्डरीकः ॥ २० ॥

व्याख्या—गणाग्रणीः गणेषु गणधरेषु अग्रणीः अग्रे नीयतेऽसौ अग्रणीः गणाग्रणीः गणश्रेष्ठः श्रीऋषभः आदिर्यस्य सेनस्य स ऋषभादिसेनः ऋषभसेनः तदभिधानः त्विषा जितग्लौः त्विषा कांत्या जितः

पराजितः ग्लौश्चन्द्रो येन स कान्तिपराजितचन्द्रः "ग्लौर्मृगांकः कलानिधिरित्यमरः" अनेन तस्मिन् सर्वश्लाघ्यत्वं व्यज्यते वृषभादिसेनः वृषभसेनः श्रीनाभिसेनान्वयपुण्डरीकः श्रीनाभिसेनस्य नाभिनृपतेर्योऽन्वयः वंशकुलमित्यर्थः स नाभिसेनान्वयः तत्र पुण्डरीकमिव कमलमिवेति श्रीनाभिसेनान्वयपुण्डरीकः प्रभाविलासी प्रभया दीप्त्या विभासितुं शोभितुं शीलमस्येति प्रभाविलासी दीप्तिमान् यतिपुण्डरीकः यतिषु संयमिषु पुण्डरीकमिवेति यतिपुण्डरीकः अथवा यतिश्चासौ पुण्डकश्चेति यतिपुण्डरीकः ऋषभसेनः भरतचक्रवर्त्तितनयस्तस्यैवापरनाम पुण्डरीक इति अत एवात्र कर्मधारयोऽपि संगच्छते ॥

चक्रायुधः श्रीवरदक्षशक्ति-
स्त्वथार्यदत्ताभिधयाऽवधार्यः ।
श्रियेन्द्रभूतिर्विबुधार्चितत्वात्,
तत्त्वानि वेत्ता तपसाऽग्निभूतिः ॥ २१ ॥

अन्वय—चक्रायुध श्रीवरदक्षशक्ति तु अथ आर्यदत्ताभिधया अवधार्यः श्रिया इन्द्रभूति विबुधार्चितत्वात् तत्वानि वेत्ता तपसा अग्निभूतिः ॥ २१ ॥

व्याख्या—चक्रायुधः श्रीशान्तिनाथस्य तनयः श्रीवरदक्षशक्तिः श्रीनेमिनाथस्य गणधरः तु पुनः अथ आर्यदत्तः इति अभिधया नाम्ना अवधार्यः बोध्यः श्रिया संपत्त्या कान्त्या इन्द्र इव देवेन्द्र इव भूतिरैश्वर्यं यस्य स श्रियेन्द्रभूतिः इन्द्रभूतिनामा श्रीमहावीरस्वामिनो गणधरः विबुधार्चितत्वात् विबुधैर्देवैः पण्डितैर्वा अर्चितत्वात् पूजितत्वात् तत्त्वानि परमार्थवस्तूनि वेत्ता ज्ञानवान् तत्त्वज्ञानवान् तपसा संयमेन अग्निभूतिः अग्निरिव भूतिः विभूतिः पराक्रमो यस्य स तपसाऽग्निभूतिः कर्मदाहकत्वादिति भावः अथ च अग्निभूतिरित्याख्यः श्रीमहावीरस्वामिनो गणधरः ॥ २१ ॥

चर्याप्रबन्धात् स हि वायुभूति-
व्यक्तः सुधर्मा शुभपट्टधर्मा ।
अकम्पितोऽर्चिर्निचयः प्रभासः,
श्रीमण्डितः पण्डितवीर्यवासः ॥ २२ ॥

अन्वयः—चर्याप्रबंधात् स हि वायुभूति व्यक्त सुधर्मा शुभपट्टधर्मा अकम्पित अर्चिनिचय प्रभास पण्डितवीर्यवास श्रीमण्डित ॥ २२ ॥

व्याख्या—चर्या प्रबंधात् चर्याया सम्यङ्नियमपरिपालनस्य गुरूपदिष्टव्रताद्यनुष्ठानस्य अथवा चर्याया ईर्यापथस्थितेः अटाट्याया वा प्रबंधात् प्रकृष्टबंधात् नियमात् संदर्भादित्यर्थः स हि वायुभूतिः वायुरिव भूतिः यस्य स अथवा वायुभूतिनामा गणधरः व्यक्तः व्यज्यते गुणैरिति व्यक्तः गणधरः शुभपट्टधर्मा शोभनः प्रशस्तः पट्टधर्मः पीठधर्मो यस्य स सुधर्मा शोभनो धर्मोऽस्य स तदाख्यो गणधरः अकम्पितः न कम्पते कुतोऽपीति अकंपितः तदाख्यो गणधरः अर्चिर्निचयः प्रभासः अर्चिषः तेजसा निचयः पुञ्जः राशिर्वा प्रभासः प्रकर्षेण भासते इति प्रभासः पण्डितवीर्यवासः श्रीमण्डितः श्रिया तपःश्रिया दीप्त्या-प्रभया मण्डितः शोभितः इति श्रीमण्डितः अथवा गुणैर्दयादाक्षिण्यादिभिः मण्डयते स्मेति मण्डितः श्रीयुक्तश्चासौ मण्डितश्चेति श्रीमण्डितः मध्यमपदलोपी समासः तन्नामको गणधरः ॥ २२ ॥

स मौर्यपुत्रः प्रतिभापवित्रो,
मैतार्यनामाप्यनिवार्यधामा ।
श्रुतोऽचलभ्रातृतया नयाढ्यो-
ऽनङ्गोऽप्यनङ्गाद्कुशलब्धसिद्धिः ॥ २३ ॥

अन्वय—प्रतिभापवित्र स मौर्यपुत्र अनिवार्यधामा अपि मैतार्यनामा नयाढ्य अचलभ्रातृतया श्रुत अनङ्गो अपि अनङ्गाद्कुशलब्धसिद्धि ॥ २३ ॥

व्याख्या—प्रतिमया बुद्धया पवित्रः निष्कलमषः इति प्रतिभापवित्रः निर्मलबुद्धिः स मौर्यपुत्रः तदाह्वो गणधरः अनिवार्यधामा अनिवार्यमनिरुद्धं अपराभूतमित्यर्थः धाम तेजो यस्य स अप्रतिमतेजस्कः मेतार्यनामा मां लक्ष्मीमितः प्राप्तः इति मेतः स चासौ आर्यश्चेति मेतार्यः तदाख्यो गणधरः नयाढ्यः नीतिमान् अचलभ्रातृतया श्रुतः ख्यातः अनंगोऽपि अनंगाङ्कुशलब्धसिद्धिश्चेति सर्वे गणधराः॥२३

सुश्रीधरः सर्वहितैर्यशोभि–
दिक्शोभिना यस्य सुपार्श्वकीर्तिः ।
श्रीकेशवः क्लेशवतो विनेता,
नयेन पृथ्वीतिलकः प्रथावान् ॥ २४ ॥

अन्वयः—सर्वहितैर्यशोभिः सुश्रीधरः दिक्शोभिना नयेन यस्य सुपार्श्वकीर्तिः क्लेशवतो विनेता पृथ्वीतिलकः प्रथावान् श्रीकेशवः ॥ २४ ॥

व्याख्या—सर्वहितैः सर्वेषां चराचराणां हितैर्हितप्रयोजकैर्यशोभिः कीर्त्तिभिः सुश्रीधरः सुष्ठु शोभना चासौ श्रीश्चेति सुश्रीस्तांधरतीति सुश्रीधरः शोभनश्रीमान् अथवा सर्वहितैर्यशोभिरुपलक्षितः सुश्रीधरस्तन्नामा श्रीपार्श्वनाथस्वामिगणधरः यस्य प्रभोरिति शेषः दिक्शोभिना दिशांशोभयतीति तेन दिशामुद्योतकारकेण नयेन नीत्या सुपार्श्वकीर्त्तिस्तदाख्यः क्लेशवतो विनेता क्लिश्यते उपतापयतीति क्लेशः स अस्यास्तीति क्लेशवान् तस्य विनेता शिक्षकः सत्यार्थप्रवर्चयिता पृथ्वीतिलकः पृथ्व्यां भूमौ तिलक इवेति पृथ्वीतिलकः भूविशेषकः प्रथावान् कीर्त्तिमान् श्रीकेशवः कंसुखे शेते प्रभवतीति केशवः यद्वा के जले शेते इति केशवः केशाद्वोऽन्यतरस्यामिति वः 'मारुते वेधसि ब्रघ्ने पुंसि कः कं शिरोऽम्बुनो'रित्यमरः 'को ब्रह्मणि समीरात्मयमदक्षेषु भास्करे मयूरेऽग्नौ च पुंसि स्यात्सुखशीर्षजलेषु क'मिति मेदिनी श्रीकृष्ण इत्यर्थः ॥ २४ ॥

भद्रपदम् कल्याणपदम् आदधतो स्वस्थाने निवेशयता यशोभद्रस्वामी तत्पश्चात्तत्पट्टेऽभवदिति मात्रः अन्तरीपम् द्वीपम् जम्बूद्वीपम् अद्भुताय लोकानामिति शेषः अलंकृतं शोभितम् श्रीमहावीरस्वामिगुरुपरम्परागतैरेतैर्जम्बूद्वीपमलंकृतमिति तात्पर्यः ॥ २७ ॥

संभूतपूर्वं विजयं दधानः,
स भद्रबाहुर्यशसां समुद्रः ।
श्रीस्थूलभद्रोऽपि गिरिस्तथार्य-
नाम्ना ततश्चार्यसुहस्तिसूरिः ॥ २८ ॥

अन्वयः—संभूतपूर्वं विजयं दधानः संभूतविजयः यशसां समुद्रः स भद्रबाहुः श्रीस्थूलभद्रः तथा आर्यमहागिरिः ततः नाम्ना आर्यसुहस्तिसूरिः २८

व्याख्या—संभूतपूर्वं विजयं दधानः संभूत इति पूर्वं पूर्वभागं यस्य एवंभूतं विजयं तं पदं दधानः अथ च संभूतो रागादिविजयो यस्य स संभूतविजयः यशसां कीर्त्तीनां समुद्रः कीर्त्तिरत्नाकरः स प्रसिद्धः भद्रबाहुः भद्रौ कल्याणगुणसंपन्नौ बाहू यस्य स तथोक्तः ततस्तदनन्तरम् स्थूलभद्रः स्थूलमुपचितं भद्रं कल्याणं यस्य स तथा आर्यनाम्नागिरिः आर्यमहागिरिः परिषहाद्युपद्रवैरकंप्यत्वात् महागिरिरिवेति महागिरिः स चासौ आर्यश्चेति आर्यमहागिरिः ततस्तदनन्तरम् आर्यसुहस्तिसूरिः कर्मद्रुमोन्मूलने सुहस्तीवेति सुहस्ती आर्यश्चासौ सुहस्तिसूरिश्चेति आर्यसुहस्तिसूरिः तत् परम्परायां क्रमादागता एते नव श्रुतकेवलिनः ॥ २८ ॥

अन्येऽपि मान्या हरिभद्रसूरि-
शीलाङ्कनामाभयदेवमुख्याः ।
श्रीहेमचन्द्रा मलयाद्रि गिरीशा,
जीयासुरुद्योगधिया गिरीशाः ॥ २९ ॥

अन्वयः—अन्येऽपि मान्याः हरिभद्रसूरिशीलाङ्कनामा अभयदेवमुख्याः श्रीहेमचन्द्राः मलयात् गिरीशाः उद्योगधिया गिरीशाः जीयासुः ॥ २९ ॥

व्याख्या—अन्येऽपि पूर्ववर्णितेभ्योऽन्ये भिन्नाः हरिभद्रसूरिः हरिभद्रसूरिनामा १४४४ चतुश्चत्वारिंशदधिकचतुर्दशशतग्रंथप्रणेता शीलांकनामा श्रीशीलाकाचार्यः आचारांगसूत्रटीकाकारः अभयदेव-मुख्याः अभयदेवसूरिः नवांगटीकाकृत् तथा श्रीहेमचन्द्राः श्रीहेम-चन्द्राचार्याः अनेकग्रंथप्रणेतारोऽपरवाचस्पतिरूपाः उद्योगधिया उद्यु-ज्यते इत्युद्योगः तस्य धियां बुद्धया उद्योगबुद्धया गिरीशाः सुमेरुप-र्वताः देवानां कार्योद्योगस्तत्रैव भवतीति यथा सुमेरुर्मन्त्रणास्थानम् तथा एते इति भावः अथवा उत् उत्कृष्टो यो योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः यद्वा योगः शासनाराधनाध्यवसायः तद्धिया तन्मत्या गिरीशाः सुमेरुपर्वतकल्पाः अनेकानेकप्रत्यूहपवनेऽपि निःप्रकम्पा इति भावः मलयात् गिरीशाः मलयगिरीशा इत्यादयः सूरीश्वरा जीयासुः सर्वो-त्कर्षेण वर्तिषीरन् ॥ २९ ॥

सुवर्णवर्णं गजराजगामिनं,
प्रलम्बबाहुं सुविशाललोचनम् ।
नरामरेन्द्रैः स्तुतपादपङ्कजं,
नमामि भक्त्या वृषभं जिनोत्तमम् ॥ ३० ॥

अन्वयः—सुवर्णवर्णं गजराजगामिनम् प्रलम्बबाहुम् सुविशाललोचनम् नरामरेन्द्रैः स्तुतपादपङ्कजम् जिनोत्तमम् वृषभम् भक्त्या नमामि ॥ ३० ॥

व्याख्या—सुवर्णवर्णम् सुवर्णः स्वर्ण इव वर्णो यस्य स सुवर्ण-वर्णस्तम् प्रकाशमयत्वात् तथा गजराजगामिनम् गजानां गजेषु वा राजा गजराजः हस्तिराजः स इव गंतुं शीलं यस्य स गजराजगामी तम् धीरोदात्तत्वात् निर्भीकगमनः प्रलम्बबाहुम् प्रलम्बौ बाहू यस्य स

स्फुरन्मनीषाविमलः सुभद्रा-
नुरागभागर्जुन एव लोके ।
श्रीसत्यकीर्तिर्ध्रुवमङ्गलाख्यो,
निर्व्याजसाम्राज्यवतामपीज्यः ॥ २५ ॥

अन्वयः—स्फुरन्मनीषा विमलः सुभद्रानुरागभाग् अर्जुन एव लोके निर्व्याजसाम्राज्यवतामपीज्य. श्रीसत्यकीर्त्ति ध्रुवमङ्गलाख्यः ॥ २५ ॥

व्याख्या—स्फुरन्मनीषा विमलः स्फुरन्ती देदीप्यमाना या मनीषा बुद्धिः सा स्फुरन्मनीषा प्रस्फुरद्बुद्धिः तया विमलः निर्मलः सुभद्रानुरागभाग् सुभद्रायाः कृष्णभगिन्या योऽनुरागः प्रीतिस्तां भजते इति स अर्जुनः तदभिधानः पाण्डवः निर्व्याजसाम्राज्यवतामपीज्यः निर्व्याजम् निष्कपटम् संपूर्णमित्यर्थः यत् साम्राज्यं सार्वभौमत्वम् तदस्यास्तीति निर्व्याजसाम्राज्यवान् तेषामपि ईज्यः पूज्यः श्रीसत्यकीर्त्तिः सत्या निश्चला कीर्त्तिर्यशो यस्य स ध्रुवमङ्गलाख्यः ध्रुवमङ्गलनामा अभूदिति शेषः ॥ २५ ॥

तेजोविशेषाज्जितभानुभानु-
स्तस्यानुयातो भरतः सशङ्खः ।
प्रद्युम्नशाम्बावनुविष्णु कृष्णौ,
तथोदधिर्धीरगभीरसंज्ञः ॥ २६ ॥

अन्वय—तेजोविशेषात् जितभानुभानुः तस्य अनुयात. भरतः सशंखः प्रद्युम्नशाम्बौ अनुविष्णु कृष्णौ तथा उदधि धीरगभीरसंज्ञ. ॥ २६ ॥

व्याख्या—तेजोविशेषात् तेजसां प्रभावानां विशेषात् आधिक्यात् जितः पराभूतः भानुः सूर्यो येन स तेजोविशेषात् जितभानुः स चासौ भानुश्चेति तेजोविशेषाजितभानुभानुः यद्वा तेजोविशेषाज्जितः

पराजितः भानोः सूर्यस्य भानुः किरणो येन स तथोक्तः भानुनामा-कृष्णतनयः तस्यानुजातः भरतः सखेरुः तस्य भानोः कृष्णतनयस्य अनुजातः अनुजः पश्चाज्जायमानः भरतः सखेरुः इमावपि कृष्णत-नयौ प्रद्युम्नशाम्बौ प्रद्युम्नः रुक्मिणीतनयः शाम्बः जाम्बवतीतनयः तयोर्द्वन्द्वः तौ प्रद्युम्नशाम्बौ अनुविष्णु कृष्णौ अनु पश्चात् विष्णुः कृष्णो यस्य स बलरामः कृष्णः वासुदेवः तयोर्द्वन्द्वः तौ अनुविष्णु कृष्णौ रामकृष्णौ तथा उदधिः धीरः गम्भीरः एते सर्वे कृष्णतनयाः तौ धीरगभीरौ संज्ञे ययोः सधीरगभीरसंज्ञः धीरगभीरनामा ॥२६॥

इत्यादिनालङ्कृतमन्तरीपं,
जम्बूसुनाम्ना प्रभवेन नित्यम् ।
शय्यम्भवेनादधताऽद्भुताय,
श्रीमद्यशोभद्रपदं स्वगोत्रे ॥ २७ ॥

अन्वयः—इत्यादिना अलंकृतं अन्तरीपम् जम्बूसुनाम्ना प्रभवेन नित्यम् अद्भुताय स्वगोत्रे श्रीमद्यशोभद्रपदम् आदधता शय्यंभवेन ॥ २७ ॥

व्याख्या—इत्यादिना पूर्वोक्तप्रकारेण अथवा जम्बूसुनाम्ना जम्बू इति सुष्ठुनाम यस्य तेन तथोक्तेन गुणरत्नमयत्वेन जम्बूद्वीपे जम्बूरिव जम्बूः स चासौ स्वामी चेति जम्बुस्वामी तेन प्रभवेन प्रभु-त्ववता अथ च तत्पट्टे क्रमागतेन प्रभवस्वामिना प्रभवति अस्मात् श्रुतमिति प्रभवेन स्वगोत्रे गां पृथ्वीं त्रायते इति गोत्रः स्वस्य गोत्रः स्वगोत्रः तस्मिन् यद्वा स्वस्य गोः स्वगोः तां त्रायते इति स्वगोत्रस्त-स्मिन् अथवा स्वगोत्रे स्वकीयपरम्परापदे शय्यंभवेन शय्याया भव-तीति शय्यंभवः गुम्फनकर्त्ता "शय्या गुम्फनमिति शब्दस्तोममहानि-धिः" सृष्टिविधानदक्षः पालकत्वेनेत्यर्थः तेन अथ च शय्यंभवना-म्ना स्वामिना स्वशिष्यपरंपरागतेन श्रीमद्यशोभद्रपदम् यशसा कीर्त्या

प्रलम्बबाहुस्तम् आजानुबाहुम् सुविशाललोचनम् सुविशाले अतिदीर्घे लोचने नेत्रे यस्य तम् पृथुनयनम् नरामरेन्द्रैः स्तुतपादपंकजम् नराश्च अमराश्च इति नरामरास्तेषामिन्द्रास्तैः स्तुतम् स्तुतिविषयीकृतं पादपंकजम् चरणकमलं यस्य तम् जिनोत्तमम् जिनेश्वरम् वृषभम् ऋषभप्रभुम् भक्त्या श्रद्धया प्रेम्णेत्यर्थः नमामि नमस्करोमि ॥ ३० ॥

सौरं महः श्रीतपसां गणेऽस्मिन्,
देदीप्यते सौम्यमपीह कीर्त्या ।
सप्तार्थसंधानजकाव्यमेतत्,
तदुद्भवं तेन शुभं चिराय ॥ ३१ ॥

अन्वयः—श्रीतपसां गणेऽस्मिन् सौरम् महः इह कीर्त्या सौम्यम् अपि महः देदीप्यते एतत् सप्तानुसंधानजकाव्यम् तदुद्भवम् तेन चिराय शुभम् ३१

व्याख्या—अस्मिन् पुरो दृश्यमाने तपसांगणे तपोगच्छे अथवा तपसां व्रतविशेषाणां गणे समुदाये सौरम्महः सूरस्य सूर्यस्य इदम् सौरम् महस्तेजः तपसः कर्मदाहकत्वात् सौरतेज इव तेजस्तत्रेति अथ च सूरेराचार्यपदपदकस्य इदम् सौरम् सूरिसंबन्धिमहस्तेजोऽस्मिन् अथ च कीर्त्या यशसा सौम्यम् सोमस्य चन्द्रस्येदम् सौम्यम् चान्द्रम् सर्वेषामनुकूलत्वात् महस्तेजः इह गणे देदीप्यते अतिशयेन विराजते एतत् सप्तार्थसंधानजकाव्यम् सप्तार्थस्य सप्ताभिधेयस्य यत् संधानमनुसरणम् तस्माज्जातमिति सप्तार्थसंधानजं च तत् काव्यञ्चेति सप्तार्थसंधानजकाव्यम् तदुद्भवम् सूर्यवंशीयराजतेजोभवम् चन्द्रवंशीयनृपोद्भवम् सूरिपरम्परोद्भवञ्चैतत् तेन उभयतः पूतत्वात् चिराय चिरम् शुभम् कल्याणजनकं भूयादिति शेषः ॥ ३१ ॥

पूर्वं श्रीहीररूपं तदनु कनकवत्पुण्यशीलानुभूतं,
पञ्चार्हद्रामकृष्णाभ्युदयकमलया सिद्धिचारित्रपूतम् ।
शुद्धं राज्ये कृपायाश्चरितमदुरितं नन्दतात् सत्प्रसादात्,
श्रीमन्मेघायमानं मनसि रसभरैर्नित्यमुन्नीयमानम् ॥३२॥

अन्वयः—पूर्वं श्रीहीररूपम् तदनु कनकवत् पुण्यशीलानुभूतम् पंचार्हद्रामकृष्णाभ्युदयकमलया सिद्धचारित्र्यपूतम् शुद्धम् कृपायाः राज्ये अदुरितं चरितं श्रीमत् रसभरैर्मनसि मेघायमानम् उन्नीयमानम् सत्प्रसादात् नन्दतात् ॥३२॥

व्याख्या—पूर्वम् प्रथमम् श्रीहीरमिव वज्रमणिरिव रूपं स्वरूपं यस्य तत् तथोक्तम् तदनु तत्पश्चात् कनकवत् स्वर्णवत् सुवर्णतुल्यम् पुण्यशीलानुभूतम् पुण्यम् सुकृतम् शीलमाचारः ताभ्यामनुभूतम् सम्बद्धम् अथवा पुण्यशीलैः पवित्राचारिभिः अनुभूतमधिष्ठितम् चरित्रनायकत्वेनोपवर्णितम् पंच ते अर्हन्तश्चेति पञ्चार्हन्तः रामश्च कृष्णश्चेति रामकृष्णौ पञ्चार्हन्तश्च रामकृष्णौ चेति पंचार्हद्रामकृष्णाः तेषाम् अभ्युदय एव इष्टसाधनमेव कमला लक्ष्मीः इति पंचार्हद्रामकृष्णाभ्युदयकमला तया सिद्धिचारित्र्यपूतम् मोक्षजनकचारित्र्येण प्रव्रज्यया अथवा सिद्धिर्बुद्धिः सुरत्वादिलब्धिः तया पूतम् पवित्रम् निष्कलमषम् कृपायाः दयायाः राज्ये दयासाम्राज्ये अदुरितम् दुरितरहितम् निष्पापम् चरितम् आख्यानम् मनसि चित्ते रसभरैः शांतादिरसानां भरैर्भारैः अथ च रसानां जलानां भरैर्भारैः श्रीमन्मेघायमानम् मेघमिवाचरितम् घनायमानम् नित्यम् सततम् उन्नीयमानम् उर्द्धीक्रियमाणम् अथ च दृश्यमानम् सत्प्रसादात् सताम् सज्जनानाम् प्रसादात् अनुग्रहात् नन्दतात् आनन्दम् प्राप्नुयात् महत्त्वमनुभूयादित्यर्थः ॥
॥ ३२ ॥

अथ च पूर्वम् श्रीहीररूपम् श्रीहीरविजयस्वरूपम् श्रीहीरविजयस्वरूपेण स्थितम् तदनु तत्पश्चात् कनकवत् कनकविजयस्वरूपवत् ततः पुण्यशीलानुभूतम् पुण्यः पवित्रो यः शीलः शीलविजयः तेन अनुभूतम् अधिष्ठितम् पञ्चसंख्यकाये अर्हन्तः रामकृष्णौ च इति पञ्चार्हद्रामकृष्णाः तेषामभ्युदयकमलया कमलविजयश्च इति पञ्चार्हद्रामकृष्णाभ्युदयकमला तया सिद्धविजयः चारित्र्यविजयः ताभ्याम् पूतम् पवित्रम् कृपायाः कृपाविजयस्य अदुरितम् निर्दुष्टम् चरितम् मेघायमानम् मेघविजयेन अपमानम् नीयमानम् एतच्चरितम् सत्प्रसादात् सज्जनजनानुग्रहात् नन्दतात् आनन्दमाप्नुयात् ॥ ३२ ॥

इति श्रीसप्तसंधाने महाकाव्ये तपागच्छे भट्टारकश्रीविजयरत्नराज्ये
महोपाध्यायश्रीमेघविजयगणिविरचिते परम्पराधिकारवर्णनो
नाम नवम सर्गः ॥ श्री ॥

॥ ग्रन्थ प्रशस्तिः ॥

सूत्रतः सूत्रिता ग्रन्थे, द्विचत्वारिंशदन्विता ।
चतुःशतीह काव्यानां, सप्तसंधाननामनि ॥ १ ॥

श्रीहेमचन्द्रसूरीशैः, सप्तसंधानमादिदम् ।
रचितं तदलाभे तु, स्तादिदं तुष्टये सताम् ॥ २ ॥

वियद्रसमुनीन्दूनां (१७६०) प्रमाणात् परिवत्सरे ।
कृतोऽयमुद्यमः पूर्वाचार्यचर्याप्रतिष्ठितः ॥ ३ ॥

॥ इति ग्रन्थ प्रशस्तिः ॥



टीका प्रशस्तिः ।

श्रीमन्महेन्द्रमुकुटोपलरंजितांघ्रि-
पंचार्हतस्तवनसंस्तवसंस्कृता या ।
श्रीरामकृष्णचरिते सरणी नवीना,
नेमेः पवित्रचरणे क्रियतेऽर्पणा सा ॥ १ ॥

यस्योच्चैर्जनतोपकारकरणप्रख्यातकीर्तिव्रजः,
शुद्धाचारघनप्रचारचरणादक्षुण्णरक्षाव्रतः ।
विद्याकांतनितांतशांतसहजस्वांतप्रमाखण्डिता-
ऽविद्याध्वांततततिःसदा विजयते श्रीवर्धमानः प्रभुः ॥२॥

अमन्दस्वच्छन्दोच्छलितललितच्छन्दविशद-
च्छटाच्छायाक्षिप्तक्षणिकजगदच्छुद्रविभवः ।
क्षमापीठे क्षांतिः प्रसरति यदीयाक्षरतरा
क्षमाभूमिः क्षित्यां चरमजिनपोऽसौ विजयते ॥ ३ ॥

तदीये सत्पट्टे क्षपिततत्कर्मांगततमाः,
शमारामग्रामक्रमणघनधामानिगममाः ।
अजिह्मस्वाचारक्षमघृतसुलक्ष्माशिवरमा-
समालम्बप्रेमाऽभवदिह सुधर्मामुनितमः ॥ ४ ॥

ततो जम्बूस्वामी रुचिरतरजाम्बूनदरुचि-
स्तदीये पट्टाब्धावजनि जनतानन्दनकरः ।
जगज्जन्तूदारांकुरजननिर्व्याजजलदो
ज्वलत्कर्मज्वालाशमनजलधिर्जैनविभवः ॥ ५ ॥

तपोगच्छच्छायायदवधिरभूत्साधुनिकरे,
यदीयाच्छच्छाया क्षपयति महामोहतपनम् ।
समागच्छत्पट्टे तदनु भुवि रोचिष्णुरधिक-
श्चतुश्चत्वारिंशत्तम इह जगच्चन्द्रमुनिराट् ॥ ६ ॥

यस्योपदेशमहिमा ननु वर्ण्यते किं,
सम्राड्महानकबरोऽपि च संप्रबुद्धः ।
पट्टेऽष्टसागरमिते प्रबभूव हीर-
सूरिः समस्तमुनिवृन्दविविक्तहीरः ॥ ७ ॥

सद्बुद्धिबुद्धिविजयस्तदनुक्रमेण,
पट्टेऽक्षिवासरमितेऽजनि शांतमूर्त्तिः ।
यः सर्वदा भुवि जनावनबद्धलक्ष्यो,
लक्ष्मीचकार निरवद्यशिवाख्यलक्ष्मीम् ॥ ८ ॥

तत्पट्टपंकजविकासनभानुमाली,
चंचन्निशाकरसमुज्ज्वलकीर्त्तिशाली ।
श्रीवृद्धिवृद्धिविजयोऽभवदुग्रशील-
शाली सुशासनविभावकशिष्यमाली ॥ ९ ॥

राजद्राजगुणोजनावनमहत्संधानुसंधानवान् ,
तीर्थोद्धारदृढव्रतो व्रतिजनज्ञानप्रचारोत्सुकः ।
सम्यग्बोधितराजमण्डलनमत्पादारविन्दोऽभव-
त्तत्पट्टाम्बुनिधावखण्डशशभृत् श्रीनेमिसूरीश्वरः ॥१०॥

योऽयं सम्प्रतिशासनोन्नतिकरः शिष्टान्विनेयान् भृशं-
नानादेशविशेषकेषु सुकृतोद्धाराय संप्रेषयन् ।

नित्यं सज्जनतोपकारकरणे लग्नो निमग्नः शिवे-
सद्धर्मोपचयाश्रितो विजयते ह्येको धरामण्डले ॥११॥

तस्यप्रभोश्चरणपंकजचंचरीको-
विद्यावदातविजयामृतसूरिनामा ।
स्वीयान्यदीयनिगमागमपारदृश्वा-
विश्वासभूमिरधिभूमिसमस्तजन्तोः ॥ १२ ॥

सोऽयं शास्त्रविशारदो बहुगुणग्रामैकधामा कवि-
रत्नः प्रोच्छलदच्छशारदशशिज्योत्स्नाभकीर्त्तिव्रजः ।
विद्वन्मण्डलमण्डनोऽमलमना भट्टारकाचार्यकः,
शुद्धाचारविचारचर्चितसदाचारांचितो राजते ॥ १३ ॥

कार्पट्यवाणिज्यपुरे पुरन्दराऽमरावतीह्रीपदमाददाने ।
श्रीमद्गुरोः शासनसन्नतांगो वासं चतुर्मासमचीकरत्सः ॥ १४ ॥

श्री न्यालचन्द्रादिकसंघसत्कृत-
स्तेषामतीवादरणीयभावतः ।
श्री सप्तसंधानककाव्यटीका-
कृते मुहुः प्रार्थनयानुरंजितः ॥ १५ ॥

अनल्पयत्नैकमना अनाविलामरीरचत्तत्सरणीं सुविश्रुतिम् ।
न धीधनाः क्वापि परार्थभावनापृथग्मना जायत एव जातुचित्॥१६॥

कृतिरियं कृतिनां नयनक्रमावतरणात्परिपूतकृता यदि ।
सफलतां प्रलभेत तदा भृशं सुजनतुष्टिरहोऽतिगरीयसी ॥ १७ ॥

गुणनिधिनिधिचन्द्रे १९९३ सम्मिते हायने स-
नभसि विमलपक्षे व्यालतिथ्यां बुधेऽह्नि ।
इयमलभत पूर्त्तिं नेमिसज्जन्मतिथ्यां,
भवतु च सरणीयं तेन तेषां मुदेद्राक् ॥ १८ ॥

तदियं सरणी लभतां गुरुजनपादप्रसन्नतां शश्वत् ।
आकल्पांतं भूमौ भूयान्निःपङ्किला भूयः ॥ १९ ॥

तदीय-
विनीतविनेयविनेयो धुरन्धरविजयः





—: शुद्धि-पत्रम् :—

पृष्ठम्	पंक्तिः	अशुद्धम्	शुद्धम्
१	२	शशाङ्काक	शशाङ्काङ्क
२	१७	श्यामीना	श्यामिनां
२	१९	रामयोदेवा	रामयोरेवा
[illegible]	४	व्यवस्थापिका	व्यवस्थापक
८	१८	सरात्	सरोवरार्थं
९	१०	यानमूर्दः	यानम्
९	१३	महद्न्तरात्वात्	महान्तरत्वात्
९	१४	रस्यासौ	रम्यस्यासौ
९	१८	सशोचः	सशोच·
९	१९	शुचेन	शुचेन
१०	६	श्रुत्यविहिनस्य	श्रुत्याविहीनस्य
११	११	याहन	वहन
११	२३	अगपेध	अप्रवेधः
१२	११	समवभाव्यते	सम्भाव्यते
१२	१३	हदयग्राह	हृदयग्राह
१२	१४	कण्टकिन	कण्टकिनः
१२	१७	दृष्टान्त	दृष्टान्त
१२	२०	तृणाम्	तृणाम्
१४	४	पक्षेपान्	प्रक्षेपान्
१४	६	राशिकरणे	राशीकरणे
१४	२३	शद्रिन्यो	शेदिन्यो
१५	१५	तीक्ष्णाम	तीक्ष्णाम
१५	२३	शास्त्रादि	शाड्वादि
१६	१५	निरभ्तर	निरन्तर
१६	२०	वाहया.	वाप्याः
१६	२३	सरवन्धात्	सम्बन्धात्
१७	२१	रोदनात्	रोदनात्
१९	१	वचयो·	वयोः
२१	१६	सेकामृपुर	सेकाम्तपुर
२३	२०	पततीनीत्यर्थ	पततीत्यर्थः
२६	८	प्रपतङ्गा	प्रपतद्गङ्गा
२६	१०	उपरीत्यर्थ	उपरीत्यर्थः
२६	२३	बोधव्यः	बोद्धव्यः
३२	३	कुरुवत्यर्थः	कुर्वेत्यर्थं
३४	६	मूभरेशः	भूसुरेशः
३६	१७	चतुर्षष्टि	चतुःषष्टि
३७	३	तेस्तथोथैः	तैस्तथोक्तै·
३७	६	लेऽपरागास्त	नेऽपरागास्तैः
३७	११	जना	जनाः
३९	१	सुनिपुणाना	सुनिपुणानां
३८	४	ममोरस्थेति	ममोक्तथेति
४०	१	यहुधान्य	बहुधान्य
४०	९	सभीप	समीप
४०	१०	कूपन्वित·	कूपान्वित
४०	१३	संस्कृताधेकाध	संस्कृतार्थैकाव
४०	१६	विशालिनः	विशालता
४१	१	प्राणीनां	प्राणिनां
४१	१६	आवश्यमेव	आवश्यकमेव
४२	२	पिताम्बरा·	पीताम्बरा
४४	१७	सुप्रभाताः	सुप्रभाता
४५	९	शीर्यंक्रु	शीर्षंहृद्
४५	१५	धृद्धया	धृष्ट्या
४६	१	विस्रसादभीदः	विस्रसाभीदः
४८	२३	नेत्रेः	नेत्रै
४९	२	द्विरयरित्यर्थः	द्विरेफैरित्यर्थं·
४९	१	दुरितोपहाराः	दुरितापहारा.
५०	८	वीशिष्ठ	विशिष्ट
५२	६	मोदिनी	मेदिनी
५४	१५	मास्ताम्	मासेताम्
५७	८	सक्रिया	सत्क्रिया
”	१०	”	
”	११	”	

पृष्ठम्	पंक्तिः	अशुद्धम्	शुद्धम्
२४०	९	सैन्येरिति	सैन्यैरिति
२४२	११	छद्मन्ता	छद्मना
२४१	११	अप्रयोजि	प्रायोजि
२४४	६	कतिचिमत	कतिचिद्यत
२४५	४	दोषः	दोष:
२४६	८	बुभूजे	बुभुजे
२४९	१२	चलक्षितः	चलक्षितः
२५०	१६	नोपऽकक्षितः	नोपकक्षितः
२५१	२०	भावता	भावना
२५२	१	महारयाम	माहारयाय
२५२	८	समागतैः	समागते
२५२	१७	कस्यौंः	कस्योंः
२५५	६	प्रर्वमाने	प्रवर्तमाने
२५६	१४	शत्रुयन	शत्रुर्येन
२५७	१२	प्रेमाक्ष	प्रेम्णः
२५९	१	चरणन्	चान्
२६१	१०	पातेहन्	पातेष्टन्
२६२	६	दिव्यद्रुपा	दिव्यद्रूपा
२६२	१६	तद्नुकोक्यात	तदानुकूल्यात्
२६२	२०	अस्युगमाकर्	अस्युत्कट
२६४	४	पुनरावृत्ति	पुनरावृति
२६४	५	ग्रामैंषु	ग्रामेषु
२६९	४	यीन्द्रिय	यीन्द्रिय
२७०	११	महासा	महसा
२७३	२	विधियमान	विधीयमान
२७४	७	रदृष्टम्	अदृष्टम्
२७४	१७	गणेण	गणेन
२७४	२१	कुषेन	कुद्वे
२७८	१७	ह रिक्ष	हरिक्ष
२७८	२०	दिगच्छाद–	दिगाच्छाद
२७९	३	सर्वात्मनो	सर्वात्मना
२८०	८	साधनै	साधनैः
२८१	१	सत्तत	सतत
२८१	१७	स्थितिमा	स्थिति.
२८२	१८	किहिमर्ष	किहिरष
२८५	८	प्रौघ	प्रोघैः
२८९	२२	दुर्धप·	दुर्द्धर्षः
२९५	२०	लुप्तोपमा	लुप्तोपमा
२९६	६	मौर्वीके	मौर्वीके
३००	५	श्री	श्री·
३०१	१९	महौघानी	महौघासी
३०१	२०	महद्वैरि	महावैरि
३०२	१०	द्वादशम	द्वादशं
३०३	६	युवति	युध्यति
३०५	२०	महकारं	महकारं
३०५	२१	प्रभयेत	प्रभवेत्
३०९	१	विपर्यं	विपर्यय
३११	११	विभायन्	विभावयन्
३१७	४	प्रकाशितु	प्रकाशितु
३२३	१३	जयितुं	जेतु
३२४	१४	"	,
३२५	२	"	"
३२६	३	जनितः	जनिता
३२९	१७	मध्यावकाशे	मध्यावकाशो
३३०	४	ममरहिता	ममत्वरहिता
३३२	२१	आश्चर्य:	आश्चर्यं
३३५	१३	तस्या	तस्या·
३३५	२१	प्रासगन्	प्रासगत
३३७	१४	गजमती	गजवती
३३८	६	मजिता	मज्जितो
३३८	९	भयन्ति	भवति
३२८	११	संमति	संमितिः
३४०	३	अप्राप्नुयत्	प्राप्नोत्
३४०	१६	निरसम्	निरासम्

पृष्टम्	पंक्तिः	अशुद्धम्	शुद्धम्
३४०	२०	स्थिर्भवेत	स्थितिर्भवेत
३४१	७	हिंषक	हिंसक
३४२	४	अमृता	अमृत
३४३	६	च्छेदन	छेदन
३४४	१९	स्यनया	स्यनेन
३५०	९	यत्पोपे	सत्पोपे
३५३	४	चक्रभृत्	चक्रभृत्
३५५	३	तनतननयः	तपनतनयः
३५७	४	प्रसस्त	प्रहस्त
३६९	४	विचकास	विचकाम
३७०	४	शायते	शेते
३७०	१५	शायते	शेते
३८७	१६	पर्यंन	पर्यं
३९६	७	मर्ना	मना
४००	२३	प्रमया	प्रभया
४०१	१	पुर्वम्	पूर्वम्
४०१	२	अभिनामयित्वा	नामयित्वा
४०१	१८	विधाप्य	विभाप्य
४०४	१४	ऋषम	ऋषभ
४०६	१०	महत्परा	महापरा
४०७	१	महास्तवैः	महोत्सवैः
४०८	२०	ननैवै	नैनवै
४१०	१	कृतायो	कृतोयो
४१३	२३	हृदय	हृदयस्य
४२५	१	अधिकेति	अधिक इति ।

॥ श्री गौतमस्वामिने नमः ॥

—: શ્રી જૈન સાહિત્ય વર્ધક સભા :—

સ્થાપના:—સંવત ૧૯૯૫ના ભાદરવા શુદિ ૨, (બીજને) ને શુક્રવારે આચાર્ય મહારાજ શ્રીમદ્ વિજયામૃતસૂરીશ્વરજી મહારાજશ્રીના ઉપદેશથી આ સભા શેઠ નેમુભાઇની વાડીના ઉપાશ્રયમાં સ્થાપવામાં આવી છે.

ઉદ્દેશ—પૂર્વાચાર્ય કૃત તેમજ નવીન ન્યાય વ્યાકરણ સાહિત્ય વિગેરે વિષયક ગ્રન્થો તેમજ તેના પર વ્યાખ્યાઓનું પ્રકાશન કરવું તેમજ જ્ઞાન વૃદ્ધિના સાધનોમાં યથાશક્તિ ઉદ્યમવંત રહેવું.

પ્રકાશન વિભાગના નિયમો

૧. પેટા વિભાગ તરીકે જુદા જુદા નામની ગ્રન્થમાળાઓ છાપી શકાશે.
૨. ગ્રન્થમાલા માટે તે નિમિત્તે એકત્ર કરવામાં આવેલ ફંડ ખર્ચવામાં આવશે.
૩. ગ્રન્થમાલાના પ્રેરકની આજ્ઞા અનુસાર કાર્ય કરવામાં આવશે
૪. ગ્રંથના સંશોધક મુનિ મહારાજને પચાસ કોપીઓ ભેટ આપવામાં આવશે.
૫. તે ગ્રન્થની વિશેષ નકલ ૫૦ તેમની ઇચ્છા મુજબ અથવા સભા સ્વતંત્ર અન્ય ખપી જીવોને ભેટ આપી શકશે.

સભાના નિયમો.

૧. સંસ્થાના નાણાં બેંકમાં કમીટી પૈકીમાંના ચાર ગૃહસ્થોને નામે રહેશે.

૨. તેઓમાંના બેની સહીથી બેંકમાંથી નાણાં ઉપાડી શકાશે.

૩. કાર્યવાહક મંડળમાં એક ટ્રેઝરર અને બે સેક્રેટરીઓ રાખવામાં આવશે.

૪. ફંડનો હિસાબ સેક્રેટરી તરફથી કમીટીમાં પાસ કરાવવામાં આવશે.

૫ વ્યવસ્થાપક કમીટીની નિમણુંક ત્રણ વર્ષ માટે કરવામાં આવી છે. અને પાછીથી ફરીથી નિમણુંક કરવામાં આવશે.

૬. સંસ્થાની ઓફીસ સુરતમાં રહેશે

૭ ટ્રેઝરર તરીકે શેઠ નવલચંદ ખીમચંદ કામ કરશે. અને તેઓ તરફથી નાણાની પહોંચ આપવામાં આવશે અને સેક્રેટરી નાણાં વસુલ કરશે અને પહોંચ આપશે

૮. સેક્રેટરી તરીકે કેશરીચંદ હીરાચંદ, નેમચંદ મોતીચંદની નિમણુંક કરવામાં આવી છે.

૯. ત્રણ વર્ષ માટે કમીટીમાં નીચેના સદ્‌ગૃહસ્થોની નિમણુંક થઇ છે

૧ શેઠ નવલચંદ ખીમચંદ ટ્રેઝરર–ગોપીપુરા
૨ શેઠ બાલુભાઇ ખીમચંદ કલ્યાણચંદ–ગોપીપુરા
૩ શેઠ હીરાચંદ ચુનીલાલ દાલીઆ–ગોપીપુરા
૪ શેઠ છગનલાલ ધનજીભાઇ સગરામપુરા
૫ શેઠ ચુનીલાલ કલાણચંદ નવાપુરા
૬ શેઠ ચંદુભાઇ મગીનચંદ કપુરચંદ હરીપુરા
૭ શેઠ હરજીવનદાસ ગોમાજી નવાપુરા
૮ શેઠ બાલુભાઇ ઉત્તમચંદ વડાચૌટા
૯ શેઠ ચંદુલાલ છગનલાલ છાપરીયા શેરી
૧૦ શેઠ કેશરીચંદ હીરાચંદ સેક્રેટરી ગોપીપુરા
૧૧ શેઠ નેમચંદ મોતીચંદ " "

એ પ્રમાણે અગીયાર ગૃહસ્થોની કાર્યવાહક કમીટી રહેશે.

આ સભાની શુભ શરૂઆત તરીકે આચાર્ય મહારાજ શ્રી વિજયામૃતસૂરીશ્વરજી મહારાજ તરફથી અમૂલ્ય ગ્રન્થો પ્રકાશન કરવાને સંસ્થાને સોંપવામાં આવ્યા છે. તે 'શ્રી વૃદ્ધિ નેમિ અમૃત ગ્રન્થમાલા' તરીકે પ્રગટ કરવામાં આવશે.

" શ્રી વૃદ્ધિ નેમિ અમૃત ગ્રન્થમાલા "

કાર્ય:-આચાર્ય મહારાજ શ્રીમદ્ વિજયાનતસૂરીશ્વરજી મહારાજ તેમજ તેમના શિષ્યોએ વિરચિત ન્યાય સાહિત્ય વિગેરે વિષયના ગ્રન્થો છપાવી પ્રગટ કરવા

ફંડ વ્યવસ્થા:-આ ગ્રન્થમાલાના ફંડ માટે નીચે પ્રમાણે વ્યવસ્થા કરવામા આવી છે.

૧૦૧	અર્પનાર	ગૃહસ્થ	આ	ગ્રન્થમાલાના	'સંરક્ષક'	ગણાશે.
૫૧	"	"	"	"	સહાયક	"
૨૫	"	"	"	"	સભ્ય	"

તેમને આ ગ્રન્થમાલા તરફથી બહાર પડતા ગ્રન્થોની અનુક્રમે ચાર (૪) બે (૨) અને એક (૧) નકલ ભેટ આપવામા આવશી.

રૂા. ૧૧) ઓછામાં ઓછી રકમ તરીકે આ ગ્રન્થમાલામા સ્વીકારવામા આવશે

અમોને પ્રકટ કરવા સોંપેલ ગ્રન્થોમાથી અમોએ

૧ પ્રથમ ગ્રન્થ-શ્રી પરમાત્મ સંગીન રસસ્રોતસ્વિની પ્રકટ કરેલ ઈં

૨ દ્વિતીય ગ્રન્થ-આ સપ્તસન્ધાન મહાકાવ્યને 'સરણી' ટીકા સાથ પ્રકટ કરીએ છીએ.

૩ તૃતીય ગ્રન્થ-સાહિત્ય શિક્ષા મંજરી (શ્લોક તેમજ કાવ્ય રચવાની તેમજ તેનું રહસ્ય જાણવાની પદ્ધતિનો ગ્રન્થ) ટુંક સમયમાં પ્રકટ થશે

આ શિવાય ક્રમે ક્રમે 'તિથિચિન્તામણિ' 'પ્રભા' ટીકા યુક્ત, 'ખણ્ડનખાદ્ય' લઘુ ટીકા સાથે વગેરે ગ્રન્થો પ્રકટ કરવા ભાવના રાખીએ છીએ

'સંરક્ષક' ના નામો.

૫૦૧ શ્રી હરજી જૈન જ્ઞાનશાલાના જ્ઞાન ખાતામાંથી (સપ્તસન્ધાન મહાકાવ્ય-માટે)

૧૦૧ શાહ શીવચંદ વજેચંદ

૨૦૧ શાહ મીઠાભાઇ કલ્યાણચંદની પેઢી કપડવંજ

૧૦૧ શાહ કપાળચંદ વજેચંદ

૧૦૧ શાહ વજેચંદ ઝુમાભાઇ

'સહાયક' ના નામો.

૭૫ વડાચૌટાના શ્રી સંઘ તરફથી
૫૧ શાહ છગનલાલ ધનજીભાઇ
૫૧ નગીનચંદ કપુરચંદ
૫૧ ચુનીલાલ ગુલાબચંદ દાળીયા
૫૧ શાહ કીકાભાઇ સકળચંદ સરૈયા
૫૦ શાહ નગીનચંદ કપુરચંદ જરીવાળા
૫૧ શાહ વીરચંદ હરજીવનદાસની કું.
૫૧ શાહ મગનલાલ દેવચંદ જરીવાલા
૫૧ શાહ ઘેલાભાઇ રતનચંદ ઝવેરી
૫૧ શાહ ચંદુલાલ છગનલાલ
૫૧ શાહ માણેકચંદ ઝવેરચંદ
૫૧ શાહ સાકરચંદ ખુશાલચંદ
૫૧ મુલચંદ બુલાખીદાસ ખંભાત
૫૧ હરખચંદ તાપીદાસ લાકડાવાલા
૫૧ શાહ દલીચંદ વીરચંદ શ્રોફ
૫૧ શાહ કલ્યાણચંદ દેવચંદ

'સભ્ય' ના નામો.

૨૫ શાહ નવલચંદ ખીમચંદ ઝવેરી
૨૫ શાહ ભાઇચંદ લાલભાઇ
૨૫ શાહ મંગુભાઇ બાલુભાઇ
૨૫ શાહ દીપચંદ ધરમચંદ હા
તેમના પુત્રી કીકીબેન
૨૫ મંગળભાઇ મુલચંદ અદાલતવાળા
૨૫ શાહ ચીમનલાલ નગીનદાસ
૨૫ શાહ નવલચંદ ઘેલાભાઈ
૨૫ શાહ ઘેલાભાઇ દીપચંદ
૨૫ શાહ છગનભાઇ કીકાભાઈ
૨૫ શાહ ચુનીલાલ વમળચંદ
૨૫ લલ્લુભાઇ ગુલાબચંદ
૨૫ શાહ કાલીદાસ રતનચંદ
૨૫ શાહ પ્રસન્નમુખ સુરચંદ બદામી
૨૫ શાહ કેશરીચંદ ચુનીલાલ બદામી
૨૫ શાહ અમીચંદ ગોવીંદજી
૨૫ શાહ વીરચંદ ખુમચંદ,
ફકીરચંદ કપુરચંદ
૨૫ શાહ બાલાભાઇ મગનલાલ
૨૫ શાહ વીનોદચંદ મોહનલાલ
૨૫ શાહ કલ્યાણચંદ દેવચંદ હા.
તેમના પુત્રી બેન નેમકોર
૨૫ શાહ નાનુભાઇ દેવચંદ
૨૫ શાહ અમીચંદ નવલચંદ
૨૫ શાહ દલસુખભાઈ જેઠાભાઇ
૨૫ શાહ ફુલચંદ તલકચંદ
૨૫ શાહ નેમચંદ હીરાચંદ
૨૫ શાહ ઘેલાભાઇ અમીચંદ
૨૫ શાહ રંગીલદાસ લાલભાઇ
૨૫ શાહ ઘેલાભાઇ રાયચંદ
૨૫ શાહ ખીમચંદ લલ્લુભાઇ
૨૫ શાહ મણાયચંદ મોતીચંદ
૨૫ શાહ માણેકલાલ ડાહ્યાભાઈ
૨૫ શાહ કેશવલાલ કરમનદાસ
૨૫ શાહ વજ્રસેન નગીનદાસ
૨૫ શાહ કલ્યાણચંદ દેવચંદ હા.
તેમના પુત્રી બેન મગન
૨૫ મોહનલાલ મગનલાલ બદામી

